युग-पुरुष

वीर सावरकर

(विचारोत्तेजक एवं रोमांचक जीवन गाथा)

अशोक कौशिक

सूर्य-प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली—११०००६

प्रकाशक सूर्य प्रकाशन
नई सड़क, दिल्ली ११०००६

संस्करण १९९०

मुद्रक एस कुमार प्रिंटिंग सर्विस
बाबूराम चौक भोजपुर, दिल्ली ११००५३

मूल्य १००-००

भूमिका

क्रान्तिकारियों के मुकुटमणि, स्वतन्त्रता सेनानियों के अग्रणी, साहित्याकाश के उज्ज्वल नक्षत्र, सिद्धान्तनिष्ठ श्री विनायक दामोदर सावरकर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। साहस, धैर्य, सहनशीलता, वीरता एवं कर्त्तव्यनिष्ठा के पुंज सावरकर के जीवन का प्रत्येक क्षण घटनापूर्ण रहा है। सावरकर सोद्देश्य जीवनयापन करने वालों में सर्व-श्रेष्ठ ही नहीं अपितु अग्रणी भी हैं। अन्यथा महाराजा एवं कवि-सम्राट भर्तृहरि के अनुसार—

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्॥ नीतिशतक ॥

'परिवर्तनशील इस संसार में कौन नहीं जन्मता और कौन नहीं मरता, किन्तु उसका ही जन्म सार्थक है जिसके जन्म से वंश की उन्नति होती हो।' वंश का अभिप्राय संकुचित नहीं है। अर्थात् जिसके जन्म से देश की उन्नति होती हो।

क्रान्तिकारियों एवं साहित्यकारों के गुण हैं—साहस, धैर्य, वीरता, सहनशीलता और कर्त्तव्यनिष्ठा। ये सभी गुण सावरकर में समाहित थे। इसी कारण वे विश्व के क्रान्तिकारियों के मुकुटमणि बन पाये और इन्हीं गुणों के कारण वे उत्कृष्ट साहित्य निर्माता भी बन पाये।

मात्र एक 'व्यक्ति' के कारण यदि किसी विदेशी प्रधानमन्त्री की कुर्सी लड़खड़ाई तो वह एक व्यक्ति थे वीर सावरकर और प्रधानमन्त्री थे फ्रांस के एम० ब्रायन, जिसका वर्णन हमने इस पुस्तक में यथास्थान किया है।

सावरकर के कृत्यों अर्थात् गुणों का बखान कर पाना किसी के लिये भी सहज सम्भव नहीं है। उनके असाधारण व्यक्तित्व और महान कृतित्व पर यदि कोई आजीवन अपनी लेखनी चलाता रहे तो भी वह कृतकार्य हो पायेगा, इसमें सन्देह है। ऐसे ही व्यक्ति के लिए संस्कृत के कवि ने कहा है—

असित गिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे,
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वीम्।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालम्,
तदपि तव गुणानां ईश पारं न याति॥

इसका हिन्दी भावार्थ है—

सात समुन्दर की मसि करूँ, लेखनी सब बनराय।
धरती को कागद करूँ, तब गुण लिख्यो न जाय॥

ऐसे गुणातीत व्यक्ति पर लेखनी उठाना मम सदृश सामान्य व्यक्ति के लिए सम्भव नही था। तदपि सावरकर के प्रति अपनी श्रद्धा और निष्ठा से प्रेरित होकर सन्त तुलसीदास की भाँति 'स्वान्त सुखाय' यह जीवन चरित लिपिबद्ध करने का मैंने प्रयास किया है। वीर सावरकर की अनेक कृतियो का पारायण करने के उपरान्त मन मे एक हूक और कसक-सी उठती थी कि ऐसे नर-पुगव का जीवन चरित हिन्दी के पाठको के लिए उपलब्ध किया जाना चाहिए। सावरकर के जो जीवन चरित अब तक लिखे गए हैं, उनकी 'ओथेंटिसिटी' अर्थात् आधिकारिकता को चुनौती न देते हुए यह तो कहा ही जा सकता है कि वे सब सर्वथा अपूर्ण हैं। यहाँ तक कि प्रसिद्ध जीवनी लेखक श्री धनजय कीर ने उनकी जो जीवनी लिखी है वह कुछ विस्तृत तो है, किन्तु पूर्ण वह भी नही है। मैंने यह अनुभव किया कि सावरकर की जीवनी लेखको ने उनके जीवन पर प्रकाश डालने की अपेक्षा उनके विचारो पर अधिक प्रकाश डाला है। विचार और कर्तृत्व का विभेद वे नहीं कर पाये, ऐसी मेरी मान्यता है। सावरकर के जीवन की घटनाए ही इतनी प्रेरणा प्रद हैं कि तभी उनके विचारो की थाह मे जाने की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है।

इस प्रसग मे एक अन्य बात की ओर सकेत कर देना भी समीचीन होगा। सावरकर को सदा ही सरकार का विरोधी सिद्ध करने का यत्न किया गया है, फिर वह सरकार चाहे स्वदेशी हो अथवा विदेशी। किन्तु हमारी दृष्टि मे तो सावरकर जनहित कर्ता थे। जनहितकर्ता तो सरकार की आँख की किरकिरी स्वय ही हो जाता है। सस्कृत के एक सुभाषित म कहा गया है—

जनपदहितकर्ता त्यज्यते पार्थिवेन।

'जो व्यक्ति जनता की प्रजा की भलाई करता है, राजा उसका त्याग कर देता है।'

यह परिपाटी तो प्राचीन काल से ही चली आ रही है। सावरकर ने सदा जनता का हित किया इसीलिए पहले अग्रेज सरकार ने और कालान्तर मे स्वतन्त्र भारत की भारतीय सरकार ने उन्हे केवल त्याज्य मान कर यथा-सामर्थ्य यातनाए ही दी। स्वतन्त्र भारत के दो महान नेता गाँधी और नेहरू तक उनसे सदा द्वेष करते रहे। कुमारसम्भव मे कालिदास ने इस विषय पर सुन्दर टिप्पणी की है—

द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम् ॥ ५.७५ ॥

'दुष्ट जनो को महान् व्यक्तियो के कार्य नही सुहाते, इसलिए वे उनसे द्वेष करते हैं।

सावरकर के जीवन की हर श्वास, उनके शरीर का प्रत्येक रोम उनके हृदय की हर धड़कन जनहितार्थ समर्पित रही है। वे कोटि-कोटि नर-नारियों के प्रेरणा स्रोत रहे हैं। ऐसे नर शार्दूल के जीवन को कागज के कुछ पृष्ठों पर अंकित कर अपने कर्तव्य की इति श्री मान लेना जहाँ उनके जीवन के प्रति पूर्ण न्याय नहीं होगा वहां पाठकों

प्रति भी कितना न्याय होगा यह विचार का विषय है। तदपि कुछ न होने से तो कुछ होना भला, इस विचार से हमने यह प्रयास किया है।

दिल्ली की प्रसिद्ध प्रकाशन संस्था सूर्य-प्रकाशन ने जब मुझे इस कार्य के लिए प्रोत्साहित किया तो मुझे अपने हृदय में उठने वाली हूक को शान्त करने का अवसर प्राप्त हो गया। मैंने तुरन्त ही इस पर कार्य करना आरम्भ कर दिया और सावरकर द्वारा तथा सावरकर पर लिखित जो भी साहित्य उपलब्ध हो सका, मैं उसके अध्ययन में प्रवृत्त हो गया। इस अध्ययन और लेखन में लगभग ९-१० मास लग गए। उसके परिणामस्वरूप ही सावरकर की जीवनी का यह स्वरूप प्रस्तुत कर पा रहा हूँ। मैं इसमें पूर्णतया 'कृतकार्य' हो पाया हूँ, ऐसी मेरी मान्यता नहीं है। 'सागर को गागर में समेटना' जीवनी लेखन के प्रसंग में उचित नहीं होता। वह भी सावरकर जैसे महापुरुष का विशाल जीवन-वृत्त। तदपि इतना तो मैं साधिकार कह सकता हूँ कि इन पृष्ठों में मैंने केवल उनके जीवन के कार्यों को ही लिपिबद्ध किया है, उनके जीवन-दर्शन एवं विचारों से पुस्तक की पृष्ठ संख्या बढ़ाने की प्रक्रिया के लोभ से मैंने स्वयं को असम्पृक्त रखने का यत्न किया है।

इस जीवनी के लेखन में मैंने जिन-जिन ग्रन्थों से सहायता प्राप्त की है, उनकी सूची पुस्तक के अन्त में दे दी है। जहाँ-जहाँ से मैंने जो कुछ उद्धृत किया है उसका उल्लेख भी मैंने यथास्थान कर दिया है। इन सहायक ग्रन्थों के उन सभी लेखकों के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ। सावरकर के बम्बई निवासकाल में उनके निजी सहायक के रूप में आचार्य बालाराव सावरकर उनके जीवन के अन्तिम क्षणों तक सावरकर के साथ रहे हैं और उन्होंने न केवल सावरकर पर अनेक पुस्तकें लिख कर प्रकाशित की हैं अपितु सावरकर पर अन्य लेखकों की पुस्तकों को भी उन्होंने प्रकाशित किया है। इस जीवनी की रचना में उनका अनन्य सहयोग मुझे प्राप्त हुआ है, इसके लिए मैं हृदय से उनका आभारी हूँ। अन्त में—

त्वदीय वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये।

हिन्दी जगत् में सावरकर के पाठकों की इस वस्तु को मैं उनको ही समर्पित करता हूँ।

—अशोक कौशिक

अनुक्रम

आरम्भिक जीवन

पूर्व पीठिका

यह उस काल की गाथा है जब हमारा भारत अंग्रेज साम्राज्यवादियों की दासता की शृंखलाओं में जकड़ा हुआ छटपटा रहा था। भारत का जन-मानस दासता की उन शृंखलाओं को तोड़ने के लिए सब प्रकार के प्रयत्न कर रहा था। १८८० और १८६० का हमारे देश का इतिहास अत्यन्त अंधकारमय पृष्ठों वाला रहा है। इस दशक तक पहुँचते-पहुँचते हमारा देश राजनीतिक दृष्टि से पतित, सामाजिक दृष्टि से अपमानित तथा आर्थिक दृष्टि से सर्वथा क्षीण हो चुका था। यह वह काल था जब स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द और महात्मा राणाडे जैसे आध्यात्मवादी सुधारक अपना कार्य सम्पन्न कर राष्ट्रीय मंच से तिरोहित हो चुके थे। इन लोगों ने भारतीयों को चिर निद्रा से जगाने का बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। इसी प्रकार नामधारी रामसिंह कूका और क्रान्तिकारी वासुदेव बलवन्त फड़के के विद्रोह ने भी भारतीयों की विचारतन्त्री को झकझोरने का कार्य किया था। लोकमान्य तिलक यथाशक्ति अपनी ओर से यत्न कर रहे थे। उधर देश के पूर्वी भाग में बाबू आनन्दमोहन बोस और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जन-जन में नवजीवन का संचार करने में लीन थे।

भारत में क्रान्ति के बीज पनपने लगे थे। इसलिए भारतीय क्रान्ति को पनपने से पूर्व ही समाप्त कर देने के विचार से अंग्रेज सरकार ने एक कुटिल चाल चली। ब्रिटिश सरकार के सेवानिवृत्त अंग्रेज एवं कुछ थोड़े से भारतीय उच्चाधिकारियों के सम्मिलित प्रयास से २८ दिसम्बर १८८५ को 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' की स्थापना करवाने में अंग्रेज सरकार का मनोरथ सफल हो गया। अंग्रेज उच्चाधिकारी वर्ग रूपी पिता और भारतीय उच्चाधिकारी-वर्ग रूपी माता की मानस सन्तान 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' के जन्मदाता सेवा निवृत्त अंग्रेज उच्चाधिकारी सर ए० ओ० ह्यूम को इसका प्रथम प्रधान नियुक्त किया गया। क्योंकि यह अंग्रेजों द्वारा, अंग्रेज सरकार के हित के लिए स्थापित संस्था थी। अतः आरम्भ में इसके अधिवेशनों में सर्वप्रथम अंग्रेज राजा के सुख-समृद्धिमय

सुदीघ जीवन की कामना की भगवान से प्रायना की जाती थी।

अत सक्षेप म यही कहा जा सकता है कि वह काल बहुत ही शोक और लज्जा से परिपूण काल था जिसका विकल्प या तो उस स्थिति मे सुधार हो सकता था या फिर क्राति।

जन्म एव बाल्यकाल

सन १८८३ म स्वामी दयानद अपने पार्थिव जीवन के अतिम चरण पर थ और विद्रोही वासुदेव बलवन्त फडके भारतीय जनतत्र की स्थापना का स्वप्न सजोए अदन म समाधिस्थ हो गए थे। इसी काल म २८ मई सन १८८३ को सोमवार क दिन प्रात काल १० बजे हमारा चरित नायक वीर विनायक दामोदर सावरकर इस धरा पर अवतीर्ण हुआ था। उसी काल की दो अय उल्लेखनीय घटनाए हैं—सावरकर के जम स ७५ दिन पूव लदन मे सवहारा वग के कथित मसीहा काल माक्स का इस ससार स चुपचाप विदा ले जाना और विनायक के जम के ६२ दिन बाद इटली क भाग्य विधाता मुसोलिनी का जम होना।

सावरकर का जम उस चितपावन ब्राह्मण कुल म हुआ था जिसन इससे पूव भी अनक देशभक्त महापुरुषो का जम दिया था। मराठा साम्राज्य के प्रथम पशवा बालाजी विश्वनाथ, १८५७ के स्वतत्रता सनानी नाना साहब, प्रसिद्ध क्रातिकारी वासुदव बलवत फडके, विख्यात चाफेकर बधु, महादेव गोविद राणाडे, लोकमाय बाल गगाधर तिलक, य सभी जिहोने स्वतत्रता देवी की कीतिपताका फहराने का सकल्प लिया था, उसी चितपावन कुल म उत्पन्न हुए थे। कालातर मे राष्ट्रीय स्वयसवक सघ के सस्थापक डा० केशव बलिराम हेडगेवार भी उसी कुल के दीपक बने। वीर विनायक सावरकर के पूवज मूलतया महामुनि परशुराम की लीलास्थली कोकण के निवासी थे। कोकण म उनके पूवजो की अच्छी ख्याति थी और अपनी विद्वत्ता के लिए वे दूर-दूर तक प्रसिद्ध थे। अपने ऐसे पूवजो की देशभक्ति, सघषशीलता और विद्वता सावरकर के रक्त, मांस, मज्जा और मस्तिष्क म समाहित थी। जिस प्रकार मेजिनी के उत्थान के साथ साथ इटली पर स ऑस्ट्रियन साम्राज्य धूमिल होता गया उसी प्रकार सावरकर के उत्थान के साथ साथ ब्रिटिश साम्राज्य की जडें भी खोखली होनी आरम्भ हुईं।

विनायक का घर का नाम तात्या था। उनके पिता दामोदर पत अच्छी कद काठी के अध्ययनशील आत्मसम्मानी, अतीत गौरव के प्रति आस्थावान तथा कवि हृदय व्यक्ति थ। लोकमाय तिलक के वे परमभक्त थे। विनायक की माता राधाबाइ बड धार्मिक विचारो की सुदर और उज्ज्वल चरित्र दयालु स्वभाव की महिला थी। यह सब कुछ ही विनायक को उत्तराधिकार मे प्राप्त हुआ था। दामोदर पन्त की चार सतान थी—तीन पुत्र तथा एक कन्या। सबस बडे पुत्र का नाम गणेश उसके बाद विनायक, फिर कन्या मना और सबस छोटे थे नारायण। देशभक्ति और स्वाभिमान तो इन चारो को ही घुट्टी म मिला था। सावरकर दम्पत्ति रामायण और महाभारत का नित्य प्रति

अध्ययन और पाठ किया करते थे। उनकी कहानियाँ अपने बच्चों को सुनाना उनका नित्य का नियम था। इसके अतिरिक्त वे छत्रपति शिवाजी, महाराणा प्रताप तथा पेशवाओं की वीर गाथाएँ एवं वीरता से परिपूर्ण लावणी और पोवाड़े भी अपनी संतति को नियमित रूप से सुनाते तथा उन्हें कंठस्थ करने के लिए प्रेरित करते थे। समय-समय पर माता राधाबाई अपने पुत्र गणेश को कहती रहती थीं कि वह अपने भाई बहिनों को रामायण और महाभारत पढ़कर सुनाए। इन सब गाथाओं, आख्यानों और कविताओं का हमारे चरित्रनायक विनायक के विकास में बड़ा योगदान था।

छः वर्ष की आयु में बालक विनायक को गाँव की पाठशाला में प्रविष्ट करा दिया गया। शीघ्र ही विनायक के भीतर विद्यमान प्रतिभा प्रकट होने लगी। ज्यों ज्यों उसे अक्षरज्ञान होता गया त्यों-त्यों उसकी बुद्धि की प्रखरता निखरती गई और पढ़ने में दिनानुदिन उसकी रुचि बढ़ती गई। पुस्तक और समाचार पत्र के लिए उसकी भूख भी उसी अनुपात में बढ़ती गई। पुस्तक अथवा समाचार पत्र को हाथ में लेने के बाद उसे आद्योपान्त पढ़ने के उपरान्त ही विश्राम लेना बालक विनायक का स्वभाव बन गया था।

दस वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते विनायक मराठी में अच्छी कविता करने लगे थे, जिसका प्रमाण है उनकी उस आयु में रचित कविता का पूना के प्रसिद्ध मराठी दैनिक पत्र में प्रकाशित होना। समाचार पत्र के सम्पादक यह अनुमान भी नहीं कर सकते थे कि जिस कविता को वे प्रकाशित कर रहे हैं उसका रचयिता दस वर्ष का बालक मात्र है। विनायक के पिता ने जब अपने पुत्र की काव्य प्रतिभा देखी तो उनको बड़ी प्रसन्नता हुई। किन्तु उस दिन तो वे बड़े आश्चर्यचकित रह गए जब उस आयु में उनका पुत्र आरण्यक (शास्त्रग्रंथ) पढ़ने लगा। उसके दो कारण थे। एक तो यह कि उस आयु में आरण्यक जैसे गहन शास्त्र ग्रंथों में रुचि होना और उसके गूढ़ रहस्यों को समझना तथा दूसरी बात थी आरण्यक को घर पर पढ़ना। उन दिनों यह किंवदन्ति प्रचलित थी कि आरण्यकों का घर पर पढ़ना अशुभ होता है, उन्हें वन में पढ़ना चाहिए। इतना ही नहीं अपने बालपन में ही उन्होंने धनुर्विद्या और घुड़सवारी भी सीख ली थी।

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'। अंग्रेजी के कवि मिल्टन का भी यही कहना है कि जिस प्रकार प्रभात को देखकर दिन का अनुमान लगा लिया जाता है कि धूप खिलेगी या बादल छाये रहेंगे, उसी प्रकार मनुष्य का बचपन बता देता है कि भविष्य में यह बालक कैसा बन सकता है। यह संयोग की ही बात थी कि विनायक जब दस वर्ष का था तभी संयुक्त प्रान्त के आजमगढ़ नगर में और फिर उसके बाद बम्बई में हिन्दू-मुस्लिम दंगे हो गए। मुसलमानों ने हिन्दुओं को जो यातनाएँ दीं उसका विवरण जब विनायक ने सुना तो उसके मन में प्रतीकार की भावना उठी और उसने अपने साथियों की एक बटालियन बना ली और उसको लेकर समीप के गाँव में जा, मस्जिद पर पथराव किया। जिससे वह तहस नहस हो गई। लौटते हुए उन्हें मुसलमानों के आक्रमण का सामना करना पड़ा, किन्तु उसमें भी उनको विजय ही मिली। उस समय उस बाल-नेता को भली प्रकार समझ में आ गया कि उसे अपने दल को न केवल सुगठित करना होगा

अपितु उसको सुशिक्षित और सुसज्जित भी करना होगा, तभी उनका प्रतीकार सफल हो सकता है।

मातृशोक

उसी आयु में विनायक को मातृशोक ने आ घेरा। उनके गाँव में हैजा फैला और उनकी माता जी उसकी चपेट में आ गई। विनायक का माता के प्रति बहुत लगाव था, इससे उसको माता का अभाव खटकने लगा किन्तु पिता ने किसी प्रकार बच्चों को सम्हाला। उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। इस प्रकार चारों भाई बहिन और पिता मिलकर घर का कार्य चलाने लगे।

नासिक में

विनायक की प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में पूर्ण हुई तो उसको अपने बड़े भाई के साथ नासिक भेज दिया गया। नासिक में भी विनायक ने अपने साथियों का एक दल गठित कर लिया। अपनी कविता के माध्यम से वे अपने दल के साथियों में देशभक्ति और वीरता की भावना का संचार करते रहते थे। विनायक रचित पोवाड़ा को जो भी सुनता वही उनसे प्रभावित होता और उसमें देशभक्ति की भावना जागृत होने लगती। उन्हीं दिनों सन् १८९४ में क्रान्तिकारी चाफेकर बन्धुओं ने 'हिन्दू धर्म रक्षिणी सभा' की स्थापना भी कर ली थी। यह सभा हिन्दुओं के हितों की रक्षा करने के लिए कृतसंकल्प थी। इसके परिणामस्वरूप महाराष्ट्र में अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध एक लहर सी दौड़ने लगी थी। अंग्रेजी शासन के विरुद्ध देश के युवकों में रोष की भावना भड़क रही थी कि सन १८९७ के आरम्भ में महाराष्ट्र में भयंकर अकाल पड़ने के साथ-साथ प्लेग का भी प्रकोप होने लगा। अकाल और रोग इन दो पाटों में महाराष्ट्र की जनता पिसने लगी किन्तु अंग्रेजी शासन की कानों में जू तक नहीं रेंगी।

शासन जब अपने कर्तव्य में प्रमाद करने लगा तो लोकनायक तिलक ने महाराष्ट्र की सैंडहर्स्ट की अंग्रेज सरकार को चेतावनी दी किन्तु उसका भी कोई विशेष प्रभाव नहीं हुआ। न केवल इतना अपितु अंग्रेज सैनिक जनता पर और अधिक अत्याचार करने लगे। युवकों में रोष तो पहले ही फैला हुआ था और अब इस दारुण दुःख के अवसर पर शासन द्वारा प्रजा को राहत देने की अपेक्षा, जब उसके सैनिक प्रजा पर अत्याचार करने लगे तो सहनशीलता की पराकाष्ठा हो गई। तभी अवसर पाकर चाफेकर बन्धुओं ने ब्रिटिश प्लेग कमिश्नर रैण्ड और एक अन्य अंग्रेज अधिकारी पर गोली चलाकर उनको यमलोक भेज दिया। यह २२ जून १८९७ का वह दिन था जिस दिन महारानी विक्टोरिया के शासन की हीरक जयन्ती मनाई जा रही थी। महाराष्ट्र में अकाल और भीषण प्लेग के फैलने के उपरान्त भी सरकार की ओर से धूमधाम से हीरक जयन्ती का आयोजन किया गया था।

मिस्टर रैण्ड को यमलोक तो भेजा चाफेकर बन्धुओं ने किन्तु सरकार ने तिलक

को उन्मुक्त रखना उचित नही समझा तो उनको अपने पत्र 'केसरी' मे राजद्रोहिता से पूर्ण एव भडकाने वाला लेख छापने के आरोप म बन्दी बना लिया। बाद मे द्रविड बन्धुओ के धोखा देने पर दामोदर पन्त चाफेकर को भी पकड लिया गया और उन पर मुकदमा चलाकर १८ ४ १८९८ को फाँसी पर लटका दिया गया।

द्रविड बन्धुओं के इस दुष्कृत्य से युवको मे उनके प्रति रोष फैला और एक दिन अवसर पाकर दामोदर चाफेकर के छोटे भाई, वासुदेव, जिनको पकडने मे सरकार असफल रही थी ने अपने अन्य साथी महादेव राणाडे के साथ मिलकर एक दिन पूना की सडक पर उनको यमलोक भेज दिया। इस काण्ड म वासुदेव चाफेकर उनका छोटा भाई बालकृष्ण चाफेकर और महादेव राणाडे को मई १८९९ मे फांसी पर लटका दिया गया। इस प्रकार चाफेकर बन्धुओ के अन्त से भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम के इतिहास ने एक नया मोड ले लिया।

इसी बीच विनायक सावरकर को शीतला का प्रकोप हुआ तो उनको अपने गाव भगूर भेज दिया गया। वहीं उन्होने समाचार पत्र मे चाफेकर बन्धुओ को फासी का समाचार पढा तो उनका देशभक्त बाल हृदय क्षोभ से काप उठा। इस घटना से उनके हृदय मे अग्रेजी साम्राज्य के प्रति विद्रोह के बीज अकुरित होने लगे। विनायक ने अपनी कुलदेवी दुर्गा माता की प्रतिमा के सम्मुख जाकर उनसे प्रार्थना की और फिर उनके सम्मुख ही दृढ प्रतिज्ञा करते हुए कहा, 'देश की स्वाधीनता के लिए मैं जीवन के अन्तिम क्षणो तक सशस्त्र क्रान्ति का झडा उठाते हुए साम्राज्यवादियो से जूझता रहूगा।'

काव्य प्रतिभा

सावरकर ने चाफेकर बन्धुओ के बलिदान पर एक ऐसा पोवाडा रचा जिसे जो भी सुनता उसकी आखो से अश्रुधार बह निकलती। स्कूल में भी उनके अध्यापक उनकी विलक्षण प्रतिभा के विषय म नित्य प्रति चर्चा करते थे। तभी नासिक के दैनिक पत्र 'नासिक वैभव' म 'हिन्दुस्थान का गौरव' शीर्षक से उनका लेख पत्र के सम्पादकीय के रूप मे दो भागो म प्रकाशित हुआ। न केवल सामान्य पाठको ने अपितु उनके अध्यापको ने भी उस लेख की मुक्त कण्ठ से प्रशसा की। इससे उत्साहित होकर सावरकर नियमित रूप मे कविता और लेख लिखने लगे। श्री राणाडे और श्री तिलक उनकी ओजस्वी कविताओ को पढकर ही सर्वप्रथम उनसे परिचित हुए थे। विनायक ने ग्रामीण समाज के लिए पोवाडे लिखे जिनको बहुत ख्याति मिली।

सन् १८९९ मे सावरकर के पिता और चाचा दोनों का ही प्लेग से देहान्त हो गया। इसके साथ ही उनके छोटे भाई नारायण पर भी प्लेग का प्रकोप हो गया। उसको पहले तो गाव से दूर एक मन्दिर मे रखा गया किन्तु बाद मे नासिक प्लेग अस्पताल मे भरती करा दिया और उसके बडे भाई गणेश सावरकर अपने जीवन को खतरे मे डालकर उसकी देखभाल करते रहे। किन्तु एक दिन उनको भी प्लेग ने आ घेरा। तब तक उनका विवाह हो गया था। विनायक ने उनकी युवती पत्नी को इसकी सूचना नहीं दी और

नासिक मे रह कर भाइयो की सेवा करते रहे। ईश्वर ने उनकी प्रार्थना सुनी और दोनों भाई निरोग होकर घर लौट आये।

कुछ दिनों बाद विनायक की महाज्कर और पगे नामक दो युवको से मित्रता हो गई। सावरकर के ये दो मित्र बडे ही निष्ठावान देशभक्त थे। इन पर तिलक और पराजपे का प्रभाव था। पराजपे के विचार बडे क्रान्तिकारी थे और वे अच्छे वक्ता भी थे। यही स्थिति सावरकर की भी थी। राजनीति में तीनो के विचार समान थे। सावरकर ने उन दोनो को अपनी ओर मिला लिया और उन तीनों ने मिल कर शपथ पूर्वक 'देश भक्तों का दल' निर्माण कर लिया। यह बात १८९९ की है। सन् १९०० का वर्ष आरम्भ होते होते इन तीनो ने मिलकर 'मित्र मेला' नामक एक सगठन भी खडा कर दिया। समय बीतते बीतते यह 'मित्र मेला' बढकर १९०४ मे 'अभिनव भारत सोसाइटी' के रूप मे परिणत हुआ।

अभिनव भारत

अभिनव भारत का कार्य समस्त पश्चिमी और मध्य भारत मे प्रसार पाने लगा। इसके साथ ही यह सोसाइटी गदर पार्टी के नाम से इग्लैंड, फ्रास, जर्मनी, अमेरिका, हाँग कौंग, सिगापुर और बर्मा आदि विदेशो मे भी फैलने लगी। मित्र मेला का उद्देश्य भारत को पूर्ण राजनीतिक स्वतन्त्रता था। नासिक की सभी सार्वजनिक और राजनीतिक सस्थाओ मे मित्र मेला का वर्चस्व रहने लगा। धार्मिक अवसर हो अथवा मेले का, वे सब अवसर अब राजनीतिक अवसरों मे ही परिणत होने लगे थे। इसके परिणामस्वरूप जिला अधिकारियों की नींद हराम होने लगी। इस प्रकार मित्रमेले ने नासिक वासियो के जीवन मे नव जीवन का सचार कर दिया था। नासिक ने भारत के प्राचीन और आधुनिक इतिहास मे बडा महत्वपूर्ण भाग अदा किया था। नासिक ही वह स्थान माना जाता है जहा से श्रीराम ने रावण के विरुद्ध अभियान आरम्भ किया था। यह वही स्थान है जहा पर लक्ष्मण ने शूर्पणखा की नासिका का छेदन किया था और इसी नासिक मे मित्र मेला ने ब्रिटिश साम्राज्य की नाक काटने के लिए अपना स्वतन्त्रता अभियान आरम्भ किया था।

२२-१-१९०१ के दिन इग्लैंड की महारानी विक्टोरिया का देहान्त हुआ और उसके स्थान पर किंग एडवर्ड सप्तम को राज्यासीन करने का कार्यक्रम भी निर्धारित हुआ। भारत मे शोक सभाओ के आयोजन होने लगे तो मित्र-मेला की साप्ताहिक बैठक मे इस पर विचार होने लगा कि महारानी विक्टोरिया के निधन पर शोक और सम्राट के राज्यासीन होने पर बधाई का प्रस्ताव पारित किया जाय अथवा नही। महाजकर और पगे का विचार था कि प्रस्ताव पारित कर लेना चाहिए, जिससे कि हम अग्रेजो की सन्देह की नजरो मे बचे रह सकें। उस अवसर पर सावरकर ने कहा, 'राजा हो या रानी वे किसके राजा और रानी है। वे हमारे शत्रु देश के राजा रानी है हम क्यो उनके मरने पर शोक और राज्यासीन होने पर प्रसन्नता मनायें? ऐसा करना दासता की वृत्ति का ही परिचा

यक होगा।' इस प्रकार वह प्रस्ताव अस्वीकार हो गया। मित्र मेला द्वारा प्रभूत मात्रा मे कवि वक्ता, प्रचारक, देशभक्त और बलिदानी लोग तैयार किए जा रहे थे।

सन १९०१ म सावरकर ने मट्रिकुलेशन की परीक्षा उत्तीण की। उसके आग की पढाई के लिए उन्होंने फर्गुसन कालेज मे प्रवेश लिया। कॉलेज मे प्रविष्ट होने से पहले ही सावरकर बहुत अच्छे डिबेटर, वक्ता, लेखक और कवि क रूप मे प्रख्यात हो चुके थे। मैट्रिकुलेशन परीक्षा मे बैठने से कुछ मास पूव सावरकर का विवाह हो गया था। सावरकर के श्वसुर त्र्यम्बक रामचन्द्र चिपलूणकर उन्हे बाल्यकाल से ही जानते थे। इस विवाह का सावरकर के जीवन मे मुख्य प्रभाव यह पडा कि उनकी अर्थाभाव की स्थिति समाप्त हो गई और उनको विश्वविद्यालय मे पढने की सुविधा मिल गई। अन्यथा उनके भाई बाबाराव सावरकर को उनकी विश्वविद्यालय की पढाई की चिन्ता बहुत सता रही थी। माता पिता के देहान्त के उपरान्त परिवार का सारा बोझ उनके भाई बाबाराव के कन्धो पर ही आ पडा था। घर की आर्थिक स्थिति वैसे ही ठीक नही थी, उस पर उनके घर मे चोरी हो गई और सब कुछ चला गया। विनायक उस समय अस्वस्थ थे तब भी बडे भाई ने कहा चाहे कुछ हो जाय विनायक को चिन्ता नही करनी चाहिए, वे उनका विश्वविद्यालय म अवश्य भेजेंगे। उधर विनायक न भी पब्लिक सर्विस परीक्षा उत्तीण कर सरकारी नौकरी मे जाने का विचार बनाया, तभी उनके श्वसुर भाऊराव चिपलूणकर ने उनको सहायता का आश्वासन दिया और फिर उन्होंने अपना वचन निभाया। उनकी इस सहायता के लिए विनायक ने सदा उनका आभार माना।

मट्रिकुलेशन की परीक्षा उत्तीण करन के साथ ही सावरकर का नासिक का लगभग पाच छ वष का प्रवास पूण हुआ और पूना का जीवन आरम्भ हुआ।

विद्यालय से निष्कासन

जनवरी १९०२ मे सावरकर पूना के फर्गुसन कॉलेज मे प्रविष्ट हुए। पूना म उन दिनो महादेव गोविन्द राणाडे की बडी ख्याति थी। यद्यपि वे सर्वात्मना कांग्रेसी नही थ किन्तु उनके युग मे कॉंग्रेस के वार्षिक अधिवेशनो मे उनके निर्देशो को मानना ही कांग्रेस का धम बन गया था। उन्हीं दिनो आर पी पराजप इंग्लैंड म अपनी पढ़ाई समाप्त कर पूना लौटे थे और गोपालकृष्ण गोखले कॉलिज के अन्तिम वष पूण कर राजनीति मे प्रविष्ट होने का विचार कर रहे थे। तिलक नेता के रूप म उभरने लग थे। शिवराम पन्त पराजप अपनी मन्त्रमुग्ध कर दने वाली वक्तृता और लेखनी के कारण पूना की महान हस्ती मान जाते थे। इस प्रकार पूना जहा एक ओर महाराष्ट्र का जीवन्त हृदय माना जाता था वहां दूसरी ओर फर्गुसन कॉलेज ऐतिहासिक व्यक्तियों का जन्मदाता माना जाता था। और ज्योंही सावरकर फर्गुसन कॉलिज म प्रविष्ट हुए उन्होंने महाराष्ट्र के इस प्रख्यात नगर म क्रान्ति का बीजारोपण आरम्भ कर दिया। शीघ्र ही उन्होंने पूना म 'सावरकर ग्रुप' का गठन कर लिया। कुछ ही दिनो म इस ग्रुप ने 'आर्यन वीकली' नाम से एक हस्तलिखित साप्ताहिक भी आरम्भ कर दिया। सावरकर के लेख और कवितायें इस पत्रिका

मे प्रकाशित होने लगीं।

'आयन वीकली' के अतिरिक्त सावरकर अन्यान्य मराठी समाचार पत्रो म भी अपनी कवितायें और लेख भेजने लगे। प्रसिद्ध समाचार पत्र 'काल' के सम्पादक इनकी रचानाओ मे अत्यधिक प्रभावित हुए। उनके माध्यम से ही सावरकर का लोकमान्य बाल गगाधर तिलक से परिचय हुआ। तिलक तो सावरकर की रचनाओ से अधिक उनके आकर्षक एव तेजस्वी व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए थे। प्रथम भेंट के दिन से ही सावरकर इन दोनो के नियमित सम्पर्क मे रहने लगे। सावरकर की वक्तता से तो प्रिंसिपल भी बहुत प्रभावित रहते थे, यद्यपि आधुनिक राजनीति म उनके राजनीतिक विचारो म वे असहमत रहते थे। सावरकर के राजनीतिक विचारों से असहमत उनके प्राध्यापक गण उनकी वक्तता सुन कर उन्हें 'शैतान' तक कह देते थे।

काल के सम्पादक शिवराम पन्त पराजपे के सम्पर्क मे आने के उपरान्त सावरकर पूना के सार्वजनिक जीवन मे भी प्रख्यात होने लगे थे। यद्यपि जब तक उनका पराजपे से व्यक्तिगत परिचय नही हुआ था, तब किसी आर्थिक कठिनाई के समय उन्होंने पराजपे को लिखा था कि उनके पत्र म उन्हें सहायक के रूप म कुछ कार्य मिल जाए, भले ही वह कार्य कम्पोजीटर का ही क्यो न हो, तो उनकी आर्थिक समस्या का कुछ समाधान हो जायेगा किन्तु तब यह सम्भव नही हो पाया था और सावरकर को भी उन्ही दिनो उनके श्वसुर की ओर से सहायता मिल गई। सावरकर का १९०२ मे पराजपे से परिचय हुआ और तभी उन्होंने 'काल' मे एक लेख म लिखा 'हिन्दुस्तान की निधनता और विघटन के लिए हिन्दू उत्तरदायी हैं। किन्तु यदि वे सम्पन्नता चाहते है तो उनको चाहिए कि वे हिन्दू बने रहे। इस लेख की सवत्र चर्चा और सराहना हुई।

विदेशी का बहिष्कार

धीरे धीरे सावरकर ने पूना के जन समाज म अपना स्थान बना लिया था। आचार्य काका कालेलकर जसे व्यक्ति भी उनकी सराहना करते थे। सावरकर और उनके साथियो ने स्वदेशी का प्रचार और बगाल विभाजन का बहिष्कार करना आरम्भ कर दिया था। तिलक ने बगाल के विभाजन का अखिल भारतीय स्तर पर विरोध करना आरम्भ किया था। १ अक्टूबर १९०५ को पूना की विशाल जन सभा म सावरकर ने विदेशी के बहिष्कार की घोषणा कर दी और कहा कि विद्यार्थी दशहरे के दिन विदेशी वस्त्रो और अन्यान्य विदेशी वस्तुओ की होली जलायेंगे। केलकर और पराजपे न सावरकर के आन्दोलन का उसी सभा म जोरदार शब्दो मे समर्थन किया। इस प्रकार ▪ अक्टूबर को गाडियो मे भर भर कर विदेशी वस्तुएँ एव कपडे एक स्थान पर लाये गए। इस प्रकार सर्व प्रथम पूना मे विदेशी वस्तुओ की होली जलाई गई।

सभी विदेशी के बहिष्कार के पक्ष म हो ऐसी बात भी नही। अंग्रेजो द्वारा स्थापित सस्था 'कौंग्रेस के नरमदली पत्र इन्दु प्रकाश ने इस कार्य की भर्त्सना की और उसने सावरकर के विषय मे कुछ अनर्गल बातें भी कही। आर पी पराजपे उन दिनो

कॉलेज के प्रिंसिपल थे, उन्होंने सावरकर पर १० रुपए के दण्ड के साथ-साथ कॉलज से उनका निष्कासन भी कर दिया। इस प्रकार सावरकर वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने सर्वप्रथम विदेशी वस्त्रो की होली जलाई थी और वे पहले विद्यार्थी थे जिनको कॉलेज म निष्कासित किया गया था। तिलक आदि ने उनके निष्कासन की भत्सना की तथा इस विषय मे भारत के लगभग सभी बडे समाचारपत्रो ने भी उनका साथ दिया। बिजली की भाति यह समाचार फैला तो विश्व भर के समाचार पत्रो मे इसकी चर्चा होन लगी। सावरकर के प्रति लोगो की सहानुभूति उमडने लगी और दण्ड की पूर्ति के लिए उनके पास धन आने लगा। किन्तु सावरकर न इससे पहले ही अपनी जेब स दण्ड भर दिया और उस एकत्रित धनराशि को उन्होंने औद्योगिक श्रमिको के लिए स्थापित 'पैसा फण्ड' तथा अन्य सामाजिक सस्थाओ को दे दिया।

इस घटना का एक अन्य महत्त्व भी है। यहा से उन दो विभिन्न विचार-धाराओ के सूत्रपात का भी ज्ञान हो गया जो कुछ काल बाद प्रकाश मे आइ और आज तक भी भारतीय राजनीति पर छाई हुई हैं। गाधी उन दिनो दक्षिण अफ्रीका म थे उन्होंने वही स विदशी वस्तुओ के बहिष्कार की प्रवत्ति की आलोचना करते हुए कहा कि बहिष्कार आन्दोलन की जडें घृणा और अहिंसा मे होती हैं। कुछ समय बाद इसी प्रकार गाधी के भावी राजनीतिक गुरु गोपालकृष्ण गोखले ने भी १९०५ की बनारस कांग्रेस के अध्यक्षीय भाषण म इसका विरोध करते हुए कहा 'बहिष्कार शब्द ही ऐसा है जिसस एक प्रकार की एमी भावना का ज्ञान होता है कि जिसके द्वारा किसी अन्य को दुखी किया जाय। एसी भावना इग्लैंड के साथ हमारे सम्बन्धो के लिए उपयुक्त नहीं है।'

गाधी ने जो तब अर्थात १९०५ मे कहा उसके ठीक विपरीत, इसके १७ वर्ष बाद ७ ११ १९२१ को असहयोग आन्दोलन के अग्रणी के नाते स्वय उन्होंन बम्बई मे विदेशी वस्त्रो की होली जलाई थी। इसम ही गाधी के मन मस्तिष्क की अपरिपक्वता एव विद्वेष भावना का आभास मिल जाता है। नरमदलियो ने सावरकर को अपनी ओर करने के अथक प्रयास किये किन्तु इसम उनको सफलता नही मिली। कॉलेज के उनके प्राध्यापक आदि जहा एक ओर सावरकर की वक्तृता स प्रभावित थ वहा वे उनके क्रान्तिकारी विचारो म सर्वथा असहमत रहते थे।

सावरकर को यद्यपि कॉलेज म निष्कासित कर दिया गया था तदपि किसी प्रकार स बम्बई विश्वविद्यालय ने उनकी बी ए की परीक्षा म बैठने पर रोक नही लगाई। परीक्षा के निकट के दिनो म सावरकर न अपनी पुस्तको की ओर दखा और परीक्षा म बैठ गय। भाग्य और ईश्वर की कृपा रही और व परीक्षा म उत्तीर्ण भी हो गय। आन्दोलन के साथ-साथ सावरकर का लेखन और वीर-रस स परिपूर्ण पोवाडो की रचना भी चलती रहती थी। तानाजी और बाजी प्रभु पर रचित उनके पोवाडे बहुत प्रसिद्ध और प्रचलित हुए। किन्तु ब्रिटिश सरकार ने घबराकर उनके प्रचलन पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

लन्दन की ओर

बम्बई का कार्य

दिसम्बर १९०५ मे बी०ए० उत्तीर्ण करने के बाद सावरकर लॉ की पढ़ाई के लिए बम्बई गए। बम्बई म रहते हुए भी उन्होने अपने कालेज के साथियों को संगठित किया और नगर के विभिन्न क्षेत्रो मे उसी प्रकार सभायें करके अपनी वक्तता से वहां के जन सामान्य का प्रभावित किया जिस प्रकार उन्होने पूना मे किया था। बी०जी० खेर, जो कालान्तर मे बम्बई के मुख्यमंत्री बन थे उन दिनो उन युवको मे से एक थे जो अभिनव भारत के नेता सावरकर के प्रभाव मे आए थे। इससे पूर्व पूना म डक्कन कॉलेज के विद्यार्थी जे०बी० कृपालानी, जो कालान्तर मे कांग्रेस के महामन्त्री और अध्यक्ष बने व भी अभिनव भारत से प्रभावित रहे।

बम्बई स प्रकाशित होन वाले मराठी साप्ताहिक 'विहारी' म सावरकर ने जब लिखना आरम्भ किया तो कालान्तर मे वह एक प्रकार से अभिनव भारत का मुख पत्र ही बन गया। इसी प्रकार बंगाल म युगान्तर साप्ताहिक काय कर रहा था। इन दोनो पत्रो का प्रसार संख्या निरन्तर बढती जाती थी। सावरकर अब तक क्रान्तिकारी आन्दोलन के सवमान्य नेता घोषित हो गए थे और स्थान स्थान पर से उनको सभाओ मे बोलन के लिए आमन्त्रित किया जाने लगा था। उनके भाषण बहुत ही क्रान्तिकारी होते थे। परिणामस्वरूप नासिक पूना और बम्बई म उनके बन्दी बनाए जाने की अफवाहें भी फलने लगी। किन्तु वे असत्य सिद्ध हुई।

इन्हीं दिनो सावरकर को विदित हुआ कि लन्दन म रहने वाले पण्डित श्यामजी कृष्ण वर्मा ने घोषणा की है कि 'यदि भारतीय कोई छात्र लन्दन म पढना चाहता हो तो उसको छात्रवृत्ति दी जा सकती है।' यह जानकर सावरकर की इच्छा लन्दन जाकर पढ़ने की होने लगी। किन्तु जो छात्रवृत्ति पण्डित श्यामजी कृष्ण वर्मा दे रहे थे वह अपर्याप्त थी। अत सावरकर पहले अपने श्वसुर के पास गए और जब उनसे उनसे कुछ आश्वासन मिल गया तो उन्होने श्यामजी कृष्ण वर्मा वाली छात्रवृत्ति के लिए आवेदन कर

दिया। अपने आवेदन के साथ सावरकर न महात्मा तिलक तथा सम्पादक पराजपे की सिफारिश भी भेज दी।

सावरकर न 'शिवाजी छात्रवृत्ति' क लिए आवेदन करते हुए दश धम की स्वतन्त्रता के लिए अब तक किए गए अपने कार्यों का भी उल्लेख कर दिया था। तिलक और पराजपे की सिफारिश और सावरकर की ख्याति के कारण उनको छात्रवत्ति प्राप्त हो गई। छात्रवत्ति सम्बधी सारी औपचारिकतायें पूण होने पर सावरकर को उसके प्रथम भाग के रूप मे तिलक द्वारा ४०० रुपये भी प्राप्त हो गए।

सावरकर लन्दन जाने की तैयारी करने लगे। उनके श्वसुर श्री चिपलूणकर न उनको उस समय दो हजार रुपये दिए। सारी औपचारिकतायें पूण होने के उपरान्त ९ जून १९०६ को वे बम्बई बन्दरगाह से 'परसिया' नामक जहाज से लन्दन के लिए रवाना हो गए। महात्मा तिलक स्वय उनको विदाई देन के लिए बम्बई बन्दरगाह पर विद्यमान थे।

श्यामजी कृष्ण वर्मा

इस प्रसग मे श्यामजी कृष्ण वर्मा का सक्षिप्त परिचय आवश्यक होगा। श्यामजी कृष्ण वर्मा भारत मे अध्ययन करने के उपरान्त स्वामी दयानन्द सरस्वती के सम्पर्क म आए और उनसे विचार विमश करने के उपरान्त वे भारत की स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न करने के उद्देश्य से विदेश भेजे गए थे। अपने प्रयत्न और परिचय स उन्होंने इग्लैंड मे अपना स्थान बना लिया था और जिस समय की घटना का हम उल्लेख कर रहे ह उस समय तक वे वहाँ 'इडिया हाउस' की स्थापना कर उसका सम्यक सचालन करने लगे थे। यह इडिया हाउस लन्दन मे देशभक्त भारतीयो के लिए शरणस्थल का काय करता था। १९०५ म स्थापित और ६५, क्रामवेल एवन्यू, उत्तरी लन्दन म स्थित यह विशाल भवन राज्य विरोधी गतिविधियो के लिए विख्यात था। अग्रेज गुप्तचर उस भवन को 'हाउस औफ मिस्ट्री' अर्थात तिलस्मी महल कहा करते थे। पुस्तकालय, भाषण कक्ष एव अन्य मनोरजन की सुविधाओ से सम्पन्न इस भवन म २५ ३० व्यक्तियो के रहने की व्यवस्था भी थी।

१९०५ म ही श्यामजी कृष्ण वर्मा न 'इडिया होम रूल सोसाइटी' और एक मासिक पत्रिका 'इडियन सोशियोलोजिस्ट' भी प्रारम्भ किए थे। व सस्कृत, मराठी, गुजराती भाषा के प्रकाण्ड विद्वान होने के साथ साथ ग्रीक और लेटिन क भी ज्ञाता थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती की ही भाँति उन पर अग्रेज दाशनिक हरबट स्पन्सर का भी प्रभाव था। यही कारण है कि १९०३ मे स्पेंसर की मृत्यु पर वर्मा जी न उनके नाम पर एक हजार पौण्ड की छात्रवृत्ति की घोषणा की थी। अगले वष श्यामजी ने भारतीय छात्रो के लिए ५ अन्य छात्रवत्तियो की घोषणा की। किन्तु भारतीय छात्रो क लिए यह शत थी कि व पढ लिखकर कर अग्रेजो की नौकरी नही करेंगे। इसके बाद उन्होंन स्वामी दयानन्द, राणा प्रताप और शिवाजी के सम्मान म तीन अन्य छात्रवृत्तियो की भी घोषणा की।

इन्ही मे से शिवाजी छात्रवृत्ति के लिए सावरकर ने आवेदन भेजते हुए अपने पत्र म लिखा था—'किसी भी देश की धड़कन उसकी स्वतन्त्रता होती है और अपने देश की स्वतन्त्रता ही मेरे रोम राम म बसी है। मैंने बचपन से आज तक हर रात इसी के स्वप्न देखे हैं और हर पल इसी का चिन्तन किया है।'

सावरकर के इस पत्र की सिफारिश करते हुए बाल गगाधर तिलक ने लिखा था—'एक एक छात्रवृत्ति के लिए जहाँ इतनी आपाधापी मची हो वहाँ किसी विशेष व्यक्ति की सिफारिश करना व्यर्थ है। फिर भी, इन आवेदको म से बम्बई के एक सावरकर हैं जिन्होंने पिछले वर्ष स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की है और जिन्हें मैं देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए बहुत उत्साहित पाता हूँ। यहाँ तक कि उसकी प्रखर देशभक्ति के लिए उस युवक को फर्गुसन कॉलिज के अधिकारियो का कोपभाजन बनना पड़ा। उसका सरकारी नौकरी का कोई विचार नही है तथा आचरण भी उत्तम है।'

सावरकर को छात्रवृत्ति मिल गई और वे 'परसिया' नामक जहाज द्वारा लन्दन के लिए प्रस्थान कर गए, यह हम पिछले पृष्ठो पर लिख आए हैं। जहाज म उनकी भेंट हरनामसिंह नामक एक युवक से हुई जो घर की स्मृति म उदास होकर अपनी यात्रा अधूरी छोड़ घर लौटने की सोच रहा था। सावरकर ने उसे ढाढस दिया और हरनाम सिंह ने वापस जाने का विचार त्याग दिया। कालान्तर मे वह सावरकर का अनन्य भक्त बन गया।

फ्री इण्डिया सोसाइटी

सावरकर जब लन्दन में सुस्थापित हो गए तो उन्होंने उसी वर्ष वहाँ 'फ्री इण्डिया सोसाइटी' नाम की एक सस्था का गठन किया। यह सस्था पूना म स्थापित 'अभिनव भारत मण्डल' के अनुरूप ही थी। लन्दन म इस नये मण्डल की नियमित बैठकें होतीं, भारतीय त्योहार मनाये जाते देशभक्तो, सन्तो महापुरुषो की जन्म तथा पुण्यतिथियाँ मनाये जाते और साथ ही देश की राजनैतिक एव आर्थिक समस्याओं पर भी चर्चा होती।

प्रत्येक रविवार को इण्डिया हाउस म सभा होती और तदुपरान्त सहभोज होता। उस अवसर पर 'भवन' का भाषण कक्ष खचाखच भरा रहता था। इण्डिया हाउस की उन सभाओ म सावरकर इटली, फ्रांस और अमेरिका के राजनीतिक सघर्ष आदि विषयो पर तथा विभिन्न ऐतिहासिक क्रान्तियों पर बहुत ओजस्वी भाषण देते। शीघ्र ही उनकी सस्था म नवयुवक भर्ती होने लगे। प्राप्त आँकडो के अनुसार उस समय इग्लैंड म पढ़ने वाले भारतीयो की सख्या ७०० के लगभग होगी। रविवारीय सभाओ म भाग लेने वालों की सख्या १०० या इससे कुछ अधिक भी हो जाया करती थी।

फ्री इण्डिया सोसाइटी की एक वर्ष के भीतर ही लन्दन मे धूम मच गई और उसके साथ ही सावरकर की भी ख्याति फैलने लगी। श्यामजी भी उनसे प्रभावित हुए और १९०७ म जब वे लन्दन छोड़कर पेरिस जाने लगे तो उससे पूर्व उन्होंने अपनी इंडिया होम रूल सोसाइटी को सावरकर की सस्था से सम्बद्ध कर दिया और इंडिया

हाउस' का भी सारा कार्य उन्होंने सावरकर को ही सौंप दिया।

इंडिया हाउस में रहते हुए सावरकर का अन्य अनेक देशभक्तों से परिचय हुआ जिनमें मुख्य थे—भाई परमानन्द, लाला हरदयाल, सेनापति बापट वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, जे०सी० मुखर्जी, ज्ञानचन्द वर्मा, सरदारसिंह राणा, मादाम कामा और एम० पी०टी० आचार्य।

भाई परमानन्द दक्षिण अफ्रीका में डरबन में गांधी से मिलने के उपरान्त लन्दन आए थे। लन्दन आकर सावरकर के सम्पर्क में आने के बाद वे गांधी को भूल गये और सावरकर के समर्थक एवं प्रशंसक बन गए। उन्होंने लन्दन में ब्रिटिश म्यूजियम लाइब्रेरी में भारतीय इतिहास का निष्पक्ष अध्ययन करने का विचार किया और लगभग डेढ़ वर्ष के निरन्तर अध्ययन के उपरान्त उन्होंने लन्दन विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर उपाधि के लिए 'भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का उत्थान' पर अपना शोध प्रबन्ध लिखा। यद्यपि उनके अंग्रेज गाइड ने उनके शोध प्रबन्ध की प्रशंसा की थी, किन्तु दो अन्य एंग्लो इंडियन प्राध्यापकों ने उसे अस्वीकार कर दिया। तब वे लाला हरदयाल से मिलने के लिए अमेरिका चले गये और वहाँ के सान फ्रांसिसको विश्वविद्यालय से उपाधि प्राप्त करके १९१३ में भारत लौट आए।

लाला हरदयाल जब लन्दन में रहते हुए सावरकर के सम्पर्क में आये तो भारत मुक्ति आन्दोलन के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। १९०६ में उन्होंने इंडियन सोशियोलोजिस्ट में एक लेख प्रकाशित कराया। इस लेख के परिणामस्वरूप वे राजनीतिक क्षितिज पर धूमकेतु की भांति प्रकाशित हो गए। अंग्रेज अधिकारियों की उन पर दृष्टि पड़ी, तो उनकी भृकुटि तन गई। यह देखकर हरदयाल ने तुरन्त सरकारी छात्रवृत्ति को ठुकरा दिया। उनके इस क्रान्तिकारी पग ने राजनीतिक एवं बुद्धिशील क्षेत्रों में सनसनी-सी फैल गई। वे आक्सफोर्ड में अध्ययन कर रहे थे। उसे छोड़ छाड़ कर वे १९०८ में भारत आ गए किन्तु शीघ्र ही लन्दन वापस जाकर फिर और भी अधिक उत्साह से स्वतन्त्रता आन्दोलन में जुट गए। वहाँ से लाला हरदयाल अमेरिका गये और वहाँ उन्होंने 'इंटरनेशनल रेडिकल क्लब' तथा 'फ्रेटरनिटी ऑफ दि रेड फ्लैग' नामक संस्थाओं की स्थापना की। कालान्तर में इन दोनों संस्थाओं ने गदर पार्टी का रूप धारण किया और १९१३ में 'गदर' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ कर दिया।

सावरकर के प्रभाव में आने वाले अन्य उल्लेखनीय व्यक्ति थे सेनापति बापट। उनका पूरा नाम था पांडुरंग महादेव बापट। वे १९०४ में बम्बई से छात्रवृत्ति लेकर इंजिनियरिंग के अध्ययन के लिए एडिनबरा गये थे। यद्यपि वे भी सरकारी छात्रवृत्ति पर गये थे किन्तु सावरकर के सम्पर्क में आते ही उनमें राष्ट्रप्रेम जागृत हुआ और 'भारत में अंग्रेजी शासन' शीर्षक से उन्होंने लन्दन में ओजस्वी भाषण दे डाला। उस भाषण को उन्होंने प्रकाशित भी करवा दिया। 'इंडिया आफिस' जो लन्दन में भारत के लिए स्थापित था, ने उस पर कार्यवाही की। अपने पर सावरकर के प्रभाव के विषय में २७-५-१९३८ के मराठा' में उन्होंने लिखा था—'मेरे मन परिवर्तन का प्रमुख कारण वह छाप थी,

जो सावरकर के ओजस्वी लेखों एवं भाषणों ने मुझ पर डाली। इस जन्मजात क्रान्तिकारी, लेखक और वक्ता के आगे भला मेरी क्या बिसात थी। मुझे अनुभव हुआ कि मैं लिखने बोलने का काम उन्हीं के लिए छोड़कर क्रान्ति के किसी अन्य क्षेत्र में काम करूं।' किन्तु कालान्तर में यही बापट कट्टर गांधीवादी हो गए थे।

हैदराबाद निवासी वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय भारत कोकिला सरोजिनी नायडू तथा कवि एवं हास्य अभिनेता हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय के बड़े भाई थे। कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी०ए० की डिग्री प्राप्त कर वे १९०३ में आई० सी० एस० की परीक्षा देने के लिए लन्दन गये किंतु उत्तीर्ण नहीं हो पाये। तब उन्होंने कानून की पढ़ाई के लिए 'मिडिल टेम्पल इन' में प्रवेश लिया। इंडिया हाउस के माध्यम से वे सावरकर के सम्पर्क में आए और फिर स्वतन्त्रता समर में कूद पड़े। कुछ दिन लन्दन में रहने के उपरान्त वे जर्मनी चले गए और वहां पर उन्होंने 'बर्लिन कमेटी' नाम से एक संस्था स्थापित की। वहां रहकर उन्होंने बहुत कुछ किया और फिर उनका अन्त किस प्रकार हुआ यह आज तक किसी को ज्ञात नहीं है।

जे०सी० मुखर्जी को लोग 'दादा' के नाम से अधिक जानते थे। वे दक्षिण अफ्रीका से प्रकाशित गांधी के पत्र 'इंडियन ओपीनियन' के लिए 'लन्दन की चिट्ठी' नामक एक साप्ताहिक स्तम्भ लिखा करते थे। किन्तु ज्यों ही वे सावरकर के सम्पर्क में आए कि उनके जीवन ने भी नया मोड़ लिया। गांधी के पत्र से सम्बद्ध होते हुए भी वे दिन प्रति दिन कट्टर क्रान्तिकारी होते गए और लिखने लगे—'इस गोरे दुश्मन का मुख काला करो और इन्हें देश से निकाल भगाओ।'

ज्ञानचन्द वर्मा लन्दन में कानून की पढ़ाई करते थे और 'फ्री इंडिया सोसाइटी' के वे सचिव भी थे। निर्धन परिवार के होने पर भी पढ़ने की लगन, स्टीमर में फायरमैन का काम करते हुए, उन्हें लन्दन ले आई थी। सावरकर के सम्पर्क में आने पर वे भी उसी रंग में रंग गए। सावरकर ने उनके विषय में एक स्थान पर कहा था—'यदि इस व्यक्ति ने किसी काम का बीड़ा उठा लिया तो समझ लो कि वह कार्य सम्पन्न हो गया। फिर उसे संसार की कोई शक्ति नहीं रोक सकती।'

सरदारसिंह राणा सौराष्ट्र के लिम्बडी रियासत के राजकुमार थे। १८९८ में बम्बई से स्नातक बनकर कानून की पढ़ाई के लिए लन्दन चले गए। वहीं से वे पेरिस चले गए और वहां हीरे जवाहरात की एक भारतीय दुकान में लगे तो फिर वहीं के हो कर रह गए। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के वे परम समर्थक थे। १९०८ में उन्होंने 'होम रूल' के प्रचार प्रसार के लिए पेरिस में एक मीटिंग आयोजित की थी। कोई-कोई तो यहां तक कहते हैं कि श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा स्थापित छात्रवृत्तियों का धन उनके पास से ही आता था। वे सावरकर की संस्था 'अभिनव भारत' के कोषाध्यक्ष थे। बाद में सावरकर द्वारा लिखित 'भारतीय स्वातन्त्र्य समर का इतिहास' नामक पुस्तक के फ्रांसीसी संस्करण के प्रकाशन के लिए भी उन्होंने ही धन दिया था। उनके इन कारनामों से क्रुद्ध होकर अंग्रेज सरकार ने राणा साहब की समस्त सम्पत्ति अपने अधिकार में कर

ली थी।

मादाम भीकाजी रुस्तम जी कामा का बचपन का नाम 'मुनी' था। किन्तु कालान्तर में उनको 'भारतीय क्रान्ति की जननी' 'भारत की जोन ओफ आर्क' 'दुर्गा अथवा काली की अवतार' आदि विशेषणों से जाना जाने लगा था। बचपन से ही वह भारतीय स्वतन्त्रता की कहानियों में रुचि लेती हुई देशभक्त बलिदानियों की पूजा करने लगी थीं। उनके पिता ने उन्हें रोकना चाहा किन्तु असमर्थ रहे तो उन्होंने १८८८ में एक अंग्रेज भक्त युवक रुस्तमजी कामा के साथ उनका विवाह कर दिया। उनके पति कामा भी उनकी देशभक्ति को रोक नहीं पाए। तभी बम्बई में प्लेग फैला। मुनी मरीजों की तीमारदारी में लगी तो स्वयं रोगग्रस्त हो गईं। स्वास्थ्य लाभ के लिए उन्हें विदेश भेजा गया तो वे लन्दन की राजनीतिक ज्वालामुखी में कूद पड़ीं। सावरकर के सम्पर्क में आते ही उनकी गतिविधियाँ तीव्र रूप धारण करने लगीं। उन्होंने पेरिस जाकर 'वन्दे मातरम' पत्र निकाला। मई १९०८ में भारतीय स्वतन्त्रता समर की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर उन्होंने जो झंडा फहराया था वही तिरंगा आज किसी न किसी रूप में भारत का राष्ट्र ध्वज है।

तमिल के प्रसिद्ध कवि सुब्रह्मण्यम भारती मद्रास से 'वन्दे मातरम' पत्र प्रकाशित करते थे, एम. पी. टी. आचार्य उनके सहयोगी थे। सुब्रह्मण्यम भारती को जब अंग्रेज सरकार ने बन्दी बना लिया तो आचार्य के लिए प्रकट रहना दूभर हो गया। वे पहले पाण्डिचेरी गये, वहाँ से लंका और फिर किसी प्रकार लन्दन पहुँच गये। यहाँ जब वे सावरकर के सम्पर्क में आये तो बस फिर वे भी सावरकरमय हो गये।

लदन के सहयोगी

इनके अतिरिक्त अभिनव भारत सोसाइटी में जो लोग रुचि लेने वाले थे उनमें बम्बई के डब्ल्यु. वी. फड़के, मद्रास के टी. एस. राजन और के. वी. आर. स्वामी, बंगाल के सुखसागर दत्त और निरंजन पाल, इन लोगों के साथ एम. पी. सिन्हा, कोरेगावकर हरीलाल वर्मा, मदनलाल ढींगरा, रविशंकर शुक्ला, सिकन्दर हयात खाँ, (कालान्तर में 'सर') सुहरावर्दी, आसफ अली, भाभा के आर. एम. खान आदि प्रमुख थे। इतना ही नहीं एक अन्य भारतीय मुसलमान जियाउद्दीन अहमद, उन दिनों जर्मनी में रहता था, इसने विदेशों में पढ़ने वाले भारतीय मुसलमानों का 'इंडिया हाउस' की छूत से परे रहने का आह्वान किया था। यही कारण था कि कालान्तर में सुहरावर्दी और आसफ अली आदि ने इस संस्था से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था। यहाँ तक कि आसफ अली ने तो श्यामजी को १९०९ में एक पत्र में लिखा—'मैं कुछ ऐसे मुसलमान विद्यार्थियों के साथ रह रहा हूँ जो नहीं चाहते कि मैं राष्ट्रभक्तों से सम्बन्धित रहूँ। मैं उनको व्यर्थ में रुष्ट करना नहीं चाहता, जिससे कि अन्य अनेक अरुचिकर प्रसंगों को टाल सकूँ।'

जियाउद्दीन ने तो अपने मुस्लिम भाइयों को पत्र में लिखा—'क्या आप समझते हैं कि 'होम रूल' से मुसलमानों को लाभ होगा? इसमें सन्देह नहीं कि यह होम रूल

अलीगढ़ नीति के विरुद्ध है अलीगढ़ नीति ही मुसलमानों की वास्तविक नीति है।' इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय स्वातन्त्र्य संघर्ष में मुसलमानों का विरोध तात्कालिक नहीं आरम्भ से ही रहा है।

गांधी से प्रथम भेंट

२० अक्टूबर १९०६ को गांधी ल दन गए थे। सर्वप्रथम वे इंडिया हाउस में ही दो दिन रहे और वहाँ पर सावरकर से उनकी भेंट हुई। किन्तु तीसरे दिन बिना कोई कारण बताए इंडिया हाउस से लन्दन के आलीशान सेसिल होटल में चले गए। श्री धनंजय कीर ने अपनी पुस्तक 'महात्मा गांधी पोलिटिकल सन्ट एण्ड अनआम्र्ड प्रोफेट' के पृष्ठ १०२ पर लिखा—'इतना ही नहीं इस पचतारा होटल में पाँच सप्ताह रह कर, जिसके खर्च के विषय में सोच कर ही सिहरन होती है, गांधी ने होटल सौंदर्य कक्ष में कई बार केश सज्जा भी कराई। सलून वाले के सुझाव पर, कि इस सज्जा में विशेष प्रकार के महँगे शैम्पू से बाल संवारने पड़ेंगे, गांधी ने तुरन्त दो पौण्ड देकर वह शैम्पू भी मंगा डाला। बचे हुए शैम्पू की बोतल उन्होंने अफ्रीका में अपनी आतिथेय श्रीमती पोलक को भेंट कर दी। केश सज्जा और शैम्पू की यह घटना पोलक परिवार के लिए हँसने हँसाने की स्थायी सामग्री बन गई।"

सेसिल होटल में ठहरने के बाद भी श्यामजी तथा सावरकर से मिलने के लिए गांधी इंडिया हाउस आते रहे और श्यामजी को सावरकर के प्रभाव से मुक्त करने का दुष्प्रयत्न करते रहे। किन्तु उसमें उनको सफलता नहीं मिली। उसके बाद भी जब-जब वे लन्दन गए इंडिया हाउस में सावरकर से मिले, उनसे वार्तालाप भी हुआ, किन्तु दोनों में मतभेद बना रहा।

नेहरू लन्दन में

इसी प्रसंग में एक और बात का भी यहीं पर उल्लेख कर दें। हमने लिखा है कि लन्दन में फ्री इंडिया सोसाइटी की साप्ताहिक बैठकें हुआ करती थीं और अधिकांश भारतीय छात्र उसमें भाग लेते थे। इन साप्ताहिक बैठकों के अतिरिक्त वे शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह, गुरु नानक, राणा प्रताप आदि की जयन्तियाँ मनाने के साथ साथ भारतीय पर्व और त्योहारों तथा समारोहों का भी आयोजन किया करते थे, जिसमें ब्रिटेन के सभी कोनों से भारतीय विद्यार्थी आकर भाग लेते थे। किन्तु कुछ पण्डित जवाहरलाल नेहरू जैसे विद्यार्थी भी वहाँ थे जो इन समारोहों में सम्मिलित नहीं होते थे। मोतीलाल नेहरू नहीं चाहते थे कि उनका लाडला किसी संकट में फँसे। उन्होंने अपने पुत्र को इसकी हिदायत की थी।

अपने विचारों के प्रचार प्रसार के लिए सावरकर पम्फलेट लिखकर प्रकाशित करते थे। वे इटली के क्रान्तिकारी मजिनी से बड़े प्रभावित थे। उन्होंने मराठी में मजिनी [illegible] लिखी और उस पाण्डुलिपि को उन्होंने अपने बड़े भाई बाबाराव सावरकर

के पास नासिक भेज दिया था। बाद में उसको पूना से प्रकाशित किया गया। नासिक और पूना जैसे नगरों में इस पुस्तक का ऐतिहासिक अभिनन्दन हुआ। 'सिखों का इतिहास' नामक एक अन्य पुस्तक भी सावरकर ने लिखनी आरम्भ की। जिसको लिखने में चार वर्ष लगे और १६१० में अन्ततः यह पुस्तक पेरिस में पूर्ण हुई।

मैजिनी के जीवन चरित्र की लोकप्रियता से अंग्रेज सरकार घबरा गई। उसे प्रतिबंधित कर दिया गया और उसने न जाने कहाँ कहाँ से उसकी प्रतियाँ खोज-खोज उन सबको नष्ट कर दिया। हजारों प्रतियाँ नष्ट कर देने के बाद भी उसकी कुछ सौ प्रतियाँ फिर भी सुरक्षित रह ही गई।

महाराष्ट्र में सावरकर की 'मैजिनी' को असाधारण ख्याति प्राप्त हुई थी। महाराष्ट्र के प्रमुख विद्वानों चिन्तकों लेखकों, पत्रकारों ने इसका हृदय से स्वागत किया। यहाँ तक कि सर वेलेंटाइन चिरोल ने इसको राष्ट्रीयता की पाठ्यपुस्तक के नाम से अभिहित किया था।

सिखों का इतिहास लिखने के लिए सावरकर ने विशेष रूप से गुरुमुखी का अध्ययन किया था और फिर उसके बाद उन्होंने आदि ग्रंथ, पंथ प्रकाश, सूर्य प्रकाश, विचित्र नाटक आदि आदि सिख गुरुओं और विचारकों द्वारा लिखित अनेक ग्रंथों का अध्ययन किया। आरम्भ में उन्होंने सिख इतिहास से सम्बन्धित छोटे छोटे पैम्फलेट लिखे। इनको सिख सिपाहियों में वितरित किया गया। किन्तु अंग्रेज सरकार की आँखों से यह किस प्रकार छिपा रह सकता था। उसने उन सभी पत्रकों को प्रतिबन्धित कर दिया और सिख सैनिकों को चेतावनी दी गई कि वे ऐसे पत्रकों से दूर रहें।

१८५७ की स्वर्ण जयन्ती

लन्दन मे दूसरा वर्ष

उसके बाद आया मइ १९०७। मई मास इग्लैंड असे शीत प्रधान देश के लिए वस तागम का प्रतीक होने स बडा आन द और उल्लास का मास माना जाता है। इस अवसर पर स्थान स्थान पर मनोरजन के रगारग कायक्रम आयोजित किए जाते हैं, लोक नत्य होते हैं, सौ दय प्रतियोगितायें आयोजित की जाती हैं। इसके साथ ही इग्लड मे प्रथम मई का दिवस थैंक्स गिविंग डे,' के रूप म मनाया जाता है। तत्कालीन अग्रेज शासक यह मानत थे कि उस दिन उ होन भारत म 'गदर' आ दोलन को कुचल दिया था।

अग्रेजो क लिए १९०७ का मई दिवस और भी अधिक महत्व का इसलिए हो गया था क्यो कि उस दिन व भारतीय क्रातिकारियो को दबाने की स्वण जय ती मना रहे थे। डली टेलिग्राफ जैस ल दन के प्रख्यात दैनिक ने अपन पत्र के प्रथम पृष्ठ पर शीषक दिया था। पचास वप पूव इस सप्ताह वीरतापूण कृत्यो से एक साम्राज्य को सुरक्षित बचा लिया था। न केवल इतना अपितु शासन की ओर से एक नाटिका का भी आयोजन किया गया था जिसमे रानी लक्ष्मी बाई और नाना साहिब जैसे क्रा तिवीरो को हत्यारे और लुटेरे के रूप में दिखाया गया था।

इस विशेष ध यवाद दिवस' पर न केवल लन्दन म अपितु भारत मे भी अग्रेज भक्त समाचार पत्रो मे मानो एक स एक सजधज के साथ 'विजय विशेषाक' निकालने की होड सी लग गई थी। इन विशेषाका मे जितने भी लेख प्रकाशित किए गए उन सब म भारतीय क्रा ति स्वात त्र्य समर तथा भारतीय वीरो एव वीरागनाओं और देश के लिए बलि हुए वीर पुरुषो की खूब जी खोलकर खिल्लियाँ उडाइ गई थी।

भारत म विशेषतया दिल्ली म, एक सप्ताह तक अग्रेजो और अग्रे भक्तो न दिल खोलकर एक प्रकार म गदर सा ही मचा दिया था।

सरकार के इस अपमानजनक दुष्प्रचार का उत्तर दन के लिय सावरकर न १८५७

के स्वातन्त्र्य समर की स्वर्ण जयन्ती मनाने का निश्चय किया। १० मई १९०७ को भारतीयों ने इंग्लैंड में सभायें कीं, व्रतोपवास किये, प्रतिज्ञायें कीं और सबने अपने सीने पर '१८५७ के शहीदों की जय' के बैज लगाये। सभी विद्यार्थी उन बैजों को लगाकर अपने अपने कॉलेज और युनिवर्सिटी में गए। इंडिया हाउस में इस अवसर पर विशेष आयोजन किया गया। उस दिन 'भवन' को अत्यन्त सुरुचिपूर्ण रीति से सजाया-सँवारा गया था। सुन्दर सज्जित मंच पर क्रान्ति के योद्धाओं और हुतात्माओं के आदमकद चित्र रखे गए। योरोप के कोने-कोने से लगभग २०० विद्यार्थी इसमें सम्मिलित हुए थे।

समारोह का आरम्भ राष्ट्रीय गान से हुआ। उच्चस्वर से 'वन्दे मातरम्' का घोष किया गया। उस समारोह के अध्यक्ष राणा साहब थे। वे अपने कुछ साथियों के साथ ठीक साढ़े चार बजे पधार गए। मादाम कामा स्वयं उपस्थित नहीं हो सकी थीं, राणा साहब उनका संदेश लेकर आए उसे सभा में पढ़कर सुनाया गया। उसी अवसर पर सावरकर ने १८५७ के गदर को 'भारत का प्रथम स्वातन्त्र्य समर' परिभाषित किया। भारत के क्रान्तिवीरों को सभी वक्ताओं ने भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। भाषणोपरान्त कुछ छात्रों ने अपनी टोपियाँ निकाल कर चन्दा एकत्रित करना आरम्भ किया तो वहाँ उपस्थित जनों में जिसके पास जो था उसने उस टोपी में डालकर भारतीय स्वातन्त्र्य समर के प्रति अपनी निष्ठा और श्रद्धा प्रदर्शित की। अन्त में प्रसाद वितरण से सभा का समापन हुआ।

देशभक्त विद्यार्थी जब बाजारों में निकले तो कुछ सिरफिरे अंग्रेजों से उनकी कहासुनी होने लगी। कालेजों और युनिवर्सिटियों के प्रवक्ताओं ने भारतीय विद्यार्थियों की टोकाटाकी की। हरनामसिंह और आर०एम० खान ने तो अपने कालेज के प्राचार्य द्वारा क्रान्तिवीरों के प्रति अपमानजनक शब्द कहने पर विरोधस्वरूप कक्षा का बहिष्कार कर दिया। स्थान-स्थान पर भारतीय छात्रों की अंग्रेज गुण्डों से मुठभेड़ भी हुई। इस प्रकार इस काण्ड ने आन्दोलन का रूप ग्रहण कर लिया।

स्वातन्त्र्य समर की रचना

सन् १८५७ में भारत में जो सैनिक विद्रोह हुआ था उसको ब्रिटिश सरकार ने 'गदर' का नाम दिया था। किन्तु सावरकर उसको आरम्भ से ही भारत का प्रथम स्वातन्त्र्य समर कहते आए थे। जब लन्दन में मई १९०७ में इस समर की स्वर्ण जयन्ती मनाई गई उसके बाद से ही सावरकर इस महान घटना का सच्चा और विस्तृत इतिहास लिखने के लिए अधीर हो रहे थे। इटली के स्वतन्त्रता संग्राम का उन्होंने विस्तार में और मार्मिक शब्दों में वर्णन कर एक पुस्तिका का प्रकाशन करवा लिया था। अब वे अपने देश वासियों को प्रथम स्वातन्त्र्य समर की कथा सुनाकर उनमें क्रान्ति की भावना जागृत कर स्वतन्त्रता के लिए मर मिटने की भावना भरना चाहते थे। सावरकर का मत था कि अब तक अधिकांश भारतीय इतिहास या तो विदेशियों द्वारा लिखा गया है या फिर उन्होंने अपने भाड़े के टट्टुओं को लिखने के लिए प्रोत्साहित किया है। उन्होंने

जो इतिहास लिखा उसमे उन्होने ब्रिटिश सरकार के गुणगान म ही इतिहास के पृष्ठो को काला किया है। वह सब मिथ्या और भ्रमात्मक इतिहास है।

सावरकर इतिहास को राष्ट्रीय दृष्टिकोण से लिखन की आवश्यकता को अनुभव कर रहे थे। अपने तर्क की पुष्टि म वे १८५७ की गौरव पूर्ण क्रान्ति का उदाहरण प्रस्तुत किया करत थे। इस अग्रेज अथवा उनके पिट्ठू इतिहासकारो ने 'केवल मुट्ठी भर सैनिको का विद्रोह' या 'गदर' कहकर इतिहास की खिल्ली उडाई थी। सावरकर का यह तर्क उनके सहयोगी इतिहासकार रमेशचन्द्र दत्त और के०पी० जायसवाल को नितान्त खरा लगा। यद्यपि गोपालकृष्ण गोखले भी उस समय लन्दन म विद्यमान थ किन्तु उनको यह तर्क किंचित भी नही भाया। यही गोखले कालान्तर मे गाधी के राजनीतिक गुरु कहलाए। अस्तु।

सावरकर ने जब निश्चय कर लिया तो उसे कार्यान्वित करने के लिए व जी जान से जुट भी गए। जिस समय सावरकर लन्दन गए थे। उस समय 'इडिया आफिस के पुस्तकालय की प्रबन्धक उनके मित्र श्री मुखर्जी की पत्नी थी। उनके माध्यम से सावरकर को उस पुस्तकालय म प्रवेश प्राप्त हो गया। यद्यपि श्रीमती मुखर्जी स्वय अग्रेज महिला थी किन्तु तदपि उन्होने इस विषय मे सावरकर की यथाशक्ति सहायता की। उस पुस्तकालय मे सावरकर ने न जाने कितने ग्रथ, कितनी फाइलें और कितने ही रिकार्डों के ढेर पढ डाले। अनेक गोपनीय कागजात उनको पढने को मिले, कितने ही ससद की कार्यवाही के गुप्त पत्र तथा सैनिक पत्रो को पढन का भी सुयोग उनको वहाँ पर मिल गया।

इसके अतिरिक्त वे ब्रिटिश म्यूजियम के पुस्तकालय म भी जाते रहे। वहाँ भी उनको अनेक पुस्तकें तथा रिकार्ड पढन और देखने का अवसर प्राप्त हुआ। इस प्रकार इन दोनो पुस्तकालयो मे १८५७ की क्रान्ति से सम्बन्धित ऐसा कोई भी दस्तावेज नहीं रहा होगा जो कि सावरकर की दृष्टि से न गुजरा हो। अनेक इतिहास ग्रथ, डायरी, यात्रा वर्णन सैनिक पत्राचार युद्ध सम्बन्धियो के विवरण, चित्र, मानचित्र, अदालती कार्यवाहियाँ, समाचार पत्रो की कतरनें तथा अन्य जो भी सामग्री हो सकती थी वह सब उनको वहाँ देखने और पढ़ने को मिला।

पूरे अठारह मास तक सावरकर न इन पुस्तकालयों को छान मारा था। उन्होने रजनीकान्त द्वारा लिखित बगला पुस्तक 'सिपाही का बलिदान' भी पढी। इस प्रकार निरन्तर प्रयत्न के उपरान्त अप्रैल १९०८ मे उन्होने अपना मराठी ग्रथ पूर्ण कर लिया। सावरकर ने अपनी यह पाण्डुलिपि नासिक म अपने बडे भाई बाबाराव सावरकर के पास भेज दी। गुप्तचरो का किसी प्रकार इसकी भनक मिल गई तो उन्होने नासिक के अनेक प्रेसो को छान मारा किन्तु पाण्डुलिपि हाथ नहीं लगी।

भारत म इस प्रकार की रचना को प्रकाशित करने के लिए बाबाराव सावरकर साहस और साधन जुटा भी लेत किन्तु कोई मुद्रक उसको मुद्रित करने म लिए उद्यत ही नहीं हुआ। तब बाबाराव न निराश होकर पुस्तक को सावरकर के एक परि

स्थित मित्र के पास भिजवा दिया। उन्होंने जर्मनी मे इस पुस्तक के प्रकाशन का यत्न किया, क्योंकि जमनी मे संस्कृत छापने वाले प्रेस थे, अत वे मराठी पुस्तक भी छाप सकते थे। किन्तु वहाँ के कम्पोजीटरो ने उसके कम्पोज करने मे नितान्त कठिनाई अनुभव की। परिणामस्वरूप जमनी के प्रेस भी उसको प्रकाशित करने म असफल रहे।

उधर लन्दन मे अभिनव भारत के कुछ बुद्धिशील सदस्यो मे से डब्ल्यु० बी० फडके जैसे युवको ने अय्यर के मागदशन मे इसका अंग्रेजी अनुवाद कर डाला। अनुवाद पूण होने पर अभिनव भारत के सदस्यो ने परस्पर कुछ धन एकत्रित कर उसे अंग्रेजी म प्रकाशित करने का निश्चय किया। किन्तु ब्रिटिश गुप्तचर विभाग के कानो मे जब इसकी भनक पडी तो इसका लन्दन में मुद्रण भी असम्भव हो गया। अन्तत वह अंग्रेजी पाण्डुलिपि भी पेरिस भेज दी गई। किन्तु उन दिनो तो फ्रांस सरकार भी ब्रिटिश सरकार से डरती थी। परिणामस्वरूप वहाँ भी इसका प्रकाशन सम्भव नही हो पाया। वहाँ के गुप्तचर भी अब इसकी टोह मे रहने लग थे।

प्रकाशन पूर्व प्रतिबन्ध

ब्रिटिश सरकार को यह भलीभाति विदित हो गया था कि सावरकर ने 'स्वातन्त्र्य समर' नामक पुस्तक मराठी मे लिख डाली है और उसका अंग्रेजी अनुवाद भी कर लिया गया है। किन्तु उसको न तो कही से मराठी पाण्डुलिपि प्राप्त हुई और न ही उसका अंग्रेजी अनुवाद। तदपि ब्रिटिश सरकार सावरकर और उनके क्रान्तिकारी विचारो मे अब तक भलीभाति परिचित तो हो ही चुकी थी। अत उस पुस्तक के प्रकाशित हो जाने की कल्पना मात्र स ही सरकार और उसके गुप्तचर भयभीत तथा प्रकम्पित स रहने लगे थे। सरकार को तो यही विश्वास था कि इस ग्रन्थ का अब तक कही और किसी भी भाषा मे प्रकाशन नही हुआ है अत उसन उस अप्रकाशित ग्रन्थ पर ही प्रतिबन्ध लगा दिया। इस प्रकार की यह घटना विश्व के प्रकाशन के इतिहास मे अभूतपूव सिद्ध हुई। सरकार का खोखलापन और असमथता का प्रमाण भी इस घटना से मिल गया। ब्रिटिश सरकार न जब प्रतिबन्ध लगा दिया तो फिर भारत-सरकार किस प्रकार पीछे रहती, उसन भी उस अप्रकाशित पुस्तक पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

प्रकाशन पूव प्रतिबन्ध लगान की भी एक छोटी सी भूमिका है। हुआ यह कि ज्यो ज्यो सावरकर अपनी पाण्डुलिपि तैयार करत जाते थे, त्यो त्यो उसके कुछ अशो को व 'फ्री इडिया सोसाइटी' की साप्ताहिक बैठको मे सुनाया भी करते थे। स्कोटलैंड याड को इसकी भनक वही से लगी थी। उसने इसको हथियाने का उपक्रम किया। सावरकर भी सतक थे। स्कोटलैंड याड के गुप्तचरो न सोसाइटी मे सावरकर के भाषणों को सुना था और उसस उन्होंने पुस्तक की विषय वस्तु की भयकरता का अनुमान लगा लिया था और तब से वे उसको प्राप्त करने की टोह म लगे रहे और अपने इस प्रयत्न

मे कुछ-कुछ सफल भी हो गए। क्योंकि कुछ ही दिनो म सावरकर न देखा कि उनके मूल ग्रन्थ के दो अध्याय लुप्त हो गए हैं। कुछ दिनो म उनको यह तो विदित हो गया कि किसी न किसी माध्यम म स्काटलैंड याड के गुप्तचर विभाग म व अध्याय पहुच गए हैं किन्तु उस माध्यम का उनको भी पता नहीं चल पाया। तदपि व इससे निराश नहीं हुए उन्होंने उन अध्यायो को पुन पूर्ण किया और भारतीय कस्टम तथा डाक विभाग के शिकंजे म उसको किसी प्रकार बचाकर बाबाराव सावरकर के पास पहुंचाने म व सफल हो गए।

पुस्तक की पाण्डुलिपि को ही प्रतिबन्धित करने की यह पृष्ठभूमि थी। यहाँ तक कि कुछ ब्रिटिश समाचार पत्र अपनी सरकार के इस दुष्कृत्य की सराहना करने म सतरात भी रहे थ। सावरकर न ब्रिटिश, अमरिकन और योरोपियन पत्रो म सरकार के इस कृत्य की निन्दा के वक्तव्य भेज थ।

होलेण्ड मे प्रकाशित

१९०७ म प्रारम्भ हुआ यह प्रयत्न सन् १९०९ मे होलण्ड म जाकर किसी प्रकार कुछ सफल हुआ। ब्रिटिश सरकार और फ्रांस सरकार के गुप्तचर अपन अपन देशो म इसकी पाण्डुलिपि की खोज करत रह किन्तु सावरकर उन सबकी आंखो म धूल झोंक कर पुस्तक की पाण्डुलिपि को होलेण्ड भेज कर वहां मुद्रित कराने मे सफल हो गए। वहां से सभी मुद्रित प्रतियो को फ्रांस पहुंचा दिया गया। मुद्रित प्रतियो को गुप्त रूप स रख कर उन्हें वितरित करने की व्यवस्था होन लगी। पुस्तकें पेरिस म राणा के घर पर रखी गई थी। इस प्रकार सावरकर जहां एक ओर इतिहास लिख रहे थ वहां स्वय वे इतिहास का निर्माण भी कर रहे थे।

पुस्तक के प्रसार का इतिहास भी उतना ही रोमाचकारी रहा। किसी न किसी प्रकार से पुस्तक न केवल भारत अपितु चाइना, जापान और अमेरिका तक पहुचा दी गई थी। जहां यह ३०० ३०० रुपयो तक मे बिकी। अंग्रेजो न अपन मित्रों को अनुपलब्ध उपहार के रूप मे इस पुस्तक को प्रदान किया। मोहम्मद अली जिन्ना न अपने मित्र सर चार्ल्स क्लीवलड से माग कर इस पुस्तक को पढा था। योरोपियन लखक और इतिहासकारो न इस पुस्तक को बड़े चाव और लगन से पढा। इस प्रकार यह पुस्तक जन जन म चर्चा का विषय बनती गई और इसके अनक सस्करण अनक भाषाओ म प्रकाशित हुए।

पुस्तक पर प्रतिबन्ध लगाने की आज्ञा जब सावरकर को बताई गई तो उन्होंने उसके विरोध म लन्दन टाइम्स म एक पत्र प्रकाशित करवाया। उस पत्र मे उन्होंने लिखा 'सरकार स्वय यह स्वीकार करती है कि उसको इस बात की जानकारी नहीं है कि ग्रन्थ की मूल पाण्डुलिपि मुद्रित होने के लिए कहा गई है। अत सरकार यह किस आधार पर आरोप लगा रही है कि यह ग्रन्थ राजद्रोह को प्रेरणा देने वाला भयकर साहित्य ? वह इस ग्रन्थ के मुद्रित होन स पूर्व ही ऐसी टिप्पणी किस आधार पर कर रही है ?

इसके तो केवल दो ही कारण हो सकते है कि या तो यह पाण्डुलिपि सरकार के ही पास है और यदि नही है तो सरकार का यह कृत्य नितान्त ही अनुचित और दमनकारी है। यदि सरकार के पास इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि है तो उसे चाहिए कि वह राजद्रोह के आरोप म मुझे न्यायालय के समक्ष उपस्थित करे। यदि सरकार के पास वह पाण्डुलिपि नही है तो वह बताए कि किस आधार पर वह यह कहती है कि इस ग्रन्थ म राजद्रोह का प्रतिपादन किया गया है ?'

लन्दन टाइम्स' ने इस पत्र को प्रकाशित करत हुए अपनी टिप्पणी मे लिखा 'जब सरकार न स्पष्ट रूप से अपनी उच्छृखलता को प्रकट करते हुए इस ग्रन्थ पर प्रतिबन्ध लगाने का असाधारण पग उठाया है तो यह निश्चित समझ लेना चाहिए कि 'दाल म कुछ काला' अवश्य है।'

फ्रेंच संस्करण

इस पुस्तक का फ्रेंच सस्करण १६१० म प्रकाशित हुआ। यह फ्रेंच अनुवाद मैडम कामा और एम पी टी आचाय ने किया था और उसका प्राक्कथन फ्रेंच क्रान्तिकारी तथा पत्रकार ई० पिरियोन न लिखा था। उसके कथनानुसार पुस्तक मे हिन्दू मुस्लिम एकता की बात कही गई थी और इस राष्ट्रीय जागरण का नाम दिया था। पुस्तक वास्तव म बडी ही काव्यमयी है। पुस्तक म लेखक के नाम के स्थान पर 'एक भारतीय राष्ट्रवादी' लिखा गया है किन्तु मैं भलीभाति जानता हूँ कि इसको सावरकर ने लिखा है।' यह प्राक्कथन जब परिस की किसी पत्रिका म प्रकाशित किया तो सरकार न पत्रिका के उस अक को ही जब्त कर लिया।

विभिन्न सरकारो द्वारा किए जान वाले इन भयकर प्रहारो स इन क्रान्तिकारियो का साहस मन्द नही पडा। लाला हरदयाल मादाम कामा और चट्टोपाध्याय आदि न इस पुस्तक का द्वितीय अंग्रेजी सस्करण प्रकाशित करने का निश्चय किया। उनको सफलता मिली और उस सस्करण की बिक्री स प्राप्त राशि का उपयोग क्रान्तिकारी आन्दोलन की सहायता के लिए किया गया। लाला हरदयाल ने अपन अमरिका मे प्रकाशित होने वाले पत्र 'गदर' म इसका हिन्दी उर्दू और पजाबी अनुवाद प्रकाशित किया था।

कालान्तर मे किसी प्रकार इस ग्रन्थ की मूल मराठी प्रति परिस मे मादाम कामा के पास भेज दी गई। गुप्तचरो को किसी प्रकार भी इसका पता न लग इसके लिए उसकी सुरक्षा की दृष्टि मे उन्होने उस पाण्डुलिपि को 'जेवर बैंक ऑफ परिस' म सुरक्षित रखवा दिया। यद्यपि उसके कुछ काल बाद ही विश्व युद्ध आरम्भ हुआ और जिस नगर के जिस बैंक म यह प्रति सुरक्षित थी वह नगर ही ध्वस्त कर दिया गया। किन्तु उसस पूव ही सावरकर के एक गोवा वासी मित्र डाक्टर कोटिनो का जब फ्रास से निष्कासन हुआ तो वे उस पाण्डुलिपि को अपन साथ अमेरिका ले जाने मे सफल हो गय थे।

राजभक्त नेहरू की पराजय

ऐसा नहीं कि योरोप में रहने वाले सभी भारतीय छात्र देशभक्त ही थे। उनमें से अधिकांश ऐसे भी थे जो इंग्लैंड में पढ़ाई समाप्त करके भारत में उच्च अधिकारी बनने की आकांक्षा से वहां गये थे। ऐसे विद्यार्थी इस प्रकार के समारोहों में सम्मिलित नहीं होते थे। जवाहरलाल नेहरू उनमें से एक थे। इस ओर हम पहले ही इंगित कर आये हैं। जहां क्रान्तिवीर लन्दन की सड़कों, रेलों, कॉलेजों आदि में अंग्रेज सेना, अंग्रेज नागरिक और अंग्रेज अध्यापकों में संघर्ष कर रहे थे, वहां ये दब्बू छात्र अपने अपने कमरों में दुबके हुए बैठे रहते थे। उनमें बाहर निकलने का साहस नहीं था।

मात्र छिपकर बैठे रहने से तो इन कायरों की राजभक्ति का प्रदर्शन हो नहीं सकता था अतः जब मामला कुछ शान्त हुआ तो इन राजभक्त तथा कथित भारतीय छात्रों की लन्दन के कैक्सटन हाल में एक सभा हुई। उसमें इंडिया हाउस तथा अन्यान्य स्थानों पर सम्पन्न स्वर्ण जयन्ती से सम्बन्धित कार्यक्रमों पर खेद प्रकट किया गया। किन्तु तदपि किसी प्रकार का प्रस्ताव पारित करने में वे सर्वथा असमर्थ रहे। ज्योंही कोई 'राजभक्त' कुछ बोलने के लिए उठता, शोर मचाकर उसको चुप करा दिया जाता। श्रोताओं तक उसका स्वर पहुंच ही नहीं पाता था। परिणामस्वरूप बिना कोई प्रस्ताव पारित किये यह सभा विसर्जित करनी पड़ी। हां, इतना इनको लाभ हुआ कि ये लन्दन की गुप्तचर पुलिस की नजरों में राजभक्त के रूप में चढ़ गये।

ब्रिटिश समाचार जगत इन हलचलों से अछूता नहीं रहा। उन दिनों प्रसिद्ध पत्र 'द टाइम्स' और 'जान बुल' ने सावरकर के पास अपने विशेष प्रतिनिधि भेजे। तब तक सावरकर का न कहीं चित्र छपा था और न किसी सार्वजनिक सभा में उनका भाषण ही हुआ था जिससे कि समाचार पत्र जगत उनकी छवि देख पाता। किन्तु उनके क्रान्ति के कार्यों से सबने अपने अपने मन में उनकी एक विशेष आकृति अंकित कर ली थी। वे कदाचित यही सोचते थे कि ऐसी सिंह गर्जना करने वाला यह व्यक्ति स्वयं भी सिंह की भांति सुपुष्ट शरीर और वैसे ही डीलडौल वाला होगा। पर ज्योंही इंडिया हाउस में जाकर वे सावरकर से मिले तो उनको देखते ही उनकी यह प्रतिमा भंग हो गई। उनके सम्मुख एक मोहक आकृति, मधुर स्वर वाला सुसंस्कृत एवं सुशील युवक खड़ा था।

कालान्तर में 'द टाइम्स' के सम्वाददाता ने उनके विषय में 'छरहरे शरीर में विद्युत की सी कौंध' वाला लिखा तो 'जान बुल' के सम्वाददाता ने इस व्यक्ति के ललाट पर एक विशिष्ट ओजस्विता की आभा देखी। मानचेस्टर गार्जियन ने उसे 'समर्पित व्यक्तित्व' की संज्ञा दी कि 'जिसके समक्ष कोई भी शिथिल पड़ सकता है।' उधर 'डेली न्यूज' ने जहां एक ओर सावरकर की विचारधारा की कड़ी आलोचना की वहां दूसरी ओर उसने उनके 'खनकते स्वर' की सराहना की।

ब्रिटिश अधिकारियों को जब इन सब समारोहों का विवरण मिला और समाचार पत्रों की टिप्पणियां पढ़ने को मिलीं तो वे चौकन्ने हो गए और पुलिस विभाग को

निर्देश दिया गया कि सावरकर की गतिविधियों पर सतर्कतापूर्ण निगरानी रखी जाय। सावरकर को इसकी जानकारी दी गई तो उन्होंने व्यंग्य करते हुए कहा, 'इन लोगों के स्वास्थ्य के लिए यदि इंडिया हाउस की जलवायु उत्तम है तो ठीक है।'

सावरकर की गतिविधियों पर इससे कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने रूस, फ्रांस, स्पेन, चीन, अमेरिका, जर्मनी आदि के समाचार पत्रों में भारतीय स्वातंत्र्य समर से सम्बन्धित अनेक तर्कपूर्ण लेख लिखकर प्रकाशित कराये। भारत में भी वे कलकत्ता के 'युगान्तर' और बम्बई के 'विहारी' के लिए लेख भेजते रहे। उनके लेखों से सभी देशों के राजनीतिज्ञों में भारतीय स्वतन्त्रता के लिए भूमि तैयार होने लगी। अनेक पत्रकार अपने अपने पत्र में भारतीय स्वाधीनता के समर्थन में लेख लिखने लगे। उनका निष्कर्ष यही होता था कि भारतीयों के स्वाधीन होने की माँग सर्वथा न्यायोचित है। कुछ पत्रों ने तो यहाँ तक लिखा कि 'अब उन्हें अधिक समय तक पराधीन नहीं रखा जा सकता।'

ब्रिटिश समाचार पत्रों में जब इन क्रान्तिकारियों की गतिविधियों की खुलकर चर्चा होने लगी तो अंग्रेज अधिकारियों की दृष्टि श्यामजी कृष्ण वर्मा पर गई। उसका कारण यह था कि ये सारी गतिविधियाँ इंडिया हाउस से संचालित होती थीं और इंडिया हाउस श्यामजी कृष्ण वर्मा के आधिपत्य में था। इस प्रकार जहाँ एक ओर समाचार पत्रों में भारत की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में लेख प्रकाशित होने लगे वहाँ दूसरी ओर इन क्रान्तिकारियों, विशेषतया श्यामजी कृष्ण वर्मा की गतिविधियों के विरुद्ध भी लेख प्रकाशित होने लगे। सरकार ने सर्वप्रथम उनके समाचार पत्र 'इंडियन सोशियोलॉजिस्ट' को प्रतिबन्धित कर दिया।

सरकार की इस प्रकार की कार्यवाही से श्यामजी सतर्क हो गये और उन्होंने भी अपनी रणनीति में परिवर्तन आरम्भ कर दिया। उन्होंने विचार किया कि नई छात्रवृत्तियों में धन लगाने की अपेक्षा कुछ नए भारतीय संगठन बना कर उनमें धन लगाया जाय। इसके लिए उन्होंने दस हजार रुपए निर्धारित कर दिए। अपनी इस योजना के विषय में उन्होंने भारत में बाल गंगाधर तिलक, विपिनचन्द्र पाल और लाला लाजपत राय, जो उन दिनों बाल-पाल-लाल नाम से विख्यात हो गए थे, को पत्र लिखा तो उन तीनों ने इसमें अपनी सहमति प्रकट की।

यह संयोग की ही बात थी कि जुलाई १९०७ में मिस्र के प्रख्यात पत्रकार तथा काहिरा में 'अल लीवा' के सम्पादक मुस्तफा कामिल लन्दन पहुंचे। श्यामजी कृष्ण वर्मा ने निश्चय किया कि वे उनसे जाकर मिलेंगे और मिस्र की क्रूर सत्ता से आतंकित मिस्रवासियों के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त कर उनकी भी भारत के प्रति सहानुभूति अर्जित करेंगे। यह भी संयोग की ही बात थी कि पैन इस्लामिक सोसाइटी की ओर से २४ जुलाई १९०७ को क्राइटेरियन रेस्टोरां में विशाल भोज का आयोजन किया गया। इसमें जहाँ अन्य लोगों को आमन्त्रित किया गया था वहाँ श्यामजी कृष्ण वर्मा भी उन आमन्त्रितों में से एक थे।

श्यामजी कृष्ण वर्मा ने इस अवसर पर उनको बधाई देते हुए उस दिवस को उन्होंने 'स्वर्णिम दिवस' घोषित किया और मुस्तफा कामिल को अपनी शुभकामनायें देते हुए उन्होंने उन्हें 'मिस्र की राष्ट्रीय एकता का आधार स्तम्भ' और 'स्वतन्त्रता का उन्नायक' कहा। मुस्तफा से उनकी यह भेंट लाभकारी सिद्ध हुई।

हम पहले ही लिख आये है कि इंडिया हाउस मे भारतीय स्वातन्त्र्य समर की जो स्वर्ण जयन्ती मनाई गई थी उसने काफी तहलका मचा दिया था। उसी समय संयोग से श्यामजी कृष्ण वर्मा और सावरकर के एक आयरिश मित्र ह्यू थो० डानिल ने एक बहुत ही विचारोत्तेजक लेख लिखा था। श्यामजी ने स्वर्ण जयन्ती की पूर्व संध्या को यह लेख प्रसारित किया था। उस लेख में १८५७ की भारतीय क्रान्ति में भारतीय सेना एवं नागरिकों का गुणगान करने के साथ साथ अंग्रेजों द्वारा किए गए दमनकारी जघन्य कृत्यों के लिए उनकी घोर भर्त्सना भी की गई थी। उसमें कलकत्ता, मेरठ और दिल्ली की गौरवपूर्ण घटनाओं के उल्लेख के साथ साथ यह भी लिखा था कि अंग्रेजों ने जिस सेना के बलबूते पर इस क्रान्ति को विफल करने का दावा किया है उसके तीन चौथाई सैनिक भारतीय ही थे जिन्हें अंग्रेज अधिकारियों ने चर्बी वाले कारतूसों के विषय में अन्धकार में रखा था। यह एक प्रकार से उनके साथ छल-कपट का व्यवहार था।

भारत मे हलचल

प्रसंगवशात् यहां यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि यद्यपि भारत में भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम की स्वर्ण जयन्ती का कोई कार्यक्रम आयोजित नहीं किया गया था तदपि अनेक स्थानों पर अनेक भारतीयों ने क्रान्ति से सम्बन्धित वीरों को श्रद्धांजलियाँ अर्पित कर उनके आरम्भ किए संघर्ष को जारी रखने की शपथ ली थी। लार्ड मिन्टो को जब यह चौंकाने वाला समाचार मिला तो उसने भारत में बहुत कड़े सुरक्षा उपाय किए। इतना ही नहीं उसने ९ मई को ही लाहौर में लाला लाजपतराय को बन्दी बनवा लिया और फिर कुछ दिन बाद २ जून को सरदार भगतसिंह के चाचा सरदार अजीत सिंह को भी बन्दी बनाकर दोनों को चुपचाप माण्डले जेल भिजवा दिया। इससे भारत में भी स्थिति बड़ी विस्फोटक बन गई। ११ मई को सरकार ने एक अधिनियम के द्वारा जन सभाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इन दो गिरफ्तारियों से देश भर में रोष की लहर दौड़ गई।

भारत का लाल बन्दी बना कर विदेश भेज दिया गया हो और श्यामजी कृष्ण वर्मा शान्त बैठे रहें यह किस प्रकार सम्भव था। उन्होंने इस विषय पर बड़े ओजस्वी लेख लिखकर अंग्रेज सरकार की भर्त्सना करते हुए भारतीयों के मानस को भी झकझोरा था। अपने एक लेख में उन्होंने लिखा 'लाला जी का भारत से निकाला जाना वास्तव में अंग्रेजों का भारत से निकाले जाने का पूर्व संकेत है।'

लाला जी के बन्दी बनाए जाने पर पेरिस की सभा को सम्बोधित करते हुए

११ मई १९०७ को मादाम कामा ने गर्जते हुए कहा था, 'मुझे इस बात से बहुत ठेस पहुँची है कि लाजपतराय जैसे सच्चे देशभक्त को उनके घर परिवार से छीन कर बन्दी बना दिया गया है। आप इन विदेशी शासकों के आश्वासनों पर भूल से भी विश्वास न करें। यह हमारा हाल सुधारने की अपेक्षा हमारी खाल खींच रहे हैं। भारत के नर नारियो! आप इनके अत्याचार का विरोध करें। दासता के इस नरक में सड़ने से तो कहीं अच्छा है कि स्वतन्त्रता के लिए मिट जांय। उठो और स्वराज्य लेकर स्वतन्त्रता व समानता की स्थापना करो। अपने लिए और आने वाली पीढ़ियों की खातिर उठो। मानव अधिकारों के लिए जूझ पड़ो और दुनिया को दिखा दो कि अब भी पूर्व में पश्चिम को सीख देने की क्षमता है। विशेषकर पश्चिम के उन अंग्रेजों को जिन्हें उन्हीं के एक प्रसिद्ध कवि ने 'सफेदपोश दरिन्दे' कहा है।'

सावरकर ने ७ जून को इंडिया हाउस में एक सभा का आयोजन किया जिसकी अध्यक्षता श्यामजी कृष्ण वर्मा ने की। उस सभा में उन्होंने राज्य सचिव लॉर्ड मार्ले के कुछ मूर्खतापूर्ण वक्तव्यों का हवाला देते हुए अंग्रेजी बर्बरता को आड़े हाथों लिया। इसी बीच कुछ एंग्लो इंडियन्स ने भारतीय क्रान्ति तथा इंडिया हाउस और उसके कर्ताधर्ता श्यामजी कृष्ण वर्मा के विरुद्ध कुछ लेख लिखे। सावरकर की दृष्टि उन लेखों पर गई तो उन्होंने श्यामजी कृष्ण वर्मा की ओर से उनका उत्तर दिया। उनके करारे उत्तरों से इंडिया हाउस में ही एक प्रकार से शीत युद्ध की सी स्थिति उत्पन्न हो गई। इतना ही नहीं लन्दन तथा अन्य योरोपीय देशों में श्यामजी कृष्ण वर्मा और सावरकर के विरुद्ध लेखों की भरमार होने लगी।

स्काटलैंड यार्ड अर्थात ब्रिटिश पुलिस इंडिया हाउस पर धीरे धीरे अपना शिकंजा कसने लगा। श्यामजी कृष्ण वर्मा और सावरकर के पत्र खोलकर पढ़े जाने लगे। कभी कभी छुट पुट छापे भी उनके कमरे में अथवा उनके कार्यालय में पड़ जाते। वर्मा जी सरकार के इन कारनामों के प्रति पूर्णतया सजग थे, फिर भी दिनानुदिन स्थिति भयावह होती जा रही थी। वे इससे निस्तार पाने के लिए विचार करने लगे। अन्त में अन्य कोई उपयुक्त उपाय न देखकर उन्होंने इंग्लैंड छोड़ देने का विचार किया।

इंडिया हाउस के प्रभारी

यह निश्चय करते ही उन्होंने 'इंडिया होम रूल सोसाइटी' को समेटा और इंडिया हाउस का सारा कार्य भार सावरकर को सौंप दिया। यह सारा कार्य यद्यपि गुप्त रखा गया था तदपि उनके सभी हितचिन्तकों को उनके लंदन छोड़ने और फ्रांस जाने के विषय में ज्ञात था। श्यामजी कृष्ण वर्मा ने सारा प्रबन्ध कर जून के प्रथम सप्ताह में लन्दन से प्रस्थान कर दिया। वे पेरिस पहुँच गए। वहाँ के राजनीतिक क्षेत्र में वे अब तक चर्चित हो चुके थे इसलिए वहाँ कार्य आरम्भ करने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं हुई।

भारतीय स्वाधीनता का ध्वज

लन्दन के इंडिया हाउस के अब सावरकर ही सर्वेसर्वा थे। कार्य संचालन को ध्यान में रखते हुए उन्होंने सर्वप्रथम अपने साथियों और अपने विश्वस्त जनों की एक बैठक बुलाई। अब तक सभी यह अनुभव करने लगे थे कि लन्दन का वातावरण खुले रूप से सरकार का विरोध करने के लिए उपयुक्त नहीं रह गया है अतः इस कार्य को सुचारु रूप से संचालन के लिए अपनी कार्य प्रणाली में भी तदनुरूप परिवर्तन करना आवश्यक होगा। उन दिनों के सावरकर के प्रभाव के विषय में एम पी टी आचार्य ने लिखा—'उस व्यक्ति में ऐसी मोहिनी थी कि वि वि एस अय्यर और लाला हरदयाल जैसे व्यक्ति मात्र एक बार के हाथ मिलाने पर ही न केवल उसके होकर रह गये अपितु उसने जो कहा वह कर गुजरने के लिए सन्नद्ध हो गए। न केवल साधारण व्यक्ति अपितु उच्चाधिकारी, व्यवसायी आदि सभी सावरकर के पवित्रतम उद्देश्य के प्रति अनुरक्त होकर उसके लिए कुछ भी त्याग करने के लिए तत्पर रहते थे।'

इसी प्रसंग में बापट का कहना है कि 'मैंने पहले सोचा था कि मैं क्रान्तिकारी पत्रक लिख कर उनका वितरण करूंगा और इधर उधर जा कर लोगों को जाग्रत करने के लिए व्याख्यान दूंगा। यही मैंने अपना जीवन उद्देश्य बनाना चाहा था। किन्तु जब कुछ मास बाद सावरकर से मेरी भेंट हुई तो मैंने अपना कार्यक्रम बदल दिया और निश्चय किया कि पेरिस जाकर बम्बनिर्माण की प्रक्रिया सीखूंगा। इसका मुख्य कारण यही था कि मैं जो लिखता और जो मैं अपने व्याख्यानों में कहता अथवा जिस ढंग से लिखता अथवा कहता वह तो सावरकर के लेख और व्याख्यानों का अंश भी न होता। सावरकर तो जन्म जात क्रान्तिकारी लेखक और वक्ता थे, इस लिए मैंने सोचा कि लिखने और बोलने का कार्य सावरकर के लिए छोड़ कर मुझे कुछ अन्य करना चाहिए।'

सावरकर के दिनों के इंडिया हाउस के वातावरण के विषय में आसफ अली ने लिखा था, 'मुझे आश्चर्य होता था कि सावरकर जैसा २०-२२ वर्ष का युवक किस प्रकार उन सबको जो कोई भी उसके सम्पर्क में आते थे, अपने वश में कर लेता था। उसमें शिवाजी का आत्मविश्वास दिखाई देता था।'

लेख एवं पत्रक

अपने मित्रों की उस बैठक में सावरकर ने न केवल भारत में प्रचार पर अपितु विश्व के अन्यान्य देशों में किस प्रकार प्रचार किया जाय इस पर विचार विनिमय किया, जिससे कि उन देशों के नागरिकों में भी भारत की स्वतन्त्रता के लिए सहानुभूति अर्जित की जा सके। इसके लिए हर सम्भव प्रयास किया जाना चाहिए। इंग्लैंड का पड़ोसी देश आयरलैंड तो सर्वात्मना सावरकर का समर्थक बन गया था। सावरकर के लेख वहां के समाचार पत्रों में निरन्तर प्रकाशित होते रहते थे। उन्होंने न्यूयार्क के 'गैलिक अमेरिका' में भारतीय राजनीति पर प्रभावशाली रचनायें लिख कर भेजीं। पत्र ने उनको प्रकाशित ... और सावरकर ने अपने उन लेखों का जर्मन, फ्रेंच, इटालियन, रूसी और पोर्तुगीज

आदि भाषाओं में अनूदित कराकर उन-उन देशों में उनको प्रकाशित कराया। इग्लैंड की गोरी सरकार को जब पता चला कि 'गैलिक अमेरिका' में सावरकर के लेख प्रकाशित होते हैं और विश्वभर में उनको पढ़ा जाने लगा है तो उसने उस पत्र के भारत प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया। अन्य देशों में तो वह प्रतिबंध लगा नहीं सकती थी।

इस प्रकार विश्व के कोने-कोने में सावरकर का संदेश पहुँचने लगा था। इस प्रसंग में एमिली ब्राउन ने अपनी पुस्तक 'हरदयाल हिन्दू रेवोल्यूशनरी एण्ड रेशनलिस्ट' में लिखा — सावरकर के लेख में विश्व के देशभक्तों विशेषतया नवयुवकों को भारतभूमि की मुक्ति के लिए प्राण-पण से जुट जाने की प्रेरणा मिलती थी।'

सावरकर चाहते थे कि विश्व राजनीति में भारत की स्वाधीनता का विषय सदा जीवन्त बना रहे। इस निमित्त २२ अगस्त १९०७ को जर्मनी के स्टुटगार्ट नगर में होने वाली अंतर्राष्ट्रीय सोशलिस्ट कांग्रेस के लिए मादाम कामा और सरदारसिंह राणा को प्रतिनिधि बनाकर वहां भेजा गया। मादाम कामा ने जब उस सम्मेलन में भारत की स्थिति पर प्रस्ताव प्रस्तुत किया तो ब्रिटेन की सोशलिस्ट पार्टी के प्रतिनिधि रमजे मक्डोनल ने उसका घोर विरोध किया। किन्तु इग्लैंड के ही श्री हाइण्डमैन और फ्रांस के एम जीन ज्योस के सहयोग से मादाम कामा अपना प्रस्ताव प्रस्तुत करने में सफल हो गई। न केवल इतना, अपितु उन्होंने वहां पर सावरकर द्वारा निर्मित स्वतंत्र भारत का ध्वज भी लहराया क्योंकि मादाम कामा का प्रस्ताव विधिपूर्वक पहले अन्तर्राष्ट्रीय ब्यूरो के विचारार्थ प्रस्तुत नहीं किया गया था, अतः ब्रिटिश प्रतिनिधि उसको वहां पर पारित न करा सकने में समर्थ हो गए। फिर भी मादाम कामा को अपनी बात कहने का अवसर दिया गया और उन्होंने कहा, 'मैंने भारतीय स्वाधीनता का ध्वज लहरा दिया है। अब आप नवयुवकों का यह कर्तव्य है कि आप इसको प्रणाम करें, क्योंकि यह उन असंख्य बलिदानियों के रक्त से रंजित है, जिन्होंने भारत की स्वतन्त्रता के लिए न केवल अपनी धन सम्पत्ति अपितु अपने प्राणों तक को न्योछावर कर दिया है। मैं संसार के स्वतंत्रताप्रेमी सज्जनों से निवेदन करती हूँ कि वे इस ध्वज के साथ भारत की स्वतंत्रता के लिए सहयोग करें।'

उस अवसर पर प्रतिनिधियों ने उठकर ध्वज का वन्दन किया। सभी लोग मादाम कामा के व्याख्यान से अभिभूत हो गए और सम्मेलन के सभापति ने कहा कि इंटरनेशनल ब्यूरो ऑफ कांग्रेस ने मादाम कामा के प्रस्ताव की भावना को तो स्वीकार कर ही लिया है।

मादाम कामा का मिशन सफल हुआ। इसके बाद मादाम कामा न्यूयॉर्क गई तो वहाँ पर भी उन्होंने उसी प्रकार अपनी वक्तृता से जन समुदाय को अभिभूत किया और भारत की स्वतंत्रता का संदेश अनेक जन सभाओं में दोहराया। यह सावरकर के कार्य की सफलता थी, उनकी योजना की सफलता थी। इसके दूरगामी परिणाम निकले। उनकी सफलता का अनुमान इससे ही लगाया जा सकता है कि कैसर जैसे जर्मनी के महान् शक्तिशाली व्यक्ति ने मादाम कामा को सुनकर और उनके साहस को देखकर अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन को उत्तर देते हुए कहा था—'विश्व शान्ति के लिए यह परम आव-

श्यक है कि भारत को पूण रूपेण राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो।'

सावरकर के प्रयत्नो का ही यह परिणाम था कि भारत के राजनीतिक नेता अब प्राथनाओ और आवेदनो की अपेक्षा दबाव की नीति को अपनाने लगे थे। उसका ही यह परिणाम था कि दादा भाई नौरोजी जसे वयोवद्ध नेता निराश होकर विद्रोह का स्वर उठाने लगे थे। पजाब मे तूफान उठने लगा था और उसको दबाने के लिए सरकार ने पजाब के प्रख्यात नेता लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिह को दश स निष्कासित कर दिया था।

विश्व युद्ध की आशका

क्रान्ति की योजना

विश्व का घटनाक्रम बडी तीव्रता से बदलने लगा था। महायुद्ध की सम्भावनायें दिन प्रतिदिन बढती जा रही थी। सावरकर समझ रहे थे कि भारत के लिए यह सुअवसर होगा। रूस आयरलैंड, मिश्र व चीन के क्रान्तिकारी देशभक्तो मे अभिनव भारत का सम्पर्क निरन्तर बढता जा रहा था। कमाल अतातुर्क, जो उन दिनो तुर्की का प्रमुख आन्दोलनकर्ता नेता माना जाता था, वह भी लन्दन मे रह कर अपना कार्य कर रहा था। उसका प्रयत्न अपने देश के राजतन्त्र को उखाडने के लिए था। सावरकर उससे नियमित रूप से मिलते रहते थे। सावरकर चाहते थे कि कमाल अतातुर्क से मिल कर सयुक्त ब्रिटिश विरोधी मोर्चा बनाया जाय और योजनाबद्ध रूप से दोनो देश एक ही समय अपने अपने देश मे ब्रिटिश साम्राज्य के विरोध मे उठ खडे हो। उस योजना का एक अग यह था कि ज्यो ही सशस्त्र क्रान्ति आरम्भ हो उसी समय स्वेज नहर को बन्द कर दिया जाय। मिस्र के निर्वासित नेताओ को सावरकर की यह योजना स्वीकार थी। और उन्होने सावरकर को आश्वासन दिया कि वे उनसे पूर्ण सहयोग करेंगे।

उधर भारत मे कुछ युवको ने छिप छिप कर राइफल शूटिंग क्लबो की स्थापना कर उनमे प्रशिक्षण प्राप्त करना आरम्भ कर तो दिया था, किन्तु उन पर पुलिस की कडी दृष्टि रहने लगी थी। लन्दन मे भी इस प्रकार प्रशिक्षण की कोई व्यवस्था नही हो सकती थी। और जब तक भारतवासी स्वय इस प्रकार की युद्ध विद्या मे प्रवीण न हो जाय तब तक विदेशी सहयोग और सहायता का उतना महत्व नही था। यही सावरकर की चिन्ता का विषय था।

भारत की गतिविधियाँ

इसी बीच दिसम्बर १९०७ मे नागपुर मे कांग्रेस अधिवेशन की तैयारी होने लगी। किन्तु नरम दल के कांग्रेसियो को यह भय सताने लगा कि यदि कांग्रेस का अधि-

वेशन नागपुर म होता है तो उसम तिलक का अध्यक्ष निर्वाचित होना सुनिश्चित है। किन्तु व ऐसा नही चाहते थे अत उन्होंने इसको टालने का यत्न किया और उसमें वे सफल भी हो गए। ब्रिटिश सरकार न उनकी सहायता की और नागपुर म अधिवेशन नही होन दिया। तब सूरत म अधिवेशन करन का निश्चय हुआ। सावरकर न अपन बड़े भाई बाबाराव सावरकर को लिखा कि सरकार क इस पग का विरोध होना चाहिए। उन्होंने विरोध भी किया, किन्तु नागपुर मे अधिवेशन कराना सम्भव नही हुआ। तब बाबाराव सावरकर अपने अभिनव भारत क साथियो के साथ सूरत अधिवेशन म गए और लगभग ऐसे दो सौ कर्मठ कार्यकर्ताओ की एक गुप्त बैठक सूरत म की गई।

सरकार हर प्रकार स राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने के लिए कटिबद्ध थी। उसने तमिल के सुप्रसिद्ध कवि और देशभक्त सुब्रह्मण्य भारती तथा अभिनव भारत के सदस्य चिदम्बरम पिल्लई को बन्दी बना लिया। सावरकर लन्दन म बठे भारत की इस गति विधि पर दृष्टि लगाए हुए थ। लन्दन म अभिनव भारत के क्रान्तिकारी रूस, आयरलैंड, इजिप्ट और चाइना आदि क क्रान्तिकारियो से सम्पर्क बनाए हुए थ। सावरकर चाहते थे कि इस प्रकार विभिन्न देशो के क्रान्तिकारी मिलकर ब्रिटिश सरकार के विरोध मे सगठित हो जाय। इस सयुक्त मोर्चे का एक उद्देश्य स्वेज नहर को बन्द करना भी था। इजिप्ट के प्रमुख क्रान्तिकारियो ने इसके लिए सावरकर की सहायता करने का वचन भी दिया था। यही कारण था कि जब स्पेन और मोरक्को म युद्ध छिड़ा तो सावरकर ने अपने तीन साथियो को इस युद्ध मे भाग लेने के लिए भेजा था। जिससे कि वे युद्ध कला स परिचित हो और यदि उस युद्ध म वे भारत क पक्ष मे कुछ कर सकें तो वह भी सम्भव हो जाय। वे क्रान्तिकारी थे अलीपुर बम काण्ड के नेता उल्हासकर दत्त के छोटे भाई सुखसागरदत्त और दूसरे थे नाभा के आर एम खान, तीसरे थे एम पी टी आचार्य। किन्तु उनको सफलता नही मिली, क्योकि दोनो ही पक्षो ने उनको अपने विपक्षी का गुप्तचर समझ कर अपने साथ लगने नहीं दिया।

सावरकर इसस हताश और निराश नही हुए। वे अधिकाधिक शस्त्रास्त्र जुटाने की योजना बनाने लगे। अपनी विभिन्न गतिविधियो से जो समय उन्ह मिलता उसको वे अपनी प्रयोगशाला मे बिताया करत थे। यह प्रयोगशाला इण्डिया हाउस के पीछे बनाई गई थी। व वहाँ जाकर चुपचाप बम बनान का अभ्यास किया करते थे। कभी-कभी तो वे अभिनव भारत की बैठको मे भी बहुत थोड़े समय के लिए आ पाते थ। इस प्रकार वे भारत की मुक्ति के लिए युद्ध की तैयारी मे जुटे रहते थे। इस युद्ध के लिए व स्वदेशी की शिक्षा अंग्रेजो एव अंग्रेजियत का बहिष्कार राष्ट्रीय शिक्षा, क्रान्तिकारी भावना, शस्त्रास्त्रो का खरीदना, छोटी छोटी बम फैक्टरियाँ खोलना, विदेशो स शस्त्रास्त्र खरीद कर उन्ह भारत भेजना, जहाँ और जब भी सम्भव हो गुरिल्ला युद्ध नीति को ग्रहण करना, क्रान्ति के लिए उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करना तथा जनसाधारण क साथ-साथ सेना मे देशभक्ति और राजनीति क भावों का भरना परम आवश्यक मानत थ।

बम्ब मैनुअल

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए अभिनव भारत सोसाइटी के सदस्य दिन रात विभिन्न कार्यों में व्यस्त रहने लगे। सावरकर ने अपने दो साथी सेनापति बापट और हेमचन्द्रदास को परिस में रूसी क्रांतिकारियों से बम बनाने की विधि सीखने के लिए भेजा। संयोग से उन्हें वहां एक रूसी प्राध्यापक मिल गया जिसने उनको यह विद्या सिखाई और सावरकर की प्रतिमा के सम्मुख नतमस्तक उस व्यक्ति को अपने पास विद्यमान रूसी भाषा का बम मनुअल ही उनको दे दिया। किन्तु कठिनाई यह थी कि ये दोनों ही नवयुवक रूसी भाषा नहीं जानते थे। हेमचन्द्रदास ने उस मैनुअल की फोटो प्रति तैयार की और बापट उसको बर्लिन में ले गया और वहां आयुर्विज्ञान की छात्रा कुमारी आया से उसका अंग्रेजी अनुवाद करवाया।

दोनों युवक बम मैनुअल लेकर लन्दन आए और उसकी अधिकाधिक प्रतियां तैयार होने लगी। इन दोनों के साथ तीसरे होतीलाल वर्मा भी सम्मिलित हो गये और जितनी भी अधिक से अधिक प्रतियां तैयार हो सकती थी उन्हें तैयार कर भारत भेजने का प्रबन्ध कर लिया गया। स्थान-स्थान पर स्थापित अभिनव भारत की शाखाओं में यह मैनुअल पहुँचाया गया और इसकी एक प्रति लोकमान्य तिलक को भी दी गई।

शस्त्रास्त्र विद्या का अभ्यास तथा उनको खरीदने के साथ साथ सावरकर का लिखना भी निरन्तर जारी था। १८५७ क्रांति की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर उन्होंने 'ओ बलिदानियो' शीर्षक से पत्रक लिखा। उस पत्रक में जिस भाषा में देशभक्तों से अपील की गई थी उसका प्रभाव न केवल जन साधारण में अपितु सैनिकों में भी हुआ था। योजनानुसार सिख, जाट व डोगरा सैनिक परिवारों के पते संग्रह करके उन पतों पर पत्रक भेजे जाने लगे। ये पत्रक अंग्रेजी में होते थे, किन्तु सैनिक इसको गुरुमुखी और हिन्दी में अनुवाद करके अपने साथियों को तथा परिवार वालों को पढ़ाया करते थे। किन्तु शीघ्र ही भारत सरकार को इसका ज्ञान हो गया और उसने घोषित कर दिया कि 'इन पत्रकों को रखना और पढ़ना सैनिक अपराध है।' सावरकर ने यही उचित समझा कि अब इस प्रकार डाक से वे पत्रक न भेजे जायं किन्तु सरदार अजीतसिंह आदि क्रांतिकारियों ने उनकी लाखों प्रतियां बनाकर उनको गुप्त रूप से भारत भर में वितरित किया।

सेनापति बापट, होतीलाल वर्मा और हेमचन्द्रदास मार्च १९०८ में भारत पहुंचे और उन्होंने बम मैनुअल की प्रतियां अपने विश्वस्त जनों में बांटीं। इस प्रसंग में बापट की बंगाल के प्रसिद्ध क्रांतिकारी बारीन्द्र घोष, प्रफुल्ल चक्रवर्ती और नरेन्द्र गोसाईं से ७ अप्रैल को भेंट हुई। तब माणिकतल्ला के मुरारीपुकुर उद्यान भवन में बम बनाने का कार्य आरम्भ हुआ। बम मैनुअल के आधार पर निर्माण किया गया बम बड़ा प्रभावी सिद्ध हुआ था और तब फिर उस वर्ष की महानतम स्मरणीय घटना घटित हुई जब ३० अप्रैल को मुजफ्फरपुर के चीफ प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट किंग्सफोर्ड पर खुदीराम बोस ने यह बम फेंका था। किन्तु दुर्भाग्य से किंग्सफोर्ड तो बच गया और दो महिलायें परलोक सिधार गईं। बोस का निशाना चूककर दूसरी गाड़ी पर जा लगा था।

भारत मे धरपकड

इस बम काण्ड से तो सारे देश म हाहाकार मच गया। भारतीय देशभक्तो की धर-पकड आरम्भ हो गई। जिनमे बगाल और महाराष्ट्र क प्रभावी सम्पादक, महान नेता तथा साहसी युवको की सख्या अधिक थी। प्रफुल्ल चक्रवर्ती को जब लगा कि अब उसका पकडा जाना निश्चित है तो उसने स्वय अपनी रिवाल्वर स अपना अन्त कर लिया, किन्तु खुदीराम और उसके दो साथी २ मई को पकड म आ ही गये। खुदीराम बोस ने उस घटना का सारा उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। नरेन्द्र गोसाइ दुबल हृदय निकला और जब पकडा गया तो उसने सारे भेद खोल दिए। परिणामस्वरूप कन्हाईलाल दत्त और सत्येन्द्र बोस ने किसी प्रकार अलीपुर जेल म जाकर उसको गोली मार कर पार लगा दिया। बाद म वे भी पकड लिए गये। इस प्रकार माणिकतल्ला अभियोग की उन दिनों बहुत चर्चा रही और ११ अगस्त को खुदीराम बोस भगवदगीता की प्रति हाथ म लेकर फासी क तख्त पर चढे तो नवम्बर म कन्हाईलाल दत्त और सत्येन्द्र बोस को भी फासी पर लटका दिया गया।

सरकार की ओर स धर पकड का सिलसिला जारी रहा। उल्हासकरदत्त, हेमचन्द्रदास इन्दुभूषण राय, उपेन्द्रनाथ बनर्जी तथा बाबू अरविन्द घोष के छोटे भाई बारीन्द्रनाथ घोष तथा अन्य अनेक लोगो को बन्दी बनाया गया था। यह अभियोग कलकत्ता उच्च न्यायालय मे चल रहा था। एक दिन भरी अदालत मे सरकारी वकील और पुलिस उपाध्यक्ष को वही ढेर कर दिया गया। इससे तो भारत का वायसराय लार्ड मिन्टो बौखला उठा और उसने भारत सचिव लार्ड मोरले को और अधिक कडे कानून बनाने का परामर्श दिया। ८ जून को विस्फोटक पदार्थ और समाचार पत्रो के विरुद्ध दो कडे नियम पारित करवा ही दिए।

इन नियमो के अन्तगत जिन अनेकानेक जनों को बन्दी बनाया गया उनमे प्रमुख थे—युगान्तर के सम्पादक भूपेन्द्रनाथ दत्त, जो स्वामी विवेकानन्द के भाई थे, वन्दे मातरम के सम्पादक अरविन्द घोष, यवतमाल के हरिकिशोर के सम्पादक पथिवोगीर हरिगोर, बम्बई के बिहारी के सम्पादक भास्कर विष्णु फडके, पूना के काल के सम्पादक शिवराम पन्त पराजपे और केसरी के सम्पादक लोकमान्य तिलक। इन सबको बन्दी बनाकर एक या दो दो वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। मुजफ्फरपुर बम काण्ड पर आपत्तिजनक लेख लिखने के लिए शिवराम पन्त को १९ मास का कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। और इसी प्रकार के अन्य अपराध क लिए लोकमान्य तिलक को ६ वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड देकर ६ वर्ष के लिए माण्डले कारावास म भेज दिया गया।

तिलक के निष्कासन के समाचार ने देश तथा विदेश म भारी तहलका मचाया। बम्बई के श्रमिको न तत्काल हडताल करके जलूस निकाला। पुलिस भीड पर काबू नही पा सकी तो उसने उस पर गोली चला दी। देश विदेश के समाचार पत्रो म इस घटना की निन्दा के समाचार प्रकाशित होने लगे। यहाँ तक कि रूस के लेनिन ने अपने पत्र प्रोलेतरी म इसके विरोध मे लिखा। लन्दन मे इस घटना की मिश्रित प्रतिक्रिया हुई।

उधर सरकार ने तो यह समय ही लिया था कि ५१ वर्ष के तिलक अब माण्डले जेल मे क्या वापस आयेंगे।

सरकार को इतने म ही सन्तोष नहीं हुआ। उसने उन-उन पत्रों के नए सम्पादको को भी बन्दी बना लिया जिनके सम्पादक मुजफ्फरपुर काण्ड के बाद पकडे गए थे। उनम प्रमुख थे—बिहारी के आर एम माण्डलिक, थाना के सण्डे के घोडापत फडने, स्वराज्य शोलापुर के बलवन्तराय लिमय सदश नागपुर क अच्युत बनवत कोल्हाटकर तथा हरिकिशोर के एन बी भाव। इन सब पर भी मुख्य आरोप यही था कि ये सावरकर के अभिनव भारत म सम्बन्धित है और उन्होने अग्रेज सरकार के एक गुप्त समाचार को अपने पत्रो म प्रकाशित कर दिया था।

अलीपुर काण्ड के मुखबिर न सरकार के सम्मुख यह रहस्योद्घाटन किया कि बम मैनुअल को भारत लाने वाले सेनापति बापट लन्दन स ही सावरकर के अभिन्न मित्र है और उनके बगाल क क्रान्तिकारियो म भी सम्बन्ध है। उनके आधार पर ही भारत मे सावरकर स सम्बन्धित सभी व्यक्तियो और समाचार पत्रो के सम्पादको को बन्दी बना लिया गया।

गोखले की राज-भक्ति

जिस समय तिलक का निष्कासन किया गया था, गोखले उस समय अपने राजनैतिक काय से लन्दन म ही थे। मारले मिन्टो सुधार की चर्चा थी। इसी प्रकरण म वे लन्दन गए हुए थे। तिलक के निष्कासन और सरकार द्वारा दिए गए कठोर दण्ड तथा उसी समय पारित किए गए नये कानूनो के विरोध म लन्दन के भारतवासियो ने एक विरोध सभा का आयोजन किया तो उसकी अध्यक्षता के लिए गोखले से आग्रह किया गया।

भारत की वतमान और भावी पीढी को यह जानकर आश्चर्य होगा कि गाधी के इस राजनैतिक गुरु ने न केवल उसकी अध्यक्षता अस्वीकार की अपितु वह उसमे सम्मिलित भी नही हुआ। गोखले के इस कृत्य स मोरल पर जो प्रभाव पडा उसने मिन्टो को एक पत्र लिखते हुए कहा कि 'यह बच्चो की तरह रोने वाला प्राणी किस प्रकार नेता बन सकता है ?' उसी पत्र म उसने तिलक के विषय मे लिखा कि उसका काय सराहनीय था। तब मिन्टो न उत्तर मे लिखा था कि तिलक तो विद्रोह का जन्म जात नेता था।

गोखले की इस कायरता स खिन्न होकर लन्दन के कुछ क्रान्तिकारियो ने गोखले के जीवन का वही अन्त कर देने का निश्चय किया था। किन्तु सावरकर न उन्हे इस पाप कृत्य से रोक दिया। तिलक के निष्कासन के विरोध म आयोजित सभा कक्सटन हॉल म की गई, जिसकी अध्यक्षता श्री पारमा नन्द की और उसम गोखले के विशेष नामोल्लेख के साथ उसके व्यवहार की निन्दा की गई। इसी प्रसग म यह बात भी उल्लेखनीय है कि जब गोखले लन्दन मे थे तो सावरकर उनसे मिले और उनको बताना चाहा कि वे राष्ट्रीय दृष्टिकोण से १८५७ का स्वातन्त्र्य युद्ध लिखना चाहते हैं तो गोखले ने उसको राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य युद्ध मानने से ही इनकार कर दिया। किन्तु वहीं पर उपस्थित दो अन्य इतिहा-

सकार सवश्री रमेशचन्द्र दत्त और काशीप्रसाद जायसवाल ने सावरकर के हक को उचित मानकर उस राष्ट्रीय आन्दोलन स्वीकार किया।

गोखले की कायरता तथा अंग्रेज भक्ति का एक उदाहरण हम आगे के पृष्ठों में मदनलाल ढींगरा प्रकरण में भी देखेंगे।

भारतीय नेता लन्दन में

सन १९०८ के अंतिम तीन महीने की इंडिया सोसाइटी के लिए बड़ी महत्त्वपूर्ण थे रहे। भारत के अन्य प्रसिद्ध नेता किसी न किसी कारण से उस अवधि में लन्दन पहुंचते रहे। उनमें से उल्लेखनीय हैं—लाला लाजपतराय, गोकुलचन्द नारंग, बाबू विपिनचन्द्रपाल, गोखले, रमेशचन्द्र दत्त, गणेश खापर्डे और आर बी करन्दीकर। सवश्री गणेश खापर्डे और करन्दीकर तिलक के अनन्य सहयोगी होने के नाते उनके निष्कासन के विरुद्ध प्रिवी कौंसिल में अपील करने के लिए आए थे। कुछ ही समय बाद चिदम्बरम पिल्लै के वकील भी इसी प्रसंग में लन्दन पहुंच गए थे।

ये सब लोग इंडिया हाउस में आकर सावरकर से मिले। लाला लाजपतराय कुछ समय पूर्व ही बर्मा कारागार से मुक्त होकर वहां पहुंचे थे। लाला हरदयाल भी सितम्बर में यद्यपि भारत आए थे किन्तु अक्टूबर में वे पुनः लन्दन लौट गए थे। इस अवधि में कुछ ऐसे अवांछित व्यक्ति भी लन्दन पहुंचे थे जो कालान्तर में इंडिया हाउस के लिए अनिष्टकारी सिद्ध हुए। उनमें से रंगून का आयाराम और ग्वालियर का हरिश्चन्द्र कोरेगावकर दो प्रमुख थे।

इन तीन महीनों में अनेक समारोह लन्दन में हुए जिनमें से अक्टूबर समारोह का उल्लेख हम पूर्व पृष्ठों पर कर आए हैं। 'बंग भंग' के विरोध में भी अक्टूबर में ही एक सभा आयोजित की गई, जिसकी अध्यक्षता लाला लाजपतराय ने की थी। विपिनचन्द्र पाल, खापर्डे, डा० कुमारस्वामी और करन्दीकर इसमें प्रमुख वक्ता थे। बाद में उसी दिन और उसी हाल में एक अन्य सभा भी हुई। यह सभा थी मंचरजी भावनगरी की अध्यक्षता में दक्षिण अफ्रीका में दलित भारतीयों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करने के लिए की गई थी। इस सभा के मुख्य वक्ता सावरकर ही थे।

२० दिसम्बर को कैक्सटन हॉल में इंडिया हाउस के तत्वावधान में इंडियन नेशनल कान्फ्रेंस का आयोजन किया गया जिसकी अध्यक्षता दादा साहेब खापर्डे ने की। पेरिस से मादाम कामा और लाला हरदयाल भी इसमें भाग लेने के लिए आए थे। मादाम कामा ने 'बहिष्कार' का प्रस्ताव रखा तो ज्ञानचन्द्र वर्मा ने उसका अनुमोदन किया। डा० कुमारस्वामी ने 'पूर्ण स्वराज' का प्रस्ताव रखा जिसका अनुमोदन सावरकर ने किया। इस अवसर पर सावरकर ने कहा था—'इस प्रस्ताव की सहमति में अपना मत व्यक्त करने से पूर्व आप लोग अपनी दृष्टि के सम्मुख भयंकर कारागारों की दीवारों की सील और कोठरियों के दृश्य भी स्पष्ट कर लीजिए।' फिर भी प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकार कर लिया गया।

उसी कक्सटन हॉल म २९ दिसम्बर १९०८ को गुरु गोविन्दसिंह के जन्मदिवस पर आयोजित सभा की अध्यक्षता बाबू विपिनचन्द्र पाल ने की। सावरकर द्वारा रचित 'अमर देश' शीर्षक गीत से सभा आरम्भ हुई। गोकुलचन्द्र नारंग ने अपना निबन्ध पाठ किया और लाला लाजपतराय ने भाषण दिया। जब उपस्थित जन समुदाय न सावरकर को बोलने के लिए विवश किया तो सावरकर ने उस अवसर पर जो ओजस्वी भाषण दिया श्रोताओं पर उसका जादू का सा प्रभाव हुआ।

लन्दन के इंडिया हाउस के संचालक सावरकर के विषय म लन्दन के विभिन्न समाचार पत्र अनेक आलोचनात्मक लेख लिखा करते थे। ये सम्पादक अथवा सम्वाददाता भी यही समझते थे कि सावरकर न जाने कैसा डील डौल वाला भारी भरकम व्यक्ति होगा। किन्तु समाचार पत्रो के इन प्रतिनिधियो ने जब सावरकर को साधारण शरीरवाला दाढी मूछ रहित २५ वर्ष के युवक के रूप मे पाया तो उनको बडा आश्चर्य हुआ। उसके बाद उन्होंने उनकी प्रशंसा म भी कुछ वाक्य लिखे।

अंग्रेज सरकार ने इंडिया हाउस मे अपने गुप्तचर नियुक्त करने के लिए भारतीयो को ही पथभ्रष्ट किया किन्तु सावरकर की दृष्टि से उनके गुप्तचर बच नही पाए। कीर्तिकर नाम का यह व्यक्ति दन्त चिकित्सा पढने के बहाने लन्दन बुलाया गया और इंडिया हाउस मे रखा गया। किन्तु सावरकर द्वारा उस पर नियुक्त गुप्तचरो ने शीघ्र ही उसे पकड लिया, इस प्रकार सरकार की योजना विफल हुई।

कीर्तिकर की घटना ने इंडिया हाउस निवासियो को चौकन्ना कर दिया था। एम पी तिरुमलाचारी नामक एक मद्रासी युवक इंडिया हाउस मे ठहरा और उसने इच्छा व्यक्त की कि वह भी वहा रह कर देश के लिए कुछ करना चाहता है। इस अनायास उपलब्ध देशभक्त को सहज ही पचा पाना स्वाभाविक नही था। अत उस पर दृष्टि रखी गई। किन्तु जब उसको पकडने का अवसर आया तो वह वास्तव मे देशभक्त ही सिद्ध हुआ। कालान्तर मे इसको सब एम पी टी नाम से ही जानने लगे।

उसकी प्रतिभा स प्रभावित होकर सावरकर न उसको गुप्तचरी पर नियुक्त कर दिया। उसे लन्दन की पुलिस के मुख्यालय स्काटलैंड यार्ड म भेजा गया। एम पी टी अपनी चातुरी म वहाँ प्रवेश पा गया और उसने इंडिया हाउस की खूब बुराइयाँ करनी आरम्भ की। उसने कहा कि उसको वहाँ ५ पौंड की नौकरी मिली है जिसमे वह प्रात स सायकाल तक वहा के सारे काम करता है। यदि उसे १० पौंड मिल जाय तो वह इंडिया हाउस की सारी खबरें यहाँ लाकर दे सकता है। उसी अवसर पर उसने कुछ नमूने की सूचनायें दी तो पुलिस अधिकारियो को उस पर विश्वास हो गया। उसको स्काटलैंड यार्ड म नियुक्त कर लिया गया और वह प्रतिदिन स्काटलैंड यार्ड जाकर आलतू फालतू सूचनायें वहाँ देने लगा।

राइफल क्लब

नाम म सदस्यता ग्रहण कर वहाँ शूटिंग आदि सीखना आरम्भ किया किन्तु ज्यों ही क्लब वाला को उनकी वास्तविकता का ज्ञान हुआ तो उनकी सदस्यता समाप्त कर दी गई। डा० राजन न एक पौलिटक्निक मे फोटोग्राफी के साथ साथ निशानबाजी की कक्षा म भी प्रवेश लिया, यह शिक्षा वे काफी समय तक लेत रहे।

सावरकर भारत के अपने साथियो को शस्त्रास्त्र से सज्जित करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने अनेक बहानो स अर्थात् पुस्तको के नाम पर पिस्तौलो के पासल भारत भेजे थ। लन्दन म आने जाने वालो के साथ भी व कुछ शस्त्र भेज दिया करते थे। सिकन्दर हयातखाँ, जो बाद मे 'सर' की उपाधि से विभूषित हुआ था तथा मिर्जा अब्बास क साथ भी उन्होंने कुछ पिस्तौलें भेजी थी।

सावरकर ने पेरिस स स्वचालित ब्राउनिंग पिस्तौलें तथा एक हजार कारतूस मगाए और उन्हे एक पेटी की तली म बन्द करके इडिया हाउस के रसोइये चतुर्भुज अमीन के द्वारा भारत भेजा। चतुर्भुज अमीन १५ फरवरी को लन्दन स रवाना हुआ और ७ मार्च को सुरक्षित बम्बई पहुँच गया। मार्ग म उसने किसको किस भाँति चकमा दिया, यह दूसरी कहानी है। किन्तु बम्बई मे सब कुछ चौपट हो गया। अमीन को कहा गया था कि वह उस सन्दूक को महाराष्ट्र म अभिनव भारत के अध्यक्ष हरि अनन्त थट्टे को द दे। थट्टे उसको मिला नही तो उसन वह सन्दूक सावरकर के बम्बई के एक सहयोगी विष्णु महादव भट्ट को देना चाहा किन्तु विष्णु महादेव भट्ट पर पुलिस की बडी कडी दृष्टि थी, अत यह भी सम्भव नही हो पाया। तब विवश होकर चतुर्भुज अमीन न वह सन्दूक एक अन्य परिचित गोपालराव पाटणकर को दे दिया। सावरकर के सहयोगियो को इसका पता नही चला और वहा स वे पिस्तौलें गलत लोगो के हाथो मे चली गई इसलिए उनका जो उपयोग होना चाहिए था, वह नही हो पाया। बहती गगा म चतुभुज ने भी हाथ धोते हुए एक बढिया सी पिस्तौल अपने लिए रख ली। सावरकर को उन पिस्तौलो के सुरक्षित बम्बई पहुँचने और उचित हाथो म दिये जाने का समाचार भी नही पहुँचा।

जो समाचार लन्दन म सावरकर को उन दिनो मिले वे बडे दुखदाई थे। उनकी एकमात्र सन्तान उनका ८ वर्षीय पुत्र प्रभाकर चेचक से चल बसा और पितृ तुल्य बडे भाई बाबाराव सावरकर को राजसत्ता के विरुद्ध भडकाने वाला साहित्य लिखने के आरोप मे २८ फरवरी को बन्दी बना लिया गया। २ मार्च को पुलिस न बाबाराव के नासिक के घर मे छापा मारा और उसमे जो वस्तुयें मिली उनमें पचास पन्नो की एक अंग्रेजी की टाइप की हुई बम मेनुअल की प्रति भी थी। यह समाचार भारत मे फैला तो सारे देश म आक्रोश की लहर दौड गई। उधर लन्दन म जब यह समाचार फैला तो उसने वहाँ आग मे घी का काम किया। सावरकर ने तुरन्त अपने साथियो की एक सभा आयोजित की और उसम प्रत्येक सदस्य ने केवल क्रोध नही 'प्रतिशोध' की शपथ ली।

फिर भविष्य की व्यूह रचना की गई।

लेनिन से भेंट

अग्रेज पिता और आयरिश माता का पुत्र गाँय अल्ड्रेड श्यामजी कृष्ण वर्मा के पत्र 'इडियन सोशियोलोजिस्ट' का मुद्रक होने के नाते सावरकर का भी मित्र था। वह भी इडिया हाउस की गतिविधियो मे बढचढ कर भाग लेता था। उसका अन्यान्य अनेक देशो के क्रातिकारियो से भी सम्बन्ध था। अवसर मिलने पर वह लन्दन मे आने वाले इन क्रातिकारियो को इडिया हाउस मे लाता और सावरकर से उनका परिचय कराता। उन्ही व्यक्तियों मे नवरूस का निर्माता लेनिन भी था जिसे गाँय ने सावरकर से मिलवाया था। उसके बाद भी उनकी अनेक भेंटें हुई जिनमे से कई तो घटो तक चली। सावरकर ने लेनिन से अपनी इन भेंटो का उल्लेख १६३७ मे रत्नागिरि से मुक्त होने के बाद ही किया उससे पूव नहीं। उनका कहना था कि इनको गुप्त रखने के अनेक राष्ट्रीय और अतर्राष्ट्रीय कारण थे।

सावरकर ने 'ग्रेज इन' से कानून की उपाधि प्राप्त की थी। किन्तु सावरकर की राज विरोधी गतिविधिया से रुष्ट होकर उनकी कानून की उपाधि छीन ली गई। उन्हे इस शत पर उपाधि देना स्वीकार किया कि सावरकर भविष्य मे किसी भी प्रकार की राजनीतिक गतिविधि म भाग नही लेंगे। सावरकर ने इस आज्ञा के विरुद्ध अपील की तो इसकी गूज पालियामेंट तक पहुँची। उधर ६ जून को अग्रेज सरकार ने बाबाराव सावरकर को आजीवन कारावास का दण्ड घोषित कर दिया।

सावरकर को इसकी सूचना दी गई तो उनको बहुत क्रोध आया और उन्होने २० जून को इडिया हाउस मे रविवार को होने वाले सत्सग के अवसर पर ऐसा भाषण किया मानो ज्वालामुखी फूट पडा हो। उसी अवसर पर उन्होंने अपनी पुस्तक 'स्वातन्त्र्य समर' के कुछ अश भी पढकर सुनाए। वहाँ उपस्थित श्रोताओ मे भी उसी प्रकार क्रोध की ज्वाला फूटने लगी थी।

धींगरा से सम्पर्क

इन्ही दिनो मदनलाल धीगरा नामक एक पजाबी युवक सावरकर के सम्पर्क मे आया तो उसने सावरकर से निवेदन किया कि वह कुछ कर गुजरने के लिए तडफ रहा है। सावरकर उसे जो भी काय सौंपेंगे उसे वह निष्ठा से सम्पन्न करेगा। सावरकर को यह जानकर प्रसन्नता हुई फिर भी उन्होने अनेक प्रकार से उस युवक की परीक्षा ली और जब उन्हे विश्वास हो गया कि धीगरा वास्तव मे कुछ कर गुजरने वाला है तो फिर उन्होने उसको एक महत्तर काय का दायित्व सौंप दिया।

धीगरा उन दिनो एक ऐसे विनोदी क्लब का सदस्य बन गया था जिसमे उच्च स्तर के अग्रेज ही अधिक सख्या मे होते थे। उसने उन सदस्यो का विश्वास भी अर्जित कर लिया। वही उसने शूटिंग का प्रशिक्षण प्राप्त किया और वह लोड मोरले, लोर्ड कजन और सर कजन वायली के निकट सम्पर्क मे भी वही आया। धीगरा की लोर्ड कजन घूमने लगा। बगाल मे जो कहर उसने ढाया था, मदनलाल

उसका चित्र खिंच गया और उसने उसको अपना निशाना बनाने का निश्चय कर ही लिया। एक बार जब उसको पता चला कि अमुक स्थान पर लॉड कर्जन एक सभा में बैठा है तो वह वहाँ जा पहुँचा किन्तु तब तक हॉल के द्वार बन्द हो गए थे। ढींगरा ने वापस आकर सावरकर से कहा, 'शेर बच निकला।'

ब्रिटिश सरकार ने भारत में जो अंधेरगर्दी मचाई थी मदनलाल उसका बदला लेने के लिए कृत संकल्प था। उसने लॉड कर्जन के समान ही उत्तरदायी विलियम कर्जन वाइली को समाप्त करने का निश्चय कर लिया। ३० जून को ढींगरा सावरकर के पास उनके निवास स्थान सिकलियर रोड स्थित विपिनचन्द्र पाल के घर पर गया। सावरकर ३ अप्रैल १९०९ से उसी स्थान पर रहने लगे थे। सावरकर और मदनलाल ढींगरा में बहुत बातें हुई। फिर निरंजनपाल और सावरकर उसको छोड़ने के लिए रेलवे स्टेशन तक आए और वहाँ उसको गुप्त रूप से एक चमकती हुई रिवाल्वर दी और विदा होते हुए कहा, 'यदि इस बार असफल रहे तो फिर मुझे अपना मुख मत दिखाना।

वायली का वध

अगले दिन १ जुलाई १९०९ को इंपीरियल इंस्टीट्यूट के जहाँगीर हाल में दादा भाई नौरोजी की संस्था नेशनल इंडियन एसोशियेशन का वार्षिकोत्सव आयोजित किया गया था। २०० आमंत्रित जनों में भारतीय मित्रों के अतिरिक्त उनके अनेक अंग्रेज मित्र और परिचित भी इस समारोह में आमंत्रित थे। मनोरंजक कार्यक्रम से पूर्व निकट के ही सेवाय होटल में रात्रि भोज की व्यवस्था थी। सावरकर यद्यपि इस सभा में आमंत्रित थे किन्तु वे उस दिन लन्दन से बाहर चले गए थे। तदपि उनके दो विश्वस्त ज्ञानचन्द वर्मा और कोरगावकर ढींगरा का उत्साह बढ़ाने के लिए वहाँ विद्यमान थे।

सभा के मुख्य अतिथि कर्जन वायली अपनी पत्नी के साथ सीढ़ियाँ उतर रहे थे कि तभी उनकी पत्नी किसी काम से वापस हाल की ओर चली गई। वायली ने ज्योंही अगली सीढ़ी पर पैर रखा कि उस पर दनादन पाँच गोलियाँ चल गई। तभी उनके साथ चल रहे एक पारसी सज्जन डा० कावस ललकाका ने वायली को बचाना चाहा तो उस पर भी गोली चल गई और वह भी वायली के साथ वहीं ढेर हो गया।

यह गोली चलाने वाला कोई अन्य नहीं मदनलाल ढींगरा था। छठी गोली कदाचित उसने अपने लिए बचाकर रखी थी किन्तु ललकाका ने बाधा उपस्थित कर दी तो उसको वह गोली उसके लिए व्यय करनी पड़ गई। ढींगरा को तत्काल बन्दी बना लिया गया। उसके पास दो पिस्तौल एक चाकू और एक छुरा पाए गए। ढींगरा को ब्रिक्स्टन कारागार में रखा गया और उसके विरुद्ध अभियोग चलने लगा।

दूसरे दिन प्रातःकाल के इंग्लैंड के समाचार पत्र ही नहीं विश्व भर के समाचार पत्र वायली की हत्या के सनसनीखेज समाचारों से भरे पड़े थे। सबने अपने अपने प्रकार से घटना का वर्णन किया। भारत में भी इसकी बड़ी जबरदस्त प्रतिक्रिया हुई। अग्रज भारतीयों ने उच्च स्वर से इस कृत्य की निन्दा की। ढींगरा के पिता ने लॉड मोरले

को तार भेज कर कहा कि 'मदनलाल को अपना बेटा कहते हुए उन्हें लज्जा आती है।' उसके लन्दन स्थित भाई ने सार्वजनिक रूप से उसे भाई मानने से इन्कार कर दिया। ३ जुलाई को सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की अध्यक्षता में अंग्रेज भक्त भारतीयों द्वारा वायली के निधन पर आयोजित शोक सभा में मदनलाल के इस 'कुकृत्य' की निन्दा की गई।

अंग्रेज भक्त कायर भारतीयों की आत्मा को इतने से शान्ति और तृप्ति कहाँ? उन्होंने ढींगरा की निन्दा करने के लिए कैक्सटन हॉल में एक सभा का आयोजन किया। इसमें सर मनचेरजी भावनगरी, सर आगा खाँ, सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, विपिनचन्द्र पाल, खापर्डे, कूच बिहार के महाराजकुमार सर दिनशा पटिट तथा फजलभाई करीमभाई आदि अनेक व्यक्ति विद्यमान थे। इस सभा में भारतीयों के अतिरिक्त अनेकानेक अंग्रेज और ऐंग्लो इंडियन भी उपस्थित थे। लन्दन के कुछ समाचार पत्रों के अनुसार, उस सभा में उपस्थित पारसी स्त्रियाँ इस सभा के लिए विशेष प्रकार से सज धज कर आई थीं। अध्यक्ष सर आगा खाँ, सर भावनगरी, सर बनर्जी, बी सी पाल और खापर्डे आदि सभी वक्ताओं ने अपने भाषणों में ढींगरा के कृत्य को अक्षम्य, अमानवीय, असभ्य आदि जिससे जो बन पड़ा वह सब कहा।

इतने पर ही बात समाप्त नहीं हुई। थियोडोर मॉरिसन नाम का एक व्यक्ति मदनलाल के छोटे भाई को खींचता हुआ मंच पर लाया और उससे कहा कि वह भी इस सभा में अपनी घृणा व्यक्त करे। उसने क्या कहा और क्या नहीं कहा, शोर-शराबे में वह किसी ने कुछ नहीं सुना। उसके पिता पहले ही लॉर्ड मोरले को तार द्वारा अपनी कायर भावना व्यक्त कर ही चुके थे।

निर्भीकता की गूंज

भाषण समाप्त होने पर सभा के अध्यक्ष सर आगा खाँ ने उठकर कहा—'यह सभा सर्वसम्मति से मदनलाल की निन्दा करती है।'

कुछ क्षणों के लिए तो सभा में सन्नाटा सा छाया रहा। उससे पहले कि कोई हाथ उठाता या अपने मुख से कुछ बोलता बीच में से एक स्वर सुनाई दिया, 'नहीं सर्व सम्मति से नहीं।'

सभा में उपस्थित सभी व्यक्ति हतप्रभ से रह गए। कौन है यह व्यक्ति? सबके मन में विचार उठा। अध्यक्ष ने क्रोध में पूछा, 'कौन है यह 'नहीं' कहने वाला व्यक्ति?' तभी उस व्यक्ति ने चिल्ला कर कहा 'मैं कहता हूँ नहीं।' अध्यक्ष ने कहा, 'आपका नाम?' तब तक कुछ लोगों में उत्साह सा आ गया था। कुछ कहने लगे, 'उसको नीचे उतारो उसको बाहर खदेड़ो।'

उसी समय सर मनचेरजी भावनगरी मंच पर से नीचे उतरे और उस ओर बढ़े जिधर से उनको 'नहीं' का स्वर सुनाई दिया था। तभी चेतावनी सी देती हुई सावरकर की गूंजती आवाज सुनाई दी, 'यह मैं हूँ, मेरा नाम सावरकर है।'

'सावरकर' नाम सुनते ही लोगों में एक प्रकार का भय सा समा गया। उनके

जोड़ ढीले पड़ने लगे। उनके मन में यह भय सा समा गया था कि कहीं क्रांतिकारी इस सभा में ही बम विस्फोट न कर दें और उन सबकी धज्जियां उड़ जायें। महिलाओं की चीख निकलने लगी। जो लोग यों ही तमाशा करने और देखने आये थे वे वहां से भागने लगे और जो अपने को बड़ा अंग्रेज भक्त समझते थे उनकी मुट्ठियां तनने लगीं। कुछ लोग डर के मारे कुर्सियों और बेंचों के नीचे छिपने लगे। तभी लोगों ने यह भी देखा कि सर भावनगरी के संकेत पर एडवर्ड पामर नाम का एक युरेशियन युवक सावरकर की ओर लपका और उसने तानकर एक मुक्का मारा जो उनकी आंख के समीप जाकर लगा। उससे सावरकर का चश्मा टूट गया, आंख पर चोट लगी और उनके चेहरे से रक्त बहने लगा।

सावरकर इससे घबराये नहीं। वे उठकर अपनी कुर्सी पर खड़े हो गए और बड़े उच्च स्वर में उन्होंने पुनः घोषणा की, 'यह सब कुछ होने पर भी, मैं अब भी यही कहता हूं कि मैं इस प्रस्ताव के विरुद्ध हूं। जब तक रक्त की एक बूंद भी मेरे शरीर में विद्यमान है, मैं अपनी इस बात को निरंतर दोहराता रहूंगा।'

सावरकर यह कह रहे थे कि उधर एम. पी. तिरुमलाचार्य, जो कि सावरकर के समीप ही खड़ा था, आगे बढ़ा और उसने पामर के गाल पर ऐसा जोर का झापड़ मारा कि वह औंधे मुंह जाकर गिर पड़ा। उधर अय्यर ने अपना पिस्तौल निकाल लिया और वह पामर पर गोली चलाने ही वाला था कि सावरकर ने उसको रोक दिया।

सभा में भगदड़ मच गई। वह प्रस्ताव न सर्वसम्मति से स्वीकार किया जा सका और न बहुमत से ही। सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी सावरकर पर किए गए कायरतापूर्ण प्रहार के लिए सभा को छोड़ कर चल दिए। आगा खां को भी मानचरजी का यह असभ्य व्यवहार पसन्द नहीं आया। और कोई चारा न देख मानचरजी ने पुलिस बुला ली। किन्तु पुलिस को भी उस सभा में कुछ ऐसा नहीं लगा कि वह किसी को पकड़ती। जब उसने देखा कि सत्य सावरकर के पक्ष में है तो उसने किसी प्रकार की दखलन्दाजी नहीं की और जैसी आई थी वैसी ही वापस चली गई। सावरकर ने पामर को भी जाने दिया। सभा समाप्त हुई।

सावरकर संकट में

सभी क्रांतिकारी जो उस समय लन्दन में विद्यमान थे, वे विपिनचन्द्र पाल के व्यवहार से खिन्न थे। उन्हें उन पर क्रोध आ रहा था। यहां तक कि एम. पी. टी. ने उसी दिन 'इंडियन सोशियोलॉजिस्ट' का पत्र में लिखा कि पाल की अतीत की सेवाओं के लिए वे उनके आभारी हैं किन्तु उनके ढींगरा को कायर और हत्यारा कहने के कारण वे उनका बहिष्कार करेंगे।

सावरकर रात्रि में अपने निवास स्थान पर गये। किन्तु उनकी वह रात बितानी बड़ी कठिन हो गई। चोट की पीड़ा से अधिक उनके मन की पीड़ा थी जो सहन नहीं हो रही थी। उन्होंने उसी समय कागज उठाया और लन्दन के 'टाइम्स' में प्रकाशनार्थ पत्र

लिखने बैठ गए। यह पत्र ७ जुलाई के अक मे प्रकाशित हुआ, जिसका सार सक्षेप था—

'अभियुक्त का अभियोग अभी विचाराधीन है और अनेक उच्चाधिकारी तो यह भी कहते सुने गए हैं कि सम्भवतया यह हत्या पागलपन अथवा निजी द्वेष के कारण की गई हो। इस अस्पष्ट अवस्था म उसके काय को राजनतिक करार दना अथवा उसका हत्या का दोषी स्वीकार कर लेना न्यायविधा के प्रति अन्याय है। भविष्य म यदि न्यायालय ने यह निणय दे दिया कि हत्या राजनीतिक दृष्टि से नही की गई थी तब क्या होगा? ऐसी स्थिति मे भारतीय जन स्वय ही न्याय निणय करने की त्वरा न करें। इसी आशय से मैंने अपना सशोधन प्रस्तुत किया था। मेरे सशोधन के उपरान्त भले ही वह प्रस्ताव सब सम्मति से स्वीकार कर लिया जाता। यदि यह सभा केवल श्रीमती वायली के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए आयोजित की गई होती तो मैं भी उनस सहानुभूति व्यक्त करने मे सबका साथ देता। किन्तु ऐसा न करते हुए केवल काल्पनिक भय के कारण भागते हुए लोगो ने मुझ पर अन्यायपूण आक्रमण किया है जो कि अमानवीय था।"

'टाइम्स' मे इस पत्र के प्रकाशित होन के उपरान्त अनेक ऐसे आलोचक थ जिन्होने अब इस विषय पर मौन रहना ही उचित समझा था, किन्तु पामर जैसा पामर फिर भी चुप नही रहा और उसने इसके उत्तर मे लिखा, 'मैं ही वह व्यक्ति हूँ जिसन सावरकर को असली ब्रिटिश घूसे का आनन्द दिलवाया था।' किन्तु पामर की गर्वोक्ति का उत्तर एम पी तिरुमलाचारी न इन शब्दो म दिया, 'और मै ही वह व्यक्ति हूँ जिसन इस ब्रिटिश घूसे का उत्तर उस भारतीय झापड से दिया था जिसने इन महाशय को धरती सुधा दी थी।' य उत्तर और प्रत्युत्तर दोनो ही 'टाइम्स' ने प्रकाशित किय थे।

ढींगरा पर न्याय का नाटक

तुरन्त ही अर्थात १० जुलाई को ढीगरा अभियोग की सुनवाई वस्टमिन्स्टर न्यायालय म आरम्भ हुई। न्यायाधीश थे होरेस स्मिथ। बचाव पक्ष के कुछ लोगो ने यत्न किया कि ढीगरा को पागल सिद्ध कर उसको क्षमा दिलवाई जाय। किन्तु ढीगरा इसके लिए तैयार नही था। उसने तो स्पष्ट रूप म कह दिया था कि ब्रिटिश न्यायाधिकरण उसको मृत्यु दण्ड द, जिससे कि उसक देशवासी और अधिक लगन और तीव्रता से स्वतन्त्रता के आन्दोलन को आग बढा सकें। पहले दिन ही उसने अपने वक्तव्य म कहा, "जिस प्रकार जमनो को यह अधिकार नही है कि वे इस देश पर अधिकार जमायें ठीक उसी प्रकार अग्रेजो को भी यह अधिकार नही है कि वे भारत पर अधिकार करें। और यह निश्चित ही हमारी ओर से न्यायोचित है कि जो लोग हमारी पवित्र भूमि का अपवित्र कर रहे है, हम उनको मारें। मैं स्वय को किसी भी प्रकार दोषी नही मानता क्योकि अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए किया गया कोई भी प्रयास अपराध नही हो सकता। मेरी यह इच्छा है कि न्यायालय मुझे मत्यु दण्ड दे जिससे कि मेरे क्रान्ति की भावना और भी दृढ हो सके।"

ढींगरा ने यह वक्तव्य मौखिक रूप स दिया था, क्योंकि उसके बन्दी बनाए जाने के समय उसके पास जो वक्तव्य था उसको पुलिस ने दबा दिया था और कह दिया कि उसके पास से किसी प्रकार का कोई वक्तव्य नही मिला। इसके बाद ढींगरा को सत्र न्यायालय के अधिकार मे दे दिया था। इधर भारत मे अंग्रेज भक्त एन सी केलकर तथा गोखले जैसे व्यक्तियो न सभायें आयोजित कर ढींगरा के काय की निन्दा की। गोखले न तो केवल ढींगरा के कृत्य की निन्दा करने मे ही अपने कर्तव्य को पूर्ण नहीं माना अपितु उसन इंडिया हाउस के अन्तगत कार्यरत सभी क्रान्तिकारियो की निन्दा का और कहा कि जब तक सावरकर को बन्दी नहीं बनाया जाता तब तक इस कृत्य को नहीं रोका जा सकता।

सत्र न्यायालय न भी इस काय मे अधिक समय नही गवाया। २० जुलाई तक सारी कायवाही समाप्त हो गई। निणय की घोषणा होने के उपरान्त २२ जुलाई को सावरकर ढींगरा स मिलने के लिए ब्रिक्स्टन जेल मे गए और उन्होने ढींगरा से कहा, 'मैं तुम्हारे दशन करने के लिए आया हूँ।' अपने प्रति कहे गए इन श्रद्धा के शब्दो को सुनकर ढींगरा का चहरा रक्तिम हो गया और उसकी आंखा से कृतज्ञता के आंसू प्रवाहित होने लगे। सत्र न्यायालय मे कुछ विशेष बात नही हुई और मदनलाल ने भी वहां पर अपन पिछल वक्तव्य को ही दोहराया था। हा पुलिस जो बातें निचल न्यायालय मे नही कह पाई थी उसन इस न्यायालय म कही और न्यायालय ने उसको मृत्युदण्ड देकर अभियोग को समाप्त कर दिया।

न्यायालय का निणय सुनकर मदनलाल के मुख से सहसा निकला, "मुझे गव है कि मेरा यह तुच्छ जीवन अपने देश हित काम आया।" अपनी अन्तिम इच्छा म मदनलाल ढींगरा ने चाहा कि प्राणदण्ड दिए जाने से पूव उसको दपण मिल जाए जिससे वह देख सके कि मत्यु की ओर जाते हुए उसके चहरे पर कही कोई शिकन नही है। वह चाहता था कि उसका अन्तिम सस्कार हिन्दू रीति से सम्पन्न हा और कोई अहिन्दू उसकी मतदेह का स्पश न कर सके। उसके वस्त्र तथा अन्यान्य वस्तुएं बेच दी जाए उनस प्राप्त धन को राष्ट्रहित के काय म लगाया जाए।

मदनलाल के दो भाई उस समय लन्दन मे रहत थे। उन्होने जब उससे मिलने के लिए प्राथना पत्र दिया तो मदनलाल ने यह कहकर उनस मिलना अस्वीकार कर दिया कि वे 'दशद्रोही' और अंग्रेजो के 'चाटुकार' हैं।

इधर सावरकर का एक और ही चिन्ता सता रही थी। जब से उनको विदित हुआ था कि बन्दी बनाए जान तक मदनलाल की जेब म उसका वक्तव्य था किन्तु बाद मे पुलिस ने उसको दबा दिया था तबसे ही वे उस वक्तव्य को अथवा उसकी किसी प्रति को प्राप्त कर मदनलाल को फाँसी पर लटकाए जाने से पूव प्रकाशित करा सकें। वे चाहते थे कि उस वक्तव्य को जनता के समक्ष प्रस्तुत किया जाए। सावरकर का प्रयत्न सफल हुआ और किसी प्रकार १५ अगस्त को उनको उसकी प्रति प्राप्त हो ही गई। उसे लेकर ... ।८ मित्र गार्नेट के पास गए और गार्नेट उनको 'डेली न्यूज' के उपसम्पादक

राबर्ट लिण्ड के पास ले गए और सौभाग्य से दूसरे दिन के समाचार पत्र में वह वक्तव्य प्रथम पृष्ठ पर प्रकाशित हो गया।

जहाँ यह सावरकर और मदनलाल के लिए भी गर्व की बात थी वहाँ इससे ब्रिटिश पुलिस की बहुत ही किरकिरी हुई। यह तो मानो शेर की मांद मे घुसकर उसका शिकार उठा लाने जैसी ही बात थी। किन्तु सावरकर का दल तो इस प्रकार के कार्यों म सिद्धहस्त था।

ढींगरा को फांसी

१७ अगस्त मदनलाल ढीगरा की फाँसी का दिन था। १८ अगस्त को 'डेली न्यूज' मे प्रकाशित समाचारो के अनुसार बन्दीगृह के बाहर न केवल भारतीयो की अपितु अन्य अनेक लोगो की भी भीड जमा थी। ९ बजने के तुरन्त बाद जेल के एक अधिकारी ने बाहर आकर सूचना दी कि प्रत्येक कार्य समयानुसार ठीक-ठीक हो गया है और ढीगरा की मृत्यु भी तत्काल ही हो गई थी। इस प्रकार भारत माँ का यह लाल हँसते-हँसते फाँसी के तख्ते पर झूल गया। किन्तु क्रूर एव अधी अग्रेज सरकार ने उसकी अन्तिम इच्छा की पूर्ति भी नही की। उसने न तो उसके किसी सम्बन्धी को उसका शव सौंपा और न स्वय ही उसका दाह सस्कार किया। मदनलाल के शव को जेल के प्रागण मे ही गाड दिया गया। किन्तु ज्ञानचन्द वर्मा ने मदनलाल के शेष सब अन्तिम कृत्य किए। उसने अपना सिर भी मुडवाया था। इसके ठीक ६६ वर्ष बाद क्रातिकारियो के प्रयत्न से भारत सरकार द्वारा ढीगरा के पवित्र अवशेषो का अस्थिकलश भारत लाया गया और १३ दिसम्बर १९७६ को इस कलश को भव्य शोभा-यात्रा के रूप मे मदनलाल के जन्म स्थान अमृतसर ले जाया गया। वहाँ उसकी स्मृति मे शहीद स्मारक बनाया गया। अस्तु।

हम पहले ही उल्लेख कर आए हैं कि लॉ की उपाधि प्राप्त करने के उपरान्त भी जब सावरकर को बार मे जाने की सुविधा प्रदान नही की गई तो उन्होने इसके विरुद्ध अपील की। तब 'ग्रेज इन' वालो ने इसकी छानबीन करने के लिए एक समिति गठित कर दी। यद्यपि भारत सरकार ने इस समिति के सम्मुख सावरकर के विरोध मे बडा जोर लगाया था किन्तु फिर भी समिति को उनके विरुद्ध ऐसा कुछ नही मिला। फिर भी आखिर कमेटी तो अग्रजो द्वारा अग्रेज सदस्यो की ही गठित की गई थी। तो उसने शर्त रख दी कि जब तक सावरकर यह लिखकर नही दे देते कि वे राजनीति म कभी भाग नही लेंगे, उनको बार मे जाने की अनुमति नही दी जा सकती। सावरकर ने उनके इस प्रस्ताव को पूर्णतया ठुकरा दिया। यही हरनामसिंह ने भी किया, क्योंकि उसको भी बार म नही जाने दिया गया था और उसके साथ भी यही शर्त लागू की थी।

विगत दिनो की गतिविधियो के कारण सावरकर टूट से गए थे। उनका शरीर शिथिल पड गया था। चारो ओर से विपदा ही विपदा आती दिखाई दे रही थी। कर्जन वाइली वाली घटना के बाद इंडिया हाऊस बन्द कर दिया गया था। सावरकर के लिए रहने का भी कोई स्थान नही रह गया था क्योकि कर्जन वाइली की मृत्यु के दूसरे ही

दिन क्रोधित भीड़ ने विपिनचन्द्र पाल के मकान को घेर लिया था। पाल के बड़े भाई ने उन लोगों को बताया कि सावरकर उनका किरायेदार अतिथि था और अब उन्होंने उसका प्रवेश बन्द कर दिया है। इस प्रकार एक अन्य दुर्घटना होते-होते बच गई।

नेहरू की कायरता

इस घटना के उपरान्त सावरकर ने अपने तथा विपिनचन्द्र पाल के बंधु के हित में यही उचित समझा कि अब उस स्थान पर नहीं रहना चाहिए। इस प्रकार बेघर, मित्र विहीन भूखे एकाकी और गुप्तचरों द्वारा पीछा किए जाने वाले सावरकर किसी छत की तलाश में इधर-उधर भटकते रहे, किन्तु पराजित सेना-नायक को कौन शरण देता है? क्या पराजित तात्या टोपे के साथ धोखा नहीं हुआ था? एक ही दिन में सावरकर को दो स्थानों से भागना पड़ा था, इनमें से एक स्थान पर से तो उनको आधी रात में बाहर कर दिया गया था। गुप्तचर छाया की भाँति उनके पीछे लगे थे, खाना नहीं, सोना नहीं, आराम नहीं। अन्त में एक जर्मन महिला ने कृपा कर कुछ दिनों के लिए उनको रहने के लिए स्थान दिया। वहाँ यद्यपि सावरकर बड़ी शान्ति से रहने का यत्न करने लगे, जिससे कि कोई उनको देखकर किसी पर सन्देह न करे अथवा उनसे कोई सहानुभूति व्यक्त न करे। तदपि लन्दन में गुप्त बैठकें करते हुए अपने प्रचार कार्य को उन्होंने चालू रखा।

कुछ दिनों के लिए सावरकर ब्राइटन में जाकर रहने लगे। वहाँ उन्होंने समुद्र किनारे बैठकर अनेक कविताओं की रचना की। वहीं उन्होंने ज्ञानचन्द वर्मा को बुलाकर मदनलाल धींगरा के उस लिखित वक्तव्य के प्रकाशन की व्यवस्था करने के लिए प्रेरित किया जिसका उल्लेख हम पिछले पृष्ठों पर कर आए हैं। पेरिस में उसके प्रकाशन की व्यवस्था हुई और वहीं से स्थान-स्थान पर उसको प्रकाशन के लिए भेज दिया गया। यह बड़ा कठिन काम था कि लन्दन के समाचार पत्रों में उसका प्रकाशन हो। किंतु सावरकर के मित्र डेविड गारनेट की सहायता से 'डेली न्यूज' के उपसम्पादक रोबर्ट लिण्ड ने उसको किसी प्रकार प्रकाशित कर ही दिया।

धींगरा के वक्तव्य के अन्तिम शब्द, जो कि उसकी इच्छा के रूप में व्यक्त किए गए थे, वे थे— 'मेरी कामना है कि मैं अपने उन्हीं माता पिता के घर में ही और भारत भूमि में पुनः जन्म लूं तथा पुनरेण देश को स्वतन्त्र कराने के कार्य में संलग्न हो जाऊँ। मैं चाहूँगा कि मेरी पुनः मृत्यु होने तक मेरी मातृभूमि विदेशियों के पंजों से छूट जाए। मातृभूमि के स्वतन्त्र होने तक मैं उसकी मुक्ति के लिए बार-बार जन्म लूं और मृत्यु का वरण करता रहूँ। प्रभु मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करें यही मेरी कामना है।"

समस्त संसार में धींगरा के इस वीरतापूर्ण कृत्य से हलचल मच गई। आयरलैण्ड के समाचार पत्रों ने उसकी बढ़-चढ़ कर प्रशंसा की और वहाँ के लोगों ने 'आयरलैंड उस मदनलाल धींगरा का सम्मान करता है, जिसने अपने देश के लिए अपने प्राणों की आहुति दी।" उन वाक्यों को 'पोस्टकार्डों' पर लिखकर समस्त देश में घुमा दिए।

जवाहरलाल नेहरू उन दिनों लन्दन में ही था। केवल उस जैसे ही कुछ अन्य

कायर भारतीय थे जो कि इस वीरतापूर्ण कृत्य से सर्वथा असपक्त रहे। उसके पिता मोतीलाल नेहरू ने उनको सावधान कर दिया था कि 'मजलिस' म जहां भारतीय विद्यार्थी बैठकर भारतीय राजनीति की चर्चा किया करते थे, वह वहां न जाए। यह घटना डब्ल्यु एस ब्लन्ट की पुस्तक 'माइ डायरीज' के भाग-दो के पृष्ठ २७६ पर विस्तार से अंकित की गई। यहां तक कि कालान्तर मे जब नेहरू ने स्वय अपनी 'आत्मकथा' लिखी तो उसम भी उसन इस घटना का अथवा सावरकर स सम्बन्धित अन्य वीरतापूर्ण कृत्यो का उल्लेख नही किया। ब्लन्ट न अपनी उसी पुस्तक के आग के पृष्ठो म ढीगरा की वीरता की प्रशसा करते हुई लिखा कि कोई भी बलिदानी एसा साहसी नही दिखाई देता जिसन मदनलाल ढीगरा की भांति साहस स अपने न्यायकर्ता न्यायाधीश का सामना किया हो। ढीगरा का बलिदान दिवस भारतीयो को पीढियो तक स्मरणीय रहेगा।

इतना ही नही, यहा यह कहना भी अप्रासगिक नहीं होगा कि मदनलाल ढीगरा के वक्तव्य के अन्तिम शब्दो को पढकर उस समय के इग्लड के भावी प्रधानमन्त्री विस्टन चर्चिल के मुख मे सहसा निकल पडा था, " ये देशभक्ति के नाम पर अभिव्यक्त सर्वोत्तम उद्गार हैं। ये ऐस शब्द हैं जिन्हें सुनकर यूनानी लेखक प्लूतार्क के अमर वीरो का स्मरण हो आता है।" ऐसे वीर के लिए कायर नेहरू के पास उसके प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिए शब्दो का भी अभाव हो गया था।

सावरकर लन्दन अथवा ब्राइटन मे रहते हुए कविताएं, लेख और पत्रक लिखते रहे। उन्हे भारत भी भेजत रहे। अपने पत्रको म जहा वे देशवासियो और क्रातिकारियो को सचेत करते रहत थे वहां उन्होने देशी रियासतो के राजाओ और राजकुमारो के नाम भी अनेक सन्देश इनके माध्यम स भेजे। जहां महाराजा ग्वालियर ने क्रान्तिकारियो को अंग्रेज सरकार के सुपुर्द कर दिया था वहां महाराजा बडोदा क्रान्तिकारियो के प्रति सहानुभूति का व्यवहार करते थे। सावरकर का अनन्य भक्त शकर बाघ नामक व्यक्ति महाराजा बडोदा के ... ई के रूप मे काय करता रहा था और वही उनको क्रांतिकारियो के समाचार दिया करता था। ब्रिटिश गुप्तचरो की उस पर निगाह होने पर भी महाराज न उसको सेवा स पृथक नही किया।

नेहरू पिता-पुत्र की कायरता का उल्लेख हम ऊपर कर आए हैं। यहां पर उनके राजनीतिक गुरु गांधी की अंग्रेज निष्ठा का भी उल्लेख कर दिया जाए तो अप्रासगिक नही होगा।

गांधी की साम्राज्य निष्ठा

गांधी जब कभी भी लन्दन आते तो वे इंडिया हाउस मे अवश्य जाते। सावरकर के १९०६ मे लन्दन पहुंचने के बाद से ही उनकी गांधी से इंडिया हाउस मे भेंट होती रहती थी और वे दक्षिण अफ्रीका की राजनीति के साथ साथ भारतीय राजनीति पर विचार विमर्श करते रहते थे। जहां गाधी के अन्य साथी सावरकर के तर्कों स प्रभावित होते थे वहां गांधी उन्ह हतोत्साह करने का यत्न किया करते थे। इसी प्रसग म एक

समय ऐसा भी आया जब गांधी और सावरकर को एक ही मंच पर एक ही विषय पर अपने-अपने विचार प्रकट करने का अवसर प्राप्त हुआ। यह १९०९ का विजया दशमी का अवसर था। लंदन के भारतीयों ने इस वर्ष विजया दशमी का उत्सव लंदन में बाहर के निकटस्थ 'निजामुद्दीन' रेस्टोरेंट में मनाने का निश्चय किया था।

गांधी उस समय लंदन में थे। इस समारोह की अध्यक्षता के लिए अय्यर गांधी से मिले तो गांधी इस शर्त पर तैयार हुए कि वहां का भोजन शाकाहारी होना चाहिए और सब मिलकर स्वयं भोजन बनायेंगे। गांधी निश्चित दिन बढ़िया से विलायती सूट में निर्धारित स्थान पर पहुँच गए और रसोई में जाकर अन्य भारतीयों की भांति ही भोजन बनाने में सहायता करने लगे। अय्यर तनिक विलम्ब से आए और जब उन्होंने गांधी को आलू छीलते हुए देखा तो उन्हें वहां से हटा दिया।

लगभग ७० भारतीय इस अवसर पर उपस्थित थे। अपने अध्यक्षीय भाषण में गांधी ने कहा, "चाहे कोई हिन्दू हो, मुस्लिम अथवा पारसी, किन्तु उसे इस बात का गर्व होना चाहिए कि वह उस देश का वासी है जहां श्री राम का जन्म हुआ था। भारत में यदि पुनः श्रीराम, सीता, लक्ष्मण और भरत जैसे व्यक्ति उत्पन्न हों तो वह पुनः उतना ही समृद्ध हो सकता है। यदि भारतीयों में भी राम के समान १२ वर्ष तक (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी के खण्ड ९ के पृष्ठ ४९९ पर १४ वर्ष ही अंकित है।) ब्रह्मचर्य का पालन व वनवास भोगने की शक्ति, सीता की पति परायणता, भरत का भ्रातृ प्रेम और लक्ष्मण की सेवा की भावना जैसी उदात्त प्रवृत्तियां जागृत हों तो भारत भी शीघ्र ही स्वतन्त्र होकर रहेगा।"

गांधी स्वयं को ब्रिटिश साम्राज्य का निष्ठावान नागरिक घोषित करने में कभी संकोच नहीं करते थे। यह उन्होंने विजय दशमी के समारोह में विलायती सूट पहन कर और अपने भाषण में क्रांतिकारियों की अनदेखी करके तथा दो मास पूर्व की ढींगरा की घटना को सर्वथा भुलाकर प्रमाणित कर दिया। अपनी साम्राज्य निष्ठा का प्रमाण वे समय-समय पर देते रहे हैं, जिसका उल्लेख आगे के पृष्ठों पर यथास्थान किया जायगा।

आसफ अली ने एक स्थान पर इस उत्सव का वर्णन करते हुए कहा था कि गांधी जी ने अपने भाषण के अन्त में सावरकर के विषय में जो शब्द कहे थे वे कुछ इस प्रकार थे—'आज के मुख्य वक्ता का भाषण मेरे भाषण के उपरान्त होने वाला है, इसलिए मैं आप लोगों के और उनके बीच में अधिक व्यवधान बनना उचित नहीं समझता।' गांधी जी सदा ही दोहरी नीति अपनाते रहे हैं। मन में कुछ तो वचन में कुछ और ही। पर उन्होंने सावरकर के महत्त्व को समझा तो इस प्रकार की बात कह दी, किन्तु इससे पूर्व अन्य स्थान पर वे कह चुके थे—'मैं लन्दन स्थित सभी क्रांतिकारियों के सम्पर्क में आया हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनकी वीरता का मुझ पर प्रभाव पड़ा है, किन्तु मैंने अनुभव किया कि उनका परिश्रम उचित दिशा में नहीं हो रहा है। मैं अनुभव करता हूँ कि भारत की भलाई के लिए हिंसा कोई आरम्भ नहीं हो सकती।'

गांधी ने अपने ये विचार सन १९०८ के अंत में 'हिंद स्वराज' के नए संस्करण की भूमिका में प्रकाशित किए थे। इतना ही नहीं उस समय लंदन में रहते हुए उन्होंने प्रत्येक क्रांतिकारी पर कुछ न कुछ फब्ती कसी और सावरकर पर तो उनकी विशेष कृपा रही। अपनी सारी प्रतिक्रिया उन्होंने पहले गुजराती में एक पत्रक के रूप में वितरित की और फिर उसको अपनी पत्रिका, जिसे वे साउथ अफ्रीका में रहते हुए प्रकाशित कर रहे थे, 'इंडियन ओपीनियन' में उसको प्रकाशित किया।

लन्दन के उस विजया दशमी के उत्सव पर गांधी के बाद सावरकर बोले। उन्होंने कहा, "यह बात प्रत्येक भारतीय जानता है कि विजया दशमी से पूर्व देवी दुर्गा की स्तुति में नवरात्रि पर्व मनाया जाता है। इन दिनों शक्ति अर्जित करने के लिए देवी की स्तुति की जाती है। स्वयं राम ने भी रावण वध से पूर्व इसी लिए शक्ति की आराधना की थी, तभी वे रामराज्य स्थापित करने में सफल हुए थे। यह ठीक है कि हिंदुस्थान हिंदुओं का है। फिर भी जिस प्रकार इन्द्रधनुष की सुन्दरता उसके बहुरंगी होने से द्विगुणित हो जाती है, उसी प्रकार भारत के भविष्य का आकाश भी उतना ही सुन्दर हो सकता है यदि वह मुस्लिम पारसी यहूदी तथा अन्यान्य संस्कृतियों के सर्वोत्तम गुणों को ग्रहण कर ले।"

यहां पर यह उल्लेख कर देना अप्रासंगिक नहीं होगा कि इसके बाद सावरकर और गांधी में वैचारिक और सैद्धान्तिक मतभेद निरंतर बढ़ता ही रहा। यद्यपि सावरकर अपने जीवन के अधिकांश वर्षों में राजनीतिक दृश्य से परे, निरन्तर कारागार में ही अपने जीवन के क्षण व्यतीत करते रहे तदपि दोनों में किसी भी बात पर कभी सहमति नहीं हुई।

परिवार पर विपत्तियां

सावरकर के लिए सन १९०९ के अंतिम दो मास बड़े संघर्ष और कठिनाई के रहे। एक प्रकार से उन पर विपदाओं के बादल सदा ही छाये रहे। उधर भारत की स्थिति भी बड़ी ही खराब होने लगी थी। लार्ड मिन्टो अपनी दमनकारी नीति के अन्तर्गत सब कुछ ही कुचल देने के लिए कृत संकल्प था। फिर भी क्रांतिकारी किसी प्रकार भयभीत नहीं हुए। उन्हीं दिनों ग्वालियर में 'अभिनव भारत' की शाखा की स्थापना का समाचार मिला उसके बाद सतारा की शाखा प्रकाश में आई। महाराष्ट्र में बम्ब बनाने की छोटी छोटी फैक्टरियां सरकार की नजरों में पड़ गई। यह सब सावरकर के बड़े भाई बाबाराव सावरकर के बन्दी बनाए जाने के बाद की घटनायें है। उन्हें जून ८, १९०९ को आजीवन कारावास का दण्ड घोषित किया जा चुका था। उन पर अभियोग था कि उन्होंने सम्राट के विरुद्ध युद्ध भड़काने के लिए अनेक प्रकार का विद्रोही साहित्य प्रकाशित किया था जिनमें लिखा होता था 'बताओ बिना युद्ध के किसको राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है?' आदि आदि।

भारत सरकार को बाबाराव सावरकर को बन्दी बना लेने से ही सन्तोष नहीं

हुआ अपितु वह उनके परिवार के अन्य सदस्यों को भी अनेक प्रकार से प्रताड़ित करने लगी। १३ नवम्बर को अहमदाबाद में वायसराय लार्ड मिन्टो के वध का असफल प्रयास किया गया था। मिन्टो पर जिस युवक ने बम फेंका था वह सावरकर के छोटे भाई नारायण सावरकर का परिचित था। उसका नाम था मोहनलाल पंड्या। मोहनलाल गुजराती युवक था। केवल नारायण सावरकर से उसका परिचय होने मात्र से ही नारायणराव सावरकर को भी बन्दी बना लिया गया।

सावरकर को अपने बड़े भाई के आजन्म कारावास का दण्ड पाने की सूचना नवम्बर १९०९ में प्राप्त हुई थी। उनको तभी यह भी विदित हुआ कि उनकी सारी पारिवारिक सम्पत्ति भी जब्त कर ली गई है। उस अवसर पर सावरकर ने अपने साथियों के मध्य कहा था "अभी क्या हुआ है, कुछ भी नहीं। अभी तो स्वातंत्र्य लक्ष्मी की आराधना के लिए हमें अपने प्राणों की बलि चढ़ानी है। सर्वस्व समर्पित करना है।"

इसके कुछ ही दिनों बाद सावरकर को समाचार मिला कि उनके छोटे भाई नारायण सावरकर को भी अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध क्रांतिकारी गतिविधियों में सम्मिलित होने के आरोप में बन्दी बना लिया गया है। उस समय भी सावरकर ने यही कहा, "चलो, इससे अधिक गौरव की बात क्या होगी कि हम तीनों भाई ही स्वातंत्र्य लक्ष्मी की आराधना में लीन हैं।"

भाभी को सान्त्वना

नवम्बर १९०९ में जब सावरकर को अपने बड़े भाई के बन्दी होने का समाचार मिला था तो उन्होंने अपनी भाभी श्रीमती यसुबाई को सान्त्वना देने के लिए एक पद्यमय मार्मिक पत्र लिखा था। उसका हिन्दी पद्यांश, जिसे श्री हरीन्द्र श्रीवास्तव ने अपनी पुस्तक 'उदित मार्तण्ड वीर सावरकर लन्दन में' के पृष्ठ १०८ पर इस प्रकार प्रकाशित किया है—'पत्र का शीर्षक था 'सान्त्वना'। पत्र के कुछ पद्यांशों का सार इस प्रकार है—

'अनेक पुष्प खिलते हैं और खिलकर मुर्झा जाते हैं पर कोई उनकी गिनती नहीं करता। किन्तु गजेन्द्र की सूंड द्वारा भगवान के श्रीचरणों में समर्पित पुष्प अमर हो जाता है। इसी प्रकार हम तीनों भाई भी कमल पुष्प की भांति भगवान श्रीहरि (मातृभूमि) के चरणों में समर्पित होकर अमर हो जायेंगे।"

सावरकर के मन में कुछ इस प्रकार की बात समा गई थी कि वे स्वयं एक प्रकार निर्वासन का सा ही जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनके बड़े भाई को आजीवन कारावास का दण्ड देकर कारागार के कष्ट भोगने के लिए भेज दिया गया है और अब छोटे भाई को भी बन्दी बना लिया गया है जबकि उसकी आयु मात्र १९ वर्ष की है। इससे सरकार कदाचित उनका वंशबीज ही नष्ट करने का उपक्रम कर रही है। अतः उन्होंने उसी पत्र में आगे लिखा—

"देवकार्य के हेतु बीजनाश निवश' होने वाली वशलता अमर हो जाती है और उसकी 'लोकहित परिमल' की सुगंध से समस्त दिशायें व्याप्त हो जाती है।"

किंकेड ने अपनी पुस्तक 'फोर्टी फोर इयर्स ए पब्लिक सर्वेंट' के पृष्ठ ११८ पर लिखा है कि सावरकर की पत्नी और उनकी भाभी ने पत्र पाकर प्रसन्नता अनुभव की और सावरकर की इच्छानुसार दृढव्रती बने रहने का प्रण किया। उन्होंने उनको लिखा कि वे सरकार को पराजित करने का अपना युद्ध चालू रखें। यद्यपि वे स्वयं उस झरोखे पर खड़ी थी जो कि टूट कर नीचे गिरने ही वाला था।

भारत में जैक्सन वध

बाबाराव सावरकर को आजन्म कारावास दिए जाने और मिन्टो पर असफल आक्रमण के बाद नारायण सावरकर के भी बन्दी बनाए जाने से भारत के क्रांतिकारियों के मन में बड़ा आलोडन विलोडन चल रहा था। उसका परिणाम यह हुआ कि क्रांतिकारियों ने इस सबका बदला लेने का निश्चय किया और २१ दिसम्बर १९०९ को अनन्त कान्हेरे ने नासिक के ब्रिटिश कलेक्टर ए० एम० टी० जैक्सन को, जो कि उस समय अपनी पत्नी के साथ नगर की विजयानन्द नाट्यशाला में आनन्द मग्न होकर नाटक देख रहा था, गोली से भून डाला। क्या कोई कल्पना कर सकता है कि १६ वर्ष का किशोर ऐसा साहसिक कार्य कर सकेगा? किन्तु कान्हेरे ने यह कर दिखाया।

२२ दिसम्बर १९०९ के सायंकालीन समाचार पत्रों के माध्यम से सावरकर को यह समाचार मिला। कान्हेरे तथा उसके अन्यान्य साथियों से पूछताछ करने पर विदित हुआ कि जिस पिस्तौल से जैक्सन को भूना गया था वह उन्हीं ब्राउनिंग पिस्तौलों में से एक पिस्तौल थी जो सावरकर ने अपने इण्डिया हाउस के रसोइये चतुर्भुज अमीन के माध्यम से भारत भेजी थी। जैक्सन के वध से तो सरकार क्रोध से काँप उठी। उसने नगर में कहर वर्षा करना आरम्भ कर दिया। हजारों लोगों को पकड़ा गया, पूछताछ हुई और अन्त में मार-पीट की नौबत आ गई। इसे 'नासिक षड्यन्त्र' का नाम दिया गया। इस मुकद्दमे में ३६ व्यक्तियों पर अभियोग लगाया गया।

लन्दन से विदा

इस प्रकार यह घटना क्रम इतनी तीव्रता से चलता रहा कि सावरकर का इंग्लैंड में रहना दूभर होता गया। उनके लिए लन्दन में रहना पल पल पर भारी होता गया। सावरकर के अनेक मित्र फ्रांस में थे, वे उनको फ्रांस में आकर रहने का निमन्त्रण देते रहते थे। उस अवस्था में सावरकर ने यही उचित समझा कि कम से कम कुछ समय के लिए ही सही उनको लन्दन छोड़ देना चाहिए। ऐसी स्थिति में पेरिस ही उनको उपयुक्त स्थान प्रतीत हुआ। इस प्रकार वे १९१० की जनवरी के प्रारम्भ में लन्दन से पेरिस के लिए प्रस्थान कर गए।

लन्दन से सावरकर की विदाई का वर्णन ज्ञानचन्द वर्मा ने इस प्रकार किया है—

'जब विपदायें आती हैं तो एक साथ ही आती हैं। एक ओर तो सावरकर गंभीर रूप से अस्वस्थ हो गए, उसके साथ ही उनको दोहरा निमोनिया हो गया। उनके चिकित्सक ने इंग्लैंड के शीत से बचने के लिए स्थान परिवर्तन का सुझाव दिया। उसी दिन सावरकर ने किसी भारतीय होटल में जाकर कढ़ी चावल खाने की इच्छा व्यक्त की। उनको जाने में असमर्थ समझ कर मैं स्वयं निजामुद्दीन होटल जाकर उनके लिए भोजन ले आया। उन्होंने जी भरकर भोजन किया। यथा समय मैं अपने कुछ अन्य मित्रों के साथ उन्हें विक्टोरिया स्टेशन पर विदा करने के लिए गया। स्वतंत्र सावरकर के रूप में मेरे लिए यह उनके अन्तिम दर्शन थे।"

लन्दन में वदी

बम्बई से वारट

नियति को शायद कुछ और ही स्वीकार्य था। सावरकर जब लन्दन से पेरिस को प्रस्थान कर गए तो लन्दन म उनके लिए कुछ और ही तैयार किया जा रहा था। पेरिस पहुँचकर सावरकर भी चुप नही बठे रह सके। उन्होन लन्दन जैसी गतिविधियाँ पेरिस मे भी आरम्भ कर दी। पेरिस म व मादाम कामा के निवास पर रह रहे थे। वहा के भारतीय क्रातिकारियो से उन्होंने सम्पर्क स्थापित किया और नई नई योजनायें बनाने लगे। क्रांति का केन्द्र अब लन्दन स पेरिस को स्थानान्तरित हो गया था।

अग्रेज सरकार कुछ और ही सोच रही थी। सरकार को यह ज्ञात हो गया था कि जिस पिस्तौल स धींगरे न जवसन का वध किया था वह पिस्तौल भारत अथवा लन्दन की नही अपितु फ्रास की बनी हुई थी। अत ब्रिटिश सरकार न इस आरोप म सरदारसिंह राणा, श्यामजी कृष्ण वर्मा और मादाम कामा को लपट मे लेन का विचार किया। सावरकर उन दिनो पेरिस मे थे। मादाम कामा न जब स्थिति की गम्भीरता को देखा तो उन्होन पेरिस मे स्थित ब्रिटिश दूतावास का एक पत्र लिखा, जिसम उन्हान उस पिस्तौल काण्ड का सारा दायित्व स्वय अपने ऊपर ले लिया।

ब्रिटिश सरकार का इससे समाधान नही हुआ। उसका मुख्य लक्ष्य सावरकर थे। वह किसी न किसी प्रकार सावरकर को फसाने का यत्न कर रही थी। उन दिनो बम्बई के गवनर पद पर ज्योज क्लार्क था, जिसे कालान्तर मे उसकी सेवाओ के लिए ब्रिटिश सरकार ने लार्ड सिडिनहम की उपाधि से विभूषित किया था। उसने नासिक के विशेष न्यायाधीश माण्टगुमरी को आदेश दिया कि वह सावरकर के विरुद्ध एसी सामग्री जुटाय कि जिसके आधार पर उनके विरुद्ध अभियोग दायर किया जा सके। इस योजना के अनुसार १७ जनवरी १९१० को माण्टगुमरी के न्यायालय मे भगोडे अपराधी नियम १८८१, के अन्तगत एक अभियोग दर्ज करा कर बम्बई सरकार द्वारा सावरकर के विरुद्ध एक तार-वारण्ट लन्दन भेजा गया। यह वारण्ट २२ जनवरी १९१०

लन्दन के बो स्ट्रीट न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया। इसमें सावरकर के विरु निम्नलिखित पाँच अभियोग लगाए गए थे—

१ भारत के अंग्रेजी शासन के विरुद्ध षडयन्त्र,

२ ब्रिटिश सम्राट को प्रभुसत्ता से वंचित करने का प्रयास करना,

३ अवध शस्त्रास्त्रों का संग्रह तथा वितरण करना और जक्सन व कर्जन वाइली की हत्या की प्रेरणा देना,

४ लन्दन में शस्त्रों का संग्रह तथा उन्हें भारत को निर्यात करना, और

५ भारत में जनवरी १९०६ से मार्च १९०६ तक तथा लन्दन में १९०८ १९०९ तक राजद्रोहात्मक भाषण देना।

सावरकर के लिए यह सब अनपेक्षित नहीं था। वे जानते थे कि कभी न कभी उनको सरकारी अतिथि बनना ही पड़ेगा। जब सावरकर पर अभियोग लगाये गए। बी० एस० अय्यर उन दिनों लन्दन में ही थे। उन्होंने इसकी सूचना सावरकर को भे कर उन्हें सावधान रहने के लिए कहा। किन्तु सावरकर के मन में कुछ और ही था। यह भली भाँति जानते थे कि वे सावधान रहकर सरकार के शिकंजे से बचते फिरें त सरकार उनके साथियों को बन्दी बनायगी और उनको परेशान करेगी। ऐसी स्थिति में क्रांतिकारी दल के सदस्यों में हीनता की भावना उत्पन्न होगी जिससे न केवल दल क अपितु देश को भी हानि होगी। सावरकर के पेरिस के मित्रों को जब विदित हुआ कि सावरकर के बन्दी बनाये जाने के लिए वारण्ट निकल गए हैं तो उन्होंने भी सावरक को लन्दन न जाने के लिए सावधान किया।

तब सावरकर को कहना ही पड़ा "नहीं, यह असम्भव है। इंग्लैंड में मे साथियों और भारत में मेरे सगे सम्बन्धियों तथा साथियों पर संकट के पहाड़ गिर र है और मैं यहाँ पेरिस में मौज मस्ती कर रहा हूँ। यह मेरे लिए असहनीय होने के साथ साथ लज्जा की भी बात है। मुझे इसका सामना करना ही होगा।"

सावरकर ने निश्चय किया कि अपनी आत्मा की सुरक्षा के लिए अपने शरी को खोना ही उपयुक्त है। उसका निर्माण ही बलिदानियों की मिट्टी से हुआ था। इ प्रकार उन्होंने लन्दन के लिए यात्रा आरम्भ की। पेरिस स्टेशन पर उन्हें उनके अन्य साथियों के अतिरिक्त मादाम कामा और लाला हरदयाल ने भारी मन से विदाई दी सावरकर के लिए लाला हरदयाल के यह अन्तिम दर्शन थे। इसका उल्लेख सावरकर ने बाद में किया है। सावरकर स्वेच्छा से लन्दन के लिए चले थे किन्तु फिर भी स्का लैण्ड यार्ड ने एक मनगढ़न्त कहानी बना दी कि किसी कुमारी के नाम से उन्होंने साव कर का झूठा पत्र लिखकर लन्दन बुलवाया और इस प्रकार उन्हें अपने जाल में फँसाया।

१३ मार्च १९१० के दिन सावरकर की रेलगाड़ी लन्दन के विक्टोरिया स्टेशन पर रुकी। लन्दन की पुलिस ने सुख की साँस ली 'आखिर उनका शिकार आ ही गया।' ज्योंही उन्होंने रेल के डिब्बे से बाहर पग रखा कि स्कॉटलैंड यार्ड के इंस्पेक्टर ... के मुख से निकल गया, "वह देखो वह सावरकर है।" तुरन्त सावरकर

को उनका वारण्ट दिखाया गया और उन्हे बन्दी बना लिया गया।

साथरकर के साथ दादाभाई नौरोजी की पौत्री कु० पेरीनबन कैप्टेन भी थी। पर उन्हे पुलिस न कुछ नही कहा। सावरकर को निकटवर्ती वो स्ट्रीट के पुलिस थाने ले जाया गया और वहाँ उनके सामान की तलाशी ली गई। उसमे कुछ वस्त्रो के अतिरिक्त दो प्रतिया 'भारतीय स्वातन्त्र्य समर '१८५७', सात प्रतियाँ चूज ओ इडियन प्रिसज' तथा एक प्रति मैजिनी की जीवनी एव समाचार पत्रो की कतरनें पाइ गई।

अतीत कृत्यो पर दण्ड

सावरकर की इस गिरफ्तारी पर डेविड गारनट न लन्दन के 'डेली न्यूज' म एक पत्र प्रकाशित किया। जिसका शीर्षक था 'पास्ट ओफेन्सेज' अर्थात अतीत के कृत्य। जिसम उन्होन लिखा, 'सन १९०६ मे भारत म दिये गए भाषणो के लिए सन १९१० म उनको इग्लैंड म बन्दी बनाया गया। यह ब्रिटिश विधि विधान का क्या ही सुन्दर उदाहरण है।'

अगल दिन १४-३ १९१० को उनको बो स्ट्रीट पुलिस न्यायालय लाया गया। न्यायालय उस दिन दशको स खचाखच भरा हुआ था। बीच बीच म सावरकर का जय-जयकार भी होता रहा। न्यायाधीश का नाम था सर एलबर्ट डि रटजन। सरकारी अधिकारी विलियम ह्युइस के निर्देश के पर ए एच बोडकिन सरकारी वकील था और एम ए टी रौलट उसका सहायक वकील था। यही रौलेट बाद में भारत म अपनी ज्यादतियो के कारण बडा कुख्यात हुआ था। 'रोलट एक्ट' उसी नाम पर पारित हुआ था। सावरकर की ओर स लन्दन के विख्यात वकील रजिनेल्ड वान न जमानत का आवेदन प्रस्तुत किया, किन्तु न्यायाधीश न उस अस्वीकार कर दिया। न्यायाधीश न २३ अप्रेल की अगली तिथि की घोषणा कर सावरकर को ब्रिक्स्टन बन्दीगह भिजवा दिया।

सावरकर के ब्रिक्स्टन जेल जान स पूव १५ माच का अय्यर ने बो स्ट्रीट थाने मे सावरकर स भेंट की थी और विचार विमश के उपरान्त उन्होने वकील के रूप मे वान का निर्वाचन किया था इसके लिए अय्यर को बहुत दौड धूप करनी पडी थी। इसके साथ ही अय्यर न अपन तथा सावरकर के अनेक परिचितो को पत्र लिखकर आर्थिक सहायता क लिए कहा था। सारे मुकदमे का खच लगभग २०० पौड आका गया था। श्यामजी कृष्ण वर्मा न पत्र मिलते ही दस पौड का चैक भेज दिया था।

सावरकर जब ब्रिक्स्टन कारागार म पहुच तो उन्हे वहा अपना पत्रकार मित्र गाय अलड्रेड मिल गया। गाय अलड्रेड वह प्रथम अभारतीय था जो भारतीय स्वतन्त्रता के लिए कारागार की यातना भुगतने वाला था। वह श्याम जी कृष्ण वर्मा के समाचार पत्र 'इण्डियन सोशियोलोजिस्ट' का प्रकाशक था। यद्यपि सरकार ने भरसक प्रयत्न किया कि उन दोनो मे परस्पर किसी प्रकार भी भेंट न हो। इसके लिए कडी सुरक्षा व्यवस्था की गई। तदपि अलड्रेड ने अपने सस्मरणो म लिखा है कि 'हम दोनो नित्य ही स्वप्नो, अनुभूतियो और कल्पनाओ मे मिलते रहते थे।'

"मृत्यु-पत्र"

सावरकर को ब्रिक्स्टन जेल मे रहते हुए अपने घर का स्मरण हो आना स्वाभाविक था। घर पर उनकी पत्नी और भाभी दो ऐसी महिलाये थी जिनके पति कारावास भोग रहे थे। इससे पूर्व सावरकर का छोटा सा बच्चा फरवरी १९०९ में चल बसा था। सावरकर के छोटे भाई नारायण राव को भी नासिक षडयन्त्र मे फसा लिया गया था। इस सब पर विचार करते हुए सावरकर ने अपनी भाभी को सात्वनात्मक पत्र लिखना चाहा। क्योकि अन्य कोई साधन अब उनसे मिलने का हो ही नही सकता था।

सावरकर का यह पत्र मराठी मे कवितावद्ध था। उसका शीर्षक उन्होंने 'मृत्यु-पत्र' दिया था। हम यहा पर उसका हिन्दी गद्यानुवाद प्रस्तुत कर रहे है, जिससे कि पाठको को न केवल सावरकर की काव्यात्मक प्रतिभा का ज्ञान हो सके अपितु उनके मन मे कैसी ज्वाला धधक रही थी इसका भी ज्ञान हो सके—

"आकाश पर वैशाख मास का चन्द्रमा हास्य कर रहा था। उसकी चन्द्रिका चारो ओर बिखरी हुई थी। जिस माँ की लता को बाल ने जलसिंचन किया था वह अपने छोटे फूलो की महक से फूल रही थी। गोकुल की भाँति घर मे आनन्द मग्न हो रहा था क्योकि सभी आदरणीय सम्बन्धी आये हुए थे। उन नवयुवको की आत्मदीप्ति, तेज और धैर्य देखकर स्वयं कीर्ति भी नाचती थी। नवयौवन के प्रेम मे हम लोगो के हृदय पुष्प खिल रहे थे और सच्चरित्रता की सुगन्ध मे सुगन्धित हो रहे थे। स्नेहलता और न्याय मे हमारा घर उद्यान की भाँति शोभायमान रहता था।

"ऐसे समय, प्रिय भाभी! तुम्हारी कुशलता के कारण भोजन और भी स्वादिष्ट बनता था। हम लोग वार्तालाप करते हुए चादनी मे भोजन करने बैठते थे। उस समय कभी-कभी श्रीरामचन्द्र के वनवास की कथा, इटली देश के स्वतन्त्र होने का इतिहास कोई कहने लगता। हम लोग वीरवर तानाजी के वीरगीत गाने लगते। कभी कभी चित्तौडगढ और पूना के शनिवार वाडे का वार्तालाप होने लगता। उन समय उस अनाथ माता का स्मरण आता तो शत्रुओ को छिन्न भिन्न करने हेतु अत्यन्त द्रवित होकर मैं रोमाचित हो उठता।

'प्यारी भाभी! वह रमणीय अवसर, वह प्रियजनो का मधुर सहवास वह चन्द्र प्रकाश, वे नवकथायें वे रमणीय रात राष्ट्र को बन्धनमुक्त करने का वह स्वप्न उनकी पूर्ति के लिए किए गए वह सकल्प और व्रत, तुम्हे याद है न!

हे स्नेहि वहिनी! तुम्हे यह स्मरण होगा, उस समय जब युवक सब ने कहा था—हम वाजी प्रभु बनेंगे। तो युवतियाँ भी उसी गर्व से कह उठी थी—हम भी चित्तौड की वीरांगनायें बनेंगी। 'वहिनी! क्या यह प्रण किसी व्यक्ति मे नही लिया था। आज तक का इतिहास जिस प्रकट रूप मे दिव्य दाहक कहता है, उसी सात्वन वाली भाभी! हमने पूर्ण सोच समझ कर ही धारण किया है।

'स्नेहि वहिनी! उस समय प्रिय जनो के साथ की हुई प्रतिज्ञाएँ स्मरण करो और फिर आज की अवस्था को देखो। तब तुम देखोगी कि अभी पूरे अक्षर-अक्षर

भी नही होने पाये कि हमारा उद्देश्य इतना अधिक सफल हो गया है। तब, ऐसे समय बताओ, मन म उल्लास क्यो न उत्पन्न हो। देखो, कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक देश म हलचल सी मच गई है और यह राष्ट्र दीनता को त्याग कर वीरता का वरण कर रहा है। रघुवीर के चरणो म भक्तो की अपार भीड लगी है। उधर यज्ञ कुण्ड म बलिदान की सामग्री भी प्रज्वलित हो उठी है। इस यज्ञ म आहुति हेतु जो लोग दीक्षा ले चुके हैं उनसे पूछा जा रहा है—'समग्र विश्व की मगल कामना हेतु कौन अपनी आहुति देने के लिए सन्नद्ध है?'

'साध्वी भाभी! इस दिव्यार्थ निमन्त्रण को पाकर हमने गज कर कहा था—'लो हमारा सम्पूर्ण कुल प्रस्तुत है।' यह कहकर हमने ईश्वरीय सम्मान प्राप्त किया है, हमारा जीवन धर्म पर न्योछावर होने के लिए ही है, यह कहना अर्थहीन नही है। भाभी! अनन्त यातनाओ को सहकर भी हमारा धैर्य नही टूटा और न ही खण्डित हो पाया है हमारा निष्काम कर्मयोग। उस समय प्रियजनो के साथ की गई प्रतिज्ञाएँ आज सत्य हो रही हैं। अपनी मा को बन्धनमुक्त करने हेतु इस प्रज्वलित यज्ञकुण्ड म अपना सर्वस्व न्योछावर कर आज हम कृतार्थ हो गए हैं।

'मातृभूमि! तेरे चरणो मे पहले ही मैं अपना मन अर्पित कर चुका हूँ अब मेरा वक्तृत्व वाग्वैभव, मेरी नई कविता, सभी कुछ तेरे चरणो मे समर्पित है। मेरे लेखो म कोई अन्य विषय नही है। तेरे स्थडिल पर मैं अपने प्यारे मित्र सघ को डाल चुका हूँ। अपना तन, मन, धन, यौवन सभी तुझ पर वार चुका हूँ। देश सेवा म ही ईश सेवा है, यह मान कर मैंने तेरी सेवा के माध्यम से भगवान की सेवा की है। इसी पवित्र अग्नि म म अपनी भाभी, पुत्र पत्नी और बडे भाई को भी भेंट कर चुका हूँ और अब स्वय समर्पण के लिए प्रस्तुत हूँ। किन्तु, यह तो कुछ भी नही। हम यदि सात भाई भी होते तो उन सबका बलिदान तेरे ही चरणो म होता। किन्तु इससे क्या, इस भारत भूमि की तो तीस कोटि सन्तान हैं। इनमे से जो मातृ भक्ति म रत है वे ही धन्य ह। हमारा कुल भी उनमे ईश्वरीय अश के समान है। इसलिए निवश होकर भी हमारा वश अखड हो गया है।

'वश चाहे अखण्ड हो अथवा न हो। पर हे मातृभूमि! हमारे उद्देश्य पूर्ण हो। तुझे बन्धनमुक्त करने हेतु इस पावन अग्नि म अपना सर्वस्व होमकर हम कृतार्थ हो गए। प्रिय भाभी! यही समझ कर अपने कुल को सफल मानिये। श्री पार्वती जी ने हिमगिरि की चोटियो पर तप किया है और अनेक राजपूतनियो भी हँसते हँसते प्राणो की आहुति दे चुकी हैं। भारतीय ललनाओ का वह तेज, तप और बल आज भी नष्ट नही हुआ है, इस बात को प्रमाणित करने के लिए, प्रिय भाभी! तुम्हारा समस्त व्यवहार भी वीरागना की भाँति होना चाहिए।

'हे देवि! यहाँ से तुम्हारे लिये मेरा यही सन्देश है। तुम्हारे वत्सल चरणो म मेरा प्रेमपूर्वक प्रणाम। मेरी प्रिय पत्नी को आलिगन कहना। आज तक का इतिहास जिसे प्रकट रूप म दिव्य दाहक कहता है, उसी 'सतीव्रत' को प्रिय भाभी! हमने सोच

समझकर वरण किया है।"

इस पत्र ने सावरकर महिलाओं को सान्त्वना प्रदान की अथवा स्वय सावरकर का चित्त स्थिर हुआ, यह अनुमान करने की ही बात है।

एक और नाटक

२३ अप्रल १९१० को जब न्यायाधीश बोडकिन न सावरकर क अभियोग की कायवाही आरम्भ की तो सावरकर के वकील वान न यथाशक्ति प्रयास किया कि सावर कर का यह अभियोग इग्लैंड मे ही चलाया जाय। इस विषय पर विवाद हुआ किन्तु १२ मई १९१० को न्यायाधीश ने निणय दे दिया कि सावरकर का अभियोग भारत म ही चलाया जाना चाहिए। सावरकर के वकील श्री वान ने हेवियस कौपस के लिए याचिका दायर की। इस पर २ और ३ जून को बहस हुई। सावरकर की ओर म हेवियस कौपस याचिका पर श्री ए पावल के सी और श्री जे एम पारीख न बहस की। किन्तु मुख्य न्यायाधीश लाड एलवर्ट स्टोन न निचली न्यायालय के निणय को बरकरार रखा। तीन अन्य न्यायाधीश भी थे उनमे स न्यायमूर्ति कोलरिज न सावरकर को भारत भेज जाने के विरुद्ध अपना मत दिया था किन्तु उनके मत को अल्पमत मानकर उस अस्वीकार कर दिया गया।

इस निणय के विरुद्ध कोट ऑफ सिविल अपील म पुन अपील की गई। श्री वान के तर्कों स न्यायाधीश यद्यपि पर्याप्त प्रभावित दिखाई दिय किन्तु सोलिसिटर जनरल के बोलन की बारी आई तो उन्होने सारे किय कराये पर पानी फेर दिया। य सोलिसिटर जनरल कोई अन्य नही अपितु रफाक ईसाक, जो कालान्तर म लाड रीडिंग क नाम स भारत के गवनर जनरल बनकर आये थे, वही थे। इस प्रकार सावरकर का भारत भेजन का निणय हो गया।

तब सावरकर क अभियोग क लिए विशेष अनुमति के द्वारा एक विशेष ट्रिब्यूनल की नियुक्ति की गई।

इस निणय क विरोध मे सावरकर क वकील न एक अन्य प्राथना पत्र दिया जिसम कहा गया कि लाड चासलर के सम्मुख अपील करने के लिए उनको कुछ समय दिया जाय। इसक उत्तर मे उनको १५ दिन का समय दिया गया। इसक लिय बहुत धन की आवश्यकता थी। सावरकर न पेरिस म अपने मित्रो को लिखा और उन्होन धन की व्यवस्था भी कर दी किन्तु जो व्यक्ति धन लेकर आ रहा था उसक मन म बेई मानी आ गई और वह सारा धन स्वय ही पचा गया। एक प्रकार म सावरकर क लिए तो यही हुआ कि न तो पेरिस से कोई सन्देशवाहक आया और न धन ही आया। अन्त धन के अभाव म प्राथनापत्र भी नही दिया गया। कदाचित नियति का यही स्वीकार होगा।

सहयोगियो की छटपटाहट

जब यह निश्चय हो गया कि लन्दन के न्यायालयो मे अब उनकी मुक्ति के लिए कुछ नहीं हो सकता है तो क्रांतिकारियो के मस्तिष्क म अनेक प्रकार के विचार आन लगे। वह अब यह विचार करने लगे कि किसी प्रकार सावरकर को बन्दीगृह से मुक्त किया जाय। इसके लिए अनक प्रकार की युक्तियाँ की गइ अनेक प्रकार की योजनाएँ बनन लगी।

अन्त म दो योजनायें, निश्चित की गईं। एक योजना यह थी कि सावरकर की शक्ल सूरत का कोई व्यक्ति अपनी विशेष पारम्परिक वेषभूषा मे जेल म उनस मिलन के लिए जाय। वहाँ किसी प्रकार सावरकर उसके वस्त्र पहन लें और बाहर आ जायँ और वह व्यक्ति सावरकर के स्थान पर जेल म रह जाय। इसके अतिरिक्त एक अन्य योजना यह थी कि सावरकर को जिस समय बन्दीगह से न्यायालय को ले जाया जाता है उस समय उनको बलात् छुडा लिया जाय। तदनन्तर उनको महिला के वस्त्र पहना कर छिपा दिया जाय। इसके लिए डेविड गार्नेट अपनी माँ के वस्त्र लेकर गय भी, किन्तु उनकी यह योजना भी सफल नही हो पाई।

अपनी पुस्तक गोल्डन इको के पष्ठ १५८-१६ म डेविड गार्नेट न लिखा है कि श्रीमती ड्राइहस्ट जो कि बहुत ही प्रभावशाली महिला थी, उनके तथा सिनफीन नेता मौड गोन न सावरकर को जेल से न्यायालय जाते हुए छुडान का यत्न किया था। वे एक निर्धारित स्थान पर उस गाडी की प्रतीक्षा करत रहे जिसम सावरकर को न्यायालय ले जाया जान वाला था। किन्तु उनका प्रयत्न विफल हो गया, क्योकि पुलिस को उसकी भनक मिल गई और उसन न्यायालय जाने का माग ही बदल दिया। उस माग स जो वाहन आया उसको जब रोका गया तो विमुक्तिकारियो न देखा कि सावरकर उसम नही है। सावरकर के अन्य अनक मित्र भी इस प्रकार की योजनाय बनाते रहे किन्तु सब व्यथ सिद्ध हुआ।

सम्भवतया ज्ञानचन्द ने गार्नेट को बताया था कि पेरिस के दो व्यक्ति सावरकर को छुडा कर उनके स्थान पर स्वय अनन्त कारावास भुगतन के लिए तयार थे। किन्तु ए ए न धोखा दे दिया। वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ब्रिक्स्टन जेल म अनक बार सावरकर म मिलन क लिए परिस से लन्दन आते रहे। वे चौदह बार उनम मिले। इसका उद्देश्य अन्य कुछ नही उनको वहा स भगाना ही चट्टोपाध्याय का प्रेय था। किन्तु सफलता नही मिली। गार्नेट की पुस्तक मे 'ए ए' से अभिप्राय आसफअली स है अथवा किसी अन्य से, यह नही जाना जा सका। उसन यह भी लिखा है कि किसी न सावरकर की नकल बनकर उन्ह भगान की योजना बनाई थी, किन्तु असफल रही।

यद्यपि उनको छुडाने का प्रत्येक प्रयत्न असफल रहा था फिर भी उनके साथी निराश नही हुए थे।

मार्सेल्स मे मिलूँगा

वी वी एस अय्यर, जिसे पुलिस सावरकर का दाया हाथ बताया करती थी, ब्रिक्स्टन जेल म जब उनसे मिलने के लिए गए तब उनके साथ अपनी अन्तिम भेंट म सावरकर ने उनस हिन्दी मे कहा था 'यदि परिस्थिति ने साथ दिया तो मैं मार्सेल्स म अपने साथियो से भेंट करना चाहूँगा।' अय्यर को सकेत मिल गया कि वह मार्सेल्स म कार लेकर तयार रहे। ठीक उसी समय वाडर ने आकर कहा, 'भेंट का समय समाप्त हो गया है।' बात आगे नही बढ सकी और दोनो न भरे मन से एक दूसरे को विदाई दी। अय्यर समझते थे कि कदाचित यह उनके परस्पर मिलने का अन्तिम अवसर हो। जब अय्यर की आँखो म आसू निकलने लगे तो सावरकर न उसको सान्त्वना देते हुए कहा, "नही, नही। हम तो हिन्दू है और गीता का अध्ययन करते है। हमे इन क्रूर जनो के सम्मुख अश्रुपात नही करना चाहिए।"

डेविड गारनेट भी सावरकर को ब्रिक्स्टन जेल मे मिला था। उसने सावरकर को साफ कालर और रूमाल दिये थे। किन्तु सावरकर का गला बहुत ही पतला होने के कारण कालर फिट नही बठे। गारनेट ने सावरकर को वैधानिक रीति स छुडाने के यत्न मे तो सहायता की ही थी उनके भाग निकलने का भी माग बनाना चाहा था किन्तु बिचारा असफल रहा था। उसके प्रयत्नो और सहायता पर सावरकर न आभार व्यक्त करते हुए अपनी अन्तिम भेंट मे उससे कहा था यह बात महत्वपूर्ण नही है कि अपने प्रयत्न म कोई सफल होता है अथवा असफल होता है। जब तक आप सघर्ष करने की स्थिति म है, परिणाम की चिन्ता मत करो। जिस चीज का महत्व है, वह है भावना का। मनुष्य मे सघर्ष की भावना होनी चाहिए। आपने जो कुछ किया वह आश्चर्यकारक था फिर आप इस बात की चिन्ता क्यो करते ह कि आपने यह क्यो नही किया अथवा वह क्या नही किया। मेरी चिन्ता छोड दो। मैं किसी न किसी प्रकार निकल भागूगा। यदि आप लोगो के प्रयत्न और योजना असफल होती है तो मैंने भी भागने की एक योजना बना ली है।

इस भेंट का उल्लेख डविड गारनेट न अपनी पुस्तक 'द गोल्डन इको' के पृष्ठ १६० मे किया है।

भारत की ओर

सावरकर का जब निश्चय हो गया कि अब उनको लन्दन म विदा होना है अपने यहाँ के साथियो म विदा होना है तो उनके मन म उनसे विदा लेने की जो भावना प्रस्फुटित हुई उसको उन्होंने छन्दोबद्ध किया। उनके य मराठी छन्द काव्य-जगत में अनुपमेय है। उनम स केवल दो छन्दो का हिन्दी भावानुवाद यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

जिस प्रकार किसी पुरातन नाटक के
मत और जीवित सभी पात्र

मिल जाते हैं अंतिम दृश्य मे,
इस स्वतन्त्रता संघर्ष मे भी हम
सभी असंख्य पात्र
उसी प्रकार इतिहास के
रंगमंच पर अवश्य मिलेंगे कभी
और मानवतारूपी दर्शक
करेंगे हर्ष मे जयजयकार हमारा
तब तक के लिए
मित्रो ! विदा ! विदा !
मेरा यह तुच्छ शरीर गिरे जहाँ कही,
चाहे अण्डमान की क्रूर काल कोठरी मे
जहाँ सहानुभूति का कोई स्वर न हो
अथवा जिसको समेटा हो
गंगा की पवित्र धारा ने
जिसमे रात्रि के उज्ज्वल प्रकाश मे
नर्तन करते हो अगणित नक्षत्र
वे अपने मुखर उत्साहित स्वर से
गान करेंगे उस विजय का
और कहेंगे उत्साहित मन से
श्री राम ने पूर्ण किया
अपना वचन और पराभूत किया
दुष्ट रावण को
स्थापित करने राम राज्य
यह मातृभूमि के प्रति प्रेम भावना
हमारे बलिदानी वीर सैनिक
उठो, जागो ! जो युद्ध तुमने लड़ा और बलिदान हुए
उसमे हम विजयी हुए
तब तक के लिए मेरे प्रिय मित्रो !
विदा ! विदा !!

२९ जून १९१० को, अंग्रेजी साम्राज्य का तत्कालीन गृह राज्य सचिव विंस्टन चर्चिल, जो कालांतर मे वहाँ का प्रधानमन्त्री बना और भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन को निरंतर क्षति पहुँचाने का कार्य करता रहा, उसने सावरकर को ब्रिटिश भारत भेजने का आदेश जारी किया और जिस प्रकार औरंगजेब ने शिवाजी को बन्दी बना कर सुख की साँस लिया था उसी प्रकार ब्रिटिश सरकार ने सावरकर को जहाज मे बैठाकर सुख की साँस लिया।

समुद्र में छलांग

अंततः वह दिन भी आया। शुक्रवार प्रथम जुलाई १६१० 'एस एस मोरिया' नामक जलपोत सावरकर को लंदन से भारत ले जाने के लिए अपनी ऐतिहासिक यात्रा पर चल पड़ा। मार्ग पर आने वाली बाधाओं को टालने के विचार से वह जलपोत मार्ग के प्रचलित मार्ग से न जाकर बिस्के की खाड़ी से निकला। अपने शिकार को बन्दी के रूप में ले जाते हुए कदाचित 'मोरिया' जलपोत गर्व अनुभव करता हुआ समुद्र की लहरों में खेलता आगे बढ़ रहा था कि सहसा उसके गर्व को ठेस लगी। इंजिन में कुछ गड़बड़ हो गई और फ्रांस के मार्सेल्स बन्दरगाह के निकट उसकी मरम्मत करने की आवश्यकता पड़ गई तो जहाज को सीधा न जाकर मार्सेल्स की ओर मुड़ना पड़ गया। आखिरकार ■ जुलाई १६१० को वह मार्सेल्स बन्दरगाह पर जा लगा।

२६ जून को जब चर्चिल ने सावरकर को भारत भेजने का आदेश दिया था तो उसके साथ ही तार द्वारा फ्रांस सरकार के गुप्तचर विभाग को जलपोत के उस मार्ग से जाने की पूर्व सूचना दे दी गई। इसके साथ ही उनको सावधान भी कर दिया गया कि 'इस जलपोत में एक 'बहुत ही महत्वपूर्ण बन्दी भारत ले जाया जा रहा है जिसके अनेक क्रांतिकारी साथी फ्रांस में रह रहे हैं और वे उसको छुड़ाने का यत्न कर सकते ■।' सम्भवतया ब्रिटिश सरकार को किसी प्रकार की भनक लगी होगी तभी तो उसने फ्रांस की सरकार को सावधान किया।

बन्दी सावरकर के साथ इस जलपोत में स्काटलैंड यार्ड का इंस्पेक्टर ई जोन पारकर और बम्बई का सहायक पुलिस सुपरिंटेंडेंट पावर अपने दस अन्य सुरक्षा अधिकारियों के साथ चल रहे थे। जलपोत जब मार्सेल्स पहुंचा तो मार्सेल्स के पुलिस कमिश्नर हेनरी लेबालियास ने जोन पारकर से भेंट की और उसको लंदन के पुलिस कमिश्नर का पेरिस के पुलिस प्रमुख को पत्र दिखाया। दोनों में परस्पर कुशल समाचार का आदान प्रदान हुआ पुलिस कमिश्नर ने पारकर को हर सम्भव सहायता देने का वचन दिया।

क्या कोई कल्पना कर सकता है कि बन्दी के रूप में हथकड़ी बेड़ी से कसा और खम्भे से बंधा हुआ व्यक्ति कुछ बोल भी सकता है? किन्तु सावरकर थे कि न केवल साधारण बातचीत में भाग ले रहे थे अपितु चुटकले सुना-सुनाकर अपने साथियों को हंसा भी रहे थे, अपने संस्मरण सुनाकर उन्हें रोमांचित कर रहे थे और इस अवसर पर भी व विश्व में हुई विगत क्रांतियों तथा स्वतंत्रता संघर्षों की कहानियां ही सुना रहे थे। अपने सहयात्रियों के मन में सावरकर एक प्रकार से यह बैठाने का यत्न कर रहे थे कि स्वतंत्रता सेनानियों के साथ क्रूरता का नहीं अपितु सहानुभूति का व्यवहार किया जाना चाहिए।

एक से सात जुलाई तक सावरकर का यही क्रम चलता रहा। जलपोत तो रुक गया किन्तु सावरकर का चिन्तन नहीं रुका। वे किसी प्रकार वहां से भागने का विचार ने लगे। उन्होंने पोत के छिद्र से नीचे समुद्र को देखा। वे विचार करने लगे कि क्या

उनके साथियो को उनका सकेत मिल गया होगा ? क्या उन्होने मुझे मुक्त करने के लिए योजना बना ली होगी ? क्या वे मुझे मुक्त कर पायेंगे ? इसी चिन्तन म सावरकर का समय बीत रहा था।

मार्सेल्स वह स्थान है जिसके नाम पर रचित गीत मे फ्रास मे क्राति हुइ थी। वही गीत आज वहा का राष्ट्रगीत ह। उस गीत का अनेक भाषाओ म अनुवाद हो चुका है और श्यामजी कृष्ण वर्मा ने भी लन्दन म पेरिस जाने स पूव इस गीत का अग्रेजी भावानुवाद अपने पत्र 'इडियन सोशियोलोजिस्ट' के प्रथम पष्ठ पर प्रकाशित किया था।

दवयोग से आज उसी स्थान पर सावरकर को ले जाने वाला वह युद्धपोत आ कर लगा था। उनको लगा कि कही प्रकृति अथवा सागर उनको मुक्त करने के लिए ही तो यह सब कुछ नही करवा रह है। रात्रि का समय था, लेटे लेटे अनेक प्रकार के प्रश्न सावरकर के मन मे उठ रहे थे। अनेक विचारो की तरगें आलोडित विलोडित हो रही थी। सहयात्री सो रहे थे, किन्तु सावरकर को नीद कहा। सावरकर के मन म कस के कारागार स कृष्ण की मुक्ति, औरगजेब के कारागार से शिवाजी की मुक्ति आदि ऐसी अनेक घटनाएँ उभर कर आ रही थी। ऊपर उन्मुक्त आकाश और नीचे विशाल सागर को दखत हुए सावरकर सोच रहे थे कि इन दोनो के मध्य म कोई बन्दी क्यो ?

यो सोचते-सोचते प्रभात हो गया। उनके विचार केन्द्रीभूत होने लगे। मानो भारतमाता उनसे कह रही हो, "भागो, भागो, अभी समय है। ओ मेरे लाल ! मैं नही चाहती कि तुम्हारी गदन मे फाँसी का फदा फसे। मेरे लाल ! कृष्ण शिवा, नेपोलियन और एल्बा का स्मरण करो। भागो, भागो ! यही समय है। तुम कोई ऐसे चूहे नही हो जिसको सरलता से फसाया जा सके। तुम क्रांतिकारी दल के दलपति हो। भागो, भागो। अब नही तो फिर कभी नही।"

प्रात काल हो गया था। पारकर अभी पूरी तरह जागा नही था। सावरकर ने पारकर से कहा कि वे शौच जाना चाहत ह। पारकर ने साथ मे बैठे सुरक्षा कमचारी से कहा कि वह उनको शौचालय ले जाय। मोहम्मद सिद्दीक और सिह नाम के दो हड कान्स्टेबल उनको देखते रहे। सिह दरवाजे के भीतर झाक रहा था। सावरकर ने भीतर से कुडी लगा दी। फिर भी शीशे से भीतर दखा जा सकता था। यह शीशा सावरकर के लिए विशेष प्रबन्ध के रूप मे लगाया गया था।

सावरकर के लिए समय खोने का अवसर नहीं था। इस समय तो उनके विचारा की अपेक्षा उनका काय अधिक तीव्रगति मे चल रहा था। उन्होने अपना नाइट-गाउन उतारकर उस शीशे पर डाल दिया जिससे कि बाहर का व्यक्ति उनको देख न सके। अपना जनऊ उतारकर उससे अपन शरीर की गोलाई नापी और फिर उसमे उस छिद्र की गोलाई नापी जिसस कि उनको समुद्र पर उतरना था। दोना को नाप कर और यह अनुमान लगाकर कि शरीर को कितना सिकोड कर उस छिद्र म समाया जा सकता है, उन्होने पलक झपकने जितने समय मे शरीर पर साबुन लगाया और फिर उस छिद्र मे छलाग लगा दी। पोर्ट-होल मे घुसते ही छपाक से वे समुद्र म जा गिरे और उच्च

मे निनाद किया, 'स्वात त्र्य की दवी ! तुम्हारी जय हो !"

हा ! दुदव !!

सावरकर के दुर्भाग्य स एक पुलिस अधिकारी न उनको दख लिया था। उ
शौचालय का द्वार खोलना चाहा कि तु वह भीतर स ब द था। उसन चिल्लाकर क
"भाग गया, भाग गया।" जलपोत मे एक प्रकार स कोहराम सा मच गया। चारा
म पकडो, मारो की आवाजें सी सुनाई देने लगी। कोई इधर भाग रहा था, कोई उ
दौड रहा था। सावरकर को गोलिया की बौछार सुनाई द रही थी। कुछ लोग पदल
भाग रहे थे। सावरकर की तैराकी और कूद के प्रशिक्षण की यह परीक्षा की घडी थी
सावरकर गोलियो मे बचने के लिए पानी म डुबकी लगा जाते। इस प्रकार डुबकी लगा
तैरते किसी प्रकार वे तैरकर सागर तट पर पहुँच ही गए।

यह सागर तट इग्लैंड की नही फ्रास की सीमा पर था। तट पर पहुचकर साव
कर भागने लगे कि सामने उनको फ्रेंच सिपाही दिखाइ दिया। उधर जलपोत की आर
पकडो पकडो चोर चोर का स्वर और तीव्र होता जा रहा था। सावरकर भागते
उस सिपाही के पास पहुँचे और उससे कहा कि वह उनको किसी न्यायाधीश के पास
चले। सावरकर फ्रेंच नही जानते थे, सिपाही इगलिश नही जानता था। साव
कर ने टूटी फ्रेंच भाषा म उसको समझाना चाहा। कदाचित वह समझ भी गया
सावरकर को ले भी जाता कि तभी उनका पीछा करने वाले अग्रेज सिपाही उन त
पहुँच गए। सावरकर ने वहा से भाग कर कोई सवारी करनी चाही, किन्तु उनके प
पैसा तो था ही नही। तब तक सिपाही उनके समीप पहुँच गए और उनको गर्दन
पकड लिया। गदन से खींचत हुए वे उनको जलपोत की ओर ले चले।

यह स्पष्टतया अग्रेज सिपाहियो द्वारा नियमो का उल्लघन था। कि तु वहा सु
वाला कौन था। सावरकर यद्यपि फ्रास की धरती पर थे, वहा से इग्लड के सिपा
उनको ब दी नही बना सकते थे। कि तु सावरकर का कोई सहायक वहाँ पर था नही
ब्रिटिश सुरक्षा अधिकारियो ने सावरकर को विदशी भूमि पर पुन ब दी बना लि

साथियो का असफल प्रयत्न

इस देश और सावरकर के भाग्य की विडम्बना ही कहना चाहिए कि जि
समय सावरकर को फ्रेंच पुलिस के समीप से पकडकर अग्रेज पुलिस द्वारा उनको बा
जलपोत पर लाया जा रहा था, ठीक उसी समय दूसरी ओर वी वी एस अय्य
सरदारसिह राणा और मादाम कामा आदि सावरकर के अनेक साथी उनको छुडाने
लिए सब प्रकार से सन्नद्ध होकर ब दरगाह के तट पर पहुँचने ही वाले थे कि त
उनके समीप का रेल का फाटक सहसा ब द हो गया और उन्ह लगभग आधे घण्टे त
वहीं पर प्रतीक्षा करनी पड गई। यही आधे घण्टे का विलम्ब अनर्थकारी सिद्ध हुआ।
इस प्रकार से यही आधे घटे का विलम्ब सावरकर को आधी शती का कारावास का

दण्ड भोगने का कारण बन गया।

■ जुलाई का प्रातःकाल सावरकर के इस अदम्य साहस एवं रोमांच की कहानी सभी समुद्रों को पार करके देश विदेश में प्रसारित हो गई। इस प्रकार समस्त विश्व के समाचार पत्रों में एक साथ भारत की स्वतन्त्रता का उल्लेख किया गया। एक प्रकार से सावरकर के जलपोत के पोर्ट होल से कूदने, भागने और पुनः पकड़े जाने का समाचार जंगल की आग की भांति ऐसा फैला कि अखिल ब्रह्माण्ड में इसकी ज्वालायें दिखाई देने लगीं। जिन लोगों ने भारत को सपेरा और साधु सन्तों का देश कहा था आज उनके कान खड़े हो गए, आँखें चौंधिया गई और समस्त विश्व इस हिन्दू युवक की वीरता का कृत्य देखकर स्तब्ध रह गया।

न केवल इंग्लैंड के अपितु फ्रांस, जर्मनी, रूस तथा अमेरिका के छोटे बड़े सभी समाचारपत्रों ने इस घटना को अपने मुख पृष्ठ पर प्रकाशित करने के साथ साथ अधिकांश ने इस पर अपने अग्रलेख भी लिखे। उनके पत्रों ने ब्रिटिश सरकार के प्रति आक्रोश भी व्यक्त किया। समाचार पत्रों ने सावरकर की तुलना मैजिनी, गैरीबाल्डी आदि के साथ करते हुए उनके साहस, त्याग और बलिदान की भूरि-भूरि प्रशंसा की। सावरकर द्वारा भागने के लिए किया जाने वाला यह प्रयत्न उस समय तक के ही नहीं अपितु कालान्तर में चर्चिल, डि वेलेरा और सुभाष द्वारा किए गए प्रयत्नों से सर्वथा अनुपम और अत्यन्त साहसपूर्ण था। क्रांति के इतिहास में यह आज भी अनुपमेय है।

समस्त विश्व में जहाँ सावरकर की वीरता की कहानियाँ प्रसारित हो रही थीं वहाँ इंग्लैंड के शासकों की आँखें लज्जा से नत थीं। जलपोत के पुलिस अधिकारी तो बौखला उठे थे। उन्होंने पुनः जलपोत पर लाए गए सावरकर का न जाने कभी कैसी भद्दी गालियों की बौछार से स्वागत किया, धमकियाँ दीं, तो अन्त में यह भी उनके मुख से निकल ही गया — 'ये सावरकर बन्धु न जाने किस प्रकार के बीज से उत्पन्न हुए हैं।' उस समय से एक सिपाही, भरा हुआ रिवाल्वर लिए सदा सिद्धावस्था में, सावरकर के सामने खड़ा रहने लगा। किन्तु सावरकर कब घबराने वाले थे। उस अवसर पर भी उन्होंने बड़े वीरतापूर्ण शब्दों में उन पुलिस अधिकारियों को कहा, "देखो, तुम मुझको कारागार में ले जा रहे हो, किन्तु ध्यान रखना मैं अभी भी अपनी मुक्ति के लिए प्रयत्न अवश्य करूंगा। यदि तुम लोग अपनी संतति तथा पत्नियों के साथ सुख चैन का जीवन बिताना चाहते हो तो तुम्हारे लिए अच्छा यही होगा कि न तो मेरा किसी प्रकार का अपमान करना न ही मेरे शरीर का स्पर्श करना। क्योंकि मैं तो अपने घर को पहले ही जला चुका हूँ और अपने अपमान का बदला लिए बिना मैं रहूंगा नहीं चाहे मुझे कुछ भी करना पड़ जाय। इसलिए तुम लोग भाग्यों के लिए तैयार हो जाओ।"

सुरक्षा अधिकारियों ने स्थिति की गम्भीरता को भांपा और उसके बाद वे और अधिक सावधान हो गए।

फ्रांस में प्रयत्न

अय्यर, राणा, कामा आदि ने जब देखा कि यह प्रयत्न तो असफल रहा तब श्यामजी कृष्ण वर्मा को साथ लेकर फ्रांस के प्रख्यात समाजवादी नेता तथा उस समय के मार्सेल्स के महापौर एम जारेस से मिलने के लिए गए और उनसे सम्मुख ब्रिटिश सरकार के अधिकार से सावरकर को वापस लेने की मांग की।

उनके इस प्रयत्न के परिणाम में सावरकर को तो वापस नहीं लिया जा सका हाँ फ्रांसीसी सरकार ने १६ जुलाई, १९१० के समाचार पत्रों के माध्यम से अपना यह स्पष्टीकरण प्रसारित करवाया—"सावरकर को फ्रांस की राज्य सीमा में पकड़ा गया है यह देखते हुए फ्रांसीसी सरकार ने ब्रिटिश सरकार से आग्रह किया है कि जब तक इस सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त न कर ली जाय, तब तक सावरकर के मुकदमे को स्थगित रखा जाय।"

फ्रांस सरकार इससे अधिक कुछ नहीं कर पाई। तदपि विश्व भर में अनेक स्थानों से सावरकर को मुक्त किए जाने अथवा फ्रांस सरकार को सौंपने का स्वर सुनाई देने लगा। स्वयं इंग्लैंड में सावरकर के लौटाए जाने का अभियान चल पड़ा। इंग्लैंड की अनेक संस्थाएँ, समाचार पत्र तथा विधि विशेषज्ञ इस प्रकार की बात कर रहे थे। ब्रिटिश सांसद श्री हार्डी ने दो मास बाद १० सितम्बर को कोपनहेगन में सम्पन्न अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन में सावरकर को फ्रांस के हवाले करने की जोरदार मांग की। लन्दन के अनेक महत्त्वपूर्ण पत्र 'डेली मेल', 'लन्दन टाइम्स', 'मोर्निंग पोस्ट' आदि पत्रों ने इस मांग का जोरदार शब्दों में समर्थन किया। लन्दन में ही गाय सल्ड्रे ने अपने साथियों को लेकर सावरकर मुक्ति आन्दोलन समिति का गठन कर उसके माध्यम से लन्दन की सड़कों पर पट्टियाँ, तख्तियाँ आदि लगाकर प्रदर्शन करते हुए सावरकर की मुक्ति की मांग करने लगे। इसके साथ ही वे घर घर जाकर सावरकर सहायता कोष भी एकत्रित करने लगे। उनके इस प्रयत्न के परिणामस्वरूप लन्दन स्थित किन्हीं दूतावासों ने विशेषतया रूस, पेरागुआ और पुर्तगाल आदि ने [illegible] में उनकी सहायता की।

सावरकर को फ्रांस के हवाले करने की मांग की गूंज इतनी प्रभावशाली रही कि यह लन्दन के हाउस ऑफ कॉमन्स में जाकर टकराई और २६ जुलाई, १९१० को तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमन्त्री श्री एस्क्विथ ने सदन को बताया कि फ्रांस सरकार ने सावरकर को उसे लौटा देने के विषय में पत्र भेजा है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इससे पूर्व २२ जुलाई को सावरकर को लेकर जहाज बम्बई पहुँच भी चुका था।

हेग न्यायालय का मार्ग

सावरकर को फ्रांस सरकार के हवाले करने की मांग जब [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ब्रिटिश सरकार को [illegible] [illegible]

ना। २५ अक्टूबर को लन्दन में ब्रिटेन के विदेश सचिव सर ऐडवर्ड ग्रे और लन्दन स्थित फ्रांस के राजदूत एम पाल केमबो के मध्य वार्तालाप हुआ और एक संधि-पत्र पर सहि की गई। जिसके अन्तर्गत यह निश्चय किया कि हेग के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायाधिकरण के पंच परिषद के माध्यम से यह निर्णय प्राप्त किया जाय कि अन्तर्राष्ट्रीय शरण नियम के अनुसार ब्रिटेन को सावरकर को फ्रांस सरकार के हवाले कर देना चाहिए अथवा कि नहीं। उस समय उस अन्तर्राष्ट्रीय न्यायाधिकरण के अध्यक्ष बेलजियम के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री श्री बनट थे। उनके अतिरिक्त अन्य चार सदस्यों में नोर्वे के भूतपूर्व मन्त्री एम ग्राहम, नीदरलैंड के जांकियर लोमन, इंग्लैंड के अर्ल ऑफ डिजर्ट तथा फ्रांस के एम लुई रैनाल्ड थे।

ये पाँचों महान् विधि विशेषज्ञ माने जाते थे। इन पाँच दिग्गज न्यायशास्त्रियों के सम्मुख सावरकर के एक कार्य का इतना आलोडन विलोडन अन्तर्राष्ट्रीय न्यायाधिकरण के इतिहास में अभूतपूर्व था और सावरकर वे प्रथम भारतीय थे जिनका मामला अन्तर्राष्ट्रीय न्यायाधिकरण में चर्चा का विषय बना। यह सब कुछ होने के उपरान्त भी न्यायाधिकरण की वह सारी कार्यवाही एक प्रकार से नाटक ही सिद्ध हुई। इस अभियोग की सुनवाई उस न्यायाधिकरण में १४ फरवरी १९११ को आरम्भ हुई। यद्यपि छ सूत्र के अनुसार इसके लिए केवल एक मास की ही अवधि निर्धारित की गई थी। किन्तु कहना पड़ेगा कि उस न्यायाधिकरण में सभी तो एक प्रकार से एक ही थैले के चट्टे-बट्टे थे। अतः उन्होंने केवल आठ दिन में इस मामले पर अपना निर्णय दे दिया। आठ दिन तक सुनवाई का नाटक किया गया और फिर उस सुनवाई पर बिना किसी प्रकार का विचार विनिमय किए नौवें दिन उसका निर्णय दे दिया गया। इससे यही सिद्ध होता था कि सब कुछ तो पूर्व निर्धारित ही था केवल एक औपचारिकता पूर्ण करनी थी, जो नौ दिन के नाटक में पूर्ण कर ली गई।

२४ फरवरी १९११ को जो निर्णय दिया गया उसमें आरम्भ में सारी घटना का विवरण बहुत तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत किया गया था और निर्णय के अन्त में केवल यह बात स्वीकार की गई थी कि—'यद्यपि सावरकर को मार्सेल्स में पकड़ने में थोड़ी सी अनियमितता अवश्य बरती गई थी तदपि उन्हें फ्रांस को सौंपने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।'

हेग के न्यायाधिकरण के इस अन्यायसंगत निर्णय पर संसार भर में न्यायाधिकरण और न्यायाधिकारियों की खूब भर्त्सना हुई। इंग्लैंड के 'डेली न्यूज' ने इस न्याय को 'प्रहसन' कहकर इस पर व्यंग्य किया था। एक अन्य समाचार पत्र 'मार्निंग न्यूज' ने इस निर्णय को 'पूर्व नियोजित प्रपंच' की संज्ञा दी। किन्तु एक जर्मन पत्र 'बर्लिन पोस्ट' ने तो इस निर्णय की धज्जियाँ ही उड़ा दी थीं। २५ फरवरी, १९११ के अपने अग्रलेख में उसने जो लिखा उसका एक अंश यहाँ हिन्दी में उद्धृत किया जा रहा है—

"हमने हेग न्यायालय से उचित न्याय की कभी अपेक्षा नहीं की थी। न्यायालय ने जो निर्णय दिया है उससे हमारी धारणा की पुष्टि हो गई है। सावरकर के अभियोग

के विषय म निणय दने के लिए यायाधीशो ने जिस त्वरा, निलज्जता और प्रदशन किया है वह न केवल लज्जाजनक है अपितु वह अ तर्राष्ट्रीय शरण । सरासर अपमान भी है ।"

इसी प्रकार की प्रतिक्रियाएँ बेलजियम, स्विटजरलैंड आदि के अनेक समाचार पत्रो न अपने अपने अग्रलेखो के माध्यम से व्यक्त की थी । विदेशो के अधिकांश म जहाँ इस प्रकार की प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की जा रही थी वहाँ भारत म प्रकाशित वाले अग्रेज भक्त टाइम्स ऑफ इडिया' न इस निणय की सराहना करते हुए था—

" अच्छा हुआ एक बदमाश को अपनी करनी का फल मिल गया है ।'

फ्रेंच प्रधानमत्री का त्यागपत्र

उस समय फ्रास के प्रधानमन्त्री एम बायरन थे । उन पर प्रतिक्रिया का तत्काल प्रभाव पडा । फ्रास म इस निणय पर सावजनिक कानाफूसी हो ही रही थी किन्तु सरकारी क्षेत्र भी उससे अछूते नही रहे । सावरकर वापसी के सम्बन्ध म बायरन के ढुलमुल रवैये और ब्रिटेन की तुष्टीकरण की नीति लेकर उनकी इतनी तीव्र आलोचना होने लगी कि बायरन को स्थिर रहना हो गया । उन्ही दिनों 'चैंबर ऑफ डिप्युटीज' की बैठक होन वाली थी, किन्तु इतन घबरा गये कि उस बैठक से तीन दिन पूर्व ही उन्होने अपने प्रधानमन्त्री पद त्यागपत्र दे दिया, अथवा यो कहना चाहिये कि उनको त्यागपत्र देना पड गया । व्यक्ति के कारण, जो कि उस देश का निवासी अथवा नागरिक भी नही था की प्रमुखतम कुर्सी के लडखडा कर गिर जाने का कदाचित ससार के इतिहास में अनुपम उदाहरण माना जाता है ।

जलपोत मे सावरकर

अब हम वापस जलपोत एस एस मोरिया की ओर मुडते है ।

जलपोत मोरिया मार्सेल्स स चलकर अदन पहुचा । अदन मे एक अन्य जलपोत एम एस पष्टी खडा था । जलपोत मोरिया के सभी यात्री अधिकारियो समेत सावरकर को भी एस एम पष्टी ने अपने म समेट लिया ।

मार्सेल्स स अदन के बन्दरगाह तक आते-आते सावरकर को अनेक प्रकार यातनायें दी गई । यद्यपि उनको स्पश करने का साहस किसी को नही होता था, किन्तु बिना स्पश किये भी तो शारीरिक और मानसिक यातनायें दी ही जा सकती थी । उन्हें एक छोटे स चार फुट लम्बे चौडे व्यास के केबिन म कद कर दिया गया, उसम उनको केवल खडे रहने का आदेश था । चाहे तो उस चार फीट म वे चहल कदमी भी कर सकते थे सूय की किरणें उनके लिये स्वप्न की बात हो गई थी । इन सब यातनाओं को सहते हुए कभी कभी तो सावरकर के मन म आता था कि इससे तो मर जाना कहीं

त्तम होगा। किन्तु नही ! वीर सावरकर तुरत सम्भलते और फिर तनकर खडे हो जाते।

इन कठिनाइयो मे स्वय को ढालने के लिये उन्होने मन ही मन एक कविता की रचना करनी आरम्भ की। 'नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि' गीता का यह श्लोक उन्हें स्मरण हो आया और उसी को आधार बनाकर उन्होने मराठी पद्य रचना की। जिसके आरम्भ के बोल थे—

'अनादि मी अनत मी,
अवध्य मी भला।'

मराठी के उस पद्य का जो हिन्दी अनुवाद सौ० कुसुम ताम्बे ने किया है हम उसे यहा प्रस्तुत करना प्रासगिक समझकर उद्धृत कर रहे है—

अनादि मैं, अनत मैं महान,
मार सके कौन मुझे शत्रु शक्तिवान्॥
धर्म धारणार्थ अट्टहास कर लडा।
मृत्यु के समक्ष मै डटा रहा खडा॥
खड्ग से मरा न मैं, न अग्नि से जला।
भीरु मृत्यु छोड युद्ध भागता चला॥
शत्रु भी बडा विचित्र मूर्ख है महा।
मृत्यु दण्ड से मुझे, अरे डरा रहा॥
हिंस्र सिंह पिंजरे म देख फेंक कर।
सिंह दास बन जाय पाव चाट कर॥
अग्निकुण्ड म प्रदीप्त डाल द मुझे।
अग्निशीत सुप्रभावली बना मुझे॥
हो कराल क्रूर सत्य राह छकते।
अस्त्र शस्त्र तोप बाण आग फकते॥
झेल कर उन्ह अजय मैं पचा गया।
कालकूट म निनेत्र सा रिचा गया॥

शेर पिंजरे में

बम्बई प्रत्यागमन

जलपोत एस एस मोरिया मार्ग मे बिना किसी विघ्न बाधा के बम्बई पहुंच गया। २२ जुलाई १६१० को भारतीय क्रान्तिकारियो के राजकुमार का बम्बई मे तत्परतापूर्वक स्वागत किया गया। हाथो मे हथकडी पहना कर दोनो ओर नगी तलवार ७० सिपाहियो के बीच मे उसको ले जाया गया और एक बन्द गाडी मे बैठा कर रेलवे स्टेशन और फिर उसी प्रकार की बन्द रेलगाडी मे बैठा कर नासिक के लिए रवाना किया गया। वहा उनको नासिक पुलिस के हवाले कर दिया गया। उसके थोड़े दिनो बाद उनको यरवदा कारागार मे भेज दिया गया।

मादाम कामा की पहल पर विख्यात अधिवक्ता जोसफ बेपटिस्टा ने १३ सितम्बर १६१० को यरवदा कारागार मे सावरकर से भेंट की। इससे पूर्व मादाम कामा ने बेपटिस्टा को उनकी फीस आदि अन्यान्य व्यय के लिए धन देते हुए लन्दन मे सावरकर के वकील श्री वान द्वारा तयार किए सारे कागज भी उनके पास भेज दिए थे।

सावरकर को जब लन्दन से बम्बई भेजा गया तो श्री हिण्डमन ने अपने 'जस्टिस' मे लिखा कि क्योकि सावरकर पर राजनीतिक अभियोग चलाया जा रहा है और यह सम्भव है कि उसको यहा पर ठीक प्रकार से न्याय न मिल सके इसलिए उसे भारत भेजा जा रहा है जिससे कि वह चाहे निरपराध हो अथवा अपराधी कम से कम वहा उसको उचित न्याय तो मिल जाएगा। उनकी पार्टी इसमे न तो किसी प्रकार का सहयोग कर सकती है और न ही विरोध कर सकती है। किन्तु भारत मे ब्रिटिश कुशासन के प्रति व उनसे सहानुभूति रखते हैं।

इसके अतिरिक्त बम्बई के गवर्नर ज्योर्ज क्लार्क और इंडिया आफिस के मध्य तारो और पत्रो का इस मात्रा मे आदान-प्रदान हुआ कि गवर्नर ज्योर्ज क्लार्क घबराने लगा था। वह चाहता था कि सावरकर के विरुद्ध चलाया जाने वाला अभियोग तुरन्त चलाया जाए अन्यथा विलम्ब होने से इसके परिणाम भयंकर हो सकते हैं। यहाँ तक

कि गवनर न लाड मोरल को अपने त्यागपत्र तक की धमकी ले डाली थी। किन्तु तभी लाड मोरले को भारत सचिव के पद से प्रानत कर दिया गया। नय भारत सचिव न ३१-८-१९१० को बम्बई सरकार को सावरकर के विरुद्ध अभियोग चलान की अनुमति द दी और साथ ही यह भी कह दिया कि यदि अन्तर्राष्ट्रीय अभियोग अधिकरण इसकी आवश्यकता समझे तो सावरकर को फ्रांस को सौप दिया जाए।

अन्तर्राष्ट्रीय अभियाग अधिकरण के नाटकीय निणय की बात हम पहले ही लिख आए हैं। भारत सचिव ३१-८-१९१० को सावरकर को फ्रास सरकार को सौंपने के लिए सहमत होता है और अन्तर्राष्ट्रीय न्यायाधिकरण इसके छ मास बाद २४-२-१९११ को निणय देता है कि इसकी आवश्यकता नही। अब दूसरा नाटक देखिए।

इस प्रकार निणय हो जाने पर विशेष सुरक्षा दल, विशेप गाडी विशेप नियम, विशेप वारट, विशप न्यायाधीश तथा विशेप न्यायालय नियम आदि का निमाण कर बम्बई म एक अत्यन्त विशेप न्यायाधिकरण का गठन किया गया। एक विशेपता यह भी थी कि कथित अभियुक्त का इसम अपील करने का अधिकार भी नहीं था। इस न्याया-धिकरण म बम्बई के मुख्य न्यायाधीश सर बजिल स्काट, सर एन जी चन्द्रावरकर तथा जस्टिस हीटन नियुक्त किय गये। मि० जारडिन, बम्बई क एडवोकेट जनरल, मि० वेरडन मि० वलिकर और पब्लिक प्रोसिक्यूटर, मि० निकल्सन सरकारी वकील क नात नियुक्त किए गए थे। सावरकर के बचाव के लिए तीन वकीलों की व्यवस्था की गई थी उनम थे—श्री जासफ बैपटिस्टा, श्री चित्रे श्री गाविन्दराव गाडगिल और श्री रागनकर। इन सब भारतीय विधिवेत्ताओ न स्वय अपनी सवायें समर्पित की थी। बैपटिस्टा के अतिरिक्त अन्य भी तीनो वकील अपन व्यवसाय म प्रख्यात थे। बैपटिस्टा न भी स्वय को एक प्रकार म अर्पित ही किया था। यद्यपि मादाम कामा की पहल पर वे आगे आए थे किन्तु उसकी पष्ठभूमि म तिलक का उनका सहयोगी होना मुख्य था।

सावरकर तथा उनके साथियो पर तीन अभियाग एक साथ चलाए गए। पहला अभियोग 'नासिक केस' के नाम स ख्यात सावरकर सहित ३८ अभियुक्तो पर चलाया जा रहा था। दूसर अभियोग म दो अभियुक्त थे— सावरकर और गोपाल राव पाटणकर। य दोनो अभियुक्त पहले अभियोग मे भी सह अभियुक्त थे ही। तृतीय अभियोग म सावरकर अकेले अभियुक्त थे। इन सब पर आठ विभिन्न आरोपो मे अभियोग चलाया जा रहा था। उनमे मुख्य अभियोग थे—सम्राट के विरुद्ध राजद्रोह का षड्यन्त्र और नासिक के जिलाधीश जेक्सन की हत्या के लिए प्रोत्साहित करना।

इस अभियोग मे जो सरकारी गवाह बनाए गए थे वे किसी समय म सावरकर क परमभक्त और कायकर्ता के समान थे। किन्तु सरकार न जिस साम और दाम तथा दण्ड की नीति स काम लिया उसके सम्मुख वे स्थिर नहीं रहे सके। य गवाह थे—काशी-नाथ अंकुशकर, दत्तात्रेय जोशी व०र० कुलकर्णी और चतुर्भुज अमीन। चतुर्भुज अमीन लन्दन म इंडिया हाउस का रसोइया था, जिसका उल्लेख हम पूव पृष्ठों मे कर चुके हैं कि किस प्रकार सावरकर न उस पर विश्वास करके उसके माध्यम स भारत मे २० ब्राउनिंग

पिस्तौलें भिजवाई थी और उसने पहुँचाई भी थी।

इस अभियोग के दौरान सावरकर को यरवदा जेल से बम्बई का डोंगरी जेल स्थानान्तरित किया गया। १५ सितम्बर १९१० को अभियोग रूपी यह नाटक आरम्भ किया गया। उस हाईकोर्ट की सुरक्षा के लिए ५० सशस्त्र पुलिस कर्मचारियों को चारों ओर नियुक्त किया गया। न्यायालय मे किए जाने वाले सुरक्षा कार्यों की जाँच स्वयं बम्बई के पुलिस कमिश्नर करते रहे थे। न्यायालय में केवल कुछ ही विश्वस्त समाचार संवाददाताओ को प्रवेश की अनुमति प्रदान की गई थी। सरकार ने स्वयं को सब प्रकार से सुरक्षित करके ही यह नाटक आरम्भ किया था।

भारत मे न्याय का नाटक

सावरकर ने ज्योंही न्यायालय में प्रवेश किया तो उन्हें अपनी जयजयकार के नारे लगते सुनाई दिए। उनके स्वागत में तालियाँ बज रही थीं। सावरकर को यह सब देख सुनकर बड़ा आश्चर्य हो रहा था। सावरकर ने जब इधर उधर दृष्टिपात किया तो उन्हें न्यायालय की दीर्घायें और बेंचें, सभी तो खाली दिखाई दी। फिर कौन थे वे लोग जिन्होंने तालियों और जयघोष से उनका स्वागत किया था? वे कोई अन्य नहीं उनके अपने ही सहअभियुक्त थे, जो नीचे के कटघरे में खड़े थे। अपने इस अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के नेता को उन्होंने लगातार तालियों तथा जयघोष से आल्हादित कर दिया था। संसार की राजनीति के इतिहास में यह अपनी प्रकार का एक अनुपम स्वागत था। ये वे लोग थे जो जानते थे कि वे तथा उनका नेता इस समय मृत्यु की देहरी पर खड़े हैं फिर भी उनके मन में किसी प्रकार की ग्लानि अथवा भय नहीं, अपितु उत्साह ही उत्साह था।

सावरकर ने अपने सहअभियुक्तों पर धीरे धीरे दृष्टि डाली तो उनको यह देख कर सुखद आश्चर्य हुआ कि उनमें उनका स्वयं का छोटा भाई नारायण सावरकर भी विद्यमान है। इन पाँच वर्षों में वह किशोर से तरुण हो गया था। सावरकर के मुख पर मुस्कान दिखाई दी।

न्यायालय का नाटक आरम्भ हुआ। सरकार के प्रमुख वकील चीफ प्रोसिक्यूशन औफिसर जार्डाइन अपनी कुर्सी पर से उठा और उसने अपना प्रारम्भिक वक्तव्य देते हुए बताया कि क्या इन अभियुक्तों को यहाँ लाया गया है और किन किन धाराओं के आधार पर इन पर अभियोग चलाया जा रहा है।

इस प्रकार वह सारा दिन चीफ प्रासिक्यूशन औफिसर के भाषण में ही पूरा हो गया और न्यायालय को अगली सुनवाई के लिए स्थगित कर दिया गया। अगली सुनवाई २६ सितम्बर को रखी गई और उस दिन जब कार्यवाही आरम्भ हुई तो सावरकर के वकील जोन बैपटिस्टा ने ट्रिब्यूनल के सम्मुख तर्क प्रस्तुत किया—'१८९८ के [illegible] की धारा १८८ के, जिसके अंतर्गत अभियुक्त सावरकर पर अभियोग चलाया जा रहा है तो अभियुक्त की गिरफ्तारी ब्रिटिश राज्य की सीमा के भीतर हो हुई

चाहिए। किन्तु सावरकर को तो फ्रांस की भूमि पर अवैध रूप से बन्दी बना कर भारत लाया गया है। इस अवैध रूप म बन्दी बनाए जाने के विरोध म सावरकर ने हेग न्यायालय मे प्राथना की हुई है। अत जब तक सावरकर का हेग न्यायालय का अभियोग पूर्ण नही हो जाता तब तक भारत मे मुकदमे की कायवाही को स्थगित रखा जाना चाहिए।" किन्तु ब्रिटिश सरकार के वकील और न्यायालय ने इस तर्क एव तथ्य को अमान्य कर दिया।

उस दिन की कायवाही स्थगित हुई और अगले दिन अर्थात् २७ सितम्बर की तारीख तय कर दी गई। इस प्रकार २७ और २८ सितम्बर को भी सरकारी वकील का वक्तव्य जारी रहा। उस दिन सरकारी वकील की ओर से दो सरकारी गवाहो से जिरह भी की गई। तदनन्तर जब सावरकर से उन गवाहो से जिरह करने के लिए कहा गया तो उनके वकील श्री बपटिस्टा ने पुन आपत्ति उठाई कि हेग न्यायालय के निणय तक इस न्यायालय की समस्त कायवाही असवैधानिक होगी। किन्तु न्यायालय ने उनकी आपत्ति को निरस्त कर दिया और सावरकर से जिरह करने का आग्रह किया।

सावरकर उठे, किन्तु जिरह करने के लिए नही अपितु उस सारी प्रक्रिया पर आपत्ति करने के लिए। उन्होंने न्यायाधिकरण की अधिकार सीमा को चुनौती देते हुए कहा—"मुझ पर जो अभियोग लगाए गए हैं, उनके विषय म तो मुझे कुछ कहना ही नही है। आप कहगे कि फिर मैंने लन्दन के अभियोगो मे क्यो भाग लिया था। वह इसलिए कि वहा के न्यायालय जनतान्त्रिक पद्धति पर गठित हैं। अत उनसे न्याय की आशा की जा सकती है। इसके विपरीत भारत के न्यायालयो म तो 'जनतन्त्र' और 'न्याय' कही नाम मात्र को भी दिखाई नही देता। ऐसे अविश्वसनीय और सारहीन, निरथक न्यायालय के समक्ष किसी प्रकार की जिरह करना, वक्तव्य देना अथवा अपना पक्ष प्रस्तुत करना सवथा व्यर्थ है।'

इसके उपरान्त १ अक्टूबर को पुन न्यायालय म सुनवाई आरम्भ हुई। उस दिन विदेशी सीमा पर बन्दी बनाए जाने के एक्ट, कानून, धारा आदि-आदि पर पुन वाद विवाद उठा और सावरकर को इस विषय मे कुछ कहने के लिए कहा गया तो उन्होंने पुन इस विषय म कुछ कहना अमान्य कर दिया। न्यायालय ने इस विषय म अपना निणय दे दिया कि सावरकर का मार्सेल्स की भूमि पर तथा कथित अवैध रूप म बन्दी बनाया जाना इस न्यायालय की अधिकार सीमा को किसी प्रकार भी प्रभावित नही करता।

यो मुकदमे का यह नाटक चलता रहा। इसी दौरान अभियोग पक्ष की ओर से सावरकर पर 'महामान्य सम्राट के विरुद्ध युद्ध भडकाने' का आरोप वापस ले लिया गया। इस प्रकार न्यायप्रक्रिया आरम्भ होने से पहले ही उन पर लगाया गया दूसरा अभियोग भी मृत्यु के मुख म चला गया। लगभग २०० गवाहो को सरकार की ओर म प्रस्तुत किया गया। उनम से अधिकाश ने न्यायालय के सम्मुख यह स्वीकार किया कि मजिस्ट्रेट के सम्मुख उन्होंने जो वक्तव्य दिए थे वे उनको डरा धमका कर दिलवाए गए

थे। उनको तथा उनके नाते रिश्तेदारों को सरकार तथा उसकी क्रूर, निर्मम पुलिस के अत्याचारों से किसी प्रकार की क्षति न पहुँचे, इस कारण उन्होंने वे झूठे वक्तव्य दिए थे। अतः उनको सत्य न माना जाय।

गवाही की प्रक्रिया पूर्ण होने पर अब सावरकर की बारी आई। जब मुख्य न्यायाधीश ने सावरकर से अपनी बात कहने के लिए कहा तो उन्होंने कहा, "मेरे विरुद्ध जो-जो भी अभियोग लगाए गए हैं उनके विषय में मैं नितान्त रूपेण अनभिज्ञ हूँ। मैंने लन्दन के न्यायालय में इसलिए भाग लिया था क्योंकि वहाँ के न्यायालय जनतान्त्रिक प्रणाली के आधार पर गठित हैं। ऐसे न्यायालयों से तो किसी प्रकार के न्याय की आशा की भी जा सकती है क्योंकि वहाँ न्यायाधीश और पुलिस कर्मचारियों के वक्तव्यों के आधार पर ही अपना निर्णय नहीं दे देते। किन्तु भारत के न्यायालयों की दशा उससे सर्वथा विपरीत है। मैं स्वयं को भारतीय दण्ड विधान तथा न्यायाधिकरण की सीमा से बाहर मानता हूँ। इसलिए अपने बचाव के लिए मैं कोई वक्तव्य अथवा कोई गवाह प्रस्तुत करने से इन्कार करता हूँ।"

इसके बाद वकीलों की बहस आरम्भ हुई। एक सप्ताह तक तो सरकार के एडवोकेट जनरल ही अपना वक्तव्य देते रहे। यद्यपि अभियुक्तों की सूची में वीर विनायक दामोदर सावरकर का नाम अन्तिम था, किन्तु उसने पहले इनके नाम से ही अपनी दलील प्रस्तुत करनी आरम्भ की। बचाव पक्ष को अपनी बात रखने के लिए एक सप्ताह से कुछ अधिक समय लग गया। अभियुक्त गंगाराम रूपचन्द ने अपने बचाव में अपना वक्तव्य स्वयं पढ़ कर सुनाया। इस सारी अवधि में सावरकर शान्त और स्थिर दिखाई देते थे। वे नित्य ही अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनकर आया करते थे। इस सारी अवधि में वे अपने अन्य साथियों का उत्साह बढ़ाते रहे।

६८ दिन तक इस नाटक के चलने के उपरान्त आखिर में निर्णय का भी एक दिन आ ही गया। शनिवार २३.१२.१९१० को निर्णय की तिथि घोषित की गई। उस दिन श्मशान की सी शान्ति के वातावरण में न्यायाधीशों ने अपना-अपना स्थान ग्रहण किया। मुख्य न्यायाधीश ने अपना निर्णय सुनाया और फिर दण्ड सुनाते हुए सावरकर से ही आरम्भ किया—'विनायक दामोदर सावरकर! इस न्यायाधिकरण द्वारा आपको आजन्म कारावास और आपकी समस्त सम्पत्ति की जब्ती का दण्ड दिया जाता है।' इसके बाद अन्यान्य अभियुक्तों को दिए गए दण्ड सुनाए जाते रहे।

सावरकर को दण्ड देते हुए न्यायाधीश ने यह भी कहा, 'हमने सावरकर को, जनता को सरकार और सम्राट के विरुद्ध भड़काने का दोषी पाया है। उसने यह कार्य अपने वक्तव्यों, भाषणों, पत्रकों तथा शस्त्रों के वितरण एवं विस्फोटक द्रव्यों के निर्माण के लिए प्रेरित करने के माध्यम से किया है। इस प्रकार वह भारतीय दण्ड संहिता की धारा १२१ अ के अन्तर्गत अपराधी सिद्ध होता है। हमने उसको अन्यान्य अभियुक्तों के साथ षड्यन्त्र में सम्मिलित होने तथा भारत सरकार एवं स्थानीय सरकार के विरुद्ध अवैधिक कार्य करने का दोषी पाया है।

इस प्रसिद्ध नासिक षडय त्र अभियोग म शकर वद्य, विनायक वरवे तथा विनायक फुलम्ब्रिकर को अभियोग आरम्भ होने के तुर त बाद मुक्त कर दिया गया था। विनायक गधानी, रामच द्र कोठे, गोविंद वापट, हरि थाट, त्र्यम्बक जोग, शकर महाजन, मुकु द मोघे तथा केशव परांजपे को बाद म दोषमुक्त घोषित कर दिया गया। शेष २६ अभियुक्तो मे म किसी को ६ मास स आरम्भ कर किसी को १५ वष तक का कारावास का दण्ड घोषित किया गया।

निणय सुनाने के उपरा त जब यायाधीश उठे तो तुर त ही सावरकर के साथ अ य अभियुक्त भी उठे और उनके मुख स 'स्वात य लक्ष्मी की जय' का निनाद घोषित हुआ। 'व द मातरम' 'भारत माता की जय' के घोषा से सारा वातावरण निनादित होन लगा। यायाधीश यह सब सुनकर एक बार ता डर गए। सबन पीछे मुडकर देखा। तुर त ही पुलिसकर्मी भीतर घुस आए। कठघरे पर खडे सावरकर न अपन छाट भाई नारायण सावरकर को हाथ हिलाकर विदा करना चाहा कि तु पुलिस न नही करने दिया।

६८ दिन तक चलन वाल इस नाटक क अ तिम दिन जब अगले दिन के लिए निणय की तिथि घोषित की गई थी। ता उसी रात्रि का सावरकर ने अपने कारागृह म एक कविता की रचना की। उनका स्पष्ट आभास हो गया था कि इस यायप्रक्रिया म क्या हान वाला है और उनको किस प्रकार का दण्ड दिया जायेगा।

'पहिला हफ्ता' शीषक से उस रात्रि म उ होने जो कविता रची उसका मराठी का एक अश था—

सारथी जिचा अभिमानी,
कृष्ण जी आणि राम सनानी।
अशि तीस कोटि तव सना,
ती अह्मा विना थाबना।
परि करुनि दुष्ट दलदलना।
रोविलची स्वकरी,
स्वत त्र्याचा हिमालयावरि,
झडा जरतारी ॥ जननी० ॥

इसका हि दी भावाथ है—'जिस राष्ट्र क रथ क सारथी भगवान कृष्ण हो, जिस राष्ट्र क पास राम जैसा सेनानी हो, जिसकी तीस कोटि सना हो, उस राष्ट्र की प्रगति हमारे बिना नही रुक सकती। वहाँ निश्चय ही रिपुओ का दमन करके हिमालय के शिखर पर स्वत त्रता की पताका लहारायेगी।'

एक ज म दो आजन्म कारावास

जीवन की यह त्रासदी और यायालय का नाटक यही पर पूण नही हो गया। लोर्ड हार्डिंग की भारत सरकार और लोड सिडनीहम की बम्बई सरकार सावरकर को

एक आजन्म कारावास का दण्ड देकर ही सन्तुष्ट नहीं रह पाई। उसने सावरकर पर दूसरा अभियोग आरम्भ कर दिया। २३ जनवरी १९११ को पुन उसी न्यायाधिकरण मे 'जक्सन की हत्या के लिए प्रोत्साहन' के आरोप मे अभियोग आरम्भ हुआ।

सर्वप्रथम एडवोकेट जनरल ने अपना पक्ष प्रस्तुत किया। उसके अनन्तर सावरकर को कठघरे से 'बार' पर लाया गया जिससे कि वे अपना पक्ष प्रस्तुत कर सकें। सावरकर ने पुन उसी प्रकार कहा कि व इन सब विषयो से अनजान हैं और इस अपराध से उनका सीधा अथवा अन्य किसी प्रकार का सम्बन्ध नही है। उन्होंने कहा कि न्यायालय के पास मेरे विरुद्ध जो एकमात्र प्रमाण प्राप्त है वह है मेरा पत्रक 'वन्दे मातरम्' जिसे वेंगिरिराव के पास पाया गया बताया जाता है। किन्तु उसका भी तो जक्सन की हत्या स कोई सम्बन्ध है ही नही। क्योंकि प्रमाणो से यह पुष्ट हो गया है कि वह पत्रक जैक्सन की हत्या के उपरान्त लन्दन स डाक द्वारा भारत भेजा गया था। न ही कोई इस बात का प्रमाण उपलब्ध हुआ कि जिस पिस्तौल स जक्सन की हत्या की गई थी उसे मेरे द्वारा अपन रसोइए चतुर्भुज के माध्यम म भारत भेजा गया था।

इन सब विसगतियो के होते हुए भी न्यायाधिकरण न केवल आठ दिन तक न्यायालय की कार्यवाही चला कर ३० जनवरी १९११ को सावरकर को पुन एक अन्य आजन्म कारावास का दण्ड द ही दिया। अभिप्राय यह है कि एक व्यक्ति को एक ही जन्म म दो आजन्म कारावास का दण्ड। सावरकर न यह निर्णय सुना तो व उठे और गरज कर घोषणा की—'यह निश्चय है कि कष्ट और त्याग तथा बलिदान से ही मेरी मातृभूमि विजय की ओर अग्रसर होगी। भले ही इसम थोडा समय लग जाएगा। इसलिए मैं यह सब सहने के लिए उद्यत हूँ।'

उन्होंने अपने साथी के कान म भी इससे पहले कुछ इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग करते हुए कहा था—मैं इस अन्याय दण्ड को भी केवल इसलिए भुगतने को तयार हूँ क्योंकि स्वातन्त्र्य लक्ष्मी की प्राप्ति के मार्ग म तप, त्याग और बलिदान नितान्त आवश्यक होता है।

एक जीवन मे दो आजन्म कारावास। आश्चर्य! किन्तु यह बात तत्कालीन लॉ रिपोर्टर म प्रकाशित नही की गई। कदाचित सरकार, न्यायाधीश आदि अपनी मूर्खता को भलीभाति समझते होंगे।

ब्रिटिश सरकार ने सावरकर के विषय म निर्णय करने म न्यायाधिकरण को शीघ्रता करने का आग्रह किया था अन्यथा न्यायाधिकरण की कार्यवाही कम स कम २५ अक्टूबर १९१० तक तो स्थगित की ही जा सकती थी। क्योंकि उस दिन ब्रिटिश सरकार के विदेश सचिव एडवर्ड ने फ्रेंच जनतन्त्र के राजदूत एम० पौल के साथ एक समझौते म हस्ताक्षर किए थे जिसमे उसने यह स्वीकार किया था कि सावरकर का अभियोग अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय हेग को सौंप दिया जायगा। विदेश सचिव ने यह समझौता किया नही था अपितु उसको करना पडा था। क्योंकि फ्रांस की सरकार ... पर दबाव डाल रही थी। उधर ब्रिटिश प्रेस और फ्रांस की जनता म भी

ब्रिटिश सरकार की खूब आलोचना हो रही थी। इस समझौते का उल्लेख हम यथास्थान कर आए हैं।

न केवल इतना सभी देशों के राजदूत भी ब्रिटिश सरकार के रवैये से अप्रसन्न थे। स्पेन के सहायक राजदूत पैरागुवे के सहायक राजदूत कलकत्ता में पातगाल के राजदूत आदि सभी ने फ्रांस सरकार की सावरकर की माँग को उचित और न्यायिक बताया था। अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के आधार पर इस विषय में स्थानीय नहीं अपितु अन्त-राष्ट्रीय नियमों का ही पालन किया जाना चाहिये था, यह बात भी फ्रांस के पत्रों में खूब उछाली गई थी। यहाँ तक कि योरोपियन प्रेस ने भी फ्रेंच प्रेस के अनुरूप ही कार्य किया था। अत फ्रांस सरकार को भी विवश होकर सावरकर की माँग प्रस्तुत करनी पड़ी थी।

जब यह मामला ब्रिटिश पार्लियामेंट में उठा तो ब्रिटिश प्रीमियर एस क्विथ ने २६ जुलाई, १६१० को घोषणा की कि इस विषय में अन्तर्राष्ट्रीय विधि विधान कुछ स्पष्ट नहीं है। सावरकर को जब यरवदा कारागार में इस विषय में ज्ञात हुआ तो उन्होंने किसी प्रकार अपने साथियों के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय विधि विधान की स्पष्टता का प्रमाण जुटवा कर अपने मित्रों को फ्रांस में भिजवा दिया। उनका वह वक्तव्य समस्त संसार के पत्रों में प्रकाशित भी हो गया। इससे सावरकर के फ्रांस सरकार को वापस करने की माँग ने बड़ा जोर पकड़ लिया था। फ्रांस के तो सभी पत्रों ने सावरकर की वापसी की माँग कर दी थी। सितम्बर १६१० में कोपेनहागन में जो सोशलिस्ट कांफ्रेंस हुई थी, उसने भी जोरदार शब्दों में सावरकर को फ्रांस को सौंपने की माँग को दोहराया था। इन सब बातों के कारण ही ब्रिटिश सरकार को वह समझौता करना पड़ा था। यहाँ तक कि इस विषय में इंग्लैंड में भी सब कुछ सरकार के पक्ष में ही नहीं था। किन्तु जैसा कि हम पहले ही लिख आए हैं तत्कालीन फ्रेंच प्रधानमन्त्री इस सबको देखकर डर गया। वह ब्रिटिश सरकार से मित्रता को अधिक महत्व देता था। परिणामस्वरूप वह यदि सावरकर को वापस नहीं माँग सका तो स्वयं भी प्रधानमन्त्री के पद पर नहीं रह सका। उसे विवश होकर प्रधानमन्त्रित्व से त्यागपत्र देना पड़ गया।

हेग के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में सावरकर का अभियोग १६ फरवरी, १६११ को आरम्भ हुआ। फ्रांस के राजदूत और ब्रिटिश विदेश सचिव के मध्य हुए समझौते की धारा ६ के अनुसार यह अपेक्षा की जा रही थी कि कम से कम इसके निर्णय में एक मास का समय तो लगेगा ही, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने भी कुछ ही बैठकों में इस अभियोग को समाप्त करने की त्वरा दिखाई।

हेग न्यायालय ने २४-२-१६११ को अपना निर्णय दे दिया। यद्यपि उसने अपने निर्णय में यह भी स्वीकार किया कि—"सावरकर को बन्दी बनाने और उसको ब्रिटिश पुलिस को सौंपने में अनियमितता बरती गई है, इसे स्वीकार किया जाता है।" इसके अतिरिक्त शेष सारा निर्णय ब्रिटिश सरकार के पक्ष में ही दिया गया था। क्यों न दे, आखिर थे तो वे सभी एक ही थैली के चट्टे-बट्टे।

हेग न्यायालय के निर्णय को सुनकर स्वतन्त्रता प्रिय समाचार जगत् में हलचल मच गई। विश्व के विभिन्न भागों में ही नहीं अपितु स्वयं लन्दन के पत्रों में इस निर्णय की कटु आलोचना हुई और कहा कि 'न्यायालय ने शरणागत के अधिकार को काटकर रख दिया है। केवल भारत में एक 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने ही प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा था 'आखिर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने ब्रिटिश सरकार का मान रख ही लिया।' इस प्रसंग में उसने सावरकर पर भी निम्न प्रकार की भाषा का प्रयोग करते हुए अनेक आरोप लगा दिये थे।

यद्यपि ब्रिटिश न्यायालय और अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में सावरकर के अभियोग को अन्तिम रूप दे दिया गया था किन्तु उनके साथी इसका अभी अन्त नहीं मानते थे। सावरकर के मित्र श्यामजी कृष्ण वर्मा और पत्रकार गॉय ए अलड्रेड अभी भी उनकी मुक्ति के लिये प्रयत्नशील थे। किन्तु यह प्रयत्न उस समय टूट गया जब प्रथम विश्व युद्ध के आरम्भ होने पर अलड्रेड को तो युद्ध के विरुद्ध प्रचार के आरोप में बन्दी बना लिया गया और श्यामजी कृष्ण वर्मा को फ्रांस से भागकर जिनेवा में शरण लेनी पड़ी। किन्तु उस सारी अवधि में भी श्यामजी ने सारे योरोप में सावरकर की मुक्ति के लिये प्रयत्न का वातावरण तैयार कर लिया था। उसी का यह परिणाम था कि इटालियन रिपब्लिकन पार्टी ने श्यामजी कृष्ण वर्मा को यह आश्वासन दिया था कि वे सावरकर की मुक्ति के लिये प्रयत्न करते रहेंगे और उन्होंने अपनी अक्टूबर १९१२ की विशाल सभा में इस प्रकार का प्रस्ताव भी पारित करवा लिया था।

जो भी, सावरकर का ही वह व्यक्तित्व था जिसने अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में भी तहलका मचवा दिया था। उनका यह अभियोग अपनी प्रकार का एक अप्रतिम, अनुपम तथा ऐतिहासिक अभियोग था। जो न आज तक लड़ा गया और कदाचित भविष्य में भी न लड़ा जा सके। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में प्रथम बार तभी भारत के विषय में विचार विमर्श हुआ था। सावरकर के लिये ही फ्रांस के प्रधानमन्त्री को अपना पद छोड़ना पड़ा था यह भी स्वयं में एक अनूठा उदाहरण था।

सावरकर की प्रतिक्रिया

हेग न्यायालय के निर्णय के अवसर पर सावरकर बम्बई के डोंगरी कारागार में ही थे। उन्हें किस प्रकार यह सूचना मिली और उस समय उन्होंने क्या प्रतिक्रिया व्यक्त की आदि विषयों पर स्वयं श्री सावरकर ने अपनी पुस्तक 'मेरा आजन्म कारावास' में जो लिखा है उसके अंश यहां उद्धृत किये जा रहे हैं—

मुझे जेल के एक सरकारी अधिकारी ने आकर बताया 'आपको पचास वर्ष के काले पानी का दण्ड दिया गया है। हेग के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने यही निर्णय दिया है कि अंग्रेजों को बाध्य नहीं किया जा सकता कि वे आपको फ्रांस के हाथों सौंप दें।'

'ठीक है। मैं भी स्वयं हेग न्यायालय में कोई बहुत आशायें नहीं रखता था।

रन्तु क्या मुझको इस निणय की प्रति देखने को किसी प्रकार उपलब्ध हो सकती है ?"

मेरे ऐसा पूछने पर उसन कहा, "यह बात यद्यपि मेरे वश मे नही है। तदपि आपके लिय मुझसे जो कुछ भी बन पडेगा वह मैं अवश्य करन का यत्न करूगा। फिर भी इतनी लम्बी सजा का समाचार, जो मुझ जसे सरकारी व्यक्ति के भी हृदय को विदीण करने वाला है, आपन जिस धय से सुना उस देखकर मैं यह स्वीकार नही कर सकता कि आप किसी सहायता और सहानुभूति की अपेक्षा रखते हों।"

"मैंन कहा, मरे लिय इतनी लम्बी सजा का यह समाचार इसलिय आश्चय-जनक नही है क्योकि पहले से ही सोच समझ कर और इन सब परिणामो एव सकटो का अनुमान लगाकर ही तो हम इस काय क्षेत्र मे उतरे थ। इसलिय मेरा दृढ रहना स्वाभाविक ही है। यदि आप भी मेरी जसी परिस्थिति म होते तो उस समय आप भी इसी प्रकार धैय धारण कर लेते। आपकी सहानुभूति और सहायता के लिए मैं आपका आभारी हूँ।

'हमारा वार्तालाप समाप्त भी नही हुआ था कि तभी किसी के उस ओर आन की आहट सुनाई दी। आहट सुनकर वह अधिकारी वहा स दूसरी दिशा की ओर चल दिया और मैं अपनी कोठरी के भीतर कुछ पीछे को हटकर खडा हो गया। जिनकी आहट सुनाई दी थी वे कुछ ही क्षणो म मरी कोठरी के द्वार तक पहुँच गय। उनके साथ आये अधिकारी न द्वार खोला और मरे सामने भोजन परसवा दिया।"

सावरकर की अब तक की स्थिति आज से भिन्न थी। अब तक उनका विषय न्यायालय के निणयाधीन था इस कारण न तो उनको तब तक बन्दी की पोशाक दी गई थी और न उनको दिया जाने वाला भोजन ही दिया जाता था। इस कारण उस दिन भी वही भोजन आया था जो अब तक नित्य आता रहता था। किन्तु सावरकर समझते थे कि अब जब हेग न्यायालय का निणय आ गया है तो उनके वस्त्र और भोजन दोनो ही बदले जाने चाहिये थे। किन्तु सम्भवतया शासकीय आदेश अभी तक कारागार म नही पहुँच पाया था, इस कारण सब कुछ पूर्ववत् चल रहा था।

सावरकर जब भोजन करने बठे तो उन्होंने उसमे स किसी भी विशिष्ट पदाथ को नही छुआ केवल साधारण दाल रोटी ही खाई। अधिकारी ने जब यह देखा तो उसने कहा, 'आप य विशिष्ट व्यजन क्यो नही खा रहे हैं?"

उसे उत्तर देते हुए सावरकर ने हसकर कहा, "मै वही पदाथ खा रहा हू जो सामान्य बन्दी को मिला करते हैं। कल से जब मुझे बन्दियो की ही भाति खाना और काम आदि करना है तो फिर आज ही इन विशिष्ट पदार्थो को क्यो खाऊ ? बन्दियो वाले भोजन का अभ्यास आज से ही कर लेना उपयुक्त होगा।"

उसी समय कारागार का अधीक्षक आ गया और उसने बडी ही सहानुभूति के स्वर म सावरकर स कहा, "अब आपको पचास वष का दण्ड सुना दिया गया है इस लिए अब आपको बन्दियो के वस्त्र और भोजन दिया जायगा।"

यह कहकर उसने उनको बन्दियो के वस्त्र द दिए और उनके निजी वस्त्र उतरवा

लिए । उस समय सावरकर के मन म विचारो की तरगें उठने लगी । व सोचन लगे कि कदाचित य वस्त्र शायद अब उनक शरीर म कभी नही उतरेंग । पचास वष कोई छोटी अवधि नही होती । अब तो इन्ही वस्त्रो मे उनको मत्यु का वरण करना होगा । तभी उनकी विचारतन्द्रा को भग करते हुए एक सिपाही न आग बढकर उन्ह एक लोहे का बिल्ला पकडा दिया ।

वह बिल्ला प्रत्यक बन्दी को अपन सीन पर लगाकर रखना होता है । उसम बन्दी का क्रमाक दण्ड दिय जान की तिथि क साथ साथ मुक्ति की तिथि भी अकित होती है । सावरकर के बिल्ले पर क्रमाक ३२७७८—डी अकित था । 'डी' स अभिप्राय था डेन्जरस, अर्थात भयावह । सावरकर अपनी मुक्ति की तिथि दखकर सोचन लगे कि क्या उनकी मुक्ति की तिथि भी आयगी ? उनके लिय तो मत्यु ही मुक्ति होगी ।

कारागार अधीक्षक कदाचित उनकी भावना को भाप गया था । उसने कहा 'चिन्ता की बात नही है । दयालु सरकार आपको १९६० म अवश्य मुक्त कर दगी ।

सावरकर ने उसके कथन का उपहास करत हुए कहा था "किन्तु सरकार से अधिक दयालु मत्यु है । वह यदि मुझे उससे पहल ही मुक्त कर दे तो ?"

अधीक्षक मुख दखता रह गया । सावरकर ने फिर कहा, 'मैं न्यायाधीश महोदय को कम से कम इस बात के लिए तो बधाई देता हू कि उन्होन एक जीवन म दो जीवनो के कारावास का दण्ड देकर हिन्दुओ के पुनजन्म के सिद्धात को मान लिया है ।

बन्दी जीवन

अब सावरकर अभियुक्त नही, बन्दी घोषित कर दिए गए थे । उस दिन स उनका बन्दी का जीवन आरम्भ हो गया । दूसर दिन प्रात काल जमादार न आकर कहा 'यद्यपि आपका दण्ड आरम्भ हो गया है तदपि साहब ने कहा है कि मैं आपको नित्य की भाँति भ्रमण और व्यायाम के लिए ले जाऊ ।"

यह भ्रमण और व्यायाम तो एक बहाना मात्र था । वास्तव म सावरकर क कोठरी से बाहर जात ही उनका सब व्यक्तिगत सामान वहाँ से निकाल लिया गया । कमर का भली प्रकार छानबीन कर पुलिस उनक वस्त्र और पुस्तकें तथा अन्यान्य वस्तुएँ वहाँ स ले गई ।

बाद म उन सब वस्तुओ को नीलाम कर दिया गया । सावरकर की सारी चल अचल सम्पत्ति जिसे सत्ताईस हजार रुपए की आका गया था जब्त कर ली गई । उनकी ही सम्पत्ति नही यहाँ तक कि उनके श्वसुर की भी सम्पत्ति जौहर राज्य के नवाब के आदेश म जब्त कर ली गई थी । सावरकर के नासिक वाल घर के खाना पकान क बतन तक जब्त कर लिए गए और उनकी भाभी को घर से बाहर निकाल दिया गया । हाँ सावरकर का चश्मा अवश्य उनको कुछ दिन बाद लौटा दिया गया था । शेष सब कुछ नीलाम कर दिया गया ।

बन्दियों का जीवन आरम्भ होन ही सावरकर को रस्सी बटन का काम और

दिया गया। आरम्भ में तो यही कहा गया कि जितनी बट सकें वे बटें।

डोंगरे कारावास में सावरकर को उसी कमरे में रखा गया था जिसमें कभी लोकमान्य तिलक रहे थे। यह बात सावरकर को दण्ड का निर्णय होने के बाद हवलदार ने बताई थी। उन दिनों सावरकर को जेल के कर्मचारी 'राव साहब' कह कर सम्बोधित किया करते थे।

अभियुक्त और बन्दी इन दोनों के ही बाहरी और भीतरी वातावरण में अन्तर होता है। सावरकर के लिए भी यह स्वाभाविक ही था। बन्दी बनने के उपरान्त वे अब एकाकी सा अनुभव करने लगे थे। किन्तु उस एकाकीपन को दूर करने के लिए उनके मन में भाँति भाँति की योजनायें बनने लगीं। उस योजना में वे सोचने लगे कि कुछ ऐसा किया जाय जिससे जीवन सार्थक हो सके मातृभूमि का कुछ तो ऋण उतरे और कुछ मानवता की भी सेवा हो जाय।

किन्तु किया क्या जा सकता है?' सावरकर ने क्रांतिकारी राले से लेकर क्यूगापौटकिन पर्यन्त अनेक आजीवन कारावास का दण्ड भोगने वाले महान क्रांतिकारियों के चरित्र का स्मरण किया। पिलग्रिम्स प्रोग्रेस के लेखक के लिए तो जेल में सभी प्रकार की लेखन सामग्री आदि उपलब्ध थी। किन्तु सावरकर तो पेंसिल कागज के नाम पर कुछ भी नहीं रख सकते थे, आखिर वे 'भयावह' बन्दी थे।

अपने बाल्यकाल में ही सावरकर की इच्छा थी कि मराठी में कोई 'महाकाव्य' रचा जाय। क्या और कैसे लिखा जाय यह कल्पना तब उनके मन में नहीं थी। आज भी वे 'महाकाव्य' नाम के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं जानते थे। फिर भी अब लिखना तो निश्चित कर ही लिया था। मन ही मन कविता रच कर उसे कंठस्थ करने का विचार आते ही उन्होंने अपने कारावास के दिनों की गणना की और फिर निश्चय किया कि प्रति दिन दस-बीस कवितायें रच कर उन्हें कंठस्थ करके इस अवधि में एकाध लाख कवितायें तो रची ही जा सकती है।

इतना निश्चय कर लेने पर उन्होंने सर्वप्रथम गुरुगोविन्दसिंह के जीवन पर कविता रचना आरम्भ किया। गोविन्दसिंह के प्रति उनके मन में विशेष श्रद्धा थी। वे उन्हें हुतात्माओं के मुकुटमणि मानते थे। सावरकर के हाथ तो रस्सी पर काम करते थे और मन कविता की रचना करता था। इस प्रकार पहले ही दिन उन्होंने दस बारह कवितायें रच कर कंठस्थ कर लीं। कालान्तर में वे संक्षेप में दीवार पर कविता लिखते और उसे कंठस्थ कर लेते।

एक दिन सावरकर अपनी कोठरी में बैठे थे कि दरवाजे के सींकचे से अन्दर झाँकते हुए किसी ने उनसे कहा,—"क्यों बैरिस्टर! सब ठीक है न?"

'जी हाँ, आपके आशीर्वाद से सब ठीक है।"

'आपके आशीष से' सुनने पर वह बोला, "अरे महाराज! कहाँ आप जैसी विभूति और कहाँ मैं तुच्छ व्यक्ति।"

उसने सावरकर को बताया कि यारोप में उसका एक मित्र लौटकर आया है

और वह कहता है कि यहाँ तो सावरकर के नाम की बड़ी धूम है। सब लोग उनको निर्दण्ड का विरोध करते हैं। सावरकर को यहाँ देशभक्त, बलिदानी आदि सम्मानजनक शब्दों से सम्बोधित किया जाता है। केवल भारत के एंग्लोइंडियन समाचार पत्र ही उनके लिए अपमानजनक भाषा का प्रयोग करते हैं। उसने यह भी कहा कि उसका वह मित्र सावरकर से मिलना चाहता है। किन्तु यह तो सम्भव नहीं है। अतः उसको बता दिया गया है कि सावरकर के प्रातःकाल व्यायाम करते समय वह सामने के मकान पर जाकर दूर से ही उनके दर्शन कर सकता है।

उस अधिकारी के उस मित्र ने कब सावरकर के दर्शन किए यह उनको ही मालूम होगा। प्रातः व्यायाम करने के उपरान्त उनकी कोठरी का द्वार बन्द होता और दस बजे काम पर जाने के लिए वह खुलता। इस नियम का कठोरता से पालन किया जाता था।

पत्नी से भेंट

सावरकर अपनी कोठरी में एकाकी बैठे कविता रचते रहते थे। उस एकान्त कोठरी के छप्पर में एक छिद्र हो गया था। चिड़िया उसमें से तिनके निकाल निकाल कर अपने घोंसले बनाने लगी तो वह छिद्र धीरे धीरे बड़ा होता गया। तभी एक दिन सहसा उस छिद्र के माध्यम से एक कपोत युगल सावरकर की कोठरी में प्रविष्ट हो गया। इस प्रकार उस कोठरी में कभी कभी वे एक से तीन हो जाते। यद्यपि जब जब भी वह कपोत युगल भीतर आता उस समय सावरकर की विचारतन्त्री टूट जाती कविता में व्यवधान पड़ता, किन्तु सावरकर को यह भी अच्छा लगता। इससे एकान्त वातावरण में कुछ तो परिवर्तन हो जाता।

इस प्रकार एक दिन सावरकर उस कपोत युगल को देख रहे थे कि सहसा उनकी कोठरी का द्वार खुला। सावरकर समझ गए कि कुछ न कुछ विशेष बात होगी, जो यह असमय में उनका द्वार खुल रहा है। सावरकर उत्सुकता से द्वार की ओर देख रहे थे कि हवलदार ने भीतर प्रविष्ट होकर कहा, 'चलो तुम्हें साहब ने बुलाया है।'

निमित्त चाहे जो भी हो, किन्तु उस काल कोठरी से बाहर जाने का अवसर तो उनको मिल गया था। उन्होंने तुरन्त उत्तर में कहा, "चलो।" यद्यपि उनके मन में प्रश्न उठा होगा कि साहब ने क्यों बुलाया है। उनकी इच्छा हवलदार से भी यह प्रश्न करने की हुई होगी, किन्तु तदपि उन्होंने कुछ नहीं पूछा और कुछ क्षण उपरान्त स्वयं ही हवलदार ने कहा 'शायद आपकी मिलाई आई है।"

सावरकर हवलदार के साथ जेल कार्यालय पहुँचे तो उन्होंने देखा कि बराबर में मिलाई के स्थान पर जो खिड़की बनी है उसके बाहर उनकी पत्नी और उसका भाई खड़े हैं। सावरकर तो उनको देखते ही पहचान गए थे। चार वर्ष पूर्व जब वे बैरिस्टरी करने के लिए लन्दन के लिए प्रस्थान कर रहे थे तो उस समय भी उनकी पत्नी उनको विदा करने के लिए आई थी। उस समय कदाचित सावरकर के मन में होगा कि

रिस्टरी उत्तीर्ण कर लेने के उपरान्त वे शानदार वेशभूषा में बड़े गर्व से बम्बई की रती पर आकर अपनी पत्नी से सोल्लास मिलेंगे। कदाचित् उनकी पत्नी के मन में उस समय कुछ इसी प्रकार की कल्पनायें उड़ान भर रही होंगी कि लन्दन से लौटने उपरान्त उनके पति खूब धन कमायेंगे और उनका जीवन सुख-चैन से बीतेगा।

किन्तु आज ! कारागार के वस्त्रो में, पैरो मे मोटी मोटी लोहे की बेड़ियाँ डाले भत्स रूप में वे सामने खड़े थे। वे दोनो सीकचों के पास होने पर भी सावरकर का र्श तक नही कर सकते थे। भाँति भाँति के विचार सावरकर के मन में उठे होंगे। और यही दशा उनको देख कर उनकी पत्नी की हुई होगी। रामायण में तुलसीदास ने प वाटिका मे राम जानकी के प्रथम दर्शन के अवसर का वर्णन करने का यत्न किया और जब वे उसका समुचित वर्णन करने में असमर्थ रहे तो उनके मुख से सहसा कल पड़ा—

'गिरा अनयन नयन बिनु बाणी।'

अर्थात् जो आँखें देखती हैं वे वर्णन नही कर सकती और जो वाणी बोल सकती वह देख नही सकती।

ठीक यही दशा उस समय सावरकर और उनकी पत्नी की हुई होगी। इस दारुण य का वर्णन या तो कोई तुलसीदास ही कर सकता है या फिर स्वयं सावरकर कर कते थे। अत अपनी पुस्तक 'माझी जन्मठेप' में जो कुछ उन्होंने उस भेंट का वर्णन या है उसका हिन्दी सारांश यहाँ प्रस्तुत करना उपयुक्त समझ कर हम उसे उद्धृत कर हैं—

"वे दोनो सीकचों के पीछे खड़े थे मेरा स्पर्श भी नही कर सकते थे। जेल डरो का सख्त पहरा था। मन में भाँति भाँति के विचार उमड़ पड़े। लगने लगा ास वर्ष अर्थात् आजन्म वियोग के पूर्व की यह अन्तिम विदाई है वह भी विदेशी, स क्रूर निष्ठुर अंग्रेजी शासकों के कारागार के कक्ष में। ऐसी भेंट तो सम्भवतया न हो सके। आकाश के बादलो के समान क्षणभर मे ही मेरा हृदय विचारो से भर या। किन्तु दूसरे ही क्षण जब उन लोगो से आँखें मिली तो मेरे विचारो के बादल ट गए। उनकी व्यथा को कम करने के लिए मैं हँसा और नीचे बैठ गया। मैं बोला—

'क्या आप लोगो ने मुझे पहचान लिया ? ये वस्त्र दूसरे हैं किन्तु मैं तो वही । वैसे भी यह कारागार के वस्त्र यहाँ की आवश्यकता की पूर्ति और ठण्ड से बचाव के ए अच्छे होते हैं। ईश्वर ने चाहा तो हमारी पुन भेंट होगी। यदि कभी बिछोह सताने गे तो एक क्षण के लिए विचार करना कि बच्चे उत्पन्न कर उनका पालन पोषण रना, घर बनाना आदि आदि ही यदि जीवन है तो यह तो कौवे और चिड़िया भी रती रहती है। किन्तु यदि तुम परिवार का व्यापक अर्थ ग्रहण करो तो हम भी तो वाह सूत्र मे बँध कर परिवार तो बसा चुके हैं। हमने यदि अपने दो चार परिवारों को ट में डालकर उन्हें नष्ट भी कर डाला है तो उसका एकमात्र उद्देश्य तो यही था कि विष्य में कदाचित् सहस्रों सहस्रों परिवारों को उसका सुफल प्राप्त होगा।

"धैर्य से संकटों का सामना करना ही जीवन है। सुना है कि अण्डमान में कुछ दिनों बाद वहीं पर परिवार बुला लेने की अनुमति मिल जाती है। यदि यह सम्भव हो पाया तो बहुत ही उत्तम होगा अन्यथा ऐसी धारणा करनी चाहिए कि जिससे सब कुछ सहन करने की शक्ति प्राप्त हो सके।"

'पत्नी और साला कहने लगे, 'इन कष्टों को सहन करने के लिए प्रयत्न तो कर ही रहे हैं। हम तो परस्पर मिलकर इन कष्टों को किसी न किसी प्रकार सह लेंगे। आप हमारी चिन्ता न करें। स्वयं के विषय में चिन्ता करें, अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखें। आपके निश्चिन्त होने पर ही हम निश्चिन्त हो पायेंगे।'

"हम बातचीत कर ही रहे थे कि सुपरिन्टेन्डेंट ने आकर बताया कि भेंट का समय समाप्त हो गया है। तब मन की बात मन में और मुख का वाक्य मुख में ही रह गया। जाते जाते साले ने मुझसे भगवान का नित्य स्मरण करने का आग्रह किया। मैंने उन्हें आश्वस्त किया। उन्होंने घर की ओर मुख फेरा तो मैंने जेल की ओर। "मैंने बाद मैंने उनकी ओर मुड़कर नहीं देखा। विपरीत इसके मैं अपनी बेड़ियाँ खनकाता हुआ इस प्रकार चलने लगा मानो उन बेड़ियों का भार मेरे लिए कुछ नहीं है, यह बात वे समझ जायें।"

इस प्रकार भेंट समाप्त हुई और हवालदार उनको लेकर उनकी कोठरी में गया और द्वार बन्द करके चल दिया। सावरकर की शक्ति आज बहुत क्षीण हो गई थी। भीतर पहुँचते ही वे लेट गए। ऊपर मुंडेर पर कबूतर के दो बच्चे आपस में कुछ तकरार सी कर रहे थे। प्रातःकाल उनकी माँ को साहब ने अपनी गोली का निशाना बना दिया था और बच्चे माँ को चोंच में खाना लेकर लौटने की प्रतीक्षा में तड़प रहे थे। उन्हें माँ का वियोग सता रहा था तो इधर सावरकर भी वियोग में खिन्न मन लेटे थे।

कदाचित् उस तनाव को उनका मन सहन नहीं कर सका होगा उन्हें झपकी सी नींद आ गई। तभी गश्त लगाने वाला सिपाही उधर से निकला और उसने उनको सोते देखा तो दरवाजे के सीखचों में अपना डंडा जोर से बजाता हुआ वह कहने लगा, 'उठो, बड़े साहब ने यदि काम के समय आपको सोता देख लिया तो हमारी क्या गति करेगा, आप नहीं समझ सकते।'

सावरकर उठे और काम में लग गए। उनको कोठरी में ही काम दिया गया था। मूँज कूटना रस्सी बँटना।

भायखला कारागार में

मूँज कूटते और रस्सी बटते जेल जीवन का एक मास बीत गया था। साधारण बन्दी को जो भोजन दिया जाता था वही सावरकर को भी मिलता था। उनको दोनों समय का दूध भी मिल जाया करता था। यों दिन बीत रहे थे कि एक दिन वे साथ का काम समाप्त कर सुस्ताने का विचार कर रहे थे कि तभी द्वार खटका और हवालदार के साथ सुपरिन्टेंडेंट भी भीतर आकर बोला 'बिछौना साथ ले लो और चलो।"

सावरकर का मन तो कर रहा था कि पूछें, कहाँ जाना है। कभी सोचते शायद अण्डमान के लिए प्रस्थान कर रहे हैं। किन्तु किसी से कुछ नही पूछा। कोठरी के बाहर निकलत ही देखा बाहर कारागार की गाडी खडी है। उन्हे उसमे बैठाया गया और द्वार बन्द हो गया। अब बाहर का कुछ भी देख पाना सम्भव नही था। वैसे भी बाहर घुप्प अधकार था। गाडी दौडती गई। किस दिशा को और किस मार्ग से जा रही है, यह जान पाना सम्भव नही था। सुनने के लिए भी केवल गाडी की खडखडाहट ही सुनाई देनी थी और कुछ नही।

यो चलते हुए कितना समय बीता होगा पता नही, फिर भी गाडी रुकी, द्वार खुला और सावरकर गाडी से उतरे तो पाया कि किसी अन्य जेल म पहुँच गए हैं। नए बन्दी के कारागार मे प्रविष्ट होते समय जो जो प्रक्रिया पूर्ण करनी होती है वह सब पूर्ण करने के उपरान्त सावरकर को एक कोठरी म भेज दिया गया। सावरकर ने अनुभव किया कि यह स्थान डोंगरे कारागार से भी अधिक निर्जन और एकान्त है।

सावरकर या विचार मग्न थे कि प्रात का भोजन आ गया। यहा पर भारतीय नही अंग्रेज वार्डर उन के लिए नियुक्त किया गया था। द्वार खुला, सार्जन्ट भीतर आया और उसने अभिवादन किया तो सावरकर ने उससे कुछ पूछने का साहस करके पूछा, 'यह कौन सी जेल है?' अंग्रेज सार्जेंट घबराया। फिर भी उसने तोड फोडकर बता दिया कि व इस समय 'भायखला' कारागार मे हैं। यद्यपि इस प्रकार की कोई सूचना देना अपराध माना जाता था।

जैसा कि हम ऊपर वर्णन कर आए हैं डोंगरे जेल की अपेक्षा भायखला बडा उदासी भरा स्थान था। डोंगरे मे भले ही मनुष्य देखने को न मिले किन्तु उसके यहा होने का आभास उनकी बातचीत से मिल जाया करता था। यहाँ तो कही से कोई मानव स्वर सुनाई ही नही दे रहा था।

वह दिन उस कोठरी मे यो ही बीता। न कुछ सोच पाए न कर पाए। ऐसे म कविता की रचना भी किस प्रकार हो सकती थी। बस, दिन भर अपनी कोठरी का ही निरीक्षण परीक्षण करते रहे। कभी सोचते कि उनके बन्दी बना लिए जाने के उपरान्त उनकी क्रान्तिकारी संस्था का क्या हुआ होगा। सहसा उनके मन मे अपनी संस्था म जुडे अपने साथी सब एक एक कर स्मृति पटल पर उभरने लगे। यो दिन बीता, शाम हो गई। शाम का भोजन आया। भोजन किया, बर्तन माजे और फिर सीखचो से बन्द द्वार के पास आकर खडे हो गए। अब विचार-तन्त्री किसी अन्य दिशा म विचरण करने लगी तो कविता का उदभव हुआ और उस शाम उनकी 'सप्तर्षि' कविता का उत्तरार्द्ध उदभूत हो गया।

भायखला जेल म आने पर सावरकर को एक तो दूध मिलना बन्द हो गया था और दूसरे वहाँ ज्वार की रोटी मिलने लगी थी। इस कारण उदर पीडा रहने लगी थी। सावरकर ने कारागार अधीक्षक का दूध दिए जाने के लिए आवेदन किया। डोंगरे कारागार मे उनको पुस्तकें मिल जाया करती थीं, भायखला म वे नहीं मिली। म

इसके लिए भी आवेदन किया। उनका कहना था कि भले ही वे बाइबल ही दें किन्तु पुस्तक के नाम पर कुछ अवश्य दें।

जेल अधीक्षक ने उनके इन आवेदनों के उत्तर में एक ही उत्तर दिया—'इसकी आवश्यकता नहीं है। बाइबल दिए जाने के विषय में देखा जाएगा।'

कुछ दिन बाद बाइबल मिल गई। बहुत दिनों से पुस्तक नाम की कोई वस्तु देखी थी। सावरकर उसको खोल कर पढ़ने लगे कि तभी पहरेदार ने कहा, 'पुस्तक कोठरी में नहीं रहेगी। शाम तक काम पूर्ण करने के उपरान्त केवल घंटे दो घंटे के लिए मिल जाया करेगी।' विवश सावरकर ने उसे वापस कर दिया और जो काम मिला हुआ था उस काम में जुट गए।

शाम को कार्य समाप्त होने पर उनको बाइबल मिल गई और उसका अध्ययन करते हुए अनेक विचार उनके मन में उठे। गुरुगोविन्दसिंह का चरित्र वे कण्ठस्थ कर चुके थे। सप्तर्षि भी अब तक पूर्ण हो चुकी थी। सावरकर काम में रहते हुए 'यू...' का अध्ययन करते रहे थे। अब बाइबल मिलने पर उनके मन में ईसा पर काव्य रचना करने का विचार उठने लगा था।

सावरकर ने अपने दो आजन्म कारावासों की अवधि के विषय में कुछ स्पष्टीकरण के विचार से आवेदनपत्र दिए थे कि दण्ड संहिता में आजन्म कारावास का अभिप्राय है मनुष्य जीवन का सामान्यकाल। जो भारत में २०-२५ वर्ष का माना जाता है। यदि दो आजन्म कारावास एककालिक न किए जाएं और एक के पूर्ण होने पर दूसरा आरम्भ किया जाए तो दण्ड संहिता की भाषा में इस जन्म के उपरान्त दूसरा जन्म मानकर ही उस दूसरे कारावास की अवधि पूरी होगी। अतः मेरी मुक्ति का वर्ष १९६० न रख कर २५ वर्ष, जो आजन्म कारावास का अधिक से अधिक दण्ड माना जाता है, रखा जाय।

सरकार ने इसके उत्तर में लिखा कि सावरकर को आजन्म कारावास एककालिक न मानकर पूरा ही भोगना होगा। जो न्यायालय का निर्णय था उसी के अनुसार उनका दण्ड ४९ वर्ष का है और उनकी मुक्ति का वर्ष १९६० ही है। इस उत्तर को लेकर एक अंग्रेज अधिकारी सावरकर के पास आया था। उसे सुनकर सावरकर ने पुनः कहा, 'मुझे इसमें भी एक बात का सन्तोष है कि हिन्दुओं का पुनर्जन्म का सिद्धान्त सरकार ने मान लिया और ईसाई मत के पुनरुत्थान की कल्पना को अमान्य कर दिया है।'

तभी एक दिन सहसा समय से पूर्व उनका भोजन आ गया। सावरकर आश्चर्यचकित रह गए। कारागार के कार्यक्रमों में कभी इस प्रकार का कोई परिवर्तन हो ही नहीं सकता था। फिर यह समय पूर्व भोजन कैसा। निश्चय ही कोई नवीन बात होने वाली है। सावरकर ने अपने इस आश्चर्य और उत्सुकता के विषय में पहरे पर स्थित एक अधिकारी से पूछा तो उसने मुख से कुछ न बोलकर गूंगों की भाषा में अपने हाथ के संकेत से जो इंगित किया उससे यही भास होता था कि उन्हें दूर ले जाया जा रहा है।

सावरकर को जब डाबरी कारागार से कार्यशाला में ले जाया जा रहा था तब

उनके मन में आया था कि कदाचित यह अण्डमान के लिए प्रस्थान है। आज भी कुछ उसी प्रकार के विचार उनके मन में उठने लगे थे। एक ओर तो अपनी मातृभूमि से दूर जाने का विचार किन्तु दूसरी ओर शीघ्र ही आजन्म कारावास अवधि के प्रारम्भ होने की प्रसन्नता भी। क्योंकि उन दिनों का नियम था कि अण्डमान पहुँचने के उपरान्त ही आजन्म कारावास की अवधि आरम्भ होती थी, भारत की काराओं में बिताए दिन मास-वर्ष की गणना उसमें नहीं की जाती थी।

सावरकर ने भोजन किया। दीवारों पर लिखी कविताओं को खुरचा कि तभी बाहर से सुनाई दिया, 'चलो' और द्वार खुल गया। सावरकर ने अपनी सीमित सामग्री उठाई और बाहर निकल आए। कुछ क्षणों के लिए बाहर के खुले वातावरण में किन्तु तुरन्त ही मोटर में बैठने को कहा गया। उसके बाद रेलवे स्टेशन, फिर रेलगाड़ी फिर स्टेशन और फिर मोटर में बैठकर उन्हें जिस स्थान पर ले जाया गया वह स्थान 'ठाणे' का कारागार था। अर्थात पुनः कारागार, कालापानी अभी दूर था।

ठाणे कारागार में

ठाणे कारागार में अंग्रेज अधीक्षक ने समस्त जेल कर्मचारियों को यह आदेश दे दिया था कि कोई भी व्यक्ति सावरकर से मिलना तो दूर उसे देखने भी न पाए। वहां सावरकर के लिए जेल के एक कक्ष को खाली करा दिया गया था उसके सभी बंदियों को अन्यत्र भेज दिया गया था। उस आदेश का ही यह परिणाम था कि कारागार का प्रत्येक कर्मचारी और बन्दी सावरकर को देखने के लिए उत्सुक दीखता था। वह समझ नहीं पा रहा था कि ऐसा कौन सा खूंखार बन्दी आ गया है कि जिसे देखना भी भय से खाली नहीं।

अंग्रेज अधिकारियों को इतने से ही सन्तुष्टि नहीं हुई। सावरकर जिस कोठरी में रखे गए थे उसके बाहर उनकी निगरानी के लिए बन्दीगृह के सबसे अधिक कुख्यात मुसलमान बन्दियों को लाकर खड़ा कर दिया गया था। और जब भोजन आया तो वह तो बस। बाजरे की अधपकी रोटी और साग के नाम पर कुछ खट्टा सा। किसी प्रकार रोटी का टुकड़ा दांतों से काटकर पानी की घूंट के साथ निगल कर कुछ ग्रास सावरकर ने पेट में डाले।

संयोग कहिए, सुयोग कहिए अथवा कि सौभाग्य। जिस प्रकार मरुस्थल में कभी कहीं कुछ हरियाली सी दिखाई देती है, उसी प्रकार ठाणे कारागार के उस सख्त पहरे और निगरानी के वातावरण में भी सावरकर से सहानुभूति रखने वाला कोई था। पहले दिन ही जब सावरकर वह भोजन कर चुके जिसका कि हमने ऊपर उल्लेख किया है और वे आराम करने के लिए बिछौना बिछा रहे थे कि तभी बाहर शोर सुनाई दिया। पहरेदार न जाने किस किस को भद्दी गालियां दे रहा था। उसके कुछ क्षणों बाद एक वार्डर सावरकर की कोठरी के द्वार पर आ उपस्थित हुआ और संकेत से उसने सावरकर को द्वार पर बुलवाया। इधर उधर सावधानी से देखकर धीरे से वह वार्डर बोला, 'आपकी वीरता

की कहानी हम लोगों ने सुनी है। मैं आप जैसे महान् व्यक्ति और वीर पुरुष का दास हूं। मुझसे आपकी जितनी सेवा बन पड़ेगी, मैं करूंगा।'

यह कह कर फिर वह सावधान हो गया मानो कोई खटका हो। इधर उधर देखकर फिर कहने लगा, 'मैं आपको एक सूचना देता हूं, किसी के सम्मुख उसका उल्लेख मत करिए नहीं तो मैं मारा जाऊंगा।'

मानो उसे सूचना देने की उतावली हो, इस लिए सावरकर की ओर से किसी प्रकार का आश्वासन दिए जाने की प्रतीक्षा किए बिना उसने कहा, 'आपका भाई भी यहीं पर है।'

सावरकर ने हड़बड़ा कर पूछा 'कौन सा भाई ?'

'छोटा।'

तभी कदाचित वार्डर को कोई आहट सुनाई दी तो वह वहां से टल गया और सावरकर भी कोठरी के भीतर हो गए।

सावरकर का छोटा भाई नारायण सावरकर अहमदाबाद में लार्ड मिन्टो पर बरसाए गए बम काण्ड में षडयन्त्रकारी के रूप में पकड़ा गया था और ठाणे कारागार में कष्टमय जीवन बिता रहा था। उस समय नारायण की आयु मात्र बीस वर्ष की थी। नारायण के विषय में अनेक विचार सावरकर के मन को कचोटने लगे। बड़ा भाई पहले ही आजन्म कारावास का दण्ड पाकर अण्डमान भेजा जा चुका था, सावरकर स्वयं उसी मार्ग पर अग्रसर थे। छोटे भाई को जब यह विदित होगा तो उस पर क्या बीतेगी इन्हीं विचारों में सावरकर खो से गए थे।

सावरकर की यह विचारतन्द्री वार्डर के उनके द्वार के समीप आने पर टूटी। सावरकर तुरन्त द्वार पर जा पहुंचे। वार्डर ने बाहर से 'दादा ! यह लो।' यह कहकर एक पत्र सा सावरकर के हाथ में पकड़ा दिया। इसके साथ ही वह कहने लगा 'जेल अधीक्षक ने सभी वार्डरों को सचेत कर दिया है कि आपके छोटे भाई के भी इसी कारागार में होने की सूचना आपको किसी भी प्रकार विदित न होने पाए। दादा ! इस बात का ध्यान रखना। यदि आपके मुख से एक भी अक्षर निकला तो मैं मारा जाऊंगा।'

इतना कहकर वह दूर चला गया और फिर उसी प्रकार अपनी कड़कड़ाती आवाज में गालियां बकता हुआ पहरा देने लगा। सावरकर को दिया गया पत्र उनके छोटे भाई नारायण सावरकर का था। लालटेन दूर थी, फिर भी किसी प्रकार द्वार के पास खड़े होकर सावरकर ने उस पत्र को पढ़ ही डाला। भाई ने लिखा था—

'जो दिव्य संकल्प लिया है उसकी पूर्ति के लिए यदि इससे भी कठिन तपस्या करनी पड़ जाय तो अवश्य करिए चिन्ता करना उचित नहीं।'

कितना विश्वास था इन शब्दों में। पत्र में न तो दुःख का कोई शब्द था और न निराशा का ही। एक प्रकार से छोटे भाई ने बड़े भाई को सन्देश ही दिया था। सावरकर ने उस पत्र का उत्तर देने का निश्चय किया। वे सोचते थे कि कदाचित अपने छोटे भाई को यही उनका अन्तिम पत्र हो। क्योंकि अण्डमान जाने पर मास में एक बार पत्र लिखने

की सुविधा प्राप्त होती थी किन्तु वह भी कभी किसी न किसी बहाने छीन ली जाती थी।

पत्र लिखने के निश्चय से उन्होंने उसी वार्डर को संकेत से अपने पास बुलाया और उसको अपनी कामना बताई तो उसने कहा, 'अभी रात है, अवसर मिला तो देखूंगा।' यह कह कर वह तुरन्त वहां से हट कर दूर जाकर उसी प्रकार चिल्लाता हुआ पहरा देने लगा।

सावरकर अपने बिछौने पर आकर लेट गए। सोचते-सोचते सो भी गए। सम्भवतया लगभग आधी रात बीती होगी कि द्वार पर खटका सुनकर उनकी आंख खुल गई। द्वार पर वार्डर खड़ा संकेत से उनको अपने पास बुला रहा था। उसने कागज कलम देकर संकेत किया 'लिखो' और लालटेन उनके समीप को कर दी। सावरकर उसकी कृपा पर अभिभूत हो गए और उसके प्रति आभार व्यक्त करने लगे तो उसने तुरन्त रोक कर कहा 'दादा! पहले लिखो।'

एक बार को तो सावरकर के मन में शंका हुई कि कहीं वह उस पत्र को ले जाकर नारायण को देने की अपेक्षा किसी जेल अधिकारी को न पकड़ा दे। तब भी सावरकर के मन में पत्र लिखने की लालसा तो मिटी नहीं। अतः उन्होंने चतुराई से काम लिया। क्योंकि गुप्तचरों के कारनामों से वे भली भांति परिचित थे और आज तक वे जीवन में उनके छक्के छुड़ाते आए थे। अतः उन्होंने जो पत्र लिखना आरम्भ किया, उसमें किसी को सम्बोधन नहीं किया गया था। उन्होंने सामान्य सी बात की भांति लिखा (मेरा आजन्म कारावास से उद्धृत)—

'यदि आगामी पांच सात वर्षों में मुझे अण्डमान में अपने परिजनों को बुला लेने की अनुमति मिल गई तो मैं उन्हें साथ रख कर अध्ययन आदि करता हुआ समय व्यतीत करने लगूंगा। यदि मैं अपनी 'पुण्य भू भारत' के तट पर पग न भी रख सका तो भी मैं जिस काव्य की रचना कर रहा हूं उसे रामायण की भांति उन अभिनव कुमारों के कंठ से देश भर में प्रख्यात कराऊंगा। जीवन की सफलता के लिए यह कार्य ही पर्याप्त होगा। इस कार्य की सफलता के आश्रय ही मैं अण्डमान में अपनी कारावास की २५ वर्ष की अवधि काट सकूंगा। और यदि एक जन्म का कारावास पूर्ण करने पर भी मुझे मुक्त न किया गया तो 'मुक्ति या मृत्यु' मेरा आधार होगा।

'तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करना और न यह सोच कर अपने मन को खिन्न मत करना कि जीवन विफल गया। राष्ट्रभक्ति की प्रेरणा देने के लिए अपनी देह का इंधन बना कर यदि किसी को जलता ही रहना है तो वह सुयश का स्थान हम ही क्यों न लें। जलते रहना भी तो एक कर्म है। केवल कर्म नहीं, अपितु यह महत्त्वपूर्ण कर्म है।'

सावरकर इतना ही लिख पाए थे कि वार्डर ने खांस कर पत्र समाप्त करने का संकेत किया। उन्होंने भी बिना विलम्ब किए पत्र को दरवाजे में सटा दिया और स्वयं पीछे हट गए। सावरकर ने धीरे से कहा, 'ईश्वर से प्रार्थना है कि मेरे कारण तुम पर कोई आंच न आए। मेरे लिए तुम कितने साहस का काम कर रहे हो।'

वाडर भावुक हृदय था। कहने लगा, 'दादा ! यह भी कोई साहस का काम है? मैं चोर नही हू। भटगाव जाकर मैंने डाका डाला था। मैं शूर हू, इसलिए महापुरुषों का स्वयं को सेवक समझता हू। मैं तो आगामी दो मास में जेल से छूट जाऊंगा। वास्तव मे शूर और साहसी तो आप है जो इतना लम्बा दण्ड पाने पर भी सदा हँसते मुस्कराते रहते है।'

वाडर चला गया। उसने बाल को पत्र पहुचा भी दिया। किन्तु उसके दो बाद ही बाल को ठाणे से बदलकर अन्य कारागार में भेज दिया गया। वह कहां कब मुक्त हुआ आदि समाचार सावरकर तक कभी पहुचने ही नही दिया गया।

कारागार में शारीरिक यातनायें तो मिलती ही थी किन्तु अंग्रेज सावरकर को मानसिक यातना देने मे भी कोई कोर कसर नहीं छोडती थी। ठाणे कारागार मे ही एक लम्बा तडंगा, मुसटंडा सिपाहियो का मुखिया था जो समय समय पर उनकी ओर संकेत कर अपने साथी सिपाहियो को न जाने क्या क्या तो बकता रहता था। उसका उद्देश्य क्रान्तिकारियो के कृत्यो की खिल्ली उडाना और उन्हें नीचा दिखाना होता था। हवा मे लाठी घुमाकर वह कहता, 'क्यो हवा मेरी?' उसके साथी खिल खिलाकर हस पडते। फिर वह सावरकर की ओर सकेत कर कहता 'यह देखो पहलवान, कंचन सी काया लेकर चले थे अंग्रेज सरकार को उखाडने।' कभी-कभी वह सावरकर से भी कुछ पूछता रहता था। यो उससे स्वयं को बचा पाना सावरकर के लिये बडा कठिन होता था। कभी कभी वह गाकर सुनाता—

अजब तेरी कुदरत, अजब तेरा खेल।
मकडी के जाले मे फसाया शेर॥

सावरकर को उस समय उसका गाना भी अच्छा ही लगता था। शान्त वातावरण मे कुछ परिवर्तन तो होता था। रही मनोबल गिराने की बात। सावरकर उस मिट्टी के बने ही कब थे।

मद्रास में कलक्टर वध

किन्तु कभी कभी वह हवालदार सावरकर को कुछ खबरें भी सुना दिया करता था। उसने ही सावरकर को बताया था कि इंग्लैंड मे राजा का राज्यारोहण समारोह धूमधाम से सम्पन्न हो गया है।

कभी कभी एक अन्य जेल अधिकारी भी सावरकर के पास आकर बातचीत किया करता था। यद्यपि समाचार पत्र पढने का उस अधिकारी को व्यसन नहीं था और न ही उसकी समाचारों मे कोई रुचि थी किन्तु किसी कारण विशेष से सावरकर से निकटता बनाये रखने के लिये वह समाचार पत्र पढकर कुछ समाचार सावरकर को सुना दिया करता था।

एक दिन आकर उसने कहा, "आज के समाचार पत्र मे मद्रास मे मि० ऐश नामक कलक्टर की किसी ब्राह्मण द्वारा वध किये जाने का समाचार प्रकाशित

हुआ है। सुना जाता है कि चिदम्बर पिल्लई के मामले से उसका कोई सम्बन्ध था। उसने सावरकर से पूछा—

"इस विषय में आपका क्या मत है?"

सावरकर ने चुप रहना ही उचित समझा। किन्तु दोपहर को वही हवलदार पुनः आकर पूछने लगा, "क्यों महाराज! मद्रास में भी आपके कुछ साथी हैं?"

सावरकर ने उसे टालते हुए कहा, "कौन कहता है, यह मैं इतनी दूर एकान्त कोठरी में बैठा किस प्रकार बता सकता हूं।"

तब उसने अपने सिपाहियों की ओर देखा जिससे कि वह उनका ध्यान सावरकर की ओर आकृष्ट कर सके। और बोला, "अर्क है अर्क!" उस 'अर्क' शब्द से उसका क्या अभिप्राय था, यह सावरकर को अन्त तक पता नहीं लग पाया।

उसके इस प्रकार छानबीन करने से तो यही अनुमान लगाया जा सकता था कि वह मद्रास काण्ड के विषय में सावरकर से कुछ उगलवाना चाहता था।

ठाणे कारागार में सावरकर के पास अपनी वस्तुयें कहने के नाम पर उनका चश्मा और गीता का छोटा सा गुटका ही था। किन्तु अंग्रेज सरकार को यह भी 'बम' के समान भयंकर वस्तुयें दिखाई देने लगी थीं। एक दिन हवलदार ने आकर कहा, "साहब ये दोनों चीजें मांगता है।"

सावरकर को ये वस्तुयें देनी पड़ीं। किन्तु वे सोचते रहे कि गीता के विषय में तो सोचा जा सकता है किन्तु चश्मा ले लेने का क्या अभिप्राय हो सकता है? कुछ समय बाद जब अधीक्षक उनके पास आया तो उन्होंने उससे पूछा, "मेरा चश्मा क्यों ले लिया गया है?"

वह बोला, "आपको राजद्रोह का जो दण्ड दिया गया है तदनुसार आपकी सब सामग्री अपने अधिकार में ले लेने का आदेश है। विदेश में भी जब आपको पकड़ा गया था, उस समय जो वस्तुयें मिली थीं जैसे—ट्रंक, बक्स तथा पुस्तकें आदि, वे सब आज नीलाम की जा रही हैं। उनसे जो धन मिलेगा वह सब सरकारी फण्ड में जमा कर दिया जायगा।"

लगता है सावरकर के गीता और चश्मा जब्त किये जाने पर जेल के कुछ सिपाहियों के मन को ठेस लगी होगी। कुछ सिपाहियों ने उन वस्तुओं की नीलामी बोली न देने का निश्चय कर लिया। यह सूचना किसी प्रकार सावरकर को मिली तो उन्होंने उनको समझाया। सावरकर ने उनसे कहा कि उनकी वस्तुओं में उनके कुछ मूल्यवान वस्त्र भी हैं। नीलामी में वे सब मिट्टी के भाव बिक जायेंगे। इसलिए अच्छा यही है वे लोग उन वस्तुओं को नीलामी में खरीद लें। यदि उन जैसे सहृदय लोग उनकी वस्तुओं को खरीद लेंगे तो सावरकर को इससे प्रसन्नता होगी। किन्तु यदि क्रूर हृदय अन्य लोगों ने उनको खरीदा तो इससे उनके मन को ठेस लगेगी।

सावरकर की यह बात कदाचित उन लोगों के मन में किसी प्रकार पैठ ही गई। किसने क्या खरीदा, क्या नहीं खरीदा, इसका तो सावरकर को पता नहीं लगा। किन्तु

उन्होने देखा कि दूसरे दिन उनको उनका चश्मा और गीता वापस मिल गये थे।

चश्मा और गीता पाकर सावरकर प्रसन्न हुए। अन्यथा चश्मे के अभाव म उनको बहुत कठिनाई होती।

ठाणे कारागार का महत्त्व

ठाणे कारागार अनेक कारणो से ख्यात अथवा कुख्यात था। वहा सामान्यतया उन बन्दियो को रखा जाता था जो अण्डमान जाने की प्रक्रिया मे होते थे। कालापानी का दण्ड तो उसी को दिया जाता था जो जघन्य अपराध म बन्दी बनाया जाता था और उसमे भी जघन्यतम अपराध के लिये आजन्म कारावास का दण्ड दिया जाता था। इससे ही अनुमान लगाया जा सकता है कि सावरकर को कितना भयकर अथवा खूखार बन्दी समझा गया था। समझा भी क्यों न जाय? जो व्यक्ति पोर्ट-होल क माध्यम से जहाज मे निकल सकता था, जो व्यक्ति समुद्र तरण कर विदेशी भूमि म पग रख सकता था, जो व्यक्ति अपन सहयोगिया के माध्यम से ब्रिटिश सरकार के वरिष्ठतम अधिकारिया को यमलोक पहुचवा सकता था, उसको क्या न इतना भयकर मानकर कठोरतम दण्ड दिया जाय। दण्ड सहिता मे कालापानी और आजन्म कारावास से बढकर प्राण दण्ड ही होता है, वह सावरकर पर लागू नही होता और न उसमे उतनी यातना ही सहन करनी पडती है जो कालापानी और आजन्म कारावास म सहन करनी पडती है। सावरकर उनकी दृष्टि म इसी क योग्य थे।

जिन बन्दियो को आजन्म कारावास का दण्ड दिया जाता है, उन्हे अण्डमान भेजने स पूर्व कुछ अन्य य कारावासो म रखा जाता है और वहा उनकी शारीरिक परीक्षा आदि की जाती है। इस परीक्षण के उपरान्त जो जो बन्दी अपने देशवासियो तथा स्थानीय जनो क मध्य रखे जाने के अनुपयुक्त पाये जाते है उन्हे ठाणे के कारागार म लाकर रखा जाता है। इस प्रकार समस्त देश विदेश के भयकरतम बन्दियो को वहा पर एकत्रित किया जाता था। यह अण्डमान भेजे जान म पूर्व का अन्तिम पडाव होता था।

बन्दियो को वहा लाने की जो प्रक्रिया होती थी, उसे बन्दियो की भाषा मे 'चालान' कहा जाता था।

यद्यपि वहा एकत्रित किये जाने वाले सभी बन्दी एक प्रकार स बडे खूखार माने जात थे किन्तु होत तो वे भी मनुष्य ही थे। मनुष्य कितना ही भयकरतम अथवा जघन्यतम क्यो न हो, किन्तु मनोरजन भी उसक जीवन का एक अग होता ही है। कारागार म ऊबे बन्दी किसी भी प्रकार क मनोरजन के लिये छटपटाते रहत है। जो बन्दी साधारण से कौआ और चिडियो की फडफडाहट और नोक झोंक म भी अपने लिये मनोरजन ढूढ लिया करते थे वे 'चालान' की इस चहल-पहल मे क्यो न प्रसन्न रहत। जमादार से लेकर अन्य सभी प्रसन्न दीखते थे। नये आने वाले बन्दियो क लिये कक्ष खाली किये जात थे तो भी जेल मे ऊबे बन्दीजन किसी भी प्रकार के मनोरजन क

लिये लालायित रहते है। इस प्रकार के कामो मे भी उनको उत्साह रहता है, वहा यह भी एक प्रकार का मनोरंजन ही होता है।

सब बन्दीजन उत्सुकता से इधर उधर देखकर परस्पर बातें करते कि अब तक 'चालान' आया क्यो नही। बन्दीगृह का द्वार खुलता तो सब उधर देखने लगते मानो चालान आ गया हो। मानो चालान कोई हाथी या इसी प्रकार का कोई विशेष जन्तु हो। वहा 'चालान' भी एक तहलका ही होता था।

उस दिन तीन बजे मध्याह्नोत्तर के लगभग खन खन की तालबद्ध पदध्वनि सुनाई दी तो सारे अन्य बन्दी एक प्रकार स पंक्तिबद्ध मे उस मार्ग की ओर देखने लगे जिधर मे खन खन की ध्वनि आ रही थी। उन आने वालो मे भाति भाति के आकार और मुखाकृति के बन्दीजन थे। सुरक्षा कर्मचारी उनके साथ साथ चल रहे थे। जेल कर्मचारियो तथा साधारण बन्दियो के लिये यह दृश्य किसी भी मनोरंजक कार्यक्रम से कम नही था।

ठाणे कारागार म अण्डमान जाने वाले बन्दियो के लिये जिनम सावरकर जैसे लोग होते हैं, एक विशेष स्वतन्त्र विभाग बनाया गया है। सावरकर को उस विभाग म एक कोठरी मे बन्द कर दिया गया। वह कोठरी बहुत ही गन्दी और दुर्गन्ध भरी हुई थी। उसके साथ लगी अन्य कोठरिया भी वैसी होगी इसका अनुमान लगाना सावरकर के लिये सहज ही था।

इतना सब कुछ होने पर भी इतने दिन तक जो सावरकर डोंगरे और भायखला के कारागार म एकान्त कोठरी मे रहे उसकी अपेक्षा यहा का यह चहल पहल भरा वातावरण उनके लिये भी एक प्रकार से मनोरंजक ही सिद्ध हुआ था। इस समय उनकी दृष्टि सीमित कोठरी की परिसीमा तक सीमित न होकर बाहर का दृश्य देख सकती थी, उनके कान बेडियो की तालबद्ध खनखनाहट सुन सकते थे। दुख और यातनाओ से भरे उन स्थानो पर कभी-कभी मानव हँस भी सकता था। यही कारण था कि प्रान्त-प्रान्त स लाये गये ये सारे बन्दी आनन्दित होकर मस्ती मे गाने बजाने लगे। जो उसमे सम्मिलित नही हुआ उसे बलात घसीट कर सम्मिलित करने का यत्न किया गया। इस प्रयोग में किस किस प्रकार की गालियो का प्रयोग हुआ यह लिखने का विषय नही है।

चालान आते ही साधारण सिपाही, हवलदार, कारागार अधीक्षक आदि सब इधर उधर आते जाते दिखाई देने लगते है। क्योकि उस स्थिति में जो सामाजिक अपराधी बन्दी होते हैं वे भाति-भाति की उद्दण्डता करने लगते है। उससे कारागार को अनेक प्रकार की हानि होने की सम्भावना के साथ साथ प्रशासन की अनुशासन हीनता पर भी आंच आती है। इतना होने पर चार छ बन्दियो को चोटें लगने के साथ साथ एक-दो सिपाहियो के सिर फूट जाना भी स्वाभाविक सी बात थी।

'चालान' के बन्दियो के इस कार्यक्रम के सामने सिपाही हो या अधीक्षक, वे सभी अपने सम्मान की रक्षा करने तथा अपना प्रभुत्व भी बनाए रखने के लिए, चालान

के उन सरगनाओं को तमाखू, बीड़ी, सिगरेट आदि की रिश्वत देकर प्रसन्न करने का यत्न किया करते थे। उनका यथाशक्ति प्रयत्न होता कि जिस प्रकार शांति से ये ठाणे कारागार में आए थे उसी प्रकार शांति में यहाँ से विदा हो तो उनकी नौकरी पर किसी प्रकार की आंच नहीं आएगी।

सावरकर को भी उसी हुडदंग में सम्मिलित कर लिया जाता यदि उनके नाम के आगे अथवा पीछे श्रद्धा से अथवा सम्मान से या फिर व्यंग्य में ही क्यों न हो, 'बैरिस्टर' शब्द न जुड़ गया होता। 'बैरिस्टर' साहब की कथा सावरकर के उस स्थान पर पहुँचने से पहले न मालूम किस प्रकार पहुँच जाती थी कि सभी आश्चर्य से उनके आने की एक प्रकार से प्रतीक्षा सी करते। अरे 'बैरिस्टर' बन्दी बनाकर लाया जा रहा है। सावरकर ने भी यह स्वयं अनुभव किया कि जघन्यतम अपराध में बन्दी बनाया गया भयंकरतम अपराधी भी 'बैरिस्टर साहब' को श्रद्धा की दृष्टि से देखता है। बैरिस्टर अर्थात वकील ही वह व्यक्ति होता है जो उसे उसके अपराध से मुक्ति दिलाने का यत्न करता है। वैसे सभी अपराधी न्यायालय में उपस्थित रहते हुए अपने वकील की जिरह सुनते रहने से उसके प्रति श्रद्धावान हो जाते हैं।

इतना ही नहीं जिस प्रकार सामान्य जगत में अकबर-बीरबल की कहानियाँ मनोरंजन के लिए सुनाई जाती है उसी प्रकार बन्दियों में वकील और गवाहों की कहानियों का बड़ा महत्व होता है। वहाँ हर कोई बन्दी इस प्रकार का कोई न कोई किस्सा सुनाता ही है। न सही किसी और का, अपने वकील और गवाहों का ही किस्सा सुना देगा।

सावरकर ने बैरिस्टरी तो की नहीं किन्तु ठाणे जैसे कारागार में उनकी बैरिस्टरी काम आई और खूंखार से खूंखार अपराधी भी उनके प्रति श्रद्धा होने से उनके साथ बन्दियों द्वारा किसी प्रकार का दुर्व्यवहार नहीं किया गया। यही क्या उनके लिए कम था? सावरकर यह सारी हलचल अपनी बन्द कोठरी की खिड़की से बहुत रात गए तक देखते रहे। बहुत दिनों के बाद इतने लोगों की ऐसी कोलाहल भरी ध्वनि उनको सुनने और देखने को मिली थी।

न जाने क्यों वहाँ के कुछ अधिकारियों की भी सावरकर के प्रति सहानुभूति सी थी। तभी तो 'चालान' के नेता ने एक बार कहा था, 'देखो बैरिस्टर साहब को तंग मत करना।' और बहुत रात बीतने पर वहाँ के सिपाहियों ने हुडदंग मचाने वाले बन्दियों को समझाते हुए कहा, 'देखो बैरिस्टर को नींद आ रही है, उसे सोने दो और तुम लोग भी सो जाओ।' सिपाही के कथन का प्रभाव हुआ और वे लोग हुडदंग बन्द करके सोने लगे।

रात किसी प्रकार नींद आ ही गई। प्रातःकाल होने पर सावरकर को जब अपने बड़े भाई का स्मरण हो आया कि वे भी एक दिन इसी प्रकार इस कारागार में चालान के साथ आए होंगे तो उन्होंने वहाँ के एक सिपाही से इस विषय में पूछताछ की। उस सिपाही ने बताया कि वह नया-नया ही आया है, तदपि बैरिस्टर के नाम से वह भी

प्रभावित था। उसने किसी पुरान सिपाही से पूछा और आकर सावरकर को बताया कि जिस कोठरी मे सावरकर को रखा गया है, उसी कोठरी म उनके बडे भाई को भी रखा गया था।

'बाबा' अर्थात बडे भाई का स्मरण आत ही सावरकर का मन उदास हो गया। सोचने लगे उन्ह तो यहाँ बहुत सताया गया होगा। वे तो 'बरिस्टर' नही थे। व अपन मन की भावना को जब किसी भी प्रकार नही रोक सके तो उन्होने एक सज्जन स दीखने वाले अधिकारी से पूछा कि क्या यहाँ पर उनके भाई को भी इसी प्रकार बन्दियो ने अथवा जेल अधिकारियो न यातनायें दी थी ? उस अधिकारी ने कहा "नही, यहा तो यह सब सम्भव नही था। किन्तु अन्य अभियुक्तो के मुख से सुना अवश्य गया था कि यरवदा कारागार मे उनको सताया गया था।"

सावरकर का भावुक मन इससे आश्वस्त हो गया और उन्होन स्वय ही यह सोच लिया कि कम से कम इस कोठरी मे तो वे सुख मे साये होगे। उस अधिकारी का शिष्ट व्यवहार देखकर सावरकर ने समय समय पर उससे वामनराव जोशी सामेण आदि अन्यान्य क्रान्तिकारियो के विषय मे भी पूछताछ की। क्योकि सावरकर को पता चला था कि उन बन्दियो को भी उस कारागार म रखा गया था। अधिकारी ने जो कुछ बताया वह कहाँ तक सत्य था यह तो बन्दी ही बता सकत थे, किन्तु उससे सावरकर को अवश्य सान्त्वना मिली थी।

अण्डमान को प्रस्थान

इस प्रकार दो चार दिन बीते थे कि फिर चलने की पुकार सुनाई देने लगी। सावरकर को कहा गया चलने का तयार रहना, तो सावरकर ने एक हाथ मे पुराना बोरा और कम्बल का बिछौना उठाया और दूसरे हाथ मे टीन की थाली तथा दो बतन। इनको उठाए वे द्वार पर आकर खडे हो गए। उनके सामने से बेडियाँ और हथकडियाँ खनखनाता हुआ वही झुण्ड जाने लगा। जो मिलता उसको राम राम, सलाम करता वह दल आगे बढता गया।

उनके वहाँ से गुजरत ही सावरकर को कोठरी मे निकाला और कारागार के द्वार के पास खडा कर दिया। सावरकर देख रहे थे कि बन्दीजनो का समूह माग पर पैदल ही आगे बढता जा रहा है। उनके चारों ओर सुरक्षा कमचारियो का गहरा प्रबन्ध है। सावरकर सोचने लगे कि यदि उन्ह भी इसी प्रकार जाना पडा तो कठिनाई होगी। तभी द्वार के बाहर एक मोटर आकर रुकी। दो लम्बे तडगे गोरे अधिकारी कार से बाहर उतरे। उनकी उपस्थिति म सावरकर को मोटर मे बठाया गया और फिर व दोनो भी उसमे बैठ गए। मोटर आगे चल दी।

न जाने कैसे, यह समाचार प्रसारित हो गया होगा कि सावरकर को आज अण्डमान भेजा जा रहा है। क्योकि सावरकर ने देखा कि जिस माग म उनकी मोटर जा रही थी उस माग पर अनेक लोग उनके दशनो क लिए खडे पाए गए। सम्भवतया

एक तो इस कारण भी सावरकर को अन्य बन्दियों के साथ पैदल नहीं भेजा गया होगा कि कहीं वे दर्शक कुछ कर न बैठें अथवा सावरकर के प्रति उनके मन की श्रद्धा और न बढ़ जाय। दूसरे सरकार को भय भी होगा कि जो व्यक्ति जलयान से समुद्र में कूदकर भागने का साहस कर सकता है वह पैदल ले जाने पर यहां पर भी कुछ भी कर सकता है अथवा सम्भव है कि उसके गिरोह के लोग उसको छुड़ाने का यत्न करें। इस आशंका से भी उन्होंने सावरकर को मोटर में ले जाना ही उचित समझा। सरकार की ओर से सावरकर पर इस प्रकार यह अहेतुक कृपा हो गई सावरकर पैदल चलने से बच गए।

सावरकर को मोटर से ले जाए जाने पर उन पैदल चलने वाले बन्दियों में सावरकर के प्रति श्रद्धा और भी बढ़ गई। उनको यह तो पता नहीं था कि सावरकर उनसे भी अधिक खतरनाक बन्दी है, इसलिए उसको मोटर में ले जाया जा रहा है। वे तो यही समझने लगे कि सावरकर बैरिस्टर है, बड़ा आदमी है, इसलिए उसको मोटर में ले जाया जा रहा है। बन्दी भांति भांति की बातें करने लगे। कोई कहता, वह तो राजा है, बड़ा आदमी है वह हम जैसा साधारण अपराधी नहीं है। कोई कहता, नहीं सरकार उससे डरती है, इसलिए उसको मोटर में ले जा रही है। यों सरकार के न चाहने पर भी उन बन्दियों की सावरकर के प्रति श्रद्धा हो गई।

रेलवे स्टेशन पर पहुंचने पर भी सावरकर को सबके साथ न रखकर किसी अलग ही डिब्बे में बैठाया गया। सावरकर की हथकड़ी का एक छोर एक अंग्रेज अधिकारी के हाथ से बांध दिया गया। इस प्रकार बिना अपराध के ही उस अधिकारी के हाथ में हथकड़ी पड़ गई थी। उसको बड़ी कठिनाई होती थी। क्योंकि सावरकर की किसी भी क्रिया पर उसको भी हाथ उठाना पड़ता अथवा लघुशंका आदि के लिए उनके साथ ही बराबर जाना पड़ता और सावधानी से, सतर्कता से खड़ा भी रहना पड़ता। न केवल इतना अपितु उसको भी सावरकर के साथ ही सोना भी पड़ता।

गाड़ी जब तक चली नहीं तब तक स्टेशन पर लोग आ आ कर उस डिब्बे के सामने खड़े होकर सावरकर को देखते। किन्तु पुलिस कर्मचारी उनको वहां पर खड़ा नहीं होने देते थे। तुरन्त वहां से हटा दिया जाता। यदि कोई अंग्रेज इस प्रकार आकर खड़ा हो जाता तो उसको वहां से हटाना भारतीय सिपाहियों के लिए सरल नहीं होता था।

वहां पर यह स्थिति देखकर पुलिस ने आगे के मार्ग पर सतर्कता बरतना आरम्भ कर दिया। जहां जहां और जिस जिस स्टेशन पर गाड़ी रुकने की सम्भावना होती, वह स्टेशन आने से पूर्व ही सावरकर के डिब्बे की खिड़कियां और द्वार अन्दर से बन्द कर दिए जाने लगे। वहां की परिस्थिति को देखकर सावरकर को लन्दन में अपने बन्दी बनाए जाने का स्मरण हो आया। 'माझी जन्मठेप' में सावरकर ने लिखा—

"मुझे इंग्लैंड का वह दृश्य स्मरण हो आया, जब मुझे लन्दन में बन्दी बनाकर रेल से ले जाया जाने लगा था तो उस समय रेल के डिब्बे की सब खिड़कियां खुली थीं। प्लेटफार्म पर खड़े चार लोग मुझको घूर घूर कर देख रहे थे। यहां तक कि कुछ लोगों

ने तो अपनी पत्नियो को कंधो पर बैठा कर मुझे दिखाया था। उनमे से एक ने मुझे खिडकी के पास ही खडा रहने को कहा था। उस समय मुझे किसी का यह स्वर सुनाई दिया, "देखो, देखो वह वहां पर है। देखो, वह है सावरकर।" हा, उन गोरो को मेरे समीप नही आने दिया जाता था। जो चार पाँच लोग मेरे समीप तक पहुँच गए थे, उनके व्यवहार मे मुझे शिष्टाचार और आदर ही दिखाई दिया था।"

किन्तु भारत मे स्थिति भिन्न थी। भीषण गर्मी मे भी खिडकियां बन्द कर दी जाती। उधर दूसरी ओर बैठे बन्दी वहा ही शोर गुल करते थे। उस समय सावरकर अपने मन को, रूसी तानाशाही द्वारा साइबेरिया ले जाते हुए बंदियो का स्मरण कर, सान्त्वना देते कि मैंने तो अभी तक वैसा कुछ भी नही भोगा है। इस प्रकार एक के बाद एक गाव, स्टेशन और नगर पीछे छूटते जा रहे थे, गाडी आगे बढती जा रही थी। मद्रास आकर उनकी गाडी रुक गई।

स्टेशन पर गाडी रुकने पर सावरकर को गाडी से उतारा गया किन्तु यहा पर भी उनको अन्य बंदियो मे पथक और दूर रखा गया। गाडी के साथ थाणे से ही एक गोरा पुलिस अधिकारी आया था। वह शायद किसी प्रथम श्रेणी के डिब्बे मे आया होगा क्योकि दो चार स्टेशन के बाद वह सावरकर के डिब्बे मे आता, पुलिस अधिकारी से बात करता और फिर चला जाता।

मद्रास स्टेशन पर उतारे जाने पर वह अधिकारी सावरकर के पास गया और बोला, "गुड बाइ फ्रेंड! ईश्वर की कृपा बनी रही तो मैं समझता हूँ कि आगामी दिसम्बर मे राज्यारोहण समारोह के अवसर पर आपको रिहा कर दिया जाएगा।"

सावरकर को यह देखकर बडा आश्चर्य हुआ कि यह कहते हुए उसका गला भर आया था। उसको शायद वहा से वापस जाना था, इसलिए वह सावरकर से विदा लेने के लिए आया था।

सावरकर ने उसके उत्तर मे कहा, "आपकी इस सहानुभूति के लिए मैं आपका आभारी हूँ। किन्तु मैं समझता हूँ कि घाव इतने ताजे और गहरे है कि इतनी अल्पावधि मे उनका भर जाना सम्भव नही दीखता। मैं यदि इस प्रकार की भ्रान्ति अपने मन मे रखूंगा तो यह मेरी मूर्खता ही होगी।"

न जाने क्यो उस अधिकारी ने और अधिक विश्वास के स्वर मे कहा 'मुझ पर विश्वास करिए। आप अवश्य ही मुक्त हो जायेंगे। आपके धैर्य तथा व्यवहार से मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ।

"अच्छा, अब मैं जाता हूँ।" यह कह, हाथ हिलाता हुआ वह वहां से चला गया।

कदाचित अंग्रेज अधिकारियो के मन मे यह डर बैठ गया होगा कि रेल यात्रा मे सावरकर उनको परेशान कर सकते है। मार्सेल्स वाली घटना की पुनरावृत्ति भी हो सकती है। यदि ऐसा कुछ हो जाता तो उन सबकी नौकरी का खतरा हो जाता। किन्तु ऐसा कुछ नही हुआ था और सावरकर का व्यवहार शिष्ट और शान्त रहा था, कदाचित

इसीलिए उस अधिकारी न यह कृतज्ञता ज्ञापित की होगी। अन्य अधिकारियों ने भी सावरकर को मद्रास पुलिस को सौंपा और अपने सिर के टोप उतार उनको हिलाकर सावरकर से विदा हो गए। उन्होंने चैन की सांस ली।

इससे पूर्व सावरकर को पता चल चुका था कि मद्रास के कलक्टर ऐश का वध किया जा चुका है। डोंगर जेल में उनसे पूछा भी गया था कि मद्रास में अभिनव भारत के कौन कौन लोग हैं। इस बात का स्मरण कर सावरकर सोचते थे कि मद्रास पहुँचने पर उनको वहीं रखा जाएगा और कदाचित कलक्टर की हत्या की छानबीन के लिए उनसे पूछताछ होगी। जबकि सावरकर को उस घटना की सूचना मात्र थी और यह भी पता नहीं था कि उनके साथी अय्यर भारत पहुँच चुके हैं और उन्होंने ही किसी प्रकार योजना बनाकर किसी एक वांछ ब्राह्मण के हाथों कलक्टर का वध करवा दिया था।

कुछ इसी प्रकार हुआ भी।

पुनः जलपोत पर

मद्रास से अण्डमान जाने के लिए समुद्र में 'महाराजा' नामक स्टीमर खड़ा था। कालापानी के लिए दण्डित सभी बन्दी उस स्टीमर में बैठाए गए। किन्तु सावरकर को उसमें न बैठा कर एक छोटी अग्निबोट में बैठाया गया। उनके साथ मद्रासी अधिकारी बैठ गए। एक वरिष्ठ अधिकारी ने वातावरण निर्माण की दृष्टि से सावरकर से उनका कुशल क्षेम पूछा। फिर वह उनके साथ इधर-उधर की बातें करता हुआ इंग्लैंड में सक्रिय भारतीय क्रांतिकारियों के विषय में पूछने लगा।

सावरकर ने उसे उत्तर देते हुए कहा, "देखिये, मैं तो काफी समय से भारत के कारागारों में बन्द रहा हूँ। वहाँ की ताजा गतिविधियों के विषय में तो आप ही मुझे जानकारी दे सकते हैं। मेरे जैसा जेल में रहने वाला व्यक्ति क्या जान सकता है और क्या बता सकता है।"

अधिकारी कहने लगा, "मद्रास में कलक्टर की हत्या का भी भला कोई षड्यन्त्र था। उसमें तो चार लोग भी नहीं रहे होंगे।"

सावरकर को यह सुन कर हंसी आ गई। उन्होंने उसी तरह कह दिया, 'फिर तो आपको चाहिए था कि आप उसमें कुछ और लोगों को सम्मिलित करा देते।'

वह बोला, 'यहाँ मद्रास के लोग बड़े ही समझदार और शान्त स्वभाव के हैं। तुम्हारे वहाँ के युवकों की भाँति भावावेशी अथवा उच्छृंखल नहीं हैं। यहाँ यदि उत्तेजना फैलाने वाला प्रचारक आया तो उसे यहाँ कोई भी अनुयायी नहीं मिलेगा।'

वह अधिकारी शायद सावरकर को उत्तेजित कर उनके मुख से कुछ कहलवाना चाहता होगा। क्योंकि अपनी बात कहते हुए वह सावरकर के मुख पर उभरने वाले भावों का निरीक्षण करता जाता था। जब उसको कुछ पता नहीं चला तो उसने पूछा, 'मद्रास की घटना के बारे में आपकी क्या राय है?"

'मैं तो जेल में बन्द रहा हूँ आपको ही अधिक पता होना चाहिए।

"मद्रास म तो सवत्र शान्ति है।"

उसके साथ वाला एक अय अधिकारी उस समय कहने लगा, "इह सब कुछ मालूम होगा। केवल आप दोनो एक दूसरे को 'पम्प' करने का प्रयत्न कर रहे हैं।"

तब तक वह बोट उस स्टीमर के समीप पहुँच गई थी। उसको स्टीमर से सटा दिया गया। कडे पहरे मे सावरकर को उस स्टीमर की सीढियो पर चढाया गया। जब सावरकर को स्टीमर पर चढाया जा रहा था तो स्टीमर के सभी यात्री, कमचारी तथा बन्दीजन उनको देखन क लिए खडे हो गए। बडी जिज्ञासा भरी दृष्टि से वे सब उनको देख रहे थे।

२७-६ १९११ को स्टीमर के ऊपर चढ जान पर सावरकर न देखा कि उसके निचले तल पर लोहे की छडा से बना एक पिंजरा सा है। साधारणतया उसमे बीस पचीस बन्दी ही रखे जा सकते थे। किन्तु सावरकर ने अनुमान लगाया कि उसमे तो लगभग पचास बन्दी बन्द होग। उसम व सब थे जिनको उनके साथ ही ठाणे मे लाया गया था। सावरकर के देखते देखते ही स्वय उनको भी उसमे ही ठूस दिया गया। सावरकर क लिए वहाँ रहना कठिन हो गया। क्योकि इग्लैंड मे रहते हुए उन्हे श्वास रोग ने पकड लिया था। इसलिए घुटन म उनका श्वास फूल जाता था।

कुछ लोग एस होत हैं जो किसी भी परिस्थिति मे स्वय को स्थिर रख लते है किन्तु जिनको हम महा भयकर अथवा खूखार खूनी कह कर उनसे भय खाते ह, कभी कभी हम उनको भी अपनी दशा पर रोते देखते ह। सावरकर के साथ उस स्टीमर मे भी इसी प्रकार के अनक लोग भरे पडे थे। कोई रो रहा था तो दूसरा कोई उसको सान्त्वना दे रहा था। उन सान्त्वना देन वालो म, सावरकर न देखा कि एक व्यक्ति उनकी ओर इगित कर रोन वाले बन्दी से कह रहा था 'देखो, वह उधर कोने मे देखो, बालिस्टर साहब बैठे हैं। अग्रेज अफसर भी टोप उतार कर उनको सलाम करते हैं। उनके दु ख के सामन हमारा दु ख किस पेड की पत्ती के समान है?"

इन शब्दो को सुनत ही सब बन्दी एकाएक सावरकर की ओर देखने लगे। उनकी पचास वष की सजा की बात सुनकर पन्द्रह वष के दण्ड वालो का दु ख वास्तव मे कुछ हलका हो जाता था।

शाम होत होत गर्मी और बढने लगी। अनेक प्रकार के गन्दे लोग, न जान जिसने कब से न नहाया होगा, सब उस पिंजरे म भर पडे थ। किसी के शरीर म कोई रोग तो कोई कैसा गदा। फिर भी मानो वे अभ्यस्त हो, इस प्रकार अपने अपने बिस्तरे डाल कर एक पर एक करके लटने लगे। कुछ लोगो के पैर सावरकर के मुख पर तो कुछ लोगो के सिर सावरकर के चरणो म। कही जरा सा भी इधर उधर किया कि किसी के मुख मे मुख का स्पश हो जाता, उसस जो दुर्गन्ध आती उसके कारण सावरकर की तबियत बिगड जाती।

लेट लेट ही सावरकर ने देखा कि सामने कुछ ऊपर की ओर एक पीपा सा रखा है। उस ओर को थोडा स्थान रिक्त सा था। कदाचित इसीलिए सावरकर को उस

और कुछ खुले में बिस्तर बिछाने का अवसर मिला होगा। सावरकर को कुछ पता नहीं था, किन्तु जब वहाँ लेटते ही थोड़ी देर में दुर्गन्ध आने लगी तो सावरकर ने अपनी नाक बन्द कर ली। पड़ोसी बन्दी बोला, 'यह पीपा, हम पचास लोगों के शौच के लिए रखा गया है।' सावरकर के उधर देखते ही पीप पर बैठा आदमी संकोच से उठने लगा तो सावरकर ने उसको समझाते हुए कहा, "भाई! यह तो नित्य कर्म है, इसमें संकोच किस बात का। थोड़ी देर बाद मुझे भी वहीं बैठना होगा। नाक तो सबकी ही है, हाँ पीपा समीप होने से मुझे कुछ अधिक दुर्गन्ध अनुभव हो रही है।"

तभी एक अन्य बन्दी आकर सावरकर से कहने लगा कि वे उसके स्थान पर चले जायँ और वह यहाँ पर उनके स्थान पर रह लेगा। किन्तु सावरकर ने उसको यह कहकर मना कर दिया कि उनके लिए वह क्यों दुर्गन्ध सहे और फिर सावरकर को वह स्थान खिड़की समीप होने के कारण डाक्टर के परामर्श पर दिया गया था। जिससे कि उनकी श्वास रुके नहीं।

सावरकर के मन में अनेक प्रकार के विचार उठने लगे। वे सोचते कि जिस प्रकार मनुष्य के लिए भोजन नितान्त अनिवार्य है उसी प्रकार मल मूत्र विसर्जन भी तो उतना ही अनिवार्य होता है। तब फिर कुछ इन्द्रियों के लिए जो प्रिय है वही कुछ अन्य इन्द्रियों के लिए अप्रिय क्यों? और फिर यह क्या है? अन्न पेट में जाने पर विष्ठा में परिणत होता है, विष्टा बाहर निकल कर खाद बन जाती है और फिर वही खाद अन्न के रूप में परिणत हो जाता है। अतः अन्न और विष्टा दोनों भिन्न किस प्रकार हुए?

इन्हीं विचारों में खोए वे बहुत विलम्ब से सो पाए थे।

स्टीमर अपनी गति से आगे बढ़ रहा था और सावरकर के पिंजरे में भी समय-समय पर तरह तरह की गतिविधियाँ होती रहती थीं। कुछ यात्री तथा कुछ भारतीय अधिकारी सावरकर के प्रति सहानुभूति रखते थे और जितना उनसे सम्भव होता था वे उनकी सहायता भी करने के लिए तत्पर रहते थे। आते जाते वे उनसे एक दो बात भी कर लेते थे। कुछ योरोपियन सैनिक भी ऐसे थे जो सावरकर के साथ सहानुभूति का व्यवहार करते थे। इस प्रकार कभी कभी उनको कोई अंग्रेजी पत्र पत्रिका भी मिल जाया करती थी।

स्टीमर में भोजन के नाम पर चने खाने को दिए जाते थे। दो दिन तक यही क्रम चलता रहा। दो दिन बाद कुछ अधिकारियों ने सावरकर को खाना खाने के लिए कहा तो उन्होंने कह दिया कि अकेले उनके खाने का प्रश्न नहीं है, उनके साथी नहीं खायेंगे तो वे भी नहीं खायेंगे। अधिकारियों ने स्टीमर के कप्तान से परामर्श किया और फिर उन सभी बंदियों के लिए भात, मछली तथा अचार की व्यवस्था कर दी। सावरकर के कारण दो दिन बाद बन्दियों को भी जब भोजन मिला तो इस दुर्लभ भोजन को पाकर वे सब आनन्दित होने के साथ साथ सावरकर के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने लगे।

इसी प्रकार सावरकर के साथ उन लोगों को भी घण्टे आधे घण्टे के लिए ऊपर खुली हवा में ले जाया जाता तो वे प्रसन्नता से नाच उठते थे। वे कृतज्ञता व्यक्त

करते हुए कहते कि उनका उनके साथ आना कितना सौभाग्यकारक बना है। सावरकर क्या कहते। कभी-कभी कह देते, "इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि मुझे सजा होना आप लोगो के लिए अच्छा ही हुआ।" यह सुनकर बेचारे झेंप जाते। सावरकर उन्हे सान्त्वना देते।

सावरकर के कारण उस स्टीमर मे अधिकारियो से लेकर सिपाहियो तक म और बंदियो से लेकर यात्रियो तक मे राजनीति पर तथा भारत की स्वतन्त्रता के लिए चर्चा होती थी। जिस किसी ने कभी इस प्रकार की बातें सुनी नही होगी अब उसको सुनने के लिए मिलने लगी। जिन्होने कभी भारत की स्वतन्त्रता का विरोध किया होगा आज वे सावरकर के तर्क सुनकर उसे आवश्यक मानने के लिए विवश हो जाते थे।



अण्डमान की यातनाएँ

अण्डमान मे

स्टीमर की यात्रा पूर्ण हुई। ४ जुलाई, १९११ का प्रात काल। प्रभात के सूर्य की स्वर्णिम किरणे उस भारतीय किन्तु रूपी बन्दीगृह, अण्डमान को, सुरम्य बना रही थी। अण्डमान की राजधानी पोर्ट ब्लेयर म स्टीमर ने लगर डाल दिया था। वह स्टीमर इन बन्दियो के मृत्यु और जीवन की दहली थी। सावरकर का चिन्तक मन न जाने क्या क्या तो सोचता रहा था। अण्डमान को देखकर सावरकर के मन मे विचार उठ रहा था कि ये छोटे छोटे द्वीप हमारे स्वतन्त्र भारत की बाहरी चौकिया का काय कर सकते है। इसके लिए जो स्थान आज घटनावश सिंगापुर को प्राप्त है वह स्थान ये द्वीप ग्रहण कर सकते है। ये भारत के पूर्व द्वार बन सकते है। वे सोचते कि यदि यहा पर सुदृढ जल सेना का गठन कर लिया जाए तो जल माग से भारत पर आक्रमण करने का फिर किसी को साहस तो क्या विचार भी नही आ सकता।

सावरकर का यह विचार कितना दूरगामी था। उनकी भविष्य दृष्टि सत्य सिद्ध होने पर आज उसका अनुमान लगाया जा सकता है। अण्डमान द्वीप समूह आज भारत की जल सेना का आधार बनकर पूर्व दिशा की ओर से भारत की सुरक्षा के लिए सन्नद्ध है।

स्टीमर रुकने पर सावरकर ने समीपस्थ भू भाग पर दृष्टिपात किया। दूर उन्हे वह रास द्वीप दिखाई दिया जहा अण्डमान का आयुक्त रहता था। वह टापू बडा ही सुन्दर दिखाई दे रहा था। अण्डमान के समुद्र तट पर दूर दूर तक नारियल के वृक्षो की कतारें लहरा रही थी। आम सुपारी तथा पीपल के वृक्ष भी वहा पर्याप्त सख्या म दिखाई दे रहे थे।

स्टीमर के रुकने के कुछ ही क्षणो म समीप के समुद्र तट पर बडी सख्या मे लोग एकत्रित दिखाई देने लगे। न जाने वे क्या क्या कानाफूसी कर रहे होगे। सामने एक बहुत बडा सा भवन दिखाई दिया तो सावरकर ने सिपाही से उसके विषय म पूछा।

उसने बताया, यही तो वह कारागार है जहा उनको ले जाया जा रहा है।

तभी आदेश हुआ कि सब वन्दी अपने बिस्तर सिर पर रखें, बतनो को हाथ म लें। सबको पक्तिबद्ध खडा किया गया और फिर धीरे धीरे स्टीमर से नीचे उतारा। अन्य सब बन्दियो को अग्रेज अधिकारियो की देख रेख मे वहा से ले जाया गया किन्तु सावरकर को एक ओर को बैठा दिया गया। सावरकर वहा पर बैठे-बैठे फिर विचारो मे खो गये। तभी कुछ देर बाद सहसा उनके कानो म आवाज आयी, 'चलो, उठाओ अपना बिछौना।'

सावरकर न देखा समीप ही कोई गोरा अधिकारी खडा था। कदाचित उसको प्रसन्न करने के लिए ही सिपाही न कडक आवाज मे सावरकर को आदेश दिया था।

सिर पर बिछौना, हाथ मे बतन और पाँव तथा कमर मे बेडियो का बोझ ढोते हुए सावरकर को समुद्रघाट से ऊपर की ओर ले जाया जाने लगा तो नगे पैर चलने मे उनको कष्ट होने लगा। सिपाही बार बार जल्दी चलो कहने लगा तो साथ चल रहे गोरे अधिकारी ने उससे कहा "आराम से चलने दो।

चढाव समाप्त होते ही सेलुलर कारागार का द्वार सामने आ गया। लोहे के विशाल द्वारो के कब्जे किसी हिंसक प्राणी के तीव्र दाढो की भाति चरमराने लगे और फिर कुछ क्षणो मे ककश ध्वनि के साथ कारागार का द्वार इस प्रकार खुल गया मानो हिंसक जन्तु ने अपने जबडे खोल दिए हो।

ज्योही सावरकर उस जबडे नुमा द्वार के भीतर प्रविष्ट हुए और उनके साथी भी भीतर हो गए कि सहसा वह जबडा बन्द हो गया। उसके बाद वह ग्यारह वर्ष बाद ही खुला था, तब तक यो ही बन्द पडा रहा।

अण्डमान का बारी साहब

द्वार के भीतर पग धरते ही दो बडे तडे सार्जेंटो ने सावरकर के हाथ पकड लिए और उनको वहीं पर खडा कर दिया गया। लोग परस्पर कानाफूसी करने लगे, 'बारी साहब आ रहा है। किन्तु सावरकर उस ओर ध्यान न देकर जेल का भीतरी दृश्य देखने म तन्मय थे। वे अपने विचारो म खोये हुए थे कि तभी सामने एक स्थूल-काय गोरा अधिकारी बडा सा लट्ठ लिए उनके सामने आकर खडा हो गया।

वह बडी-बडी आँखो से सावरकर को ही ताक रहा था। उसने सप्रयोजन पहले ही सावरकर को यह सूचना भिजवा दी थी, कि वह आ रहा है। सम्भवतया बारी को यह आशा रही होगी कि उसको देखते ही बन्दी भय से कॉपने लगेगा। किन्तु इधर सावरकर थे कि उनको उसके आने तक का पता नहीं चला था, वे तो [illegible] की भीतरी छटा निहारने म मग्न थे।

सावरकर की ओर से किसी प्रकार की विपरीत प्रतिक्रिया अथवा [illegible] जाए कि उसके मन के अनुकूल प्रतिक्रिया जब उसने नहीं पाई तो उसने गुर्रा

"उसको छोड दो, यह कोई खूखार भेड़ नही है।" यह बात उसने अंग्रेजी मे कही थी।

सावरकर को उन दो सार्जेंटो ने तो छोड दिया किन्तु बारी की आँखें उन्हे पकडे जकडे रखने का यत्न करने लगी। उसने अंग्रेजी मे ही उनसे पूछा, "क्या तुम ही वह व्यक्ति हो जिसने मार्सेल्स मे भाग निकलने का यत्न किया था ?"

'जी हाँ। क्यो ?'

सावरकर की दृढता देखकर बारी का स्वर कुछ ढीला सा पड गया। उसने फिर पूछा, 'तुमने ऐसा क्या किया ?"

"कुछ कारणो से, जिनमे एक कारण था स्वय को इन झझटो से मुक्त करना।

"परन्तु उन झझटो मे तो तुम स्वय ही फँसे थे, क्यो यह ठीक नही है ?"

"जी हाँ। मैंने स्वय को उन झझटो मे डाला था। क्योकि मैंने अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए उन झझटो मे फँसना अपना कर्त्तव्य समझा था और फिर उन झझटो से मुक्त होना भी मैंने अपना कर्त्तव्य समझा था।"

सहसा बारी के मुख से निकल गया, 'मैं सत्य बात बताऊँ कि मै अंग्रेज नही हूँ। मैं आयरिश हूँ।'

"हो सकता है। यदि आप अंग्रेज भी होते तो भी आपके अंग्रेज होने मात्र से मेरे मन मे आपके प्रति तिरस्कार की भावना नही उमडती। मैंने अपनी तरुणाई का बहुत बढिया भाग इग्लैड मे बिताया है और मैं अंग्रेजो के अनेक गुणो का प्रशसक हूँ।'

"मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि मैं आयरिश क्रांतिकारी था और अपनी मातृभूमि को अंग्रेजो से मुक्त करने के लिए मैंने भी सघर्ष किया था। अब मुझे उसकी निरर्थकता का आभास हो गया है। इसलिए एक मित्र के नाते मैं तुम्हे बता रहा हूँ कि तुम अभी युवक हो और मैं अब वृद्ध हो चला हूँ

सावरकर ने उसको बीच मे ही रोकते हुए कहा, क्या आप यह नही समझते कि कदाचित आपकी यह बढती आयु ही आपके विचारो मे परिवर्तन का कारण बनी हो ? आयु बढने के साथ आपकी बुद्धि का तो विकास हुआ नही, हाँ शक्ति अवश्य क्षीण हुई है।'

बारी सकपकाया और बोला 'देखो, तुम तो बरिस्टर हो और मैं हूँ साधारण जेलर। मेरे परामर्श को मत ठुकराओ। हत्या तो हत्या है। हत्याएँ स्वाधीनता नही ला सकती।

'यह तो ठीक है, किन्तु आपने यह बात अपने आयरलैंड के सिन फिनस को क्यो नही कही। और फिर आपको यह किसने बताया कि मैंने कभी हिंसा मे भी भाग लिया था ?

बारी सहसा अपने आधिकारिक स्वर मे बोला, 'जो कुछ मन कहा है ह f दम

विरुद्ध था। आप जैस पढ लिखे विद्वान एव विख्यात तरुण व्यक्ति को इन अपराधिया के बीच मे पाकर मुझे दु ख हुआ था। आपके अतीत से मेरा कोई सम्बन्ध नही है। देखो, ध्यान रखना, आपको यहाँ के नियमा का पालन करना होगा। उनका भग करना दण्डनीय हो जाएगा। एक बात और। मैं आपको यह बता दना चाहता हूँ कि यहाँ स भागन के लिए किया गया कोई भी प्रयत्न आपको जगली हिंसक जन्तुओ के मुख म डाल देगा।

"इतना ही नही यहाँ जो इन जगलों मे वन मानुष रहते है वे भी तुमको गाजर-मूली की भाँति कच्चा ही चबा जाएँगे।

"अरे तुम हँस रह हो? क्यो जमादार! मैंन कुछ गलत तो नही कहा न?"

बारी ने जमादार की ओर मुख करके उससे पूछा तो उसने भी बारी की हाँ म हाँ मिलाते हुए कह दिया, "हा साहब! आप क्यो गलत कहगे।

सावरकर ने कहा, "जी हा, मैं जानता हूँ कि पोर्ट ब्लेयर मार्सेल्स नही है। क्योंकि जब मुझे आजन्म कारावास का दण्ड दिया गया तो मैं समझ गया था कि अब अण्डमान जाना होगा। तब मैंने अण्डमान सम्बन्धी सरकारी सूचना पुस्तक मँगाकर पढी थी। मैं यहा के विषय म काफी कुछ जान गया था।"

"तब तो ठीक है। आप मेरे बताये माग पर चलिए। इससे आपको लाभ होगा।"

बारी ने जमादार से कहा, "जमादार! इनको अन्दर ले जाकर सात नम्बर की बरेक की ऊपरी कोठरी मे ले जाकर बन्द कर दो।"

जेल मे पहले दो दिन

सात नम्बर का याड जेल भवन की तीसरी मंजिल पर था। सावरकर के कारण सात नम्बर याड खाली करा दिया गया था और कारागार के खूखार पुराने पठान बन्दियो को पहरेदार के रूप मे नियुक्त किया गया था। जमादार सावरकर को लेकर उस याड म गया।

ये बन्दी जब से मद्रास स चले थे तब से उन्ह स्नान का अवसर मिला ही नही था। समुद्र यात्रा से सारा शरीर मलिन और पसीन से दुर्गन्धयुक्त हो गया था। स्नान करना आवश्यक था। जब जमादार से स्नान के लिए कहा गया तो वह सावरकर को लेकर एक हौद के समीप पहुँचा। वह साथ मे एक लगोट भी ले आया था। उसने वह लगोट सावरकर को देते हुए कहा, "इसे पहन लो। अब स्नान और काम करत समय इसको ही पहनना होगा, नेकर नही।'

यह सब देख सुनकर सावरकर की जो अवस्था हुई वह उन्होने अपनी पुस्तक 'माझी जन्म ठेप' मे इस प्रकार वणन की है—

"पहले तो लगोटी पहनते हुए मन हिचकिचाया किन्तु तुरन्त ही

और कहा अरे पगले ! समथ स्वामी रामदास भी तो लगोटी ही धारण करते थ। सब जानते है कि इस कपडे के भीतर क्या है, फिर किससे क्या छिपाना ? योरोप मे एक पथ ऐसा भी था जो वस्त्र धारण करना पाप समझता था। उसकी मान्यता थी कि आदम और होवा दोनो प्रारम्भिक अवस्था मे निवस्त्र और निष्पाप थे। उनके अनुयायी आज भी निवस्त्र ही रहते है उन्हे 'अडमाइट' कहते हैं। आज भी योरोप मे कई स्थानो पर स्त्री पुरुष निवस्त्र रह कर सूर्य स्नान किया करते है। वस्त्रो का मोह तो शरीर के कई अगो को सूर्य की किरणो से वचित रखता है। आरोग्य की दृष्टि से वहा के डाक्टरो ने लोगो को निवस्त्र रहना लाभकर बताया है।

"मैंने बिना किसी झिझक के लगोटी धारण कर ली। ज्यो ही कटोरी नुमा थाली मे हौज से पानी निकालकर शरीर पर डालने लगा कि जमादार ने टोक दिया। बोला 'ठहरो यह कालापानी है। पहले खडे रहना, फिर मैं पानी लेने की आज्ञा दूगा तो फिर झुक कर एक कटोरा पानी भरना और शरीर पर डालना। फिर मैं कहूँगा अग मलो आप अग मलेंगे। फिर मैं कहूँगा पानी लो, तो आप दो कटोरा पानी लेकर अपने शरीर पर डालेंगे। केवल तीन कटोरे पानी मे स्नान करना होगा। समझे !'

"खैर यो ही सही। मैंने पानी लिया और ज्यो ही मुख और आखो मे पानी का छपका दिया तो मेरी नेत्र ज्योति बन्द हो गई और आखो से आग सी निकलने लगी। आखिर हुआ क्या ? तभी कुछ पानी मुख मे गया तो लगा कि पानी तो बहुत कडवा है। मैंने पानी थूक दिया। साहस करके जमादार से पूछा, यह पानी नमकीन क्यो है ? तब जमादार ने बताया कि यह समुद्र का पानी है। मीठे पानी की कमी होने के कारण स्नान आदि के लिए समुद्र का पानी नल से लाकर हौद मे सचित किया जाता है।

'मैं समझ गया कि अब इसी के आश्रय रहना होगा। स्नान किया। शरीर चमचमा गया बाल मारे खडे हो गए थे।

हम ऊपर बता आए है कि सावरकर की निगरानी पर क्रूर पठानो को नियुक्त किया गया था। उनमे से जो सबसे अधिक क्रूर था उसको 'वार्डर' अथवा 'पेटी अफसर' के रूप मे नियुक्त किया गया था। वह अपनी क्रूरता, चुगली तथा हिन्दू द्वेष आदि 'गुणो' के कारण आगे बढता हुआ 'पेटी अफसर' तक की पदवी पर पहुँच गया था। इस प्रकार के तीन वार्डरो के उत्तरदायित्व मे सावरकर को सौपा गया था।

किसी प्रकार एक दिन बीत गया। दूसरा दिन आया। उस दिन प्रात काल लगभग आठ बजे तीनो पठान वार्डर दौडे-दौडे सावरकर के पास गए और कहने लगे, 'साहब आता है। खडे रहो।

सावरकर कोठरी के बन्द सलाखो के पास आ गए। देखा दूर से बारी आ रहा है। उसके साथ कुछ अन्य अग्रेज अधिकारी भी दिखाई देते थे। सावरकर के उस कारागार मे आने से बारी को कुछ अधिक ही महत्व मिलने लगा था। क्योकि अण्डमान मे रहने वाले अग्रेज अफसर सावरकर के बारे मे बहुत कुछ सुन अथवा पढ

चुके थे। व सभी स्त्री-पुरुष सावरकर से मिलने अथवा बातें करने के लिए लालायित रहन लगे थे।

वे लोग बारी से खुशामद करते कि किसी प्रकार उन्हें सावरकर से मिला दिया जाए। किन्तु बारी सहज पसीजन वाला प्राणी नही था। बहुत मिन्नत खुशामद से वह उनकी बात मानता था। उनमे से कुछ को तो वह उनसे मिलाता था किन्तु अधिकाँश को दूर से ही दिखा देता था। इस पर भी वह उन पर अहसान जताता और कहता कि उन लोगो को सावरकर तक लाने के कारण उस पर कोई विपत्ति आ गई तो उसको कौन भुगतेगा?

उस दिन बारी का दल जब निकट आ गया तो वाडर के मुख से निकला, 'सरकार' तो सावरकर समझ गए कि बारी आ पहुँचा है। कोठरी के सीकचो से उन लोगो के आगे निकले हुए पेट ही पहले दिखाई दिए। समीप आकर बारी ने सावरकर से कहा, "लोग आपसे कहते होंगे कि मैं जेलर हूँ, क्या है न? किन्तु मै तो कहता हूँ कि मैं आपका मित्र हूँ।"

बारी के साथ आए अन्य लोग कुछ बोल नही सकते थे। क्योंकि बोलने की आज्ञा उसको ही मिल सकती थी जो बारी का विशिष्ट व्यक्ति होगा।

बारी ने फिर कहा, "मैं आप जैसे सुशिक्षितो से बात करना पसन्द करता हूँ, इसीलिए मैं आपसे मिलने के लिए आया करता हूँ।

सावरकर उसकी ओर देखते रहे। बारी ने सन १८५७ की बात तो आरम्भ की किन्तु वह कुछ जानता होता तो उस पर बात करता। साथ मे आए अंग्रेजो का उद्देश्य कदाचित सावरकर से कुछ उगलवाना रहा हो। अत उनमे से एक कहने लगा, "आपने सन १८५७ के उस निकृष्ट बंड का इतिहास लिखा है "

उसके मुख से 'निकृष्ट' शब्द सुन कर सावरकर मन ही मन हँस दिए। वे भी समझ गए थे कि कुछ टटोलने के लिए ही ये लोग यहा आए हैं। किन्तु एकान्त कोठरी मे रहते रहते सावरकर ऊब गए थे अत कुछ तो बात करने के लिए उन्होंने कहा "मैंने सन १८५७ के विषय मे पर्याप्त अध्ययन किया है। इस विषय मे मैंने अनेक ग्रथो को पढा है।'

"तो फिर बलवा करने वाले ऐसे 'दुष्ट' लोगो के प्रति आपके मन मे घृणा क्या नही उत्पन्न हुई? कितना पैशाचिक कृत्य था वह? मेरे पिता उस बलवे मे थे। वे बताया करते थे कि उस 'अधम' नाना साहब ने तो कानपुर मे स्वय अंग्रेज महिलाओ की दुर्गति की थी। उसने स्त्रियो के मुख मे एसे थे वे नर राक्षस।' यह सब बारी ने कहा था।

"क्या आपके पिताजी ने अपनी आखो से यह सब देखा था?"

"नही, लखनऊ मे जिस कर्नल ने यह सब देखा था उसी ने मेरे पिता जी को यह बताया था।'

"तब तो यह सरासर झूठ है। क्योकि नाना साहब तो कभी लखनऊ थे ही

नही। जब अंग्रेज स्त्री पुरुषों को बन्दी बना कर कारागार में डाला गया था तब नाना साहब कानपुर मे थे।"

किन्तु बारी कब मानने वाला था। उसने एक प्रकार से इसे अनसुना कर दिया। फिर कहने लगा, "ऐसे सैंकडो उदाहरण हैं।"

"जैसे ये कही सुनी बातें झूठी हैं वैसे ही वे सकडो उदाहरण भी होंगे।"

तब उसके साथ आये एक अंग्रेज ने कहा, "किन्तु आप नाना साहब और तात्या टोपे आदि की उस स्वार्थी नीति से घृणा नही करते? उसकी भर्त्सना नही करते?"

'भर्त्सना? देखिए मैं तो यहा बन्दी हूँ। मैं इस विषय पर यहाँ स्वतन्त्रता से विचार विनिमय नही कर सकता। यदि मैं कोई बात कहूँ और आप उसे बीच में ही रोक दें तथा मेरे देश का अपमान करें तो यह आप लोगो की कायरता कहलाएगी, वीरता नही।"

अंग्रेजो ने बारी की ओर देखा तो उसने वाद विवाद करने की अनुमति दे दी।

सावरकर ने कहा "अपने देश के सम्मान को आघात पहुँचाना कोई भी देश-भक्त सहन नही कर सकता। अंग्रेज सरकार ने इस प्रकार के अत्याचारो जिनका आपने अभी उल्लेख किया है के लिए जाँच समिति गठित की थी उसने अपना निर्णय सुनाते हुए कहा था कि ये आरोप सब 'निराधार है। ये सब ब्रिटिश सिपाहियो के कुत्सित मस्तिष्क की उपज है।"

सावरकर का स्वाभिमान जाग उठा था। उन्होंने आगे कहा, "आप नाना साहब और तात्या टोपे को स्वार्थी कहते है? आप कहते हैं कि नाना राजा बनना चाहते थे और तात्या ख्याति अर्जित करना चाहते थे? तो क्या यह सत्य नही है कि विक्टर एमनुअल राजा बनना नही चाहता था? क्या वाशिंगटन की दृष्टि राष्ट्रपति पद पर थी? गैरीबाल्डी क्या ख्याति के लिए मर रहा था? किन्तु तथ्य यही है है कि वे सब अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष कर रहे थे। इस तथ्य को कोई नही झुठला सकता।

जहाँ तक कानपुर मे हुए अत्याचारो की बात है वह सब अंग्रेजो के उन अत्याचारो की प्रतिक्रिया स्वरूप था जो उन्होंने कानपुर पहुँचने से पूर्व मार्ग के गाँवों और नगरो में किए थे?"

बारी के अतिथि अपना सा मुख लेकर रह गए। यह वार्तालाप यही समाप्त हो गया।

बारी ने चलते चलते सावरकर के स्वास्थ्य के विषय मे पूछा और फिर कहा, ठीक है, इस विषय पर फिर कभी चर्चा करेंगे।" अपने साथियो को लेकर वह चला गया।

काव्य रचना प्रारम्भ

दो दिन तब तो सावरकर को वहाँ जेल में कोई कार्य करने के लिए दिया नही गया था।

सावरकर ने पढने के लिए पुस्तको की माग की तो उनको कहा गया कि एक दो मास तक उनका व्यवहार देखकर तब पुस्तकें देने न देने के विषय मे निणय किया जाएगा।

ऐसे एकात मे कागज मिलना दुलभ था। बोलने के लिए प्राणी की ध्वनि के नाम पर केवल मच्छरो की ही भिनभिनाहट वहा सुनने को मिलती थी। ऐसे मे अब दिन बिताने के लिए सावरकर ने डोगरे, भायखला और ठाणे कारागार मे अधूरी रही कविताओ को पूण करने का विचार किया।

सावरकर सोचते रहे। समुद्र प्रवास के कारण रचना प्रक्रिया लगभग समाप्त सी हो गई थी। सावरकर को सहसा विचार आया कि कविता के लिए क्या न अनुष्टुप छन्द का प्रयाग किया जाए। रामायण और महाभारत जसे ग्रथा की रचना इसी छन्द म की गई है।

पहले तो सावरकर यह निश्चय नही कर पाए कि किस प्रकार की पद्य रचना की जाए। अनेक दिनो तक वे इसी ऊहा पोह मे रहे। भाति भाति के छन्द उनके मस्तिष्क मे कौंधने लगे, किन्तु अन्त मे जा कर 'अनुष्टुप' छन्द पर ही उनकी मति स्थिर हुई। उनका था कि उस कालावधि मे अनेक सुन्दर सुन्दर कल्पनाएँ उनके मन म उदभूत हुई थी किन्तु मन की अस्थिरता के कारण वे उस कल्पना को अक्षर एव चरणबद्ध करने म असमथ रहे थे। और जब उन्होने निश्चय कर लिया तो फिर सब प्रथम उन्होने 'कमला' की रचना आरम्भ की।

गुप्त पत्र

सावरकर को सलुलर कारागार मे आए पाँच दिन हो गए थे। इस अवधि मे बारी अथवा उसके अतिथिया के अतिरिक्त अन्य किसी बाहरी व्यक्ति से उनका सम्पक नही हो पाया था। तब सहसा पाचवें दिन जब सावरकर भोजन कर के एक प्रकार से विश्राम सा कर रहे थे, मध्याह्न का समय था, तभी नीचे से एक पत्थर का टुकडा उनके झरोखे की सलाख से टकराया। किन्तु ऊपर गिरने की अपेक्षा वह सीधे नीचे ही जा कर गिर गया। किसी ने उसको उठाया और फिर स ऊपर फेंका।

इस बार वह सलाख से टकरा कर सावरकर की कोठरी के भीतर आ गया। सावरकर कुछ क्षण उसको देखते रहे और फिर खिडकी मे नीचे झांका तो वहाँ एक वाडर खडा था। उसने सकेत स सावरकर को कहा कि व उसे उठा लें।

सावरकर ने उसे उठाया ता देखा कि उसके साथ कागज का एक टुकडा बँधा है। सावरकर ने उसे खोल कर पढना चाहा था कि तभी उनको नीचे बडा कालाहल सा सुनाई दिया। सावरकर न नीचे देखा तो पाया कि उनका अपना पहरेदार किसी अधिकारी को जोर जोर से पुकार रहा था। सावरकर ने अनुमान लगाया कि पत्थर फेंकते समय पहरेदार न वाडर का देख लिया हागा। सावरकर साच ही रहे थे कि तभी वह पहरेदार उनकी कोठरी के बाहर आ कर खडा हा गया।

सावरकर द्विविधा म पड गए। वे उस पत्र को फाडना भी नही चाहत थ क्यो कि वे समझते थे कि जिस किसी ने भी इतना साहस कर के यह पत्र भेजा है अवश्य ही उसमे कुछ महत्व की बात होगी। उसे छिपाना अत्यन्त आवश्यक था और उनका डर लग रहा था कि किसी भी क्षण उनकी कोठरी का द्वार खोल कर उसकी तलाशी ली जा सकती है। सावरकर यह भी सोचते थे कि यदि तलाशी मे वह पत्र मिल गया तो स्वय उनको, उस व्यक्ति को जिसने वह पत्र भेजा था और उस वाडर को जिसने उसको ऊपर फेंका था, भीषण सकट का सामना करना पड सकता है।

सावरकर की बुद्धि ने काम किया। वे कोठरी के एक कोने म पहरेदार की आँखो से ओझल हो गए और उस कागज के टुकडे को अपने शरीर के गुप्त भाग म ठूस लिया। तभी 'पटी अफसर' वहा आ गया। उसने चिल्ला कर कहा, 'पत्र कहा है? पत्थर का टुकडा किसने उठाया?"

सावरकर अनजान से बन बोले, 'कसी चिटठी? कैसा पत्थर? मुझे तो कुछ मालम नही है।'

उसी समय एक अन्य कक्ड फकने की आवाज आई। वाडर ने उचक कर देखा तो पाया कि नीचे का वाडर सावरकर की ओर कुछ सकत कर रहा था। नीचे का वाडर हिन्दू था, यदि वह पकडा जाता तो उसके स्थान पर भी कोई पठान नियुक्त कर दिया जाता। खैर, पठान ने कोठरी खोली और सावरकर के वस्त्र और समस्त शरीर को छान दिया किन्तु कही कुछ मिला नही। उसके बाद नीचे वाले वाडर की भी तलाशी ली गई, उसके पास भी कुछ नही मिला। इस प्रकार यह मामला ठडा हो गया।

जब सब कुछ शान्त हो गया और सदेह के लिए कोई स्थान नही रहा तो सावरकर ने अवसर पाकर उस पत्र को पढा। वह पत्र उनके बगाल के किसी पुराने मित्र ने लिखा था। उस समय वहा सेलुलर जेल म राजनतिक बन्दियो म माणिकटोला बम काण्ड के अभियुक्त, इलाहाबाद के 'स्वराज्य पत्र के सम्पादक, बाबाराव सावरकर, वामनराव जोशी ये लोग भी कारावास भुगत रहे थे। उनमे से किसी ने पत्र भेजा था और उसम जेल के वातारण का विवरण देने के साथ-साथ सावरकर को सावधान रहने तथा किस के साथ किस प्रकार का व्यवहार करने के विषय मे लिखा था। विशेषतया यह लिखा था कि यदि कोई बन्दी भी है तो उस पर विश्वास करना भय से खाली नही होगा, क्योकि कि बगालियो की बेतहाशा धर पकड से कुछ लोग घबरा कर सरकार के मुखबिर बनने लगे हैं। कुछ इस प्रकार की बातें करके जीवन की कठिनाई मे मुक्ति पाने मे लगे हैं। वे लोग, जो क्रान्तिकारी पकडे नही गए है, उनके विषय म बयान म नही हिचक रहे हैं।

सावरकर ने पत्र पढा और स्थिति को समझा। बगाल के गुप्त सगठन के सदस्यो म पडी उस फूट पर उन्हे किसी प्रकार का आश्चय भी नही हुआ। क्योकि उनको पता था कि कुछ प्रमुख क्रान्तिकारियो के पकडे जाने पर अन्य लोग भय और

साहस खो चुके थे। इस पर भी सभी विश्वासघाती नहीं बने थे, यही क्या कम था।

एक विशेष बात यह भी थी कि जिन्होंने मक्टा से घबराकर इस प्रकार का विश्वासघात किया था, क्या उनको मुक्ति मिल गयी? नहीं। हाँ, उनका कष्ट कर कामों से अवश्य छुटकारा मिल गया था। इस प्रकार जो बन्दी अधिकारियों के सम्मुख किसी अन्य बन्दी की चुगली करता था उसको उसका प्रतिफल अवश्य मिलता था। वह व्यक्ति अधिकारी की दृष्टि में चढ़ जाता था और उससे हलका काम लिया जाने लगता था।

सावरकर का अण्डमान में आना ही हलचल भरा समाचार था। यह हम बता ही चुके हैं कि उनकी निगरानी के लिए क्रूर हृदय पठान बन्दियों को नियुक्त किया गया था। जब जेल में बन्दियों को पता चला कि किसी भी व्यक्ति की चुगली करके सुविधा प्राप्त की जा सकती है और क्रान्तिकारी भी जब इसका लाभ उठा रहे थे तो फिर सामान्य निम्नस्तर का अपराधी क्या न उठाए। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ बन्दी सावरकर की भी उलटी सीधी बातें बताने लगे। उसके फल स्वरूप उनकी स्वयं की तो एक एक कठिनाई कम होती गई और उसके साथ-साथ सावरकर की एक-एक कठिनाई बढ़ती गई।

सावरकर के अण्डमान पहुंचने से पूर्व जो राजबन्दी वहां लाए गए थे सबको एक ही बैरक में रखा गया था। उनकी देख रेख के लिए एक पठान बन्दी का अधिकारी बनाकर तैनात कर दिया गया था। बन्दियों का काम था नारियल के छिलके निकाल कर उनके रेशे अलग अलग करना। तेल के कोल्हू में पिलने की अपेक्षा यह हलका काम था। पढ़े लिखे होने पर भी उनको कार्यालय के काम में नियुक्त नहीं किया गया था। विपरीत इसके जिन लोगों को अंग्रेजी का सामान्य शब्द ज्ञान भी नहीं था उनको लेखन का काम दे दिया गया था। राजनीतिक बन्दी होने के कारण ही उनको लेखन अथवा कार्यालय के काम के लिए अपात्र मान लिया गया था।

यद्यपि उन राजनीतिक बन्दियों को इस प्रकार के निम्नस्तर के काम दिए गए थे किन्तु फिर भी उनको एक साथ रहने की सुविधा थी, यह उनके लिए बड़े लाभ की बात भी थी। वे परस्पर बैठकर वार्तालाप तो कर सकते थे। उनमें से एक दो लोग कभी कभी रुग्ण भी होते रहते थे और डाक्टरी आदेश के आधार पर उनको जो दूध मिलता था उसको वे पठान अधिकारी गटक जाया करते थे बन्दियों को नहीं देते थे। किन्तु उन बन्दियों के कारण ही उनको दूध मिलता था, इस कारण वे उनके प्रति कुछ कुछ उदारता का व्यवहार करने लगते थे। सावरकर के बड़े भाई बाबाराव सावरकर भी उसी बैरक में उनके साथ ही रह रहे थे, यह सूचना भी सावरकर को मिलती रहती थी।

सावरकर आदि की यह स्थिति भी स्थायी नहीं रह पाई। कुछ मास के उपरान्त कलकत्ता से एक उच्च पुलिस अधिकारी कारागार का निरीक्षण करने के लिए

आया और जब उसने देखा कि राजनीतिक बन्दी रात एक साथ बैठकर छिलका कूटने का काम कर रहे हैं, तो उसको राजनीतिक बंदियों की यह सुविधा सहन नहीं हुई। उसने अधिकारियों को समझाया कि ये राजनीतिक बन्दी, हत्यारे उद्दण्ड, खूनी, डाकुओं की अपेक्षा अधिक भयंकर हैं, इनके प्रति उदारता की नीति अच्छी नहीं। इनके साथ तो इस प्रकार का कठोर व्यवहार करना चाहिए जिससे कि ये कराह उठें।

यातनाओं का प्रारम्भ

कलकत्ता के उस पुलिस अधिकारी के निरीक्षण के उपरान्त और उसके यह निर्देश देने पर कि इन क्रान्तिकारियों के साथ ऐसा व्यवहार किया जाए कि जिससे इनको नानी याद आने लगे, जेल वार्डरों का व्यवहार भी कड़ा होने लगा। बारी तो अपनी क्रूरता के लिए कुख्यात था ही। उसी दिन से राजबंदियों को अलग-अलग कोठरियों में बन्द किया जाने लगा। वे परस्पर बात भी नहीं कर सकते थे। यहां तक कि स्नान के हौद पर अथवा भोजन के समय संकेत में भी कोई बात करता तो उसको सात सात दिन तक बेड़ी पहन कर खड़े रहने का दण्ड भुगतना पड़ता।

इसके साथ ही आरम्भ हुआ तेल की घानी में कोल्हू के बैल की भांति पिलने का कार्य। अब छिलके कूटना अथवा छांटना उनके साथ पक्षपात अथवा नरमी का व्यवहार माना जाने लगा। सवेरे उठते ही लंगोटी पहन कर अपने ही कमरे में कोल्हू पर बैल के स्थान पर लग जाना और डण्डा घुमाते रहना। कोल्हू में नारियल की गरी पड़ते ही वह इतना भारी चलने लगता कि सुगठित शरीर वाले शक्तिशाली बन्दी भी उसकी बीस फेरियां करते करते रोने लग जाते थे।

वहां अनेक नवयुवक जो बीस बीस वर्ष तक की आयु के होंगे, जो चोरी, डकैती तथा हत्या जैसे जघन्य अपराधों में दण्ड भुगत रहे होंगे, उन तक से कोल्हू का काम नहीं लिया जाता था और राजनीतिक बन्दी, चाहे वह किसी भी आयु वर्ग का क्यों न हो तथा उसका शरीर कैसा भी रुग्ण क्यों न हो उसके लिए कोल्हू का दण्ड भुगतना अनिवार्य कर दिया गया। इस प्रकार उन्हें प्रातःकाल से दस बजे तक निरंतर उसमें पिलना पड़ता। दस बजे भोजन के लिए उनकी कोठरी का द्वार खुलते। इस अवधि में अनेक बन्दी कितनी बार कोल्हू पर चक्कर काटते काटते चक्कर खाकर गिर पड़ते, किन्तु उन्हें कोई देखने वाला नहीं था, न कोई उन्हें सम्भालने वाला था। यही उनकी नियति थी।

दस बजे भोजन के लिए द्वार खुलने पर बन्दी द्वार पर जाता, अपने बर्तन में भात, रोटी और सब्जी लेकर भीतर को होता कि तुरन्त फिर बाहर से द्वार बन्द। हाथ पैर धोने अथवा पसीना सुखाने में यदि किसी बन्दी को क्षण भर का भी विलम्ब हो जाता तो वार्डर उसको भद्दी भद्दी गालियां देता। यहां तक कि कोल्हू पीसते-पीसते यदि बन्दी को प्यास लगती तो कोई उसको पानी लाकर देने वाला भी नहीं होता था। पाशविकता की कोई सीमा ही नहीं थी। पानी मांगने पर कभी-कभी

विषय को जेल अधीक्षक के पास न पहुचने देने के लिए सभी अन्य अधिकारी सतक रहते थे। यही कारण था कि वे सभी बारी से डर कर रहते थे। क्योंकि सेलुलर कारागार मे राजबन्दियों की सच्ची बात को भी अधीक्षक तक पहुचाना स्वय को राजद्रोह का अपराधी बनाने के समान ही भयावह हो गया था।

प्रातःकाल शौच जाने के लिए ८-१० बन्दियों को एक साथ भेजा जाता था। शौच करने के लिए भी समयावधि निर्धारित थी। यदि उस अवधि के भीतर किसी बन्दी का शौच ठीक प्रकार से न होता और वह कुछ क्षण और लगाने लगता तो पठान वार्डर उसको बीच में ही उठने के लिए बाध्य करता और न उठने पर स्वय उसको बाहर घसीट लाता। और यदि किसी दुर्भाग्यशाली राजबन्दी को दिन अथवा रात के समय कभी शौच जाने की आवश्यकता पड़ जाती तो उसे पूरा करना अत्यन्त कठिन होता था। उसके लिए वार्डर से कहना पड़ता। पहले तो वार्डर ही डाँट फटकार करता फिर किसी प्रकार यदि वह जमादार से कह भी देता तो जमादार उस बन्दी को भद्दी भद्दी गालियाँ देने लगता, मानो शौच करना भी जेल के नियमों के अनुसार अपराध हो। और यदि जमादार दया करके डाक्टर तक उसकी याचना को पहुचा भी दे तो डाक्टर बारी के डर के कारण सौ मे से केवल एक को इसकी लिखित आज्ञा देता था।

उस आज्ञा को लेकर जमादार बारी के पास जाता। बारी से अनुमति मिलने पर बन्दी की कोठरी का द्वार खुलता था और तब वहीं जाकर उसको शौच की सुविधा प्राप्त होती। किन्तु इतने से ही यह प्रकरण समाप्त नहीं हो जाता। प्रातःकाल बारी आकर उससे पूछता, "तुमने रात को शोर गुल क्यों मचाया ?" बन्दी कहता, "साहब शौच जाना था, क्षमा कर दो।" बारी को इतने से सन्तोष नहीं होता था। वह लाठी पटकता और गाली बकता हुआ कहता, "लेकिन टट्टी रात को ही क्यों लगी ?" बन्दी इसका क्या उत्तर दे। फिर भी उत्तर तो देना ही पड़ता तो वह कह देता, "साहब लग गयी, अब क्या करूँ ?" उस समय जमादार की बन आती और वह दो तमाचे बन्दी के गाल पर जड़ कर कहता, "साला ! साहब का मखौल उड़ाता है।" इससे भी अधिक यह था कि उस समय बारी साहब को क्रोध आ जाए तो वह बन्दी को एक दिन काल्हू का और दण्ड सुना कर वहाँ से टलता।

यदि कोई बन्दी आज्ञा न मिलने पर मलावरोध न कर पाता और अपनी कोठरी मे ही मल विसर्जन कर देता तो एक तो स्वय रात भर उस दुर्गन्ध को सहन करना दूसरे प्रातःकाल भंगी की मिन्नत करना और उसे तमाखू का लोभ देकर शौच साफ कराना। तमाखू न दिए जाने पर भंगी का शोर मचा कर जमादार को बुला लाना। उस अवस्था मे स्वय उस शौच को धोना गालियाँ खाना सात दिन तक का कठोर दण्ड भुगतना और भी न जाने क्या-क्या सहन करना पड़ता।

सामान्यजन देखते हैं कि पशुओं तक का काम करते समय उनका मल-मूत्र रोकना बुरा माना जाता है। यदि किसान हल जोत रहा है बैल मल-मूत्र विसर्जन

करता है, तो उस अवधि के लिए किसान रुक जाता है। किन्तु राजबंदियों को पशुओं तक को मिलने वाली इस सहज सुविधा से "बारी साहब" ने वंचित कर रखा था। इस दण्ड विधान को बदलने के लिए अनेक बंदियों ने कमिश्नर तक को प्रार्थना पत्र भेजे और जब इस बात की जाँच की गयी तो बारी का उत्तर होता था, "यह सब झूठ है। जमादार आदि से पूछा जा सकता है। यहां ऐसा कुछ नहीं होता। बन्दी लोग षडयन्त्र रचते हुए ऐसे आरोप लगाते हैं।"

बहुत दिनों तक यह सिलसिला चलता रहा फिर भी बन्दी शान्त नहीं रहे। गृहमन्त्री तक को इसकी शिकायत भेजी गयी। गृहमन्त्री जब जेल के दौरे पर आया तो बारी उसके साथ था। उसने कह दिया, "मल मूत्र त्याग पर रोक की इनकी शिकायत बिलकुल झूठी है।"

उस समय नन्दगोपाल नामक पंजाबी युवक ने साहस करके गृहमन्त्री से कहा, "आप बंदियों की कोठरी का स्वयं निरीक्षण करके देख लीजिए कि विवश होकर बन्दियों को दीवारों पर लघुशंका करनी पड़ती है, जिससे कोठरियों में सदा दुर्गन्ध भरी रहती है। आप जाकर देखिए। आपकी नाक ही हमारे लिए गवाह है।"

उस समय भी बारी ने यत्न किया कि वह नन्द गोपाल को झूठा सिद्ध करे। किन्तु सफल नहीं हो सका।

बारी का ऐसा दबदबा था कि यदि वह दिन को रात कहे तो उसके आधीन काम करने वाले सभी कहते "हां साब ! रात है।' बारी ने अपना यह दब-दबा एक दिन राजबन्दियों को भी दिखाया। उसने सभी बंदियों को कतारों में खड़ा कराया, पेटी अधिकारी और जमादारों को वहां पर बुलवा लिया और पेटी अफसर से पूछने लगा, "क्या पेटी अफसर ! इस समय दिन है या कि रात ?"

पेटी अफसर नया था, उसने कह दिया कि दिन है। बारी खौल पड़ा और बोला, "नहीं रात है रात !" अफसर समझा नहीं तो उसके मुख से फिर निकल गया, "नहीं हुजूर अभी तो दिन है।" बारी क्रोध से तिलमिलाने लगा। उसने जमादार की ओर मुड़कर कहा, "तुम बताओ दिन है कि रात ?" जमादार ने अदब से कहा 'हुजूर अभी तो रात ही है।" बारी बोला, "तुम ठीक कहते हो किन्तु तुमने इस नए पेटी अफसर को ठीक से क्यों नहीं पढ़ाया। देखो फिर कभी ऐसा न होने पाए।"

इस प्रकार जो भी नया पेटी अफसर आता उसको बारी के विषय में सब कुछ समझा दिया जाता और वह भी उसके स्वर में स्वर मिलाने लगता।

सावरकर को रखा तो ऊपर बैरक नम्बर ७ में था किन्तु पन्द्रह-बीस दिन बाद उनको काम करने के लिए निचली मंजिल पर लाया जाने लगा। पहले पहल उनको छिलके कूटने का काम दिया गया। इससे उनके हाथों में छाले पड़ गए। उनसे रक्त बहने लगा किन्तु वहाँ किसको इसकी चिन्ता होती ? सुपरिटेंडेंट से जब कहा गया तो उसने कह दिया कि यह तो करना ही पड़ेगा, धीरे-धीरे सब अभ्यास पड़ जाएगा।

विषय को जेल अधीक्षक के पास न पहुचने देने के लिए सभी अन्य अधिकारी सतर्क रहते थे। यही कारण था कि वे सभी बारी से डर कर रहते थे। क्योंकि सेलुलर कारागार मे राजबंदियो की सच्ची बात को भी अधीक्षक तक पहुचाना स्वय को राजद्रोह का अपराधी बनाने के समान ही भयावह हो गया था।

प्रात काल शौच जाने के लिए ८-१० बंदियो को एक साथ भेजा जाता था। शौच करने के लिए भी समयावधि निर्धारित थी। यदि उस अवधि के भीतर किसी बंदी का शौच ठीक प्रकार से न होता और वह कुछ क्षण और लगाने लगता तो पठान वाडर उसको बीच म ही उठने के लिए बाध्य करता और न उठने पर स्वय उसको बाहर घसीट लाता। और यदि किसी दुर्भाग्यशाली राजबंदी का दिन अथवा रात के समय कभी शौच जाने की आवश्यकता पड जाती तो उसे पूरा करना अत्यन्त कठिन होता था। उसके लिए वाडर से कहना पडता। पहले तो वाडर ही डाँट फटकार करता, फिर किसी प्रकार यदि वह जमादार से कह भी देता तो जमादार उस बंदी को भद्दी भद्दी गालिया देने लगता मानो शौच करना भी जेल के नियमो के अनुसार अपराध हो। और यदि जमादार दया करके डाक्टर तक उसकी याचना को पहुँचा भी दे तो डाक्टर बारी के डर के कारण सौ मे से केवल एक को इसकी लिखित आज्ञा देता था।

उस आज्ञा को लेकर जमादार बारी के पास जाता। बारी से अनुमति मिलने पर बंदी की कोठरी का द्वार खुलता था और तब वही जाकर उसका शौच की सुविधा प्राप्त होती। किन्तु इतने से ही यह प्रकरण समाप्त नही हो जाता। प्रात काल बारी आकर उससे पूछता, "तुमने रात को शोर गुल क्या मचाया ?' बंदी कहता, "साहब शौच जाना था, क्षमा कर दो।" बारी को इतने से सन्ताप नही होता था। वह नाठी पटकता और गाली बकता हुआ कहता, "लेकिन टट्टी रात को ही क्या लगी ?" बंदी इसका क्या उत्तर दे। फिर भी उत्तर तो देना ही पडता तो वह कह देता, "साहब लग गयी, अब क्या करू ?' उस समय जमादार की बन आती और वह दो तमाचे बंदी के गाल पर जड कर कहता, "साला ! साहब का मखौल उडाता है।' इससे भी अधिक यह था कि उस समय बारी साहब को क्रोध आ जाए तो वह बंदी को एक दिन कोल्हू का और दण्ड सुना कर वहा से टलता।

यदि कोई बंदी आज्ञा न मिलने पर मलावरोध न कर पाता और अपनी कोठरी मे ही मल विसर्जन कर देता तो एक तो स्वय रात भर उस दुर्गन्ध को सहन करना, दूसरे प्रात काल भगी की मिन्नत करना और उसे तमाखू का लोभ देकर शौच साफ कराना। तमाखू न दिए जाने पर भगी का शोर मचा कर जमादार को बुला लाना। उस अवस्था मे स्वय उस शौच को धोना गालियाँ खाना सात दिन तक का कठोर दण्ड भुगतना और भी न जाने क्या-क्या सहन करना पडता।

सामान्यजन देखते हैं कि पशुओ तक को काम करते समय उनका मल-मूत्र रोकना क्रूरता माना जाता है। यदि किसान हल जोत रहा है बैल मल-मूत्र विसर्जन

करता है, तो उस अवधि के लिए किमान रुक जाता है। किन्तु राजबंदियों को पशुओं तक को मिलने वाली इस सहज सुविधा से "बारी साहब" ने वंचित कर रखा था। इस दण्ड विधान को बदलने के लिए अनेक बंदियों ने कमिश्नर तक को प्रार्थना पत्र भेजे और जब इस बात की जांच की गयी तो बारी का उत्तर होता था, "यह सब झूठ है। जमादार आदि से पूछा जा सकता है। यहां ऐसा कुछ नहीं होता। बंदी लोग षड्यन्त्र रचते हुए ऐसे आरोप लगाते हैं।"

बहुत दिनों तक यह सिलसिला चलता रहा फिर भी बंदी शान्त नहीं रहे। गृहमन्त्री तक को इसकी शिकायत भेजी गयी। गृहमन्त्री जब जेल के दौरे पर आया तो बारी उसके साथ था। उसने कह दिया, "मल मूत्र त्याग पर रोक की इनकी शिकायत बिलकुल झूठी है।"

उस समय नन्दगोपाल नामक पंजाबी युवक ने साहस करके गृहमन्त्री से कहा, "आप बंदियों की कोठरी का स्वयं निरीक्षण करके देख लीजिए कि विवश होकर बंदियों को दीवारों पर लघुशंका करनी पड़ती है, जिससे कोठरियों में सदा दुर्गन्ध भरी रहती है। आप जाकर देखिए। आपकी नाक ही हमारे लिए गवाह है।"

उस समय भी बारी ने यत्न किया कि वह नन्द गोपाल को झूठा सिद्ध करे। किन्तु सफल नहीं हो सका।

बारी का ऐसा दबदबा था कि यदि वह दिन को रात कहे तो उसके आधीन काम करने वाले सभी कहते "हाँ साब! रात है।" बारी ने अपना यह दब-दबा एक दिन राजबंदियों को भी दिखाया। उसने सभी बंदियों को कतारों में खड़ा कराया, पेटी अधिकारी और जमादारों को वहाँ पर बुलवा लिया और पेटी अफसर से पूछने लगा, "क्या पेटी अफसर! इस समय दिन है या कि रात ?"

पेटी अफसर नया था, उसने कह दिया कि दिन है। बारी खौल पड़ा और बोला, "नहीं रात है रात!" अफसर समझा नहीं तो उसके मुख से फिर निकल गया, "नहीं हुजूर अभी तो दिन है।" बारी क्रोध से तिलमिलाने लगा। उसने जमादार की ओर मुड़कर कहा, "तुम बताओ दिन है कि रात ?" जमादार ने अदब से कहा "हुजूर अभी तो रात ही है।" बारी बोला, "तुम ठीक कहते हो किन्तु तुमने इस नए पेटी अफसर को ठीक से क्यों नहीं पढ़ाया। देखो फिर कभी ऐसा न होने पाए।"

इस प्रकार जो भी नया पेटी अफसर आता उसको बारी के विषय में सब कुछ समझा दिया जाता और वह भी उसके स्वर में स्वर मिलाने लगता।

सावरकर को रखा तो ऊपर बैरक नम्बर ७ में था, किन्तु पन्द्रह-बीस दिन बाद उनको काम करने के लिए निचली मंजिल पर लाया जाने लगा। पहले पहल उनको छिलके कूटने का काम दिया गया। इससे उनके हाथों में छाले पड़ गए। उनसे रक्त बहने लगा, किन्तु वहाँ किसको इसकी चिन्ता होती ? सुपरिटेंडेंट से जब कहा गया तो उसने कह दिया कि यह तो करना ही पड़ेगा, धीरे धीरे सब अभ्यास पड़ जाएगा।

बारी आयरिश था और सावरकर बरिस्टर थे। इसलिए अपनी अंग्रेजी भाषा बोलने का शौक पूरा करने के लिए बारी नित्य शाम को पाँच-दस मिनट के लिए सावरकर के पास आ जाता और उनसे वार्तालाप करता रहता। वार्तालाप के मध्य अधिकांश समय बारी अपनी प्रशंसा में ही बिताता था। इसके साथ ही वह राजबन्दियों की भी चर्चा करता। किन्तु उस चर्चा में उनके प्रति घृणा और निन्दा का भाव भरा रहता था। वह सावरकर को सावधान करता रहता कि जो राजबन्दी अशिक्षित हैं उनके साथ उनका सम्पर्क नहीं रखना चाहिए आदि-आदि। किन्तु सावरकर के लिए कठिनाई यह थी कि वे उसकी हाँ में हाँ नहीं मिला सकते थे और अपना प्रतिवाद भी व्यक्त नहीं कर सकते थे।

एक दिन सावरकर ने प्रतिवाद कर दिया तो उसका उन्हें कठोर दण्ड भुगतना पड़ा। उस समय तो बारी क्रोधित हो, उठकर चला गया, किन्तु दूसरे दिन उसने न जाने क्या-क्या नाटक करके सावरकर को अपमानित करने की अपनी आकांक्षा पूर्ण की। उसका कहना था कि सावरकर राजबन्दी नहीं हैं। उनको पचास वर्ष का दण्ड मिला है और वे सामान्य बन्दी हैं। सावरकर इसका प्रतिवाद करें भी तो कैसे करें और किससे करें, वहाँ कोई सुनने वाला ही नहीं था। उस दिन सावरकर को विदित हुआ कि वे राजबन्दी नहीं अपितु सामान्य चोर, डाकू की श्रेणी के बन्दी हैं।

शहीद द्वीप की कल्पना

इसी प्रसंग में एक दिन बारी एक राजबन्दी को बहुत भला-बुरा कहता हुआ अनेक प्रकार की भद्दी गालियाँ दे गया। यह सब सावरकर के सम्मुख ही हुआ था। इस प्रकार बारी एक तीर से अनेक शिकार किया करता था। बारी जब चला गया तो उस राजबन्दी का म्लान मुख देखकर सावरकर ने उसको आश्वस्त करते हुए कहा, "मेरे सामने बारी ने आपको भद्दी गालियाँ दी हैं, सम्भवतया इससे आपको संकोच हो रहा होगा। किन्तु इसकी आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है धैर्य बनाये रखने की। यह सब तो उसके अहंकार और मूर्खता का परिचायक है। आज हम लोग बेबस हैं, आज आपका इस स्थिति में भले ही अपमान हो गया हो, किन्तु निश्चित जानिए, एक दिन ऐसा भी आएगा जब इसी बन्दीगृह में आप सब राजबन्दियों की मूर्तियाँ स्थापित होंगी। और इसे भारत के राजबन्दियों/राष्ट्रभक्तों की तपस्या स्थली के रूप में तीर्थ-स्थल का महत्व प्राप्त होगा। सहस्रों भारतीय एवं विदेशी यहाँ तीर्थयात्रा करने आएँगे। उस समय भारतीय तीर्थ यात्री बड़े गर्व से कहेंगे—'देखिए, यही वह स्थल है जहाँ वर्षों-वर्षों तक हमारे पूर्वजों ने हमारे देश की स्वतन्त्रता के लिए अपने जीवन की आहुति दी थी।

उन लोगों को इससे कितनी सान्त्वना मिलती थी, यह कह पाना कठिन है। फिर भी एक दिन एक व्यक्ति ने उनसे पूछ ही लिया, 'क्या आप वास्तव में ऐसा ही मानते हैं?'

सावरकर बोले, "कम से कम होना तो ऐसा ही चाहिए।"

वार्तालाप पूर्ण भी नही हो पाया था कि पेटी अफसर आकर उनको घसीट कर वहा से ले गया।

उसके ठीक बत्तीस वर्ष बाद नेताजी सुभाष चन्द्र बोस पोर्ट ब्लेयर पहुँचे और उन्होने ३० दिसम्बर, १९४३ को वहाँ भारतीय क्रान्तिकारियों के सम्मान और स्मृति मे भारतीय स्वतन्त्रता का झडा फहराया और उस द्वीप का नाम 'शहीद द्वीप' घोषित किया।

सन १९११ मे सावरकर ने जो कहा था उसके ३२ वर्ष बाद परतन्त्र भारत के अन्तर्गत अण्डमान मे स्वतन्त्र भारत का झडा फहरा कर नेताजी ने उसे सत्य कर दिखाया। सावरकर उस समय भारत मे 'नजरबन्दी' मे थे। फिर भी वह सब जान कर और सुनकर सावरकर को अपार हर्ष हुआ था।

उन्ही दिनो की बात है कि १४ अगस्त, १९११ को जेल अधिकारियो न सावरकर को लाकर एक पत्र दिया। यह पत्र बम्बई विश्वविद्यालय से आया था। विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग के सचिव ने लिखा था कि भारतीय विश्वविद्यालय एक्ट की धारा १८ के अन्तर्गत बम्बई विश्वविद्यालय की सीनेट ने अपनी १-७-१९११ की बैठक मे उनको दी गई बी० ए० की उपाधि को इसलिए वापस ले लिया है क्योकि वे नासिक षडयन्त्र अभियोग मे अपराधी घोषित हुए हैं और आजन्म कारावास का दण्ड भोग रहे है।

पत्र पढकर सावरकर के मन मे कोई विपरीत प्रतिक्रिया नही हुई। उस उपाधि का उनके लिए उपयोग भी क्या था? पत्र पढा और एक ओर को रख दिया।

निराशा की झलक

कोल्हू घुमाना कितना कष्टकर होता है। इसका उल्लेख हम पूर्व पृष्ठो पर कर आये हैं। सावरकर जैसा दुर्बल शरीर का बन्दी भी यह सब करता था। क्यो कि इसके बिना अन्य कोई मार्ग बचा ही नही रह गया था। फिर भी राजबन्दियों में से एक-दो उदार हृदय जन थे और जो वहाँ किसी प्रकार आ सकते थे, वे सावरकर के पास आकर कुछ क्षणो के लिए उनको विश्राम दिलाते हुए कोल्हू पेरने मे उनकी सहायता किया करते थे। इतना ही नही उनमे से अधिकांश ऐसे थे जो सावरकर के बार-बार मना करने पर भी अवसर मिलने पर उनके वस्त्र आदि भी धो दिया करते थे। कभी-कभी वे लोग इस अपराध के लिए पेटी-अफसर से लेकर बारी के भी कोप भाजन बन जाते थे। किन्तु फिर भी उन्होने इस काम को छोडा नही। जब भी उनको अवसर मिलता वे सावरकर की सहायता करने पहुँच जाते थे।

इस प्रकार के क्षण अधिक नही होते थे फिर भी कुछ क्षणो के लिए सावरकर को विश्राम मिल जाया करता था। निरन्तर कोल्हू पेरते रहने से शरीर पसीने मे तर हो आया करता था। जोर की हवा चलती तो बाहर की धूल आकर सारे शरीर को सान

देती थी। पसीने मे मिल कर वह धूल मैल का रूप धारण लेती। यह सब देखकर सहसा सावरकर का मन कह उठता, "यह सब कष्ट किस लिए?" कभी-कभी सावरकर को स्वय से ही घृणा होने लगती।

सावरकर सोचते कि जिस शरीर को अपने देश को स्वाधीन करने के लिए काम आना चाहिए था, वह अब अंग्रेज सरकार की दासता मे पिस रहा है, मिट्टी म मिल गया है। अब उसका कोई मूल्य नही रहा। मातृभूमि के उद्धार के लिए इस जीवन का अब कौडी का भी मूल्य नही। फिर इस अन्धकार मे क्या कष्ट झेला जाए। वे सोचते कि उनकी यातनाओ का तो किसी को ज्ञान तक नही होगा, तब फिर उनका नैतिक परिणाम ही क्या हो सकता था? इस सबका न तो अपने उद्देश्य के लिए कोई उपयोग है और न जीवन के लिए ही। फिर इस स्थिति म रहने की आवश्यकता ही क्या है? यह व्यर्थ का जीवन धारण ही क्या किया जाए? इस जीवन का जो कुछ उपयोग होना था वह तो हो चुका। इस लिए अच्छा यही है कि फासी का एक झटका देकर इसका अन्त कर लिया जाए।

बार बार सावरकर के मन मे यह विचार आने लगा था 'अब जीना व्यर्थ है। अब आत्मघात ही आत्म सम्मान होगा।

सावरकर एक दिन दोपहरी म कोल्हू चला रहे थे। बाहर जोर की लू चल रही थी। चलाते चलाते सावरकर हाफने लगे फिर चक्कर आ गए और वे धड़ाम से गिर पडे। किसी प्रकार स्वय को सम्हाला। फिर से प्रयत्न करके बडी कठिनाई से उठे और जैसे तैसे कोल्हू पर पिलते रहे। उस समय सावरकर सोचने लगे थे, अभी जो मूर्च्छा थी वही मृत्यु क्यो नही बन गई? बार बार उनके मन मे रस्सी से फाँसी लगा कर आत्म हत्या का विचार कौंधने लगा।

उस दिन तो आत्महत्या का आकर्षण उन्हे बार बार आकर्षित करता रहा था। जब जब भी उनको यातनाएँ असह्य हो उठती तब तब आत्महत्या का उनका विचार प्रबल होता जाता। मार्सेल्स म जब दोबारा उनको पकडकर भयकर लू म अत्यन्त विषम स्थिति म जब उनको बोट पर बन्द कर दिया गया था उस समय भी उनके मन मे इस प्रकार का विचार आया था। इस प्रकार अनेक बार यह विचार उनके मन म उठता रहा और किसी प्रकार वे उस निराशा को दूर भगाने मे सफल होते रहे।

कभी कभी उनको यह अफवाह सुनने को मिलती कि दिल्ली दरबार के समय सभी राजनीतिक बन्दियो को रिहा कर दिया जाएगा। बन्दियो म इसका खूब प्रचार होने लगा। उनके मुख पर प्रसन्नता दिखाई देने लगी। सावरकर जानते थे कि उनको दो आजन्म कारावास मिल हैं। उनको कारागार मे राजबन्दी नही साधारण बन्दी माना जा रहा है। तब भी जब कोई कहता बरिस्टर बाबू! अब आप को भी मुक्त कर दिया जाएगा। तो एक क्षीण-सी मुस्कान उनके मुख पर तरने लगती।

७ से १५ दिसम्बर १९११ तक दिल्ली दरबार की धूम रही। सावरकर बन्धु और बगाल के राजनीतिक बन्दियो को छोडकर शेष सभी को इस अवसर पर प्रतिवर्ष

के हिसाब से एक-एक मास की छूट प्रदान की गई। सावरकर का इस अवसर पर जो मिला वह केवल आलू और भात था।

इस अवस्था मे भी सावरकर यह जानने के लिए उत्सुक रहते थे कि इस अवसर पर भारत के हित मे भी कुछ हुआ अथवा नही। सावरकर को यह सुनकर बडी प्रसन्नता हुई कि बगाल का पुनर्विभाजन रुक गया है।

जसा कि सावरकर ने पहले ही घोषणा कर दी थी, भारत की राजधानी कलकत्ता से दिल्ली ले आई जा रही थी। किन्तु सावरकर का कहना था कि इतिहास, सस्कृति, राजनीतिक तथा भौगोलिक दृष्टि से भी भारत की राजधानी के लिए उज्जैन सब प्रकार म उपयुक्त स्थान हो सकता था।

हार्डिग पर बम

२३ दिसम्बर १९१२ का दिन कलकत्ता से राजधानी को दिल्ली ले जाने के लिए तय हो गया था। भारत के गवनर लोड हार्डिग उस दिन हाथी पर सवार हो कर चांदनी चौक से पधार रहे थे कि तभी उन पर बम बरसा और वे घायल हो गये। किन्तु उनके पीछे जो छत्रधारी खडा था वह परलोक सिधार गया।

भारत म घटित इस घटना की जानकारी वायरलैस से 'अत्यन्त गुप्त' कहकर अण्डमान के मुख्य आयुक्त के पास पहुँची थी। यह आश्चय की ही बात है कि उसी समय यह सूचना सावरकर आदि सभी राजबन्दियों तक भी पहुँच गई थी। प्रात काल जब गोरा अधिकारी निरीक्षण के लिए आया तो राजबन्दियो ने जानबूझकर उसको छेडा, "दिल्ली का समारोह तो निर्विघ्न समाप्त हो ही गया होगा न ?"

विचित्र बात यह है कि तब तक उस गोरे को भी दिल्ली काण्ड के विषय मे कोई सूचना नही थी। उसने बडे गव से उत्तर देते हुए कहा, "क्या उसके निर्विघ्न सफल होने मे आप लोगो का कोई सन्देह है ? हमारे साम्राज्य के वैभव और शक्ति के सम्मुख आपके क्रान्तिकारियो ने वहाँ भी मुह की ही खाई होगी।"

उसके इस मूखता भरे उत्तर से सभी राजबन्दियो को बडी हसी आई। उनके चेहरा को देखकर उसको कुछ सन्देह हुआ कि बन्दियो को किसी प्रकार की कोई विपरीत सूचना मिली है। उसका सन्देह ठीक निकला। ज्यो ही वह अपना 'राउण्ड पूरा कर कार्यालय म गया तो बारी ने उसको दिल्ली से आया तार पकडा दिया। उसे पढकर तो वह आगबबूला होकर भद्दी गालियाँ बकने लगा। उसने पूछा, "हमसे भी पहले राजनीतिक बन्दियो तक यह समाचार कैसे पहुँच गया ?"

यह सुनकर बारी का चेहरा फक पड गया। उसने इसकी जाच करवाइ तो यह जानकर उसको बडा आश्चय हुआ कि दिल्ली बम काण्ड के विषय मे हर कोई बन्दी जानता है। फिर उसने यह पता लगाने का यत्न किया कि कार्यालय मे इस प्रकार का कौन व्यक्ति है जो समाचार को बन्दियो तक पहुँचा सकता है। कार्यालय मे नायर

नायर एक युवक था, जिसकी राजबन्दियों के प्रति सहानुभूति थी। बारी ने उस पर ही सन्देह किया। उसे दो दिन तक कठोर यातनाएँ दी गईं। भाँति भाँति की धमकियाँ दी गईं। उसने दृढ़ता से कहा 'जो करना हो करो। किन्तु मैंने ऐसा कुछ नहीं किया।' उसे अधीक्षक के पास ले जाया गया। किन्तु उसके विरुद्ध कोई प्रमाण तो था नहीं। अधीक्षक ने उसे केवल चेतावनी देते हुए कहा, 'भविष्य में सावरकर से किसी प्रकार का सम्बन्ध यदि रखोगे तो तुम्हें कठोर दण्ड दिया जाएगा।' यह कहकर उसको मुक्त कर दिया गया।

किन्तु नायर की सावरकर आदि के प्रति सहानुभूति उस घटना से बढ़ती गई, घटी नहीं। क्योंकि बाद में सावरकर और वह दोनों एक साथ उस कार्यालय में काम करते रहे थे।

तब से बारी का आतंक बढ़ता ही गया। उसने सावरकर को मानसिक यातना देने के उद्देश्य से एक दिन अफवाह फैला दी कि सावरकर का छोटा भाई नारायण दामोदर सावरकर दिल्ली बम काण्ड में बन्दी बना लिया गया है। यह असम्भव भी नहीं था अतः इससे सावरकर को कुछ आघात लगा। वे वास्तविकता जानने के लिए भी उत्सुक दिखाई दिए। मध्याह्न के समय जब अधीक्षक आया तो उससे भी पूछा, "क्या तुम्हारा छोटा भाई बन्दी बना लिया गया है?' सावरकर कुछ कहें उससे पूर्व ही धूर्त बारी बोल उठा, "अब तो वह भी यहीं आ जाएगा।

सावरकर को इससे क्रोध आ गया उन्होंने उसको करारा उत्तर देने के लिए कहा, "भारत का कोई भी व्यक्ति बन्दी बना कर यहाँ के कारागार में डाला जा सकता है। आज तो सारा भारत ही आयरलैंड की भाँति कारागार सा बना दिया गया है। तब यदि मेरे भाई को भी यहाँ आना पड़ जाए तो क्या आश्चर्य है?'

बारी तो खिसिया गया किन्तु अधीक्षक कहने लगा "वह यहाँ आएगा या नहीं यह मैं नहीं जानता। किन्तु तुम्हारा भाई बड़ा डरपोक लगता है।'

"वह कैसे?'

दिल्ली बम काण्ड का समाचार सुनते ही उसने पुलिस प्रमुख को तार भेजा कि वह इस समय कलकत्ता में है और उनको इस लिए सूचना दे रहा है कि कहीं बाद में पुलिस उसको इस बम काण्ड में न लपेटे।'

सावरकर ने कहा, तब तो वह पूरे कलकत्ता में सबसे चतुर व्यक्ति है। यद्यपि उसने बम नहीं फेंका। यदि फेंका होता तो भी उसको पुलिस को चकमा देना ही चाहिए था। इससे वह डरपोक सिद्ध नहीं होता। शत्रु को मात देकर उसके चंगुल से छूटने की युक्ति करना भी तो शूरवीरों का ही काम होता है।

अधीक्षक तो अपना सा मुख लेकर वहाँ से वापस चला गया किन्तु सावरकर का मन नारायण के कष्टों का अनुमान लगाकर तड़प उठा और उसी तड़फन में उनके मुख से कविता फूट उठी 'देशभक्ति का यह व्रत हमने आवेश और अन्धता में नहीं लिया ...।'

इस प्रकार की अनेक घटनाएं थी जो कभी-कभी सावरकर को निराश कर देती थी। सावरकर का मन तथा बुद्धि कभी-कभी विद्रोह कर उठते थे। मन कुछ कहता तो बुद्धि उसके विपरीत कुछ और ही कहती। उनकी बुद्धि ने सदा यही सान्त्वना उनको दी—'तुम्हारी सहन की हुई यातनाओ का सूक्ष्म परिणाम देश पर होकर ही रहेगा। तुमको फांसी न देने के लिए अंग्रेजो ने तुम पर तरस नही खाया। फिर जो बात वे स्वय नही कर सके, उसे तुम अपने हाथो से करके, स्वपक्ष की हानि म क्या भागीदार बनते हो ?

"यदि मरना ही है तो जिस सना के तुम सैनिक हो, उसी सना का कोई एक काम करके फिर मरो। फासी खाकर कदापि नही ।"

इस अन्तिम तक न सावरकर के मन को स्थिर कर दिया। कालान्तर मे कभी किसी घटना का स्मरण कर अथवा कोई दुखद सूचना मिलन पर भले ही कुछ क्षणो के लिए उनमे निराशा का सचार हुआ हो किन्तु उन्होन फिर कभी आत्महत्या की बात नही सोची।

कोल्हू का बैल

निराशा का भूत भागते ही सावरकर मे नई स्फूर्ति, नई चेतना जागृत होन लगी। कविता की निरन्तर रचना तथा उसे कण्ठस्थ करना उनका दैनिक क्रम था ही, अब उसमे भी कुछ और करने की लगन लगी तो उन्होन सोचा कि क्यो न कारागार के नियमो के आधीन राजनीतिक बन्दियो की दशा म सुधार के लिए यत्न किया जाए। कोल्हू म काम करत हुए वे अनेक राजनीतिक बन्दियो की स्थिति से ही भली-भांति परिचित नही हुए अपितु उन्होन अण्डमान की भी पूरी स्थिति का आकलन कर लिया था। कारागार के भीतर और बाहर दोनो ओर उनके प्रति जन जन म अगाध प्रेम और श्रद्धा थी, यही कारण था कि लोग अपनी चिन्ता किए बिना समय समय पर उनको सब प्रकार की सूचना आदि दे दिया करते थे। दिल्ली बम काण्ड का उल्लेख पिछले प्रकरण म हम कर आए हैं, इसी प्रकार अन्य सूचनाएँ भी उनको मिल जाया करती थी।

इन्ही सब बातो पर विचार कर सावरकर न सव प्रथम राजनीतिक बन्दियो की शिक्षा का काय प्रारम्भ करन का निश्चय किया। बस, फिर क्या था, उन्होन उन बन्दियो को जिन्हे क्रान्तिकारी आन्दोलन की पूर्ण जानकारी नही थी, उन्हे उसकी जानकारी देत हुए आन्दोलन के मूल कारण और उसके आरम्भ करने के कारण को भी भली भांति समझा दिया। उनमे जो बन्दी स्वाधीनता प्राप्ति मे हिंसा को उचित नही समझते थे वे भी सावरकर के तर्कों स सहमत होन लगे थे। उसी दौरान सावरकर ने दो राजबन्दियो को सगठन और प्रचार काय मे योगदान करन की शपथ दिलवा भी ली।

इसी अवधि म अर्थात चौदह दिन सावरकर को कोल्हू पर काम

उपरान्त पन्द्रहवें दिन उससे हटाकर डोरी बुनने के काम पर लगा दिया। यह काम अन्य कामों की अपेक्षा सरल था तदपि आरम्भ में सावरकर को कुछ कठिनाई तो हुई किन्तु अभ्यास करने से कुछ दिन में ही उनको डोरी बटना आ गया। इसके साथ ही उनकी सात नम्बर बैरक में चार अन्य राजनीतिक बन्दी रख दिए गए थे। यह इसलिए क्योंकि कारागार में स्थान की कमी पड़ गयी थी, अन्यथा आदेश तो यही था कि सावरकर के साथ कोई न रखा जाए और न ही किसी को उससे मिलने दिया जाए।

राजबन्दियों को प्रतिमाह बदला जाता रहता था। उस अदला बदली में बन्दियों को परस्पर किसी के दूर से दर्शन हो जाते, कभी किसी से निकट से दो बात करने का भी अवसर सुलभ हो जाता। जो भी हो इससे कुछ परिवर्तन तो होता ही था। इस प्रकार प्रतिमाह वार्ड बदलते समय राजनीतिक बन्दियों से मिलने जुलने के अतिरिक्त उन लोगों ने आपस में मिलने के कुछ अन्य उपाय भी किसी प्रकार कर लिए थे। उनमें से एक माध्यम तो था जमीन में लगी लोहे की जाली और दूसरा ऊपर दीवार से सटी हुई खिड़की। वार्ड कुछ इस प्रकार बना हुआ था कि आँगन के सामने के वार्ड की खिड़कियों पर बैठे लोगों से बात हो सकती थी तदपि ऊँची खिड़कियों पर बैठ कर बोलना खतरे से खाली नहीं होता था। खिड़की बारह फीट की ऊँचाई पर थी, किसी प्रकार वहाँ चढ़ना और बात करते हुए वार्डर के आने की आहट पा कर उसमें नीचे कूदना भी एक विवशता ही थी, फिर भी यह सब करना तो पड़ता ही था।

इसी प्रकार जमीन से सट कर लगाई गई जाली का प्रयोग भी बन्दी जन भोजन के समय करते थे। उस समय जाली से सट कर सामने के वार्ड में रहने वाले बन्दियों से बात करने का यत्न किया जाता। बात करने से पूर्व थाली बजा कर सामने के वार्ड वालों को घण्टी दी जाती थी और फिर वे जाली से जब कान लगा लेते तो वार्तालाप आरम्भ किया जाता था। ऐसे ही अन्य उपाय भी खोज लिए गए थे।

शिक्षा प्रसार कार्य

बन्दियों को शिक्षित करने के लिए पुस्तकों की नितान्त आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। सावरकर के कमरे में जिन बन्दियों को रखा गया था सावरकर ने सबसे पहले उनको ही शिक्षित करने का निश्चय किया। कोई बन्दी दसवीं तक पढ़ा था तो कोई कालेज तक भी हो आया था। वे राजनीति, अर्थशास्त्र और प्रशासन आदि विषयों में सर्वथा अनभिज्ञ नहीं थे।

रविवार को वहाँ कुछ बन्दियों को पुस्तकें दी जाती थी। उन पुस्तकों में मुख्य होती थी रामकृष्ण परमहंस अथवा स्वामी विवेकानन्द की पुस्तकें टालस्टाय की माई रिलीजन, एनीबेसेन्ट की थियासाफिकल दर्शन तथा कुछ सामान्य पत्रिकाएँ। एक वार्डर पुस्तकें ले कर आता और बन्दियों को दे जाता। शाम को वही वार्डर आ कर उन पुस्तकों को वापस ले जाता। एक बन्दी को एक बार में एक ही पुस्तक दी जाती थी

और पुस्तकें परस्पर बदलने पर भी प्रतिबन्ध था। यदि किसी को परस्पर पुस्तक बदलते देख लिया जाता तो उस बन्दी को कठोर दण्ड दिया जाता था।

बारी स्वयं पाचवीं तक पढ़ा हुआ व्यक्ति था। वह पुस्तकों का महत्व क्या जानता? फिर भी वह चाहता था कि राजनीतिक बन्दियों को कम से कम पुस्तकें दी जाएँ। पुस्तकों का चयन वह स्वयं करता था किन्तु उस जैसा अज्ञ व्यक्ति क्या चयन कर सकता था। जिनको वह समझ सके ऐसी साधारण सी पुस्तकों को ही वह दे सकता था। यदि विज्ञान जैसी कोई पुस्तक दिखायी दे तो उसके पन्ने पलट कर देखता और कुछ समझ मे न आने पर उसको 'ट्रैश' कह कर एक ओर पटक देता। किन्तु यदि किसी पुस्तक मे उस को 'नेशन,' 'कन्ट्री', आदि जैसे शब्द दिखाई दे जाएँ तो उनको वह प्लेग के समान छूत का रोग समझ कर दूर पटक देता। क्योंकि उसकी समझ मे ऐसी पुस्तकों को पढ पढ कर ही तो इन राजबन्दियों का दिमाग खराब होता है। पुस्तकों का उन पर बुरा प्रभाव पडता है। जेल की यातनाओं से उनको किसी प्रकार ठीक मार्ग पर लाया जाता है तो पुस्तकें पढने से वे फिर कुमार्ग पर चल पडेंगे।

बारी का यह भय निरर्थक भी नहीं था। वास्तव मे जो सुपठित होगा वही तो सब कुछ ठीक से समझ सकता है, अपठित को इन सब बातों मे कोई रुचि नहीं होती। इस प्रकार पुस्तकों के अभाव मे सावरकर को जब भी अवसर मिलता वे राजनीतिक बन्दियों को ऐतिहासिक कहानियाँ, वीर गाथाएँ आदि सुनाया करते थे। जब कभी कभी कहीं एकत्रित होने का अवसर मिलता वे इधर-उधर की बात न करके इस प्रकार की ही बातें करने लगते।

सावरकर ने सब प्रथम उन बन्दियों को वेद कालीन इतिहास के विषय मे बताया। तदनन्तर युग पुरुषों, वीर-वीरांगनाओं, महापुरुषों आदि के कृतित्व और व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते। योरोप का आधुनिक इतिहास, नेपोलियन, मैजिनी, गैरीबाल्डी तथा उस समय के रूस के आंदोलन के इतिहास पर वे प्रकाश डालते। इतिहास के बाद उन्होंने बन्दियों को अर्थशास्त्र के मूल-तत्व, शासन विधान, नीति विधान और राजनीति शास्त्र पर भी बहुत कुछ बताया।

इस शिक्षण कार्य का बन्दियों पर प्रभाव पडता गया। ज्यों-ज्यों उनमे ज्ञान और चेतना बढ़ती गयी त्यों-त्यों वे उत्पीडन और शोषण के विरुद्ध तथा अपने अधिकारों की माग को ले कर हडताल और संघर्ष के लिए आगे आने लगे। कारागार मे आन्दोलन का वातावरण बनने लगा। बन्दियों मे आयी इस जागृति से कारागार के अधिकारी परेशान दिखाई देने लगे।

बारी के सदा और घोर विरोध करने पर भी सावरकर ने पुस्तकों के विषय मे अपना संघर्ष जारी रखा। बहुत संघर्ष करने के उपरान्त जेल अधीक्षक ने पुस्तकें एकत्रित करने की अनुमति दे ही दी। किन्तु पुस्तकों का निरीक्षक बारी ही रहा और जिस पुस्तक के जिस अंश को वह उचित नहीं समझता उस सारे पृष्ठ को ही वह काला

कर देता। एक से अधिक पृष्ठों को भी वह काला कर देता था और कभी कभी तो वह उन पृष्ठों को ही फाड देता था जिसमें उसको तनिक भी राष्ट्रीयता की भावना का भास हो जाता।

शिक्षा और शिक्षण का कार्य ज्यों-ज्यों बढता गया त्यों-त्यों पुस्तकों की संख्या भी बढती गयी। अब उसमें स्पेन्सर, मिल, सेक्सपियर, गिब्बन, एमसन, मकाले, टाल्सटाय, नीत्शे, ह्यूमा, वाल्टेयर के साथ साथ विवेकानन्द, टैगोर आदि भारतीय चिंतकों एवं लेखकों की पुस्तकें भी एकत्रित होने लगीं। विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं की पुस्तकें भी कालान्तर में एकत्रित की गयीं। उस अवधि में सावरकर ने भी बंगाली साहित्य का खूब अध्ययन किया। तभी उन्होंने रवीन्द्र नाथ टैगोर पर अपनी एक कविता की रचना की। किन्तु सर्वाधिक जिस पुस्तक ने उनको प्रभावित किया, वह थी 'योगवाशिष्ठ'।

इतना ही नहीं सावरकर ने जघन्य अपराधियों को भी अक्षर ज्ञान कराना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार उन्होंने वहाँ के साठ प्रतिशत लोगों को शिक्षित कर दिया था। और सावरकर जब वहां से मुक्त हुए थे तब तक वहाँ के पुस्तकालय में दो हजार पुस्तकें एकत्रित की जा चुकी थीं।

हिन्दी का महत्त्व

सावरकर के इस प्रशिक्षण में हिन्दी को वे बडा महत्व देते थे। वे कहते थे कि हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जो राष्ट्र भाषा का स्थान ले सकती है। किन्तु सावरकर को हिन्दी का सख्त विरोध झेलना पडा। उनकी संस्था अभिनव भारत के उद्देश्यों में एक बात यह भी निहित थी। हिन्दी हिन्दू, हिन्दुस्थान ही उसमें मुख्य था। सावरकर तो अभिनव के ही अंग थे, कारागार में वे उसको किस प्रकार भूल सकते थे ? कारागार में भी वे बंदियों से कहते रहते थे कि वे हिन्दी पुस्तकों की मांग अधिक करें। जिनको हिन्दी नहीं आती थी उनको उन्होंने हिन्दी सिखायी।

हिन्दी के विषय में जब कोई कभी किसी प्रकार का आक्षेप करता तो वे उसका समाधान करने में जुट जाते। वे हिन्दी के व्याकरण उसके समृद्ध साहित्य भाषा एवं लिपि की पूर्ण वैज्ञानिकता, अभिव्यक्ति की क्षमता आदि के विषय में समझाया करते थे। वे कहते 'हिन्दी तो स्वतः ही भारत की राष्ट्रभाषा है। रामेश्वरम का वैरागी सन्त तथा व्यापारी पृथ्वीराज के काल से भी पहले से तीर्थयात्रा की अवधि में हरिद्वार और बद्रीनाथ जाने पर हिन्दी के माध्यम से ही कार्य चलाता आया है। चारों धामों की तीर्थ यात्रा करने वाले हिन्दुओं के मध्य बातचीत का माध्यम हिन्दी ही तो होती है।

वे बंगालियों, मराठों, गुजरातियों आदि को हिन्दी तथा हिन्दी भाषी लोगों को विभिन्न प्रान्तीय भाषाएँ सीखने के लिए प्रेरित करते। इस प्रकार दस वर्ष तक उन्होंने अण्डमान कारागार में हिन्दी का प्रचार कार्य किया। न केवल बंदियों को अपितु उन्होंने

कारागार के अधिकारियों को भी हिन्दी सिखाने का कार्य किया। वहाँ के मद्रासी अधिकारी भी हिन्दी सीखने लगे थे। सावरकर के प्रयत्न से एक राष्ट्राभिमानी डाक्टर ने अपने परिवार के सब सदस्यों को हिन्दी बोलने की आदत डालने के लिए यह कह कर प्रेरित किया था कि अन्ततः हिन्दी ही अपने देश की राष्ट्र भाषा बनने वाली है। उन्होंने अपनी पत्नी से संकल्प कराया था कि वे अपने बच्चों के साथ हिन्दी में ही वार्तालाप किया करेंगी। ये डाक्टर समय-समय पर हिन्दी प्रचार के लिए सावरकर की आर्थिक सहायता भी करते रहते थे। अन्य बन्दी भी इस प्रकार की सहायता करते।

जो बन्दी आर्य समाजी विचारों के थे, वे सावरकर के साथ हिन्दी के प्रचार प्रसार में सक्रिय योगदान करते थे। सावरकर ने इससे लाभ उठाकर कारागार में 'सत्यार्थप्रकाश' की पुस्तकें मंगवा कर उसे पढ़ने की प्रेरणा देना आरम्भ कर दिया। दीवान नामका एक आर्यसमाजी किसान डकैती में आजीवन कारावास भुगत रहा था। सावरकर के सम्पर्क में आने पर उनका भक्त बन गया। दुर्भाग्य से वह वहाँ की जलवायु सहन नहीं कर सका और उसका वहीं देहान्त हो गया। उसके मित्रों ने उसका श्राद्ध करना चाहा, किन्तु सावरकर के समझाने पर उन्होंने उस श्राद्ध पर व्यय की जाने वाली राशि को हिन्दी पुस्तकें मंगवाने में व्यय किया।

इसी प्रकार बिहारी नामक एक अपराधी को फाँसी का दण्ड सुनाया गया था। उसने मनौती की कि यदि उसकी फाँसी की सजा रद्द हो गयी तो वह अमुक राशि दान करेगा। संयोगवशात् उसकी सजा रद्द हो गयी तो उसने उस धनराशि के लिए सावरकर से विचार विमर्श किया। उनकी प्रेरणा से उसने उस राशि से ग्रन्थ मंगवाना स्वीकार कर लिया।

किन्तु अनेक सिख, बंगाली, मद्रासी ऐसे भी थे जो उर्दू, अंग्रेजी तथा प्रान्तीय भाषाओं की पुस्तकें मंगवाने का आग्रह करते तथा सावरकर पर हिन्दी प्रचारक होने का दोषारोपण भी करते। तब सावरकर उन्हें समझाते कि उनकी मातृभाषा तो मराठी है। वे मराठी के लिए तो कोई दान माँगते नहीं। अतः वे कहते कि उनका आरोप मिथ्या है। वे यह भी बताते कि वे स्वयं गुरुमुखी लिपि और बंगला आदि भाषाएँ जानते हैं, किसी भाषा के लिए उनके मन में कोई दुराग्रह नहीं है। सिखों को वे गुरु गोविन्द सिंह का 'विचित्र नाटक' और सूर्य प्रकाश इतिहास की पुस्तक दिखाते कि स्वयं गुरु जी ने उन्हें ब्रज भाषा में लिखा था।

इसके विपरीत अण्डमान कारागार में भारत से जो मुंशी आदि भेजे जाते थे वे हिन्दी से सर्वथा अनभिज्ञ होते थे। उनकी भाषा और लिपि उर्दू ही होती थी। उसका परिणाम यह हुआ कि अण्डमान की भाषा उर्दू ही हो गई। वहाँ पाठशालाओं और विद्यालयों में उर्दू का ही बोलबाला था। उन्हें कोई हिन्दी के लिए प्रेरित करने वाला था ही नहीं। सावरकर ने जन जन को हिन्दी का महत्व समझाया। सरकारी कामकाज की भाषा उर्दू होने के कारण हिन्दी पढ़ने और सीखने के लिए तैयार होने में समय लगा। इससे पहले बन्दियों के पत्र सब उर्दू में ही लिखे जाते थे। क्योंकि

उनकी जाच करने वाले अधिकारी कोई अन्य भाषा जानते थे ही नही थे। बहुत थोड लोग अग्रेजी मे भी पत्र लिखते थे।

सावरकर ने प्रयत्न करके कुछ बन्दियो को मराठी, गुरुमुखी आदि अपना मातृभाषा म पत्र लिखने के लिए उत्साहित किया और फिर उनसे कारागार अधिकारियों का आवेदन पत्र लिखवाए कि उन्ह अपनी मातभाषा मे पत्र लिखने की अनुमति मिलनी चाहिए, क्योकि उनके घर पर उर्दू जानने वाले दूर दूर तक कोई व्यक्ति प्राप्य नही हैं। बहुत प्रयास करने पर उन्ह अपनी मातभाषा मे पत्र लिखने की सुविधा प्राप्त हो गयी। उसका दूरगामी परिणाम यह हुआ कि कारागार के कार्यालयो म भी हिन्दी आदि भाषाएँ जानने वाल कर्मचारी नियुक्त करने पडे। इसके लिए सावरकर की सस्था के लोग सहयोग करने के लिए सदा तत्पर रहत थे। उसका परिणाम यह हुआ कि पहले जहाँ ६० प्रतिशत पत्र उर्दू म जात थे वहा अब ६० प्रतिशत पत्र हिन्दी म जाने लगे।

अण्डमान की बस्ती म रहने वाले हिन्दू पहले अपने सभी सस्कारो अथवा कायक्रमो के निमन्त्रण पत्र उर्दू मे ही छपवात थे। किन्तु अब स्वभाषा के महत्व स प्रेरित हो कर वे सब निमन्त्रण पत्र हिन्दी म छपने लगे थे। फिर भी समय-समय पर मुसलमानो तथा अग्रेज अधिकारियो की ओर से इस काय म बाधा उत्पन्न करने का प्रयास भी चलता रहता था। किन्तु हिन्दी समथकों की सख्या तब तक इतनी बढ गयी थी कि उनका वह विरोध उतना प्रभावी नही रह सका।

सावरकर के इस प्रचार स कि आज नही कल सही, भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी ही होने वाली है, अण्डमान की बस्ती के स्कूलों मे हिन्दी माध्यम से पढाई आरम्भ हो गयी। पहले पहले कन्या विद्यालयो म हिन्दी पढाई जाने लगी। सावरकर का प्रयत्न था कि बालको के विद्यालय म भी हिन्दी माध्यम लागू हो जाए, किन्तु तब तक उनकी वहाँ से रिहाई का समय आ गया, इस लिए उनका यह काय अपूर्ण ही रह गया।

सावरकर न हिन्दी सीखने के लिए कुछ छात्र वृत्तियाँ भी आरम्भ कर दी थी। इससे पढने वालो मे उत्साह बढ गया। उर्दू क स्थान पर हिन्दी शब्दो का प्रचलन बढने लगा। अब यहाँ के वासी 'शादी नही 'विवाह' आदि शब्दो का प्रयोग करने लगे। अण्डमान बस्ती के कुछ नागरिको ने इसम जो योगदान किया था सावरकर न उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की।

अण्डमान के अपने कारावास के काल म सावरकर की यह महान उपलब्धि थी।

जेल मे हडताल

अण्डमान कारागार म राजनीतिक बन्दियो पर जब यातनाओ का क्रम निरन्तर बढता ही गया तो बन्दियो म विद्रोह की भावना पनपने लगी। तब उस स्थिति म

निपटने के उपाय सोचे जाने लगे। बन्दियो पर अमानवीय यातनाओ का विपरीत प्रभाव पडता गया, यद्यपि प्रारम्भ मे सबने कदाचित यही सोचा था कि जेल के नियमो क अन्तगत जो कुछ करना पडे उसे करते हुए यातनाओ का सहन का अभ्यास करना चाहिए। किन्तु निरन्तर अमानवीय यातनाएँ सहना मानव के लिए सहज नही होता है। वह विद्रोह कर उठता है। यही सेलुलर कारागार म होने लगा। कभी-कभी वे बन्दी यह भी सोचते कि इतने वष तक यदि यही यातना सहनी पडती है तो इसस तो मृत्यु का वरण करना उपयुक्त होगा।

सावरकर के भीतर भी इस निराशा ने घर कर लिया था, जिसका उल्लेख हम पिछले अध्याय मे कर आए है। उसका ही यह परिणाम था कि सावरकर जैसे सुदढ मानसिक स्थिति के जो बन्दी थे, उन्होने निश्चय कर लिया कि अधिकारियो को शिक्षा देने का एक ही उपाय है कि हडताल कर दी जाए। एक पजाबी नवयुवक क्रान्तिकारी को कोल्हू पर जोता गया। उसकी कद काठी ऐसी नही थी कि वह कोल्हू परन जसी यातना को सहन कर सके। किन्तु जेल म यह सब कौन देखता है? फिर भी वह काम करता रहा। १० बजे काम समाप्त कर वह स्नान करने गया तब और जब वह भोजन करने बैठा तब भी, बारी तथा उसके छोटे-मोटे अधिकारी न जाने किस किस भाषा मे उसको गाली वगैरह देते रहे और वह भी चुपचाप सहता रहा।

सहने की भी तो कोई सीमा होती है। जब उसस नही सहा गया तो उसने बारी को भी दो-चार खरी खरी सुना दी। मामला अधीक्षक तक पहुँच गया। अधीक्षक ने जब युवक से शोर शराबे का कारण पूछा तो उसन बताया कि वह शान्त मन स अपना भोजन कर रहा था कि बारी ने आकर न जाने क्या-क्या कहना आरम्भ कर दिया और उसको भाति-भाति की धमकिया देन लगा।

अधीक्षक को तो जेल के काय से लेना दना था, बन्दियो से नही। अत उस युवक को धान कूटन पर लगा दिया गया। इतना ही नही ऐसे विद्रोही स्वरो को दबाने के लिए अण्डमान मे एक औषधि का प्रयोग किया जाता था। उन लोगो को निरन्तर 'कुनीन' दी जाती थी, जिससे कि उनका मस्तिष्क दुबल हो जाए और वे कुछ अधिक सोच ही न सकें। इतना सब कुछ होने पर भी वह युवक झुका नही। किन्तु उस को दी जाने वाली यातनाओ मे भी कमी नही हुई।

जेल के सभी राजबन्दियो ने मन ही मन विद्रोह की ठान ली। उनका कहना था कि मरना तो है ही, तो फिर सम्मान के साथ क्यो न मरा जाए। जूझते हुए मरने और विवेक पूवक जीने या मरने की धारणा वाले राजबन्दियो ने एकत्रित हो कर कष्ट-कारक काय न करने का निश्चय कर लिया। तब प्रथम बार कोल्हू के कष्टकारक काय से बन्दियो ने इन्कार कर दिया। यह हडताल थी।

यह हडताल अधिक नही केवल चार दिन तक चली थी। तदपि राजबन्दियो की यह हडताल और वह भी बारी जैसे कठोर और क्रूर अधिकारी को खुली चुनौती थी। किन्तु इस हडताल का प्रभाव केवल राजबन्दियो तक ही सीमित नही रहा। चार दिन

तक निरन्तर चलने वाली इस हड़ताल से वे मध्यमार्गी राजबन्दी भी प्रभावित हुए बिना न रह जो यथास्थिति के साथ साथ सरकारी अधिकारियों का कोप भाजन बनने से बचना चाह रहे थे। इतना ही नहीं जेल के सामान्य बन्दी भी इस हड़ताल से प्रभावित हुए। उनके मन में भी यह विचार उत्पन्न हो गया कि हम मात्र बन्दी नहीं हैं, हम मानव हैं और हमारे भी कुछ अधिकार हैं।

अन्य कोई उपाय न देख बारी को झुकना पड़ा। उसने उस पंजाबी युवक को कोल्हू और धान कूटने के काम से हटा दिया। उसके बाद अन्य राजनीतिक बन्दियों को भी कोल्हू और धान कूटने से मुक्ति मिली। अब उनको उनकी इच्छानुसार बाहर के खेतों में काम करने के लिए भेजा जाने लगा। किन्तु वहाँ भी एक बार फिर ऐसी ही स्थिति आ गयी। राजनीतिक बन्दियों से जब गाड़ी खींचने के लिए कहा गया तो उन्होंने अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कहा 'यह हमारा अपमान है। हम यह कार्य नहीं करेंगे।

बारी, जैसा कि हम बार-बार लिखते आए है कि, बड़ा ही चतुर और मक्कार किस्म का प्राणी था। एक दिन उसने अपने हवालदार और जमादार को पहले ही तैयार कर लिया कि राजबन्दियों को जेल से बाहर निकालते ही उन्हें गाड़ियों पर जोतना है। उसका इसमें उद्देश्य यह था कि राजबन्दी गाड़ी पर जुतने से मना करेंगे, इससे अधीक्षक को यह पता चल जाएगा कि राजबन्दी कार्य करने से जी चुराते हैं।

इस योजना के अन्तर्गत जब राजबन्दियों को बाहर निकाला गया तो उनमें से जो निर्भीक थे विद्रोही स्वर उठाया करते थे, बारी ने उनको ही गाड़ी में जुतने के लिए कहा। उन्होंने तुरन्त कहा, "हम मनुष्य हैं, बैल नहीं, हम गाड़ी नहीं खींचेंगे।"

अधीक्षक भी यह सुन रहा था। उसके सामने ही बारी कहने लगा, 'देखा साहब आपने! ये हरामखोर बदमाश हैं। न अन्दर कोल्हू जोतते हैं न बाहर गाड़ी। अब आप ही बताइए कि मैं इनके साथ कैसा व्यवहार करूँ और इनको कौन सा काम दूँ?'

अधीक्षक ने उस समय बारी को कुछ नहीं कहा और न राजबन्दियों को ही कुछ कहा। बारी को तो वह जानता ही था, राजबन्दियों से क्या कार्य करवाया जाना चाहिए यह भी वह जानता था। अतः उसका यह परिणाम हुआ कि कालान्तर में राजबन्दी इस अपमान से बच गए।

यद्यपि सावरकर इन सौभाग्यशालियों (?) में से नहीं थे किन्तु फिर भी बारी को चैन कहाँ? वह तो सावरकर पर भाँति भाँति के शस्त्र प्रयोग करने में कभी चूकता ही नहीं था। वह जानता था कि सावरकर और उन राजबन्दियों में परस्पर मैत्री ही नहीं अपितु संचार व्यवस्था भी है और उसके कारण ही उसे यह अपमान सहना पड़ा है। अतः वह सावरकर के पास आ कर उन्हें मन गढ़न्त कहानियाँ सुनाया करता था, जिनमें राजबन्दियों के व्यवहार की आलोचना होती। बातचीत के मध्य बारी अपना

प्रशंसा के पुल बना डालता। हड़ताल करने वाले राजबंदियों की निंदा करता। एक दिन इसी प्रकरण में उसने यहाँ तक कहा, "ये लोग व्यर्थ अपना अपमान कराते हैं। ये इतने निर्लज्ज हैं कि गाली गलौज सुन कर अधिकारियों से मुँह जोरी करने लगते हैं। आप को ऐसे लोगों से सम्पर्क रखना उचित नहीं है। आप पढ़े लिखे हैं, बैरिस्टर हैं" आदि-आदि।

एक दिन बारी ने उस पंजाबी युवक के विषय में सावरकर से पूछ ही लिया। कहने लगा, "उसे तो पागल कुत्ते ने काटा है। वह कुलीन वंश का नहीं है। अन्यथा ऐसा भद्दा व्यवहार क्यों करता। क्यों, आप बताइए, उसके विषय में आपके क्या विचार हैं ?"

सावरकर को यह निन्दा असह्य हो रही थी। उन्होंने कहा, "देखो, न तो मैं उन राजबंदियों को जानता हूँ, जिन्होंने हड़ताल की है और न उन श्रीमान को जिनकी तुम चर्चा कर रहे हो। तदपि केवल आपके कह देने मात्र से मैं यह मानने को तैयार नहीं कि 'उसे पागल कुत्ते ने काटा है, वह कुलीन वंश का नहीं है अथवा असभ्य है।' रही हड़ताल के औचित्य अनौचित्य की बात। जब अनुचित रूप से उत्पीड़न होगा, जब नियमों को ताक पर रख दिया जाएगा तो बंदियों को भी इसके निराकरण के लिए कुछ तो करना ही होगा। ऐसे में हड़ताल के अतिरिक्त अन्य मार्ग ही क्या था ?"

यह सुन कर तो बारी सावरकर पर आग-बबूला हो गया। वह क्रोध में नथुने फुलाता हुआ वहाँ से उठ कर चल दिया। किन्तु इसका बदला लेने के लिए वह दूसरे दिन उस समय आया जब सावरकर खाना खा रहे थे। उस समय वह सावरकर को चिढ़ाने के लिए अन्य बंदियों के साथ गाली गलौज करने लगा। गाली गलौज करके जब वह चला गया तो सावरकर ने उन बंदियों से कहा आप इससे अपमानित अनुभव न करें। यह तो उसकी मूर्खता का परिचायक है। सावरकर उनको समझा ही रहे थे कि तभी पेटी अफसर आ कर कहने लगा, 'ऐ बाबू तुम यह क्या कर रहे हो ? बारी साहब देखेगा तो हमारे प्राण ले लेगा।' उन्होंने यह कहते हुए सावरकर को घसीट कर उनकी कोठरी में बन्द कर दिया।

भ्रात मिलन

सावरकर के अण्डमान पहुँचने से पूर्व ही उनके बड़े भाई गणेश दामोदर सावरकर अण्डमान पहुँचाए जा चुके थे। सावरकर को इसकी सूचना लन्दन में ही मिल गयी थी, जिसका उल्लेख हमने प्रारम्भिक पृष्ठों में किया है। गणेश सावरकर भी अपने छोटे भाई विनायक सावरकर की ही भाँति कभी न झुकने वाले व्यक्ति थे। इसके परिणाम स्वरूप उनको भाँति भाँति की यातनाएँ दी गयीं। सावरकर को जब इसकी सूचना मिलती तो भाई के कष्टों की कल्पना से उनका हृदय द्रवित हो उठता।

सावरकर अन्तत थे तो मानव प्राणी ही। दोनो भाई एक ही कारागार म हों और परस्पर भेंट भी न कर सकें, यह कसी भाग्य की विडम्बना! सावरकर न जल अधिकारियो से इसक लिए अनुनय विनय की तो उन्होंने टालमटोल कर दी। इतना ही नही वे तो उनको यह भी बताने क लिए उद्यत नही हुए कि उनक भाइ उस कारागार मे है भी कि नही। विवश होकर सावरकर न पटी अफसर और वाडर की खुशामद की कि किसी प्रकार वे उन्ह भाई के दशन करा द।

एक दिन सावरकर का पता चला कि उनके भाई बहुत रुग्ण रहन लग हैं, उन्ह निरन्तर सिर पीडा सताती है। किन्तु इतने पर भी उनको अस्पताल म नही भेजा गया, अपितु उसी कोठरी म ही पडन रहने दिया। सावरकर को यह भी पता चला तो उनको मार्मिक वेदना होने लगी। तभी अधीक्षक आया और सावरकर ने जब उनसे अपन भाई की बात कही तो उसन अन्यमनस्कता से उत्तर दत हुए कहा, "तुम अपनी बात कहो। किसी अन्य के विषय म बात कहन का तुम्हे कोई अधिकार नही है।" उसने जमादार आदि को झिडकते हुए कहा "एक बैरक के बन्दी की रुग्णता की बात दूसरी बैरक के बन्दी को किस प्रकार विदित हो गयी? तुम लोग ठीक से निगरानी नही रखत। बताओ उसको यह बात किसने बतायी?'

अधीक्षक आदि अधिकारियो के दुर्व्यवहार से दुखी हो कर सावरकर कोई अन्य उपाय सोचन लगे।

अन्त मे गुप्त सहानुभूति ने काय किया। यह निश्चय हुआ कि शाम के समय जब बन्दी दिन भर काय सम्पन्न करके तल आदि ले कर उसकी तौल आदि करात हैं, उसी समय वाडर की सहायता से भाई के दशन किए जाएँगे। कभी-कभी एक विभाग के बन्दियो के बैरक के अन्दर जाने से पहले ही दूसरे विभाग के भी बन्दी छोड दिए जाते थे। ऐसे म ही एक दिन जब उनके भाई अपने काम की गिनती कराने आए तो सावरकर अपनी ओर से छोडे जाने वाले बन्दियो मे घुस गए और दोनो ने एक दूसरे को देख लिया।

क्षण भर तो गणेश सावरकर अपने छोटे भाई को वहाँ देखकर दिग्भ्रमित से रहे, फिर सहसा उनके मुख से निकला, तात्या। तुम यहा कैसे?"

उनके इन शब्दो मे कितनी वेदना थी यह कदाचित सावरकर ही समझ सकते थे। किन्तु इसम भी अधिक समय तक रहना नही हो सका। उनके इतना कहत ही सावरकर कुछ कहते कि तभी पेटी अफसर और वाडर दोनो न ही इस डर से कि कहीं किसी न अधिकारियों से उनकी चुगली कर दी तो नौकरी जाएगी, दोनो को अलग-अलग खींच लिया।

ज्यष्ठबन्धु को जब पता चल गया कि उनका कनिष्ठ भ्राता भी उसी कारागार मे है तो उन्होन भी उससे मिलने की चेष्टा की। उसम सफलता न मिलन पर किसी प्रकार व सावरकर को छोटा सा पत्र भेजन मे सफल हो ही गए। अपने पत्र म उन्होंने लिखा तुम विदश म रहकर मातभूमि की मुक्ति के लिए प्रयत्न करते रहोगे, यह

विचार कर मेरा हृदय प्रफुल्लित रहता था और मेरी यातना मुझे तुच्छ जान पड़ती थी। किन्तु तुम पेरिस में रहते हुए इनके हाथ कैसे आ गए ? अब उस कार्य का क्या होगा ? कौन उसे करेगा ? तुम्हारा बलिदान और तुम्हारी शक्ति अब सब निरर्थक सिद्ध हो जाएगी।"

बड़े भाई के उस पत्र में कितनी ममात्व वेदना छिपी हुई थी, इसे सावरकर जैसा बलिदानी ही समझ सकता है। सावरकर ने भी तुरन्त अपने पत्र द्वारा उनको आश्वस्त करते हुए लिखा, 'लौकिक तथा भाग्योदय की राख शरीर में मल कर जूझते रहना—यही तो अलौकिक भाग्य है। तो फिर दुःख क्यों ? यदि मैं परीक्षा में असफल सिद्ध होता तो मेरी योग्यता और कर्तव्य दोनों मिट्टी में मिल जाते।" उन्होंने गीता का निम्न श्लोक भी उद्धृत किया—

"सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात् त्वक्चैव परिदह्यति॥

"यदि ऐसी स्थिति में पहुँच कर मैं कर्तव्यच्युत हो जाता तो क्या मुझ पर विश्वासघात का कलंक न लग जाता ? और क्या उस कलंक के कारण मैं अपना सिर ऊँचा करने योग्य भी रह जाता ? मैंने यथा प्राप्त संकटों का सामना करने में स्वार्थ को तिलांजलि देकर कर्तव्य क्षेत्र में डटे रहने का उपदेश औरों को दिया था। उन संकटों को यदि मैं स्वयं झेलने को निर्भयतापूर्वक तत्पर न होऊँ तो क्या उससे हम सब कर्तव्य च्युत नहीं माने जाएँगे ? वास्तव में तो उनको झेलने में ही मेरी, आपकी, हम सबकी योग्यता स्वयं प्रकट हो कर रहेगी।

"यश अपयश तो योगायोग की बात है। जीवन भर युद्ध करते करते, लोदी के पुल उतरते उतरते तथा आस्टरलीट्ज को जीत कर भी नैपोलियन अन्त में बिछौने पर लेटा हुआ चल बसता है। किसी एक दूसरी ही लड़ाई में महारानी लक्ष्मीबाई तलवार के एक घाव से स्वर्ग सिधार जाती है। उनका कर्तव्य योगायोग पर प्रायः निश्चित नहीं होता।

"मैं घमासान युद्ध में पीछे रह कर, छिपकर जीवित बचा रहूँ और अन्य सभी आगे बढ़ कर युद्ध जीतें, जीतते जीतते वीरगति प्राप्त करें मर जाएँ, तो फिर उनका यश देखने के लिए और विजय के उपभोग के लिए मैं पीछे रह जाऊँ ? ऐसी स्वार्थपूर्ण, जनहित विरोधी, कायरता भरी इच्छा अपने मन में धारण न करते हुए वह सैनिक जब आवश्यकता पड़ी तो औरों के साथ-साथ निश्चल हो कर सैन्य के अग्रभाग में जाकर जूझता रहा अथवा कि नहीं, इसी पर उसकी सच्ची योग्यता तथा उसके कर्तव्य का मूल्यांकन होता है।

'मैं समझता हूँ कि इस कसौटी पर हम सब खरे उतरे हैं। इसीलिए लौकिक तथा भाग्योदय के सुवर्ण वलय में हम जितनी धन्यता नहीं मिल पाती उससे अधिक उस भाग्योदय की राख शरीर पर मल कर आज इस कारागार में ऐसी करुणास्पद स्थिति में होते हुए भी हम सन्ताप के साथ जी रहे हैं। इन संकटों का धैर्यपूर्ण सामना करना,

अपने कर्तव्य पालन के लिए कारागार में सड़ते रहना हमने जीवन का ध्येय बना लिया है। यह उतना ही महान है कि जितना बाहर रह कर, कीर्ति तथा दुंदुभियों के ताल पर जूझते रहना महान माना जाता है।"

इसके अन्त में सावरकर ने अपना वह पद भी लिख दिया जो बम्बई हाई कोर्ट में सजा सुनते समय उनके मुख से सहसा फूट पड़ा था—

"सारथी जिचा अभिमानी
कृष्ण जो आणि राम सेनानी
अशि तीस कोटि तव सेना
ती अह्मा बिन थांबे ना
परि करुनि दुष्ट दलना
रोविलचि स्वकरी
स्वतन्त्र्या चा हिमालया वरि
झंडा जरतारी ॥ जननी ॥

यह पत्र सावरकर ने अपने ज्येष्ठ भ्राता को गुप्त रूप से भिजवा दिया। उनके ज्येष्ठ भ्राता को इससे सान्त्वना प्राप्त हुई, यह उनको बाद में पता चला। किन्तु उससे अधिक सावरकर को स्वयं उस पत्र को लिखते समय जो धैर्य प्राप्त हुआ, वह उनकी उस समय डावांडोल स्थिति से उठने के लिए औषध रूप सिद्ध हुआ है। इससे उनके मन में नवचैतन्य का संचार हुआ।

सावरकर ने अपनी पुस्तक 'माझी जन्मठेप' में इसका विस्तार से वर्णन किया है। यहां उसका सारांश ही प्रस्तुत किया गया है।

पत्राचार एवं समाचार

कालापानी की सजा पाए बन्दियों को कारागार में जो यातनाएँ दी जाती थीं, उनकी गणना हम पिछले पृष्ठों में कुछ कर चुके हैं। इन राजबन्दियों को सर्वाधिक कठिनाई अथवा परेशानी यह होती थी कि उनको अपने देश, समाज, परिवार तथा मित्रों से सर्वथा सम्बन्ध टूट जाता था। भारत के कारागारों में रहते हुए तो कभी कभी दो चार मास में उनसे भेंट का अवसर प्राप्त हो जाता था, कभी-कभी पत्र व्यवहार भी हो सकता था, इसके अतिरिक्त रिहा हुए बन्दियों तथा नए आने वाले बन्दियों के माध्यम से भी कुछ सूचना और समाचार मिलने की सम्भावना होती थी। इतना ही नहीं यदि बन्दी को किसी प्रकार दुख अथवा कष्ट है और जेल अधिकारी उनकी प्रार्थना को नहीं सुनते थे तो बाहर आने जाने वाले बन्दियों के माध्यम से देश के समाचार पत्रों में उन कष्टों को प्रकाशित करवाया जा सकता था।

किन्तु अण्डमान में रहकर तो बन्दी पूरे देश से ही कट जाते थे।

अण्डमान में जो चार छः अग्रेज अधिकारी थे वे परस्पर इतने सम्बद्ध होते थे कि उनमें से यदि किसी के दुर्व्यवहार की किसी अन्य से शिकायत भी की जाए तो

उसे वे अपनी बैंठको मे हँसी मजाक का विषय तो बनाते ही थे, बन्दी को भी अपमानित कर देते थे। उनका सायकाल एक साथ खेलना, एक साथ भोजन करना, रात्रि को एक साथ नृत्य मे लीन रहना तो नित्य ही होता रहता था। इस स्थिति मे कोई किसी के विरुद्ध शिकायत सुने भी तो किस प्रकार ?

अण्डमान का बन्दी अपने परिजनो को वर्ष भर मे केवल एक पत्र ही लिख सकता था और उसमे भी जेल अधिकारियो का यह निर्देश होता था कि थोडा लिखो, केवल अपना कुशल समाचार ही लिखो अधिक कुछ नही लिखो। उस पत्र को भी पहले जेल अधिकारी पढता और उसके बाद उसको उपनिवेश के अधिकारी के पास निरीक्षण के लिए भेजा जाता। वहा से स्वीकृति मिलने के उपरान्त ही वह पत्र आगे भेजा जाता था।

ऐसे पत्रो मे अपना दुखडा, जेल की समस्या अथवा जेल मे मिलने वाली यातनाएँ या नियमानुसार भी न दी जाने वाली सुविधाओ का उल्लेख करना किसी भी प्रकार सम्भव नही था। फिर बाहरी ससार को अण्डमान के बन्दियो के कष्ट और दुख का समाचार मिले भी तो किस प्रकार मिले। बन्दियो को पहले ही बता दिया जाता था कि यदि पत्र मे अनावश्यक कोइ बात पाई गई तो वह पत्र आगे नही भेजा जाएगा। इतना ही नही उसको दूसरा पत्र लिखने का भी अवसर नही दिया जाएगा। इसके अतिरिक्त भी वर्ष मे एक पत्र न लिखने का अवसर न मिलने के भी अनेक बहाने थे। जिनसे बन्दी को बचकर रहना होता था। अपने इस अधिकार को बनाए रखने के लिए बन्दी को जेल के तथाकथित नियमो का पालन करना आवश्यक हो जाता था।

राजनैतिक बन्दियो के वहाँ पहुँचाए जाने पर उन्होने जो सघर्ष किया था उससे जेल अधिकारी कुछ नियमो के पालन मे ढील देने लगे थे और कुछ ढील उन्होने अपनी स्थिति और सम्मान बनाए रखने के लिए भी देनी आरम्भ कर दी थी। तदपि राजनैतिक बन्दियो ने तो दो दो वर्ष तक अपने परिवार वालो को पत्र नही लिखे और न ही उनको अपने परिवार वालो की कोई सूचना मिल पायी।

जब सामान्य पत्रो की यह बात थी तो फिर शिकायते किस प्रकार भेजी जा सकती थी। जेल मे रहकर ही जो शिकायतें की जाती थी उनकी जाँच या समस्याओ के निराकरण के लिए अधिकारियो का कभी कोई प्रतिनिधि मण्डल आता ही नही था। हा कभी साल छ महीने मे एक बार मजिस्ट्रेट अवश्य आ जाता था। किन्तु बारी का विरोध करने का साहस उस मजिस्ट्रेट मे भी नही होता था। जो कोई भी आवेदन भेजना हो, वह अण्डमान के उपायुक्त के माध्यम से ही भारत सरकार को भेजा जा सकता था। किन्तु इनमे भी यदि किसी आवेदन मे जेल अधिकारी की शिकायत होती तो उसको आयुक्त तक पहुँचने से पहले ही फाड कर फेंक दिया जाता था।

झगडा फसाद की घटना की सूचना ऊपर तक पहुँच जाए इसके लिए भी जेल अधिकारी सावधानी बरतते थे। क्योकि ऐसी सूचना मिलने पर उसकी जाँच के लिए अधिकारी का आना सम्भव हो जाता था। अण्डमान से कोई सौभाग्यशाली

होना जा मुक्त होकर अपन देश का जा पाता । भारत की जेला से तो बन्दी मुक्त होकर जात रहत थे । अत उनके माध्यम से भी शिकायतें बाहर चली जाती थी और समाचारो मे प्रकाशित भी हो जाती थी, किन्तु अण्डमान से कौन मुक्त होकर जाता ? अत बन्दिया के माध्यम से भी शिकायतें पहुचाना सम्भव नही था। बन्दियो के सम्मुख यह बहुत बडी और विकट समस्या थी।

होतीलाल का साहस

इस प्रकार की विकट एव सवथा प्रतिकूल परिस्थितियो म भी राजनीतिक बन्दिया न अपनी समस्याओ का विवरण भारत सरकार क काना तक पहुचान का सकल्प किया । प्रश्न यह था कि बिल्ली क गले म घण्टी बाधे कौन ? इन्ही राजनीतिक बन्दिया मे होतीलाल नामक एक उत्तर प्रदेश के राजनीतिक बन्दी थे । प्रारम्भिक पृष्ठा म हम इनका उल्लेख कर आए है । राजद्रोह के अभियोग मे दस वष का दण्ड पाकर वे जेल यातना भोगने के लिए अण्डमान भेजे गए थे । उन्होने यह दुष्कर काय करने का सकल्प अपने साथिया को बताया ।

राजबन्दिया ने जो हडताल करवाई थी, उसका प्रभाव अब तक साधारण बन्दिया पर भी पड चुका था। हडताल क कारण जो सुविधाएँ प्राप्त हुई थी उसस वे भी लाभान्वित हुए थे। व यह आशा लगाए बैठे थे कि राजबन्दियो म बैरिस्टर, प्रोफसर सम्पादक तथा बडे बडे पढे लिखे लोग है, य ही कुछ करके जेल अधिकारिया क अनावश्यक उत्पीडन से मुक्ति दिला सकते है । वे जानते थे कि यदि व इन राजबन्दिया की कुछ सहायता करग तो अवश्य उनका लाभ होगा ।

उसी का परिणाम था कि इस प्रकार के एक बन्दी ने एक दिन होतीलाल के कहने पर उनको एक कागज और लिखने का साधन उपलब्ध करा दिया। और अवसर पाकर बाबू होतीलाल वर्मा न भी पत्र लिख लिया । होतीलाल हिन्दी, उर्दू और अँग्रेजी भाषा के अच्छे ज्ञाता थ । जेल आन से पहले वे चीन, जापान, रूस आदि अनक देशा की यात्रा कर वहा स्वतन्त्रता की अलख जगा चुके थे । जेल म आने के बाद भी कोल्हू के समय जो हडताल हुई थी उस समय बारी से लेकर सुपरिन्टेंडेंट तक को उन्होने परेशान करके उनकी नाक म दम कर दिया था। इसके लिए उनको 'बिगडा' हुआ घोषित कर उनको तनहाई मे बन्द कर दिया गया था ।

तनहाई की उसी एकान्त कोठरी मे किसी प्रकार अक्षर अक्षर करके एक लम्बा चौडा पत्र लिखकर तैयार कर लिया । उस पत्र म उन्होने जेल की सारी दुदशा और बन्दियो की दयनीय दशा का मार्मिक वणन किया था। पत्र के अन्त म होतीलाल न अपन हस्ताक्षर किए और जेल की अपनी कोठरी का नम्बर भी उस पर अंकित कर दिया।

जेल के काय से बाहर जाने वाले एक विश्वस्त बन्दी ने होतीलाल को आश्वासन

दिया कि वह किसी न किसी प्रकार गुप्त रूप से इस पत्र को वाहर ले जाएगा और वहा जाकर किसी लिफाफे मे बन्द करके उसको भारत के लिए रवाना भी कर देगा। यह बन्दियो के सौभाग्य की बात थी कि उस बन्दी को इस काय मे सफलता प्राप्त हो गई।

अण्डमान कारगार से होतीलाल वर्मा का लिखा वह पत्र कलकत्ता के प्रखर राष्ट्रवादी पत्रकार सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को मिल गया। उस पत्र को बनर्जी माशाय ने अपने पत्र 'दि बगाली' मे न केवल प्रमुखता से प्रकाशित किया अपितु उसके साथ ही अपनी सम्पादकीय टिप्पणी लिख कर अण्डमान कारागार मे राजनीतिक बन्दियो के साथ होने वाले अत्याचार और उनको दी जाने वाली यातनाओ की कडे शब्दो म भत्सना की। पत्र के अन्त मे उन्होने होतीलाल के हस्ताक्षर और उसकी बैरक तथा कोठरी नम्बर भी छाप दिया। 'दि बगाली' मे उस पत्र के प्रकाशित होते ही देश की अन्य भाषाओ के अनेक पत्रो न उस पत्र को प्रकाशित किया। अनेक पत्रो न इस विषय मे सम्पादकीय टिप्पणियाँ भी लिखी।

भारत के समाचार पत्रो म उस पत्र के प्रकाशित होते ही समस्त विश्व मे अण्डमान म किए जाने वाले अत्याचार और दी जाने वाली यातनाओ की चर्चा होने लगी। विधान परिषद मे इस विषय पर प्रश्नोत्तर हुए।

भारत मे तो उस पत्र ने हलचल मचा दी। किन्तु अण्डमान के बन्दी यह किस प्रकार जान सकें कि वह पत्र अपने गन्तव्य तक पहुँचा अथवा नही, यदि पहुँचा है तो उसकी क्या प्रतिक्रिया हुई है। इसका समाचार बन्दियो को मिलना कठिन था।

किन्तु बारी न उन पर यह कृपा भी कर ही दी। भारत सरकार को उसकी करनी का पता लग गया है, यह समाचार जब बारी को मिला तो उसे सुनकर वह आग बबूला हो गया। उसी स्थिति मे वह कारागार मे आ गया। उसके हाथ मे उसका चिरपरिचित काला लटठ था। न केवल बन्दियो को अपितु पटी अफसरो, वाडरो आदि को गालियाँ बकता हुआ वह सारे जेल परिसर मे तहलका मचाने लगा। उस समय जो भी बन्दी उसके सामने पडा उसने उसको भी भद्दी सी गाली दे मारी। बारी अपने अधीनस्थो पर चिल्ला रहा था, 'साला लोग तुम क्या बन्दोबस्त रखता है? एक दिन तुम हम सबको मिट्टी म मिला देगा।

किन्तु किसी को पता नही चल रहा था कि हुआ क्या है और बारी इतना रुष्ट क्यो है। उसको इस प्रकार बौखलाते देखकर बन्दीजन ही नही अपितु उसके अपने कमचारी भी यही समझने लगे कि कही उसको कानखजूरे ने तो नही काट लिया जो वह इतना बौरा रहा है? अण्डमान मे यदि किसी को कान खजूरा काट ले तो मनुष्य पागल हो जाता है।

पागलो की भाँति भौंकता हुआ बारी सीधा होतीलाल की कोठरी के सामने जा खडा हुआ। वहाँ पहुँचते ही उसका पारा सातवें से भी ऊपर के, आसमान पर

जाकर चढ गया । वहाँ जाकर वह जोर से चिल्लाने लगा, "तुम बडा झूठा व मक्कार है । खडे हो जाओ । जल्दी क्यो नही करता ।"

उसे इस प्रकार बौखलाते हुए देखकर वहाँ के अन्य बन्दी तो इस बारी की व्यर्थ बकवास ही समझते रहे किन्तु होतीलाल वर्मा समझ गए कि उनका तीर निशाने पर लग गया है । उनका पत्र पहुँच गया है और वह प्रकाशित हो गया है । तभी तो यह आग बबूला होकर पागलो की भाँति चिंघाड रहा है ।

होतीलाल वर्मा पर जी भरकर गालियो की बौछार करके, बारी ने टण्डल, पेटी अफसर और वार्डर और अन्य बन्दियो को यह निर्देश दिए कि यदि कोई राजनीतिक बन्दी एक दूसरे के पास भी खडा हुआ दिखाई दे गया तो वह उन्हें जान से मार डालेगा । उसने कह दिया कि आज से राजनीतिक बन्दी दूर-दूर पर बैठकर खाना खाएगे । यदि कोई अन्य बन्दी भी उनके पास तक जाता दिखाई दिया तो उसको भी कडा दण्ड दिया जाएगा ।

इस प्रकार आधा घण्टे तक बारी इधर उधर भौंकता चिल्लाता और भाँति भाँति के निर्देश देता हुआ वहाँ से चला गया ।

जिन जिन बन्दियो को होतीलाल द्वारा लिखे पत्र के भारत भेजने के विषय मे सूचना थी वे तो समझ गए कि माजरा क्या है । उनको बडी प्रसन्नता हो रही थी कि यहाँ से भेजा गया पत्र भारत के समाचार पत्र मे प्रकाशित हो गया है ।

उसी प्रकरण मे बारी ने एक दिन सावरकर से कहा कि होतीलाल ने बहुत बुरा किया है । इसका बुरा परिणाम उसको भी भुगतना ही पडेगा । इसके साथ ही उसने यह भी कहा कि 'दि बंगाली' समाचार पत्र, जिसमे होतीलाल का वह पत्र छपा था, उसको सरकार ने जब्त कर लिया है । यह झूठी बात उसने अपनी खीझ मिटाने के लिए कही थी, जब कि ऐसा कुछ नही किया गया था ।

इस घटना का भी कारागार मे दो प्रकार का प्रभाव हुआ । एक तो जो बन्दी कुछ कुछ आत्मसम्मानी थे, उनको लगा कि होतीलाल ने जिस साहस का काम किया है वह अभिनन्दनीय है । इससे होतीलाल को तो उतना लाभ होगा भी नही जितना कि इसके कारण अन्य बन्दियो का होने वाला है । इस कारण वे होतीलाल के प्रति कृतज्ञता अनुभव करते थे और अवसर मिलने पर उसे ज्ञापित भी कर देते थे ।

कुछ दूसरे प्रकार के बन्दी भी थे, जो इस अवसर से व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि करना चाहते थे । वे बारी के कहने पर होतीलाल के इस कार्य की निन्दा करते फिरते थे । वे बन्दियो को यह भी कहा करते थे कि होतीलाल के इस कृत्य के कारण अब जेल अधिकारी बन्दियो के साथ और भी अधिक कठोर व्यवहार करेंगे । इस प्रकार बारी की ओर से वे स्वयं बन्दियो को आतंकित कर स्वयं के लिए बारी से कुछ सुविधा की आकांक्षा करते थे ।

सावरकर इस विषय मे अपने साथी बन्दियो के जब भी आमने-सामने होने का अवसर पाते उन्हे समझाते रहते कि हमे इस प्रकार के आन्दोलन को चालू रखना

होगा तभी हम कुछ सुविधाए प्राप्त करते रहेंगे। अन्यथा एक वार के विस्फोट से तो कुछ ही दिनो मे वात आयी-गयी सी हो जाएगी। न केवल इतना वे तो यह भी कहते थे कि हमे भारत के कारगारो मे भी इसी प्रकार के आन्दोलन करवाने का यत्न करना चाहिए। उनका कहना था कि आवेदन पत्रो, हडतालो या सघर्ष के माध्यम से हमे इस काम मे जुट जाना चाहिए।

वारी ने जब सावरकर को बताया कि 'दि बगाली' प्रेस सरकार ने जब्त कर लिया है तो सावरकर ने उसको भी उत्तर देते हुए कहा था, 'मुझे तो विश्वास नही होता कि ऐसा हुआ होगा। उस पत्र के छपने के वाद उसमे लिखी शिकायतो की जाच की जानी चाहिए थी। यदि जाच के वाद शिकायतें सच पायी जाएं तो उन्हे दूर किया जाना चाहिए। यदि शिकायतें गलत निकलें तो हातीलाल को दण्ड दिया जाना चाहिए। क्योकि पत्र पर तो होतीलाल के हस्ताक्षर थे। इस कारण प्रेस को अधिकार मे लेने का क्या औचित्य है?'

बारी इसका क्या उत्तर देता। सावरकर ने ही फिर कहा, "यदि बन्दियो की यातनाए दूर करने के लिए, जेलो मे सुधार लाने के लिए, एक नही अनेक प्रेस भी जब्त करवाने पडे तो चिन्ता नही की जाएगी। भारतवासी इसे अपना कर्त्तव्य मानेंगे।"

बन्दियो की समाचार एजेन्सी

वारी ने 'दि बगाली प्रेस' के सरकार द्वारा अधिग्रहण की आग तो कम से कम लगा ही दी थी। अब हरेक कोई यह जानने के लिए उत्सुक रहने लगा कि क्या वास्तव मे सरकार ने उसे जब्त कर लिया है? किन्तु यह समाचार मिले तो कहा से मिले? इसके अतिरिक्त भी ये राजबन्दी भारत मे क्रान्तिकारी आन्दोलन की गति क्या है, इसे जानने के लिए भी उत्सुक रहते थे। देश की स्वाधीनता के लिए विभिन्न राजनीतिक पक्ष क्या क्या गतिविधिया चला रहे है, इसको जानने की भी उनकी उत्सुकता रहती थी।

समाचार प्राप्त करने का एक मात्र साधन था नया आने वाला 'चालान'। अर्थात नए बन्दी का आगमन। प्रतिमास भारत से अनेक बन्दी अण्डमान भेजे जाते थे। इन नवागन्तुको को अण्डमान मे प्रथम एक सप्ताह तक बडा ही महत्व प्राप्त होता था। हर कोई उनसे देश के समाचार जानने के लिए उत्सुक रहता था। परिचित अथवा अपनी भाषा अथवा प्रान्त के बन्दी को पाकर तो उसके प्रति असीम आत्मीयता का भाव होने लगता था। उसे 'हमारा मुलकी, हमारे देश का' कहकर सम्बोधित किया जाता था। किन्तु इनमे से अधिकांश अशिक्षित और अपराधी होते थे, जिन्हे वाह्य ससार का विशेषतया राजनीतिक गतिविधियो का उतना कुछ ज्ञान नही होता था। इस अवस्था मे उनका उत्तर होता था, 'कुछ नही, चारो ओर शान्ति है।' कोई-कोई यह बता देता था कि अमुक बडा नेता पकडा अथवा छोड दिया गया या अमुक बडा साहब मारा गया आदि आदि।

इस समाचार व्यवस्था मे सबसे अद्भुत कार्य किया पजाब के एक महान नेता के तरुण पुत्र ने। ये महाशय देशभक्ति का कार्य करते हुए देशद्रोह के अभियोग म पजाब की कारा म अपनी कारागार की अवधि बिता रहे थे। जब उनको पता चला कि अमुक बन्दी शीघ्र ही अण्डमान जाने वाला है तो उन्होंने उसके जाने का समय ज्ञात किया और यथा समय उसके पास जाकर उसके गले म लटकाए जाने वाले बिल्ले के पीछे सावरकर के लिए एक सन्देश लिख दिया।

पजाब से अण्डमान तक पहुँचने मे उस बन्दी की कितने ही स्थानो पर, कितनी ही प्रकार की तलाशी ली गयी होगी। किन्तु बिल्ले पर किसी का सन्देह गया ही नही। अण्डमान पहुँचकर अवसर मिलते ही वह बन्दी सावरकर के पास गया और उसने बिल्ले पर अकित सन्देश उनको दिखाया। सावरकर ने उसे पढा और फिर उसको मिटा दिया।

बन्दियो को विशेषतया राजनीतिक बन्दियो का समाचार पत्र तो क्या समाचार पत्रो के फटे हुए टुकडे भी दिखाए जाने पर प्रतिबन्ध था। फिर भी बन्दीगण किसी भी प्रकार बाहर से समाचार पत्रो के टुकडे एकत्रित करने का यत्न करते रहते थे। सावरकर ने माझी जन्म ठेप म एक स्थान पर इस विषय पर व्यग्य करते हुए लिखा है, 'उन दिनो तो अण्डमान कारागार म एक बार कोई हाथी अन्दर लाना चाहे तो कदाचित उसको इस कार्य मे सफलता प्राप्त हो जाए और उसको क्षमा कर दिया जाए। किन्तु समाचारपत्र का कोई एक टुकडा भी कारागार मे पहुँचाना किसी भी प्रकार क्षम्य नही था। यह अक्षम्य अपराध माना जाता था।'

इसके लिए तो कितने ही कष्ट उठा कर भी अखबार का टुकडा प्राप्त करने के आकांक्षी राजनीतिक बन्दी अनेक बार गाडी खीचने जैसा कष्टकर और अपमान-जनक कार्य भी स्वीकार करते हुए समाचार पत्रो के टुकडे चुपचाप एकत्रित कर लिया करते थे। कारागार का कचरा जिन गाडियो म भर कर बाहर फेंकने के लिए भेजा जाता था वे उन्हे खीचते हुए बाहर ले जाते। बाहर गोरे अधिकारियो के बगले पर रद्दी समाचार पत्र, उनके टुकडे, फटी पुरानी पत्रिकाओ के पृष्ठ, जो भी मिल जाता, उसे उठाकर वे गाडी मे छिपा लेते थे। फिर अन्दर आकर उन टुकडो को कचरे की पेटी म छिपा देते थे। तब फिर आते जाते बाडर आदि की आख बचाकर उनको पढते।

उन टुकडो म किसी म क्रिकेट का कोई समाचार होता तो किसी म एडिवर्ड का कोई पत्र अथवा किसी उपन्यास का कोई अंश या फिर कही १८५७ से सम्बन्धित भी कुछ मिल जाया करता था। उन टुकडो म भारत का यदि नाम भी दिखाई दे जाय तो बन्दी मन ही मन प्रसन्न होकर ध्यान से उसे पढता। कभी कभी इन टुकडो म कुछ महत्वपूर्ण सूचना भी मिल ही जाया करती थी। इसी म एक दिन किसी गाडीवान को तूतिकोरिन के विख्यात अभियोग की जानकारी देने वाला समाचार-पत्र का एक टुकडा मिल गया। उसने उसको छिपा लिया और अवसर मिलने पर उसे लाकर सावरकर को दे दिया। सावरकर को वह टुकडा सौंप कर उस बन्दी को जो

आत्मसन्तोष हुआ वह वर्णनातीत था। अँग्रेज अधिकारियों के बँगलों पर काम करने वाले बन्दी किसी प्रकार समाचार पत्रों के टुकड़ों को छिपा कर रखते और अवसर मिलने पर सावरकर को दे देते।

जब प्रत्यक्ष में देने का अवसर नहीं मिलता तो समाचार पत्र के इन टुकड़ों को कभी खिड़की से भीतर फेंकने का यत्न होता तो कभी नालियों के माध्यम से भीतर की ओर ठूसने का। यहाँ तक कि यदि पूरा टुकड़ा न जाए तो उसको फाड़कर भेजा जाता था और बाद में भीतर वाला बन्दी उन टुकड़ों को जोड़कर उनको पढ़ता था।

सावरकर ने 'माझी जन्म ठेप' में लिखा है "कभी-कभी बारी भी हमारे लिए 'संवाद दाता' का कार्य कर दिया करता था। स्वाधीनता के विपरीत अथवा हमें हतोत्साहित करने वाली कोई घटना घटित होती तो उसको लेकर वह हमारे पास आ जाया करता था एक दिन शाम के भोजन के समय बारी आया और बोला, 'सावरकर! आप सदा नया समाचार सुनना चाहते हैं न? लो, आज एक नया समाचार है। गोखले का निधन हो गया है।

'समाचार सुनकर मुझे ठेस लगी। यह देख बारी कहने लगा, 'गोखले तो आपके विरोधी थे?' मैंने कहा, 'जी नहीं। मतभेद भले ही हो किन्तु विरोध नहीं था। भारत वर्ष की वर्तमान पीढ़ी के वे उत्कट देशभक्त और समाजसेवी थे।' बारी बोला 'आपके अभियोग में आप पर उनके विरोध में षड्यन्त्र रचने का आरोप था। उन्होंने तो यहाँ तक कहा था कि जब तक आप को पकड़ा नहीं जाएगा शांति प्रस्थापित नहीं हो सकती।' इसके उत्तर में मैंने कहा, ये सब निराधार बातें हैं उनकी राष्ट्रभक्ति और विद्वत्ता को कैसे नकारा जा सकता है?

'कुछ और वार्तालाप के उपरान्त जब बारी जाने लगा तो उसने अपनी डायरी में लिखा 'ऊपरी तौर पर ये महाराष्ट्रीय परस्पर चाहे जितने विरोधी हों, किन्तु उनमें आन्तरिक एकता है।"

गोखले के विषय में बारी ने गलत नहीं कहा था। गोखले को तिलक एवं उनके साथी तथा अनुयायी सदा प्रतिद्वन्द्वी के रूप में दिखाई देते थे, इसलिए उनको सावरकर को पकड़वाने में रुचि प्रकट करना सार्थक ही था। किन्तु सावरकर अपने मन में प्रत्येक देशभक्त, चाहे वह किसी वर्ग से सम्बन्धित क्यों न हो, के प्रति आदर और श्रद्धा रखते थे।

यों दिन बीत रहे थे कि कुछ दिन बाद राजबन्दियों को यह समाचार मिला कि बारी द्वारा प्रसारित समाचार कि 'दि बंगाली' को जब्त कर लिया गया है निराधार और झूठा है। कुछ दिन बाद तो सावरकर को उस समाचार पत्र का वह टुकड़ा भी प्राप्त हो गया जिसमें वह तहलका मचा देने वाला समाचार प्रकाशित हुआ था। इतना ही नहीं अपितु सावरकर को कोल्हू में जोत जाने का समाचार भी भारतीय समाचार पत्रों में प्रकाशित हो गया था। वही समाचार बाद में अमरीकी पत्रों में भी प्रकाशित हुआ।

अभिनव भारत के सदस्यों ने उस समाचार की सहस्रों प्रतियाँ तैयार कर उनको

अमेरिका मे रहने वाले भारतीयो मे वितरित कर दिया। उस का जो प्रभाव उन भारतीयो पर हुआ उसकी सूचना अण्डमान के राजवंदियों को तब मिली जब पजाब के लाहौर षड्यन्त्र अभियोग के क्रांतिकारियो को दण्ड देकर अण्डमान कारागार मे लाया गया।

आशा की किरण

'दि बंगाली' मे जिन दिनो हातीलाल वर्मा का पत्र छपा था वे दिन 'सम्राट' के राज्यारोहण समारोह के दिन थे। अण्डमान म राजनीतिक बन्दियो को दी जाने वाली यातना का समाचार पढ कर भारत के देशभक्त जनो मे रोष व्याप्त हो गया था। कभी कभी यह चर्चा भी सुनने म आती थी कि कदाचित राज्याभिषेकोपरान्त जाज पचम भारत आएगा और सम्भवतया भारत मे भी समारोह मनाया जाएगा, तब उस उपलक्ष्य मे राजनीतिक बन्दियो को, जिनम सावरकर भी सम्मिलित समझे जाते थे, अण्डमान स मुक्त कर दिया जाएगा। कारागार मे जब यह समाचार प्रसारित हुआ तो बन्दियो मे इस प्रकार की आशा का सचार होने लगा कि अब शीघ्र ही उनकी यातनाओ का अन्त होने वाला है।

कुछ बन्दी इस विचार के थे कि समारोह तक की अवधि तक यदि जेल अधिकारियो को अपने व्यवहार से प्रसन्न रखा जाए तो कदाचित मुक्त होने वालो मे उनका नाम आ जाए। उसका परिणाम यह हुआ कि इन कायरतापूर्ण विचारो के जो बन्दी थे उन्होने अपनी उग्रता को शान्त कर लिया। वे सरल, शान्त रहने लगे। अधिकारियो का इसकी भनक मिली तो वे उसका नाजायज लाभ भी उठाने लगे। बन्दी यदि किसी काय के लिए इनकार कर देता तो अधिकारी कहते, 'देखो, अभी जुबली आ रही है हम तुम्हारा नाम रिहाई की सूची म भेजने वाले है।' बस, फिर क्या था। मुक्ति की आशा मे बन्दी उनके सम्मुख द्रविड प्राणायाम करने लगते।

किन्तु जो बन्दी आजन्म कालापानी का दण्ड भुगत रहे थे, वे जानते थे कि चाहे कुछ भी हो जाए, उनकी मुक्ति सम्भव नही है। राज्याभिषेक पर मुक्ति की अफवाह का सावरकर पर कोइ प्रभाव नही पडा। किन्तु अन्य राजबन्दी बडे प्रसन्न रहने लगे थे। यहा तक कि घर जा कर क्या क्या करना होगा वे इसकी भी योजना बनाने लग गए थे।

इसका एसा प्रभाव हुआ कि बन्दी कल्पनाएँ करते कि अब वे अपने उन परिजनो के मध्य मे पहुँच जाएँगे, जिनके जीवन भर दर्शनो की आशा ही नही रही थी। घर जा कर उन्हे अपने जेल जीवन के रोमाचकारी सस्मरण सुना कर उनका मनोरजन करेंगे। यहाँ तक कि बंगालियो ने महाराष्ट्रियो को और महाराष्ट्रियो ने बंगालियो को अपने अपने यहाँ आने के निमन्त्रण तक देने आरम्भ कर दिए। सावरकर को भी इस प्रकार के निमन्त्रण मिलने लगे। लोग यह भूल जाते थे कि सावरकर को दो आजन्म कारावासो का दण्ड मिला हुआ है। उनके बगाली साथी उनको आशा दिलाते

हुए कहते, "सात्या ! हमारे साथ आप भी अवश्य मुक्त होंगे।"

ज्यो-ज्यो समारोह निकट आता जाता था अफवाहो की सीमा भी बढती जाती थी। समारोह के अवसर पर अण्डमान कारागार मे चारो ओर सफाई आदि होने लगी। बन्दियो के मनो मे यही आशा थी कि हम अवश्य मुक्त होंगे। कदाचित कुछ अधिकारी भी इसी दिशा मे सोचते थे।

राज्यारोहण की पूर्व सन्ध्या पर सब बन्दी जन सायंकाल का भोजन करते हुए यही कल्पना कर रहे थे कि कल उनका मुक्ति दिवस होगा। वे आनन्द मना रहे थे, जमादार भी उनके उस आनन्द म सम्मिलित थे। तभी खान दौडता दौडता आया और सावरकर का हाथ पकड कर कहने लगा, "बालिस्टर साहब ! आप छूट गए है।"

अण्डमान कारागार मे बारी के तीन त्रिशूल माने जाते थे—खान, पठान और जमादार। यह खान दुष्टो मे तृतीय श्रेणी का दुष्ट माना जाता था। इन तीन त्रिशूलो मे से एक त्रिशूल वही खान उस दिन इतना नम्र और इतना उदार बन चुका था। कदाचित उसने भी यही सोचा होगा कि एक दो दिन मे सब मुक्त हो ही जाएँगे तो फिर वह सावरकर से क्यो द्वेष करे। मुक्ति के बाद फिर कभी उसने कोई जघन्य कृत्य किया तो कदाचित सावरकर बैरिस्टर के रूप मे उसके काम आ जाएँ।

खान वही पर सावरकर का अभिनन्दन करने लगा वहाँ एकत्रित राजबन्दियो से कहने लगा, " बडे बाबू छूट गए है।"

सावरकर ने उससे पूछा, "तुम्हे किसने बताया है ?"

"खुद बारी साहब ने हम सबको हुकम दिया है कि बाहर के सब जमादारो को बताओ कि कल उनको यहाँ बुलाया गया है। उन्हे दूसरे द्वीप पर ले जा कर बन्दियो को जहाज मे चढाना होगा।"

सावरकर ने फिर पूछा, "मैं भी छूटूगा, यह तुम्हे किस प्रकार पता चला ?"

'मैंने बारी साहब से आपके बारे मे पूछा तो वह हँस दिया।'

उस समय सावरकर के मन मे भी एक बार मुक्ति का विचार कौंध ही गया था। सोचने लगे कि कल कदाचित मुक्ति मिल ही जाए। तभी खान की बात सुन कर सभी राजबन्दी उनसे कहने लगे अब तो आपको विश्वास हो गया है ? सावरकर ने नकारात्मक उत्तर दिया तो तभी एक तरुण बन्दी ने सावरकर के गले मे लटके बिल्ले को हाथ मे पकडा और कहने लगा, "कल यह बिल्ला आपके गले से निकाल दिया जाएगा।"

सावरकर ने उससे कहा, "तुमम से कुछ भले ही छूट जाएँ, किन्तु मैं नही छूट सकता। मुझे तो वैसे भी दोहरा दण्ड मिला हुआ है, अर्थात पचास वर्ष का दण्ड। तथापि आप लोगो के मुक्त होने पर मुझको उतनी ही प्रसन्नता होगी, जितनी स्वयं मुक्त होने मे होती।'

सावरकर के इस प्रकार के निराशापूर्ण वाक्यो को सुन कर उस तरुण के मन

में न जाने क्या विचार आया कि उसने उनके गले में लटके बिल्ले को खींच दिया। लकड़ी का बिल्ला टूट गया और सावरकर के गले में जंजीर खींचने से खरोंच आ गयी। वहाँ उपस्थित सभी बन्दी, इस बिल्ला टूटने को भी अच्छा शकुन मान कर सावरकर के मुक्त होने के प्रति आश्वस्त से हो गए थे।

उस समय सावरकर ने कहा, "लो, मेरी भी भविष्यवाणी सुन लो। मुक्ति होगी अथवा नहीं, यह तो भविष्य की बात है। किन्तु बिल्ला टूटने के अपराध में मुझे दण्ड अवश्य भोगना पड़ेगा।"

रात बीती, अगला दिन आया। उस दिन उस तरुण बंगाली तथा सावरकर को छोड़ कर शेष सभी राजनीतिक बन्दियों को कारागार के द्वार के समीप बुलाया गया। सभी बन्दी प्रसन्न मन उधर जा रहे थे। उनको लगा कि जैसे उसी समय उनका मुक्ति का परवाना मिलने वाला है। बारी भी उस दिन नये नये कपड़े धारण करके उपस्थित था। सुपरिंटेंडेंट भी उपस्थित था।

प्रत्येक बन्दी का नाम पुकार कर उसको बुलाया जाने लगा। उनको बताया जाने लगा कि वर्ष में एक माह की सजा में छूट दी जा रही है। सावरकर के बड़े भाई का नाम भी उस सूची में था।

किन्तु बन्दियों को यह छूट का समाचार प्रसन्नतादायक सिद्ध नहीं हुआ। उनके मुख पर निराशा के बादल छा गए थे। वे तो कारागार से मुक्ति की आशा लगाए वहाँ एकत्रित हुए थे।

राज्यारोहण के उपलक्ष्य में उस दिन सब बन्दियों को आलू भात का विशिष्ट भोजन अवश्य दिया गया। हाँ, यह भोजन सावरकर और उस बंगाली युवक को भी मिला। इसके साथ ही बिल्ला तोड़ने के अभियोग में सावरकर को दण्ड भी सुना दिया गया।

उसी दिन सायंकाल के भोजन के समय बारी सावरकर के समीप आ कर कहने लगा, 'आप जैसे सर्वाधिक दण्ड प्राप्त व्यक्ति को एक दिन की भी छूट न दिए जाने में मैं स्वयं दुःखी अनुभव करता हूँ। सरकार की नीति यह है कि जब तक आप सदृश क्रान्तिकारी की मनोवृत्ति व सोच में परिवर्तन न हो, उसे छूट न दी जाए।"

सावरकर ने जब इस पर अपनी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की तो वही स्वयं कहने लगा 'अन्य क्रान्तिकारी बन्दी तो राजनीतिक बन्दियों की श्रेणी में माने जाते हैं। जब कि आपको सामान्य हत्यारे के रूप में माने जाने से आपके दण्ड में छूट नहीं दी गई है। आप इसको अपना अधिकार भी नहीं जता सकते।"

सावरकर ने कहा 'यह तो मैं पहले से ही जानता था। जब तक मैं हत्यारा हूँ, अराजनैतिक बन्दी हूँ, जब तक मेरी मनोवृत्ति में बदलाव नहीं आता, तब तक मैं इस आलू भात के विशेष भोजन का भी अधिकारी नहीं हूँ, आप इसे वापस ले जाइए।'

किन्तु बारी का यह साहस नहीं हुआ।

कारागार के द्वार तक आ कर वापस आए बंदियों के मुखों पर सावरकर ने निराशा की काली छाया स्पष्ट देखी थी। कुछ दिनों में वे सब बंदी भी सामान्य हो गए।

सामान्य होने पर सभी राजबंदी यह विचार करने लगे कि इस राज्यारोहण के अवसर पर भारत को भी कुछ अधिकार मिले हैं अथवा कि नहीं? यह समाचार कौन दे? यह भी जानने की उत्सुकता बनी रहती थी कि क्रान्तिकारी आंदोलन की गतिविधि क्या है? आंदोलन प्रगति कर भी रहा है अथवा कि नहीं।

जेल से बाहर जो अस्पताल था उसमें किन्हीं विशेष परिस्थितियों में ही रोगी बंदी को भेजा जाता था किन्तु राजनीतिक बंदियों को तो इस भय से वहाँ नहीं रखा जाता था कि कहीं वे रुग्णता का बहाना बना कर बार-बार इस सुविधा का लाभ न उठाने लग जाएँ। इसके साथ ही उनके बाहर रह कर परस्पर मिलन की सम्भावना भी बनी रहती थी।

बाहर काम करने वाले किसी बंदी को कभी कोई समाचार पत्र का टुकड़ा मिल जाता तो वह उसको पढ़ने के लिए रुग्ण होने का बहाना करता और अस्पताल में भरती हो कर उसे पढ़ता। पढ़ने के उपरान्त वह उस समाचार को अन्य बंदियों को सुनाता, इस प्रकार धीरे-धीरे वह समाचार कारागार के बंदियों तक भी पहुँच जाया करता।

कारागार में मुसलमानों का वर्चस्व

अण्डमान में प्रायः पंजाबी मुसलमान तथा पठानों को ही वार्डर बनाया जाता था। वे बंदियों पर रौब दिखाकर अथवा बल पूर्वक या फिर सुविधा का लालच दे कर अपने लिए भर पेट गेहूँ की रोटियों का प्रबंध कर लेते थे। जो साधारण बंदी थे उनको न चाहते हुए भी इन वार्डरों के लिए अपनी रोटियाँ छोड़नी पड़ जाती थीं और उन्हें विवश होकर चावल खाने पड़ते थे। जो बन्दी उनके लिए रोटियाँ न छोड़ता उसे वे धमकियाँ देते थे तथा उनकी झूठी शिकायतें करके उनको कठोर दण्ड दिलवाते थे। वहाँ ९९ प्रतिशत वार्डर पंजाबी-सिंधी पठान मुसलमान ही थे। वे पठान वार्डर हिंदुओं को अधिकाधिक यातनाएँ देना या दिलवाना अपना 'साम्प्रदायिक कर्तव्य' मानते थे। कारागार के ९९ प्रतिशत हिंदू उनके अत्याचारों के शिकार बनते थे।

एक वर्ष की निरन्तर यातनाएँ तथा निकृष्टतम भोजन प्राप्त होने पर भी सावरकर का स्वास्थ्य कारागार में सामान्यतया ठीक ही रहा था। भोजन के लिए बंदियों को एक समय में दो कटोरा चावल, गेहूँ की दो रोटियाँ तथा दाल और सब्जी दी जाती थी। सामान्यतया यह भोजन पर्याप्त था। कुछ ही बंदी ऐसे होंगे जिनकी इतने में तृप्ति न हो पाती हो। पंजाबी तथा पठान मुसलमान अधिकांशतया गेहूँ खाते थे, उन्हें चावल रुचिकर नहीं थे।

मिर्जा खान नामक पठान वहाँ प्रमुख जमादार के पद पर कार्य करता था।

उसकी प्रसिद्धि 'छोटा बारी' के नाम से थी। यद्यपि जमादारों तथा पेटी अफसरों को, जो जेल से बाहर नियुक्त थे, उन्हें बाहर अपने पैसों से भोजन करने की सुविधा प्राप्त थी, किन्तु भोजन के समय वे भीतर आ जाते और बन्दियों को उन्हें भी अपने भोजन में से भोजन देना पड़ जाता था। खान किसी भी पठान वार्डर को आँखों से संकेत कर देता कि वह उसके लिए दस बारह रोटियाँ एकत्रित करके ले आए। भोजन परोसते समय मिर्जा खान भोजन परोसने वाले के साथ साथ चलता था और वार्डर बन्दियों की रोटियों में से उसके लिए रोटी उठा लेता था। यदि कोई बन्दी रोटी देने में आनाकानी करता तो वह उस हिन्दू बन्दी को व्यर्थ में लाछन लगा कर वहीं पर दो चार डंडे लगा देता था।

बन्दियों को वहाँ पर सप्ताह में एकाध बार ही दही मिलता था। जिस दिन दही मिलता उस दिन ये पठान वार्डर बड़े-बड़े लोटे लेकर उनमें जबरदस्ती दही भर कर पी जाते। यदि कोई बन्दी आपत्ति करता तो उसके साथ मारपीट करने लगते थे। ऐसे ही एक बार एक हिन्दू बन्दी को उस पठान ने व्यर्थ का दोषारोपण करके बहुत पीटा, इतना पीटा की उसकी चोटी तक उखड़ गयी। उसकी चिल्लाहट सुनकर मिर्जा खान नामक वह 'छोटा बारी' वहाँ आ गया। उसने मारने वाले बलूची पठान को रोकने अथवा डाँटने की अपेक्षा हिन्दू बन्दी को ही पकड़ लिया और अपने साथ ले गया। सावरकर इस घटना को देख कर बहुत दुखी हुए। उन्होंने बन्दी को संकेत कर दिया कि वह गवाही में उनको बुला ले।

बन्दी का मामला पेश हुआ तो उसने गवाहों में सावरकर का नाम बता दिया। और जब सावरकर को वहाँ बुलाया गया तो उन्होंने जो कुछ देखा था वह साफ-साफ बता दिया। सावरकर की सत्य साक्षी सुन कर मिर्जा खान चिल्ला कर कहने लगा, 'हुजूर यह बड़ा बाबू हर समय मुसलमानों के खिलाफ बोलता रहता है, झूठी गवाही देता है।'

सावरकर ने कहा, 'मेरी बात सत्य है। इस पठान ने बलपूर्वक बन्दियों के भाग का दही ले कर लोटा भर कर उस टीन के छप्पर में छिपा दिया है। चल कर देख लिया जाए।"

विवश होकर जेलर को सावरकर के साथ उस टीन के छप्पर के पास जाना पड़ा और तलाश करने पर वह छिपाया हुआ दही भरा लोटा वहीं मिल गया। जेलर को परम क्रोध आ गया और उसने जमादार का पट्टा निकलवा कर उसे कठोर काम पर लगा दिया।

उस दिन तो खान को दण्ड मिल गया। किन्तु इससे पूर्व और इसके उपरान्त भी जेल के नियमों के अनुसार पर्याप्त मात्रा मिलने पर भी भोजन इस प्रकार की चोरी और सीनाजोरी होने के कारण आधे पेट रह जाया करते थे।

रहा भोजन के स्वाद सादा होने की बात। वह अवश्य विचारणीय थी। चावल कभी भी ठीक से नहीं पकाए जाते थे। उन्हें साफ करके पकाने की बात तो स्वप्न में

भी नहीं सोची जा सकती थी। भण्डार से जैसे मिले वैसे ही कूडा करकट समेत पकने के लिए डाल दिए गए। धान की भी आवश्यकता नहीं। रोटियाँ या तो अधपकी होती या फिर जली हुयीं। चार-पाँच रसोइयों को सात आठ सौ बन्दियों का भोजन पकाना पडता था। उनका पसीना तो क्या न जाने और क्या क्या उसमें पडता रहता था। उस गन्दगी को देख कर सहज ही भोजन से अरुचि हो जाती थी।

इतना ही नहीं, भोजन में दी जाने वाली काँजी में अनेक बार मिट्टी का तेल मिला पाया गया। अण्डमान में साँप और एक अन्य कीडा जिसे कैंचुली कहते थे, बहुत होते थे। कैंचुली दो फुट लम्बी और अत्यन्त विषैली होती थी। बन्दियों को हँसिया लेकर जंगलों में सब्जी काटने के लिए भेज दिया जाता था। वे जंगल से सब्जी काटते और गाडियों में भर देते। जेल में आकर उनकी जूडियाँ बनतीं और उस सब्जी को काट कर पकने रख दिया जाता। किसी को यह देखने का अवकाश नहीं कि उन जूडियों में क्या बँधा है। जब वह सब्जी परोसी जाती तो अनेक बार साँप अथवा कैंचुली के टुकडे उसमें साफ दिखायी दे जाते।

सावरकर तथा कुछ और बन्दी साँप और कैंचुली का टुकडा उठाकर कभी सुपरिन्टेंडेंट अथवा बारी को दिखाने ले जाते तो वे हँस कर कह देते "इनका स्वाद तो बहुत अच्छा होता है।"

ऐसे ही एक बार काँजी में जब अत्यधिक मिट्टी के तेल की दुर्गन्ध आने लगी तो बन्दियों ने इसकी शिकायत भेज दी। उनमें सावरकर का नाम भी था। बारी भागा-भागा वहाँ आया और चीख कर एक बन्दी की ओर देख कर बोला, "क्या सचमुच ही काँजी में मिट्टी के तेल की दुर्गन्ध है?"

बारी ने जानबूझ कर ऐसे बन्दी से पूछा था, जो मुसलमान होने के साथ-साथ मुखबिर भी था। उसने बडे तपाक से कहा, "नहीं साहब, बडा बाबू झूठ बोलता है।"

बारी सावरकर पर चिल्लाया, 'किसी को भी काँजी में मिट्टी के तेल की दुर्गन्ध नहीं आ रही है केवल तुमको ही क्यों आती है? मैं तुम पर झूठी शिकायत करने के आरोप में मुकदमा चलाऊँगा।"

खराब भोजन की यदि शिकायत की जाती तो बारी कह दिया करता था, "अन्न के लिए केवल वे झगडते हैं जिनके जीवन का उद्देश्य केवल उदर-पोषण मात्र होता है।"

सावरकर उसको उत्तर देते, "जेल नियमों के अनुसार हम जीवित रहने के लिए अच्छे भोजन की माँग करते रहेंगे। हम कोई आयरिश भिखारी नहीं है जो आपसे भीख में अच्छा भोजन माँग रहे हों।'

बारी और मिर्जा खान कभी ऐसा षडयन्त्र रचते कि जिसमें किसी हिन्दू बन्दी या पेटी अधिकारी पर दोषारोपण हो जाता। वे जानबूझ कर ऐसा इसलिए करते कि सावरकर आदि उन हिन्दू बन्दियों की शिकायत करके मामला आगे न बढाएँ। और

वे उसको बढाते भी नही थे, अपितु जैसा भी भोजन मिलता उसे कर लेते। उसका कारण यही था कि यदि उस हिन्दू को उस स्थान पर से दण्डित कर हटाया जाता तो उसके स्थान पर कोई पठान या अन्य मुसलमान रखा जाता। अतः कभी-कभी जान कर भी वह विषाक्त भोजन करना पड जाता था।

सावरकर आदि का संघर्ष अन्त मे जाकर सफल हुआ। उसके बाद जब भारत के समाचार पत्रो मे राजनीतिक बन्दियो की दुर्दशा का समाचार प्रकाशित हुआ तो उसका भी प्रभाव हुआ। भोजन का स्तर धीरे धीरे सुधरने लगा। इसके साथ ही साधारण बन्दियो के भोजन स्तर मे भी सुधार हुआ।

असह्य यातनाएँ

सावरकर ने जब बन्दियो के मुख से कारागार मे कारागार अधिकारियो द्वारा ही बन्दियो पर किए जाने वाले अमानुषिक अत्याचारो की कहानी सुनी तो वे स्तब्ध रह गए। उनके अत्याचारो तथा यातनाओ से बचने के लिए अनेक बन्दी किसी न किसी प्रकार स्वयं को स्वयं ही आहत कर, अपने ही दाँत से स्वयं को काटकर अथवा कील चुभा कर आहत कर लेते, जिससे कि कष्ट कर कार्य से बच सकें। यहाँ तक कि कुछ बन्दी पागल बन जाते। वे न केवल अपने शरीर मे अपना या पराया मल-मूत्र मल लेते अपितु कभी-कभी वे सबके सामने ही उसको अपने मुख मे भी रख लेते थे।

इससे ही अनुमान लगाया जा सकता है कि बन्दियो के साथ कैसा व्यवहार किया जाता होगा। किन्तु इस बात की खबर किसी को कानो कान भी नही दी जाती थी। सावरकर ने 'माझी जन्मठेप' मे लिखा है कि कुख्यात से कुख्यात अपराधी और खूँखार डकैत व हत्यारे तक कारागार की कठोरता से भयाक्रान्त हो जाते थे, तब राजनीतिक बन्दियो पर इससे क्या बीतती होगी इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। उन्होंने उपेन्द्रनाथ बनर्जी की आप बीती का वर्णन इस प्रकार किया है—

'हमसे पूर्व सन १८५७ के राज्य क्रान्तिकारियो से लेकर जो भी आजीवन कारावास पा कर अण्डमान आते रहे हैं उनमे से एक भी जीवित स्वदेश न लौट सका था। यह बात जब जेल मे कठिन से कठिन कार्य करते समय मेरे मन मे आती तो मन करता था कि रस्सी का फन्दा गले मे डाल कर आत्महत्या कर लूँ। परन्तु मुझसे ऐसा साहस नही हो सका। तेल पूरा करने के लिए चुपचाप कोल्हू चलाता रहा।

एक दिन सवेरे से शाम तक कोल्हू चलाते रहने से शरीर काष्ठवत बन गया। हाथो मे छाले पड गए परन्तु तीस पौंड तेल पूरा नही हो पाया। चलाते चलाते चक्कर आ रहे थे। बीच-बीच मे पेटी अफसर अश्लील गालियो की ऐसी बौछार करते रहते थे जो चाबुक के प्रहार के समान सीधे हृदय को जाकर बेध देती थी।

'उस दिन तेल पूरा न होने के आरोप मे मुझे बन्दीपाल के सामने पेश किया गया। उसने पूरी अश्लीलता की भाषा से मेरे माता पिता तक को गालियाँ सुना डालीं और साथ ही बेंत मारने की धमकी भी दी। वहाँ मे गाली खा कर लौटा और सोहे

की थाली मे भात खाने बैठा। उस समय दुख और अपमान भडक उठा, कठावरोध होने लगा, एक भी ग्रास नीचे नहीं उतरा।

"एक हिन्दू पेटी अफसर ने मेरी यह दयनीय दशा देखी। उसने मुझ पर तरस खा कर चुपचाप उस परोसने वाले से कहा, 'इन्हे जरा ज्यादा भात दे दो, बाबू को कष्ट हो रहा है।'

"इन शब्दो को सुन कर जी चाहा कि जोर से रो पड़ू। परन्तु मैंने अपने ही हाथो मे अपना गला और गर्दन दबा कर उसे सवरण कर लिया। इससे पूर्व ऐसे समय मे कोई आ कर यदि मेरी पीठ पर तडातड लट्ठ मार देता तो भी मैं सहन करता, किन्तु उस समय वह सहानुभूति बडी असह्य हो गयी थी।'

किन्तु इन्दुभूषण की गाथा तो इससे भी अधिक पीडा एव दुख कारक है।

बगाली क्रान्तिकारी इन्दुभूषण राय माणिकटोला बम काण्ड मे दस वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड पा कर अण्डमान आया था। वहा आते ही उसको कोल्हू पर पेल दिया गया। फिर कुछ दिन बाद उसको बाहर के काम पर भेज दिया गया। किन्तु वह शीघ्र अस्वस्थ हो गया। सामान्य बन्दी यदि अस्वस्थ होता था तो उसको अस्पताल भेज दिया जाता था। किन्तु बारी को जब इन्दुभूषण के बीमार होने का समाचार मिला तो उसने उसको अस्पताल मे भेजने की अपेक्षा कोल्हू मे भेज दिया।

सावरकर को उसकी कहानी पता चल गयी थी। शाम को जब इन्दुभूषण कोल्हू से तेल लेकर उसे तुलवाने के लिए निकला तो सावरकर ने उसे ढाढस देते हुए कहा, "देखो तुम्हे तो केवल दस वर्ष का कारागार मिला है, मुझे तो दो आजीवन कारावास मिले है। मेरी ओर देख कर कम से कम अपने मन को धीरज बंधाओ।'

इन्दुभूषण तुरन्त बोल पडा, "ऐसी अपमानजनक स्थिति मे जीवित रहने से तो मृत्यु कहीं अधिक उत्तम होगी।'

सावरकर ने उसको पुन बार बार समझाया और कहा कि वह भी उनकी ही भाँति २५ वर्षीय युवक है किन्तु वह तो कुछ वर्ष बाद ही यहा से मुक्त होकर वापस चला जाएगा। इसलिए उसे जीवित रहना चाहिए जिससे कि यहाँ से जाने के बाद पुन वह मातृभूमि की सेवा कर सके।

उस समय जल्दी-जल्दी मे ये बातें होती रहीं। उसके बाद नित्य वे शाम के समय उसे पसीने से लथपथ तेल तुलवाने के लिए आता देखते रहे थे।

तभी एक दिन, सवेरे बन्दियो की कोठरिया खुली ही थी और बन्दी जन बाहर निकले ही थे कि वार्डर ने चुपचाप सावरकर के कान मे कहा, "इन्दु कल फासी लगा कर मर गया। मैंने आपको इसकी सूचना दी है इसका किसी को ज्ञान न होने पाए, इसका ध्यान रखिए।'

यह सुन सावरकर अवाक रह गए। उसके मन मे सहसा विचार उठा, 'उस स्वाभिमानी युवक ने अपमानास्पद जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा मृत्यु को सुखकर माना।"

कारागार मे यह सब जानते थे कि इन्दु ने अपने कपडो की रस्सी बना कर अपने गले म फाँसी लगायी है। उसने जेल के कष्टो से दु खी एव व्यथित होकर अपनी इहलीला समाप्त की थी। किन्तु बारी तो इस सबसे निराला ही था।

बारी ने इन्दुभूषण की आत्महत्या को पारस्परिक झगडा तथा 'पागलपन' प्रचारित करना आरम्भ कर दिया। इतना ही नही अपितु इन्दुभूषण राय ने आत्महत्या के समय अपने गले म एक पत्र बाँध रखा था, जिसम उसने अपनी आत्महत्या के कारणो को गिनाया था। बारी ने उस पत्र को गायब करवा लिया था।

कारागार मे तो साधारण सी घटना पर ही जाँच का नाटक किया जाता था, यहाँ तो एक प्राणी के जीवन का ही अन्त हो गया था, फिर जाच का नाटक क्यो न हो।

इन्दुभूषण की आत्महत्या की जाँच करने के लिए जब अधिकारी आए तो बारी ने अपने दो चार चाटुकार बन्दियो को साक्षी के रूप म प्रस्तुत किया और सबके मुख मे कहलवा दिया कि कुछ दिनो स इन्दुभूषण पर पागलपन का दौरा पडने लगा था उसी आवेग म उसने फासी लगा ली। किन्तु इसके विपरीत अनेक राजनीतिक बन्दियो ने अपनी साक्षी में बताया कि इन्दुभूषण पर पागलपन का दौरा कभी नही पडा, उसने कारागार की असह्य यातनाओ के कारण मृत्यु का वरण किया है।

'स्वराज्य' पत्र के युवक सम्पादक भी राजद्रोह मे बन्दी बना कर अण्डमान पहुँचाए गए थे। उन्होने अपनी साक्षी मे बताया कि उनकी इन्दुभूषण से बातें होती रहती थी। उसको जो असह्य यातनाएँ दी जाती उनका उल्लेख वह किया करता था। उन यातनाओ के कारण ही उसने आत्महत्या की है, पागलपन के कारण नही।

सावरकर भी चाहते थे कि उनकी साक्षी ली जाए। उनको भी इन्दुभूषण के कष्टो का ज्ञान था। उनके सम्मुख भी वह अपनी यातनाओ की बातें किया करता था, किन्तु जाँच अधिकारी ने सावरकर को नही बुलाया।

जाच का नाटक हो गया तो शाम को बारी न सावरकर के पास आ कर कहा, "खुद इन्दुभूषण ने अपने पत्र मे लिखा है कि वह पारस्परिक कलह को सहन नही कर सकता, इस लिए आत्महत्या कर रहा है।"

सावरकर ने उससे कहा, 'यदि ऐसा था तो आपने उस पत्र को जाँच अधिकारी के सम्मुख क्यो नही रखा ?

इसका बारी के पास कोई उत्तर नही था। बारी इतना मूढ था कि वह अपनी बातो म स्वय ही फँस जाया करता था। सावरकर ने बारी को वे सब बात बतायी जो इन्दु उनको बताया करता था। सावरकर ने कहा कि यदि वह पागलपन मे ही मरा है तो भी उसके पागल होने के कारण भी तो यही कष्ट थे ?

थोपा हुआ पागलपन

उपेन्द्रनाथ बनर्जी की ही भाँति उल्हासकर दत्त को भी अलीपुर षड्यन्त्र के आरोप

मे पकडकर उसपर अभियोग चलाया गया था। यद्यपि अभियोग के दौरान जज ने उसके विषय मे अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि वह बडा सज्जन, बुद्धिशील निर्भीक तथा स्वच्छ हृदय वाला युवक है। किंतु फिर भी उसको बारह वर्ष कारावास का दण्ड देकर अण्डमान भेज दिया गया था।

सावरकर ने अपनी पुस्तक 'माझी जन्मठेप' मे उल्हासकर की आपबीती को इस प्रकार दोहराया है

"मुझे उस कोल्हू मे जोता गया जो भारत मे तेल निकालने के काम मे लाया जाता है। कोल्हू के बैल दिन भर कोल्हू चलाने पर भी बडी कठिनाई से १५ पौंड सरसो पेर पाते हैं। किन्तु अण्डमान मे बैलो के स्थान पर तीन बंदियो को जोता जाता है और उनसे ८० पौंड तक तेल निकलवाया जाता है। तेल पूरा न होने के परिणामस्वरूप मिलने वाले दण्ड का सदा भय बना रहता है। चलने मे थोडा धीमा होने पर पेटी अधिकारी का सोटा खाना पडता है, इससे भी यदि मैं सचेत न हुआ तो कोल्हू के डडे से मेरे हाथ पैरो को बांध दिया जाता था और जोर से दौडने के लिए विवश किया जाता इससे मेरा सारा शरीर रक्त से सन जाता था। मुह से भी रक्त बहने लगता था। थककर चूर होने पर जब मैं कोठरी म जाया करता था तो लगने लगता कि प्रात जीवित उठूगा भी कि नही। प्रात फिर कोल्हू म जोत दिया जाता।

"वर्षों बाद मुझे भी एक दिन कारागार से बाहर भेजे जाने की अनुमति आ गई परन्तु लगा कि यह तो चूल्हे से निकालकर कडाही मे डाल दिया गया है। इस अतिरिक्त काय के लिए भोजन मे दूध दिया जाना था परन्तु उस दूध को तो पेटी अफसर हडप जाया करते थे। मुझे जब दूध दिया गया तो मैं उसे मिलते ही हडप गया, पेटी अफसर मेरा मुख ताकता रह गया। उसने चिढकर मुझे ऐसे काय पर लगा दिया जहा दूध नही मिलना था। यह काम था ऊँची पहाडी पर स्थित एक अफसर के घर पानी पहुँचाना। दो कनस्तर भर कर ऊपर पहुँचाने पडते थे। कुछ दिनो बाद मैंने उसे करने से इनकार कर दिया।

"इस अपराध मे मुझ पर मुकदमा चला। न्यायाधीश ने कहा, 'थोडे दिन अस्पताल मे आराम करो।' परन्तु मैंने तो काम न करने का दृढ निश्चय कर लिया था। मुझे तीन मास का कठोर कारावास का दण्ड देकर कारागार म बन्द कर दिया गया। बारी मुझे देखकर बोला, "सुन, यह बाहर का मदान नही है, कारागार है। अनुशासन तोडा या काम न किया तो बेंत से खाल उधेड दूगा। बेंत भी एसी कि शरीर पडते ही मास म एक एक इच गड जाएगी। एक नही, तीस बेंत मारूँगा।'

"मैंने दृढता से उत्तर दिया, 'चाहे मेरे शरीर के टुकडे-टुकडे कर दो, मैं काम नही करूँगा, क्योंकि तुम्हारा काम करना घोर अन्याय को सहन करना है। उसने मुझे उसी दिन आठ दिन की हथकडी की सजा दे दी और साथ ही दीवार पर टाँग देने का आदेश।

"एक दिन अचानक बारी ने कहा, तुमने मेरा अपमान किया है, मुझे चुनौती दी है, मैं तुमसे दो दो हाथ करने को उद्यत हूँ। तुम्हारी ओर से जो मुझसे लड़े तुम उसे बुला लो। मेरी दृष्टि में तुम्हारी ओर से सावरकर रहेगा।'

"उसने सावरकर जी को बुलवा लिया। मैंने देखा कि वे पूर्वापेक्षा कृशकाय लग रहे हैं। बारी ने उनसे कहा, 'क्या वे उल्लास की ओर से उससे लड़ने को तैयार हैं?' सावरकर तैयार हो गए तो बारी ने उनको एक हथमोजा और एक शस्त्र थमा दिया।

'मैं उत्सुकता से देखता हुआ अपने प्रतिनिधि की विजय की कामना कर रहा था। ईश्वर ने हम दोनों की लाज रखी और सावरकर ने बारी को परास्त कर दिया। उन्होंने हथमोजा उतारा और शस्त्र तथा हथमोजा बारी के मुख पर दे मारा। बारी का मुख उतर गया किन्तु मेरा मुख प्रसन्नता से खिल उठा।

बारी मुझे दीवार के सहारे खड़ाकर के गया था। सूर्य का ताप बढ़ रहा था और मुझे लगा कि मुझे ज्वर चढ़ने लगा है। तेज ज्वर के बावजूद मैं हथकड़ी में झूम रहा था। डाक्टर आया, ज्वर १०७° डिग्री था और मैं ठंड से काँप रहा था। डाक्टर के कहने पर मुझे हथकड़ी से उतारा गया तो मैं मूर्च्छित हो कर भूमि पर गिर गया।'

ऐसी थी अण्डमान की असहनीय यातनाएँ।

सावरकर लिखते हैं—

हम कोठरी के द्वार के समीप पहुँचे ही थे कि कर्कश, करुण क्रन्दन सा सुनाई दिया। उसके साथ ही उठा पटक की भी ध्वनि आ रही थी। हमें लगा इतने भीषण ज्वर में भी उल्हासकर को 'ठीक' करने की प्रक्रिया जारी है। करुण क्रन्दन तथा चीखने चिल्लाने की ध्वनि निरन्तर बढ़ती जा रही थी। तभी किसी वार्डर ने आकर बताया 'उल्हासकर पागल हो गया है। होता भी कैसे नहीं? इतनी तपती धूप में इतना तीव्र ज्वर और ऐसी यातना। उसकी चीख पुकार प्रातःकाल उठने पर भी सुनाई दे रही थी। वह बंगला भाषा में माँ को पुकार रहा था।

'पता चला कि अधिकारी यह जाँच करने का यत्न कर रहे हैं कि वह वास्तव में पागल हो गया है अथवा कि बहाना कर रहा है। इसके लिए उसको बिजली के झटके दिए जा रहे हैं। उल्हासकर को यह सहना कठिन हो रहा था यह उसने बाद में बताया था। उससे उसके सारे शरीर में बिजली कौंध जाया करती थी। यातनाओं के आवेग में उसके मुख से और अधिक चीखें निकलती और अन्त में वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा था। होश आने पर उसको विदित हुआ कि वह तीन दिन तक मूर्च्छित रहा था।

'कारागार का क्रूर कुटिल अधिकारी अवकाश पर गया तो दूसरा अधिकारी आया, उसने उल्हासकर को मानसिक चिकित्सालय में भेज दिया। दस वर्ष तक उल्हासकर पागलों की दयनीय दशा में रहा। अण्डमान से उसे मद्रास के पागलखाने में भेज दिया गया और फिर वहीं से उसकी मुक्ति हुई।

उन्हीं दिनों एक दिन बारी ने आकर मुझसे कहा 'तुम कब सरकार बनोगे?

मैंने क्रोध में भर कर उसे उत्तर देते हुए कहा, 'कदाचित्, तुम्हारे पागल बन जाने के बाद।'

" मैंने उसको कहा, 'देखो, अब तुम यह बात भली भाँति समझ लो कि तुम्हें अब वह सब सुविधाएँ हम राजनीतिक बन्दियों को देनी ही होंगी जो कि नियमानुसार हमारी प्राप्य हैं। तुम्हें हमें साधारण बन्दी की भाँति रखना होगा। इन अमानवीय यातनाओं और कष्टों को तुरन्त समाप्त करो अन्यथा हमें हड़ताल और संघर्ष के लिए बाध्य होना पड़ेगा। हड़ताल करने पर यदि हम तुम लोगों से टक्कर न भी ले पाए तो कम से कम हमें इस बात का सन्ताप तो होगा कि हमने अन्याय तथा अपमान का प्रतिवाद और प्रतिकार तो किया था।'

ऐसी असह्य यातनाएँ हमारे राष्ट्रोद्धारकों ने सही तब कहीं जाकर यह देश स्वतन्त्र हो पाया। अगणित युवकों ने अपने जीवन होम दिए, अगणित युवक बलि चढ़ गए, सर्वस्व लुटा दिया। किन्तु आज के भ्रष्ट शासक नई एवं भावी पीढ़ी को मार्ग भ्रष्ट करने के लिए प्रचार करते हैं—

'दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल,
साबरमती के सन्त तूने कर दिया कमाल॥'

धिक्कार है ऐसे शासकों पर जो बलिदानियों का मूल्यांकन न कर अपने सुविधाभागी पूर्वजों का गुणगान करते रहते हैं।

कारागार में स्वातन्त्र्य साधना

सावरकर सदा ही यह अनुभव किया करते थे कि एकान्त कोठरी की अपेक्षा बाहर के अन्य बन्दियों के समान रहने पर परस्पर विचार विनिमय का कभी-कभी अवसर मिल जाने से कुछ प्रचार कार्य में सुविधा होती है। इसलिए जब उनको अण्डमान की कारा में रहते हुए एक वर्ष पूर्ण हो गया तो उन्होंने अपने बाहर भेजे जाने के लिए आवेदन पर आवेदन करने आरम्भ कर दिए। इसके साथ ही वे बन्दियों के साथ परस्पर गुप्त पत्र व्यवहार भी करते रहते थे।

देव लीला बड़ी विचित्र है। सावरकर जहाँ बाहर भेजे जाने के लिए आवेदन-पत्र भेज रहे थे वहाँ उसी अवधि में दो विभिन्न अवसरों पर उनके दो गुप्त पत्र पकड़े गए और उनको कभी दो मास का एकान्तवास तो कभी कुछ दिनों की हथकड़ी का दण्ड दिया गया। अर्थात् बाहर भेजे जाने में बाधा उत्पन्न हो गयी।

एक बार सावरकर ने एक बन्दी को एक गुप्त पत्र देकर कहा कि "अमुक स्थान' पर जो बन्दी मिले उसको वह यह पत्र दे दे। वह बन्दी बारी का विशिष्ट व्यक्ति था, इस बात का ज्ञान सावरकर को नहीं था और न ही उनको उस पर ऐसा सन्देह ही हुआ। उसने वह पत्र निश्चित स्थान पर पहुँचाने की अपेक्षा बारी को दे दिया। इससे इतना तो बचाव हो गया कि सम्बन्धित बन्दी दण्डित नहीं हुआ किन्तु सावरकर को इस अपराध में दो मास का कोठरी-वास का दण्ड भुगतना पड़ा।

दूसरी बार की घटना भी कुछ ऐसी ही है। सावरकर ने अपने एक महाराष्ट्रियन सहबन्दी को मराठी भाषा में पत्र लिखा। भाषा तो मराठी थी किन्तु उसकी लिपि मराठी की एक सह लिपी "मोडी" होती है, वह पत्र उसमें लिखा था। यह पत्र सावरकर ने तन्हाई का दण्ड पूर्ण कर एकान्त कोठरी से बाहर आते ही हड़ताल के विषय में लिखा था। वह गुप्त पत्र लिखकर सावरकर उसे बाहर भेजने की योजना बना ही रहे थे कि उसी समय जेल अधिकारी उनकी तलाशी लेने के लिए आ पहुँचे। सावरकर ने वह पत्र कहीं इधर उधर फेंक तो दिया किन्तु फिर भी किसी अधिकारी के हाथ वह लग ही गया।

पत्र पाकर अधिकारियों के सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि उस पत्र को किससे पढ़ाया जाए। बारी ने अपने एक चाटुकार बन्दी से वह पत्र पढ़वा तो लिया किन्तु अन्य राजबन्दियों के भय से उसने सावरकर के विरुद्ध साक्षी देना अस्वीकार कर दिया। जब उसने साक्षी नहीं दी तो बारी ने यह सिद्ध करना चाहा कि यह पत्र बंगला भाषा में लिखा गया है। जाँच अधिकारी के सम्मुख जब बात गई तो एक बंगला भाषी बन्दी ने सावरकर के पक्ष में साक्षी देते हुए दृढ़ता से कह दिया कि इस पत्र का एक अक्षर भी बंगला भाषा का नहीं है। यह सुनकर पर्यवेक्षक घबरा गया। बारी ने चिल्लाकर कहा 'सर, इन 'बंगोला' वालों ने षड्यन्त्र किया हुआ है कि ऐसे अवसरों पर झूठी गवाही दी जाए।

पत्र चाहे किसी लिपि में हो, जाँच अधिकारी को तो सावरकर के विरुद्ध निर्णय देना ही था। जब इस प्रकार का पत्र लिखने का नियमों में प्रावधान नहीं है और सावरकर ने वह पत्र लिखा था तो उनको तो दण्ड मिलना ही था, अतः उन्हें आठ दिन की हथकड़ी का दण्ड मिल गया।

तब सावरकर ने चीफ कमिश्नर को आवेदन पत्र दिया कि भले ही उनका दण्ड कम अथवा क्षमा न किया जाए किन्तु इस बात का तो निश्चय किया ही जाना चाहिए कि पत्र "मोडी' में है अथवा बंगला में। इस आवेदन पर चीफ कमिश्नर ने दुबारा जाँच का आदेश दिया। जाँच अधिकारी ने उस लिपिक को बुलाया जिसने उसे बंगला भाषा का पत्र बताया था। उस समय उसने बारी को बाहर भेज दिया। उसने लिपिक को आँखें तरेरते हुए कहा 'क्या तुमने उस पत्र को भली भाँति पढ़ लिया है, वह बंगला भाषा में लिखा हुआ है? यदि तुमने झूठ बोला तो तुम्हें दण्डित किया जाएगा।'

बन्दी घबरा गया। उसने काँपते हुए कहा, "सरकार हम तो बन्दी हैं। बारी साहब जो कुछ कहते हैं वह सब हमें करना पड़ता है। वास्तविकता तो यह है कि बारी साहब के आदेश पर मैंने उस पत्र को अपनी कल्पना से बंगला भाषा में पढ़कर सुना दिया था, परन्तु वह पत्र बंगला भाषा में नहीं है। मैंने तो बारी साहब के कहने पर यह गलत काम किया था।'

इससे जाँच अधिकारी को बड़ा क्रोध आया। उस अधिकारी से जितना हो

सकता था उतना उसने बारी को डाँटा फटकारा और कहा, "भविष्य मे यदि इसी प्रकार की झूठी साक्षी प्रस्तुत की गई तो उसका परिणाम बहुत बुरा होगा, यह ध्यान मे रखना।"

सावरकर के इस पत्र के पकडे जाने से एक लाभ यह हुआ कि बारी की जकड कुछ ढीली हो गयी। वह कभी कभी सावरकर को कह दिया करता, "मैं भी तो आयरिश हूँ, कभी मैंने भी अग्रेजो के विरुद्ध षडयन्त्र रचे थे। तुम लोग मुझे अपना शत्रु क्या समझते हो ? सरकारी नौकर होने के कारण मुझे तो अपने अधिकारियो के आदेश का पालन करने मे यह सब करना पड जाता है।

कारागार से बाहर भेजे जाने के आवेदन पत्र के उत्तर मे सावरकर को लिखा गया कि क्योकि वे राजनीतिक बन्दी नही है इस कारण उन पर वे नियम लागू नही होते। सावरकर ने इसका प्रतिवाद किया, अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए किन्तु अधिकारियो का दृढ उत्तर था, "आपको कारागार से बाहर नही जाने दिया जाएगा।'

हडताल और यातनाएँ

इन्दुभूषण की आत्महत्या तथा उल्हासकर दत्त को पागल बना दिए जाने की घटनाओ से कारागार मे भीतर ही बहुत बडा विद्रोह सा पनपने लगा था। राजनीतिक बन्दी यातनाओ व कष्टो के विरुद्ध संघर्ष के लिए उद्यत हो गए थे। इसका एक मात्र उपाय हडताल समझा गया और तब एक मत से हडताल करने का निश्चय कर लिया गया।

इन राजनीतिक बन्दियो की मांगें थी कि उनको कष्ट और यातनाएँ देने के लिए जिस रूप मे राजनीतिक बन्दी समझा जाता है उसी रूप मे सुविधाएँ देते समय भी उन्हे राजनीतिक बन्दी समझ कर नियमानुसार उनको जो सुविधाएँ दी जानी चाहिए न दी जाए। उनकी यह भी मांग थी कि जेल के बाहर अथवा भीतर दिए जाने वाले कष्टकारक कार्यों की अपेक्षा उनको लेखन आदि का कार्य दिया जाए। देश के कारागारो मे राजनीतिक बन्दियो को रियायतें और सुविधाएँ दी जाती है वे भी उनको दी जाएँ। सबने मिलकर एक ज्ञापन तैयार किया और उसमे यह सब लिखकर जेल के उच्चाधिकारी के पास भिजवा दिया गया।

सावरकर ने अलग से आवेदन पत्र भेजा था और उसमे लिखा था कि कारागार मे भेंट करने, पत्र लिखने तथा अन्यान्य रियायतो के जो जो लाभ बन्दियो को दिए जाते है, उन सबसे हम इस लिए वचित रखा जाता है कि हम 'कालेपानी" वाले हैं। साथ ही यहा कालेपानी पर लेखन कार्य पेटी अधिकारी की नियुक्ति, बाहर मुक्त सचार आदि की जो सुविधाएँ मिलती हैं, उनसे हमे इसलिए वचित रखा जाता है कि हम साधारण बन्दी न होकर "विशिष्ट बन्दी" हैं। किसी न किसी बहाने से हमे सुविधा व रियायतो से वचित किया जाता रहा है। अब हमने निश्चय किया है कि अपने साथ अन्याय नही होने देंगे। हम अब अपने अधिकारो को प्राप्त करने के लिए, बडे से बडे कष्ट सहकर भी, किसी प्रकार का सहयोग न करते हुए हडताल कर देंगे।

कारागार के अधिकारी इन साधारण से माग पत्रों से कब सीधे होने वाले थे। अपेक्षित समय तक न तो उत्तर प्राप्त हुआ और न सुविधाएँ ही प्रदान करना आरम्भ हुआ तो वन्दियों ने हडताल आरम्भ कर दी।

बाहर के वन्दियों ने काम करना अस्वीकार कर दिया तो उन्हें दण्डित करके अन्दर भेजा जाने लगा। अन्दर के वन्दियों ने तो एक साथ ही काम करने से इन्कार कर दिया था, वे भी हडताल में सम्मिलित हो गए थे।

इस प्रकार अण्डमान में यह दूसरी हडताल आरम्भ हुई।

सावरकर के ज्येष्ठ भ्राता बाबाराव सावरकर तो पहले दिन ही हडताल में सम्मिलित हो गए थे। हडताल होने पर हडताली वन्दियों के झुण्ड के झुण्ड ले जाकर जेल अधिकारी के सम्मुख उपस्थित किए जाते थे। अधिकारी उन्हें चिल्ला चिल्लाकर सजाएँ सुनाता जाता था। उन सजाओं में डण्डा बेडी, पाव बेडी तथा तनहाई आदि होती थी। परिणामस्वरूप प्रत्येक वार्ड में वन्दियों की कोठरियों में वन्दी हथकडियों में हाथ लटकाए दिखायी देने लगे। कुछ लोग उसी स्थिति में बैठने का असफल यत्न करते। कुछ वन्दियों ने पाँव बेडियाँ लगवाने से इनकार कर दिया तो कुछ ने परस्पर न बोलने के आदेश का उल्लंघन कर जोर जोर से बोलना आरम्भ कर दिया।

बारी जब निरीक्षण-परीक्षण के लिए आता था तो उसके सम्मान के लिए सबको खडा होना पडता था। वन्दियों ने इस नियम को भी तोड दिया। एक दिन बारी के आते ही पेटी अफसर ने जोर से कहा, 'सरकार आ रहे हैं।" सबने सुन लिया और चुप चाप रहे। कोई भी वन्दी उस दिन बारी के सम्मान के लिए खडा नहीं हुआ। तब एक एक को खडा करना आरम्भ किया। एक व्यक्ति से यह काम नहीं हुआ तो तीन तीन व्यक्ति लगे, किन्तु फिर भी किसी को खडा नहीं कर सके।

इस प्रकार उस कारागार में प्रथम बार बारी का खुला अपमान किया गया।

हडताल कर देने और काम न करने के अपराध में उन वन्दियों के भोजन में भी कटौती कर दी गई। किसी को कुछ थोडा सा भोजन दे दिया तो किसी को कुछ दे दिया। कुछ के साथ मारपीट भी हुई। इससे भगदड मचने लगी।

सावरकर ने उस दिन बारी से कहा, "राजनीतिक वन्दी इस समय हडताल पर हैं, तुम उनको नियम भंग करने का दण्ड दे रहे हो। यदि तुमने सीमा से बाहर जाकर कुछ और अत्याचार किया तो देख लेना कि वे ईंट का जवाब पत्थर से देने में नहीं हिचकेंगे। वे यह भली भाँति जानते हैं कि तुम उनको अधिक से अधिक मार ही तो सकते हो। किन्तु ध्यान रहे जिस प्रकार सब प्राणों पर खेल कर भी प्रत्याक्रमण करता है वे भी कुछ ऐसा ही करेंगे।'

बारी भुनभुनाता रहा। सावरकर ने उससे फिर कहा, 'अपने पेटी अफसरों तथा जमादार आदि को समझा दो कि वे उन वन्दियों को गाली देना बन्द करें।

राजनीतिक बन्दी उन पठानो और बलूचो की गालियो का उत्तर उससे भी भयंकर गाली से देना सीख गए है। गालियां सहन न होने पर मारपीट तक बात पहुंच जाती है, उसका परिणाम घातक हो सकता है, यह तुम भली भांति समझ लो।"

सावरकर की इस चेतावनी से यद्यपि बारी डर तो गया किन्तु उसने कारागार के वरिष्ठ अधिकारियो के पास जाकर सावरकर की शिकायत कर दी कि वह राजनीतिक बन्दियों को मारपीट और अन्यान्य आन्दोलनो के लिए भड़काता रहता है।

सावरकर प्रारम्भ मे इस हडताल मे सम्मिलित नही हुए थे। यह राजबन्दियो के साथ उनका किसी प्रकार का विश्वासघात नही था, अपितु इसका विशेष कारण था और वह कारण उन्होने मुख्य मुख्य बन्दियो को बता दिया था। उनका हडताल मे सम्मिलित न होने का कारण था घर से आने वाले पत्र की प्रतीक्षा। वर्ष मे केवल एक बार पत्र मिलता था, सावरकर चाहते थे कि कम से कम वह पत्र उनको मिल जाए, जिससे कि उनके अपने परिवार के अतिरिक्त अन्यान्य जानकारियाँ भी उससे प्राप्त हो जाएँ। जो बन्दी हडताल आदि आन्दोलनो मे सम्मिलित होता था उसका पत्र रोक लिया जाता था, इस कारण सावरकर आरम्भ मे हडताल मे सम्मिलित नही हुए और ज्यो ही उनको पत्र मिल गया त्यो ही वे भी हडताल मे सम्मिलित हो गए। ज्यो-ज्यो हडताल आगे बढती गयी त्यो-त्यो बारी को अपना अभूतपूर्व अपमान और चुनौती का अनुभव होने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि साधारण बन्दियो मे भी उसका दबदबा कम होने लगा। इससे वह बौखलाया सा इधर उधर घूमता दिखायी देता था।

बारी ने भांति भांति के प्रतिबन्ध लगाने आरम्भ किए। राजनीतिक बन्दी साधारण बन्दियो से अपनी बातें गुप्त रखने के लिए परस्पर अंग्रेजी मे बोल लिया करते थे। बारी ने अंग्रेजी बोलने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। किन्तु इसका परिणाम उसके लिए बुरा हुआ। कभी-कभी सावरकर आदि उसके व्यग्य का उत्तर उसको अंग्रेजी मे व्यग्य मे करके दिया करते थे। बारी तिलमिलाता तो था किन्तु समझता था कि बात अंग्रेजी मे कही गयी है इस लिए सबके पल्ले नही पडी। किन्तु अब जब उसने अंग्रेजी पर प्रतिबन्ध लगा दिया तो सारी बात हिन्दी मे होने लगी और उस पर फबतियाँ भी हिन्दी मे ही कसी जाने लगी। यहाँ तक कि एक बार उसकी गाली के उत्तर मे एक बन्दी ने उसकी समस्त आयरिश जाति को ही अंग्रेज दाइयों की सन्तान तक कह डाला। बारी तिलमिलाया और उसने उस दिन से अंग्रेजी पर से प्रतिबन्ध हटाने की घोषणा कर दी। किन्तु बन्दियो को तो अस्त्र मिल गया था, उन्होने स्वयं अंग्रेजी का प्रयोग बन्द कर दिया।

हडताल चलती रही और जेल अधिकारी भांति भांति की यातनायें और कष्ट देते रहे। अधिकारियो ने बेंत का दण्ड छोडकर अन्य सब प्रकार के दण्ड दे डाले किन्तु बन्दी टस से मस नहीं हुए। अन्त मे हार कर अधिकारियों ने बेंत लगाने की भी धमकी दे डाली किन्तु उसका भी कोई प्रभाव नही हुआ। विवश अधिकारियो को झुकना पड

गया। उन्होंने आश्वासन दिया कि भविष्य में हल्का काम दिया जाएगा और बाहर भी जाने दिया जाएगा तथा राजनीतिक बन्दियों की श्रेणी एवं सुविधा देने के लिए भारत सरकार से लिखा पढ़ी की जाएगी।

राजनीतिक बन्दी भी यही चाहते थे। वे चाहते थे कि अधिक से अधिक राजनीतिक बन्दियों को बाहर जाने की सुविधा प्राप्त हो। वह सुविधा मिलने लगी तो हड़ताल समाप्त हुई।

हड़ताल तो समाप्त हुई, किन्तु अधिकारियों की कुटिलता समाप्त नहीं हुई। ज्यों ही सब राजनीतिक बन्दियों ने हड़ताल समाप्त की और काम आरम्भ हुआ तो अधिकारियों ने उन राजनीतिक बन्दियों को बाहर जाने से रोक दिया जो हड़ताल की अगुआई कर रहे थे।

इन अगुआई करने वालों में सावरकर के ज्येष्ठ भ्राता बाबाराव सावरकर, वामनराव जोशी, हातोलाल वर्मा और नानी गोपाल प्रमुख थे। अधिकारियों ने इनको बाहर भेजे जाने से इनकार कर दिया। स्वयं सावरकर का बाहर जाने वालों में नाम होना सर्वथा असम्भव था, क्योंकि यह बात अधिकारी भी जानते थे कि सावरकर ही इन सब आन्दोलनों के कर्ता हैं। इस हड़ताल का सारा उत्तरदायित्व तो पहले ही उन पर थोप दिया गया था। बारी समय समय पर उच्चाधिकारियों के कान भरता रहता था कि सावरकर ही बन्दियों को भड़काता है।

सावरकर ने एक दिन एक उच्चाधिकारी से प्रश्न किया, 'आप मुझे स्पष्ट बताइए आप मुझे बाहर क्यों नहीं भेजते ?'

वह अधिकारी पहले तो मौन रहा। कदाचित यथोचित उत्तर गढ़ना चाहता हो। सावरकर ने पुनः उससे अपना प्रश्न दोहराया। इस प्रकार जब सावरकर का आग्रह बढ़ता गया तो उसने कहा, "मुख्य आयुक्त ने आदेश दिया है कि क्योंकि आपका भारत तथा विदेशों में भी क्रान्तिकारी आन्दोलन का भयंकर इतिहास है अतः आपको कदापि बाहर न भेजा जाए।'

सावरकर ने उस अधिकारी को ऐसे अनेक उदाहरण बताए कि जो बन्दी स्वयं इस अण्डमान कारागार से भाग गए थे और उनको पुनः पकड़ कर यहां लाया गया तथा जिन्हें सावरकर की ही भाँति आजीवन कारावास का दण्ड मिला हुआ है, ऐसे अनेक बन्दी हैं जिनको कारावास की एक निश्चित अवधि पूर्ण हो जाने पर बाहर काम पर भेजा जाना है, फिर उन्हें क्यों नहीं भेजा जाता ?

अधिकारी ने कहा, 'भारत सरकार का सख्त आदेश है कि आपको बाहर न भेजा जाए।

तब सावरकर ने अपने बड़े भाई के विषय में पूछा कि उनको बाहर क्यों नहीं भेजा जाता। उनका तो कोई ऐसा भयंकर इतिहास नहीं है। इस प्रश्न का उसके पास कोई उत्तर नहीं था।

कुछ लोगों को साधारण सुविधाएँ देने और कुछ को न देने से बन्दियों में पुनः

असन्तोष पनपने लगा था। सावरकर ने एक दिन एक अधिकारी को कहा, "यदि बन्दियों को दी जाने वाली सुविधाएँ मिलती रहती, उन्हें अमानवीय यातनाएँ न दी जाती तो कारागार का अनुशासन बना रहता और हड़ताल की नौबत न आती।"

कारागार के उस अधिकारी पर इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ।

नानी गोपाल का बलिदान

सावरकर द्वारा जेल अधिकारियों को सावधान किए जाने के उपरान्त भी जब उनके कानों में जूँ नहीं रेंगी और राजनीतिक बन्दियों को बाहर भेजने के सम्बन्ध में उनका व्यवहार वैसा ही रहा तो इससे बन्दियों में पुनः असन्तोष भड़कने लगा। यह असन्तोष पनप ही रहा था कि तभी एक नया विवाद उत्पन्न हो गया।

इन राजनीतिक बन्दियों में एक बन्दी था नानी गोपाल, जिसका उल्लेख हम इससे पूर्व हड़ताल के अगुआ के रूप में कर आये हैं। बंगाल में किसी योरोपियन अधिकारी की कार पर बम फेंकने के आरोप में उसको दण्ड देकर अण्डमान भेज दिया गया था। सोलह वर्ष के उस तरुण क्रान्तिकारी को चौदह वर्ष का कठोर कारावास दिया गया था।

कारागार में सोलह वर्ष के तरुण को कोल्हू में पेलना नियम विरुद्ध था। किन्तु नानी गोपाल को कोल्हू में जोतने का आदेश दिया गया। नानी गोपाल ने इस पर आपत्ति की और काम करने से इनकार कर दिया। तब अधिकारियों ने उसको कठोर यातनाएँ देना आरम्भ किया किन्तु वह किशोर तनिक भी विचलित नहीं हुआ। न तो वह काम करता न कपड़े ही धोता। कपड़े न धोने पर उसे सन या जूट का बोरा पहनने को दिया गया तो उसने कपड़ा ही न पहनने का संकल्प कर लिया। अधिकारियों के आदेश पर उसको बलात् वस्त्र पहनाए गए किन्तु रात्रि में उसने उन सबको फाड़ दिया। उसके परिणामस्वरूप उसको रात्रि के समय भी हथकड़ियों में रखा जाने लगा। ताले लगाए गए। परन्तु न जाने कैसे, उसने रात में ही हथकड़ियाँ भी तोड़ डाली।

उस पर जब आरोपों का अम्बार एकत्रित हो गया तो उसको तनहाई में डालने का दण्ड दिया गया। एकान्त कोठरी में डालने पर उसने कोठरी से बाहर आना ही त्याग दिया। वह स्नान के लिए भी बाहर नहीं आता था। तब अधिकारियों ने दो भंगियों की सहायता से उसे बाहर निकलवा कर स्नान के हौद पर नंगा लिटा दिया। नारियल के छिलकों से उसके शरीर को मलवाया गया तो उसका शरीर लाल हो गया। उससे आग सी निकलने लगी। फिर उसमें पानी डाला गया तो उसे भीषण खुजली होने लगी। न जाने क्या-क्या उसके शरीर पर मला गया था। फिर भी उस धैर्यवान तरुण ने साहस नहीं छोड़ा, सब सहन करता रहा। क्रूर-कठोर पठान वार्डरों से उसको भद्दी से भद्दी गालियाँ दिलवायी गयीं, भाँति भाँति की उसको धमकियाँ दी गयीं, किन्तु नानी पर इन सबका कोई प्रभाव नहीं हुआ।

नानी दिन रात निबन्ध रहने लगा।

नानी गोपाल की माँग थी कि उसको राजनीतिक बन्दी स्वीकार किया जाए। उसका कहना था कि जेल का भोजन अच्छा है अथवा घटिया, यह उसके लिए गौण बात है। मुख्य बात है उसको राजनीतिक बन्दी स्वीकार करना। वह कहता था कि वह चोर डाकू नहीं है, वह राजनीतिक बन्दी है, जेल के अधिकारी सर्वप्रथम इसकी घोषणा करें। अपने इसी अधिकार के लिए वह संघर्ष कर रहा था।

जेल के अधिकारी आकर अधिकारपूर्ण भाषा में उसको समझाने का यत्न करते, किन्तु नानी गोपाल पर इसका कोई प्रभाव न होता। वे यहाँ तक कहते कि वह संघर्ष करता हुआ भले ही मर जाए किन्तु उसको उसका अधिकार नहीं मिल सकता। नानी इससे भी नहीं डरा। तब बारी ने सुझाव दिया कि उसको बेंत लगाकर सीधा किया जाए। बारी साधारण बन्दियों को इसी प्रकार सीधा करता आया था। नानी को बताया गया तो उसने कहा, "बेंत खाना स्वीकार है, किन्तु झुकना नहीं।"

अन्त में जेल अधिकारी ने उसको बेंत की सजा देना ही उपयुक्त समझा। बातों बातों में बारी ने इसकी चर्चा सावरकर के सम्मुख की तो उन्होंने उसे चेतावनी दी कि यदि नानी गोपाल पर बेंत पड़े तो सारे राजनीतिक बन्दी चौंक उठेंगे। वे अपनी पूरी शक्ति के साथ तुम लोगों पर टूट पड़ेंगे। इस प्रकार जेल में होने वाले रक्तपात को वह टाल नहीं पाएगा।

बारी ने सावरकर की चेतावनी सुनी, पहले तो वह हँसा किन्तु फिर बिना कुछ कहे गम्भीर हो कर वहाँ से चला गया।

नानी गोपाल को बेंत लगाने का आदेश दे दिया गया। और उससे पहले सब राजनीतिक बन्दियों को कोठरियों में बन्द कर दिया गया, जिससे कि कोई किसी प्रकार का दंगा न कर सके। इस प्रकार सारे बन्दी अपने-अपने कोठरों में बन्द नानी गोपाल पर पड़ने वाले बेंतों से उसकी चीख पुकार सुनने के लिए कान खड़े किए हुए थे। तभी एक वार्डर सावरकर की कोठरी के पास आया और धीरे से बोला, "नानी गोपाल को जेल से बाहर छोड़ दिया गया है।

बारी और अन्य अधिकारी समझ गए थे कि नानी को बेंत लगाने से कहीं स्थिति और अधिक भयावह न हो जाए। उस रक्तपात को टालने के लिए उसको बाहर की किसी सड़ी-गली जेल में डाल दिया था। नानी ने वहाँ पर भूख-हड़ताल आरम्भ कर दी। कारागार में अधिकारियों ने तीन चार दिन तक तो उसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया, किन्तु जब दशा बिगड़ने लगी तो उसको पुनः उसी कारागार में लाकर किसी कोठरी में डाल दिया और उसको नाक से दूध पिलाया जाने लगा।

कारागार में बम

सावरकर स्वयं को बाहर भेजे जाने के विषय में निरन्तर आवेदन करते रहते थे, किन्तु कभी सन्तोषजनक उत्तर नहीं आया। उधर जेल से बाहर जन-जागृति

अभियान आरम्भ हो गया था। बाहर पहुँच कर राजनीतिक बन्दी जहा जहाँ भी जा-पाते वहाँ तक जाते और वहाँ मिलने वाला से भारत की दुर्दशा के विषय मे बातें करते। इस प्रकार उनसे वार्तालाप के माध्यम से वे किसी न-किसी प्रकार भारत के कुछ-कुछ समाचार पाने लगे थे। वहाँ जन जागरण के लिए हस्तलिखित पत्र निकलने लगे।

कुछ दिनो बाद बन्दियो ने वहाँ बसे उन स्वतन्त्र लोगो से सम्पर्क करना आरम्भ कर दिया जो अपना कारावास का जीवन पूर्ण कर वही अण्डमान मे ही बस गए थे। किन्तु यह बात अधिकारियो से बहुत दीर्घ काल के लिए छिपी नही रह सकी। उन्हे इससे भय उत्पन्न होने लगा। इन्दुभूषण का फांसी लगाना, उल्हासकर दत्त का पागल हो जाना आदि घटनाएँ जब भारत के पत्रो मे प्रकाशित हुई तो अण्डमान के जेल अधिकारियो मे भी खलबली मचने लगी। किन्तु जब बन्दियो को पता चलता कि भारत मे अण्डमान की खबरें प्रकाशित होने लगी है तो उनको बडी प्रसन्नता होती थी। अधिकारियो मे यह चर्चा होने लगी कि ये समाचार भारत के पत्रो तक पहुँचते किस प्रकार हैं ? किन्तु जब उनको इन सूत्रो का पता नही लगता तो वे बौखला जाते थे।

इसी बीच सावरकर को उनके बाहर भेजे जाने वाले आवेदनो का उत्तर मिला कि उनको केवल सोमवार के दिन एक दिन के लिए बाहर भेजा जाएगा। सावरकर को इससे प्रसन्नता हुई। दीवारो पर जो-जो कविताए लिखी थी उनको कण्ठस्थ करने लगे, जिससे कि बाहर जाकर अपने साथियो को सुना सकें। इस प्रकार वे उत्सुकता से सोमवार की प्रतीक्षा करने लगे। सोमवार आया और चला भी गया। सावरकर प्रतीक्षा करते रह गए। तीसरे दिन जब पर्यवेक्षक आया तो सावरकर ने उससे उनके बाहर न भेजे जाने का कारण पूछा। उसने कहा, "मुख्य आयुक्त रगून गए हैं। उनके वहाँ से लौटने पर इस विषय पर अन्तिम निर्णय होगा।"

मुख्य आयुक्त रगून जाकर राज्यपाल से मिल कर जब लौटा तो उसके लौटते ही कारागार मे राजनीतिक बन्दियो की धर-पकड आरम्भ हो गयी। उन सब की तलाशियाँ ली गयी। कुछ को हथकडियाँ पहनायी गयी तो कुछ को एकान्त कोठरी मे डाल दिया गया। इस प्रकार एक बार फिर यातनाओ का दौर आरम्भ हो गया। इतना ही नही अपितु साधारण बन्दियो तक मे आतंक छा गया था। टडैल और जमादार भी इस तलाशी से नही बच पाए थे।

समस्त अण्डमान मे भय और आतंक का वातावरण छा गया। बहुत खोज-बीन करने पर विदित हुआ कि राजनीतिक बन्दियो द्वारा बम बनाकर अण्डमान से भाग निकलने के भीषण षडयन्त्र का रहस्योद्घाटन हो जाने से यह तलाशियाँ ली जा रही हैं और सजाएँ दी जा रही हैं।

यह विदित होते ही कारागार मे भाँति-भाँति की अफवाह फैलने लगी। कोई कहता वहाँ बम मिला तो कोई कहता यहाँ बम मिला। कोई कहता किसी का ऐसा पत्र पकडा गया है जिसमे एक नाव भर कर बम लाने के लिए लिखा गया था। किन्तु इन

तलाशियों में अधिकारियों के हाथों ऐसी कोई भी वस्तु नहीं लगी। बहुत बाद में पता चला कि लालमोहन नामक एक बंगाली वार्डर ने अपने अधिकारियों को प्रसन्न करने के लिए यह निराधार साजिश की थी। उसको इसका दण्ड भुगतना पड़ा।

अब अधिकारियों को बन्दियों को परेशान करने का बहाना मिल गया। केवल इस अफवाह के ही आधार पर उन्होंने राजनीतिक बन्दियों का बाहर जाना बंद कर दिया। उन्होंने कह दिया कि भारत सरकार का कड़ा आदेश है कि इन पर कड़ी नज़र रखो। बाहर या तो सजा पूर्ण होने के बाद ही जा सकोगे या फिर मरने के बाद।

इतना ही नहीं राजनीतिक बन्दियों पर अत्याचारों और यातनाओं की मात्रा बढ़ने लगी। इससे बन्दियों की मानसिक स्थिति बिगड़ती जाती थी।

अण्डमान के राजनीतिक बन्दियों के उत्पीड़न के समाचार भारत के समाचार पत्रों में जब प्रकाशित हो गए तो कौंसिल में भी इस विषय पर चर्चा होने लगी। उसका परिणाम निकला। अण्डमान कारागार के निरीक्षण के लिए ब्रिटिश सरकार में होम मैम्बर सर रेजिनाल्ड क्रेडाक को अण्डमान भेजने का निश्चय किया गया।

इसप्रभ होम मैम्बर

यह सन १९१३ की नवम्बर मास की घटना है।

होम मैम्बर के अण्डमान आने की सूचना भी अण्डमान में बन्दियों को गुप्त रूप से प्राप्त हो गयी थी। जब बन्दियों ने होम मैम्बर से मिलने की माँग की तो अधिकारियों ने उनसे पूछा "आपको यह सूचना किसने दी कि होम मैम्बर आ रहे हैं?" इसका उनको क्या उत्तर मिलता?

उधर बन्दियों ने निश्चय कर लिया था कि उन्हें होम मैम्बर से नहीं मिलाया गया तो वे उनके आगमन पर अपनी कोठरियों से ही ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर उनका ध्यान आकृष्ट करने का यत्न करेंगे।

गृह सदस्य जब अण्डमान आया तो कुछ राजबन्दियों से उसको मिलवाया गया। किन्तु उसका व्यवहार अपमानजनक था। उसने किसी से कहा, 'तुम तो सरकार के शत्रु हो तुम्हें मृत्यु दण्ड देना ही उचित था।" किसी को उसने कहा, "बाहर जाने का कभी नाम मत लेना तुम राजद्रोही और षडयन्त्रकारी हो।"

१६ नवम्बर १९१३ को सावरकर के साथ गृह सदस्य की जो भेंट-वार्ता हुई उसका विवरण सावरकर ने 'माझी जन्म ठेप' में इस प्रकार दिया है—

क्रेडाक—सावरकर! क्या दुर्दशा बना ली है तुमने स्वयं अपने ही हाथों से। मैंने तुम्हारे लेख आदि पढ़े हैं। आपके अथाह ज्ञान और बुद्धि का यदि उचित उपयोग हो सके तो तुम्हें यों ही ऊँची-से-ऊँची सरकारी नौकरी मिल सकती थी, किन्तु न जाने क्यों आपने इस दिशा को अपनाया है।

सावरकर—आपकी सहानुभूति के लिए धन्यवाद। किन्तु मेरी इस दुर्दशा को समाप्त करना तो आप लोगों के ही हाथों में है। मुझे विदित हुआ है कि गोखले

का अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव अब विधानमण्डल के सम्मुख है। यदि मेरे देश को उस प्रकार के अवसर सुलभ करा दिए जाएँ और उन्हे प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया जाए तो न केवल मैं अपितु समस्त क्रांतिकारी शान्ति के मार्ग पर सहर्ष चलने के लिए उद्यत हो जाएँगे।

क्रडाक—आपको यह किस प्रकार पता चला ? क्या आपको यह भी पता है कि इस समय आपके साथी और आपके सहायक कहा हैं ?

सावरकर—मैं कैसे बता सकता हू ? मैं तो यहा एकान्त कोठरी मे बन्द हूँ। फिर भी हम एक दूसरे के विचारो को जानते हैं। जब शान्ति से कार्य सम्पन्न हो सकता हो तो अशान्ति का मार्ग अपनाना अपराध है। जब मैंने क्रान्तिकारी आन्दोलन मे कार्य करना आरम्भ किया था तो मेरे विचार ऐसे ही थे। यही उनके भी विचार थे। हो सकता है कि वे भी अब मेरी ही भाति सोचते हो।

क्रडाक—नही बिलकुल नही। वे तो आज भी तुम्हारे नाम पर भारत और अमेरिका तक मे युद्ध का निनाद करने लगे है।

सावरकर—यह तो मैं आपके मुख से सुन रहा हूँ। किन्तु कारागार मे रहते हुए मैं उनको अपने नाम का उपयोग करने से किस प्रकार रोक सकता हूँ ?

क्रडाक—इसकी सम्भावना पर हम विचार कर सकते हैं, यदि आप उनको अपने वर्तमान दृष्टिकोण के विषय मे लिखने के लिए उद्यत हो तो ?

सावरकर—क्यो नही, मुझे इसमे प्रसन्नता होगी। किन्तु वह पत्र मुझे स्वतन्त्र रूप से लिखने दिया जाए, अन्यथा उसका कोई उपयोग नही हो पाएगा।

क्रडाक—किन्तु पत्र निश्चय ही हमारे माध्यम से जाना चाहिए।

सावरकर—तब तो वे इसका यह अभिप्राय लेंगे कि वह पत्र मुझसे बलात लिखवाया गया है।

क्रडाक—हम स्वतन्त्र पत्र भेजने की आज्ञा नही दे सकते।

सावरकर—तब मैं विवश हू।

क्रडाक—अच्छा, आपकी शिकायतें क्या हैं ?

सावरकर ने ज्यो ही कारागार मे राजनीतिक बन्दियों को दिए जाने वाले कष्टो के विषय मे बताना आरम्भ किया था कि मुख्य आयुक्त बीच मे ही बोल पड़ा, "परन्तु तुम राजनीतिक बन्दियो ने भयंकर स्थिति उत्पन्न कर दी थी। यदि तुम लोग रूस के अधिकार मे होते तो वह तुमको अब तक या तो साइबेरिया भेज देता या तुमको जीवित ही गोली मार कर समाप्त कर देता।" अपनी बात समाप्त करते हुए उसने कहा, "यह तो तुम अपना सौभाग्य समझो कि ब्रिटिश सरकार ने तुम्हारे साथ उस प्रकार की क्रूरता का व्यवहार नही किया।"

सावरकर—यदि भारत पर रूस का राज होता तो वे हमे शस्त्र विहीन नही करते। साइबेरिया के लोगो मे ही आज वहाँ अधिकारी और सैनिक सेनापति हैं। यदि भारतवासियो को शस्त्र रखना सम्भव हो पाता तो जिस प्रकार

साम्राज्य को ध्वस्त करने के लिए काय किया था वही कहानी इस बार भी दोहराई जाती।

ऋडाक—तो क्या, यदि तुमने अपने पुरान हिन्दू राजाओ के प्रति विद्रोह किया होता तो वे तुम्ह हाथियो के परो से रौंदवा देत।

सावरकर—कदाचित वे एसा ही करते। इग्लैंड म भी तो पूव काल म चोर को सडको पर घसीट कर लाया जाता था और फिर उसका सिर काट लिया जाता था। किन्तु अब वहाँ एसा नही होता। यह प्रगति सभी के करने से हुई है यदि विद्रोहिया का हाथी के पैरो तले रौंदवा दिया जाता था तो जब विद्रोहिया की बन आती थी तो वे भी चार्ल्स प्रथम जैसे राजा को फाँसी पर लटका देते थे। समय बदल गया है। दोनो ने अपनी-अपनी काय पद्धति को बदल लिया है। यह प्रगति का सकेत है। तुम ही बताओ तुम क्या किन्ही नियमो के आधार पर नही चल रहे हो। यदि कहो कि नहीं तो हम भी स्वय को उसी भाति ढाल लेंगे।

सावरकर की ऋडाक स एक प्रकार से नोक झोक ही हुई थी, इसे वार्तालाप नही कहा जा सकता था। यही स्थिति अन्य लोगो के साथ हुई। कुछ को जो उसने अपमानजनक और असभ्यतापूण उत्तर दिए थे, उनका उल्लेख हम इस अध्याय की पहली पक्तिया म कर आए हैं।

ऋडाक अतत था तो अग्रेज और अग्रेज सरकार का ही एक अगभूत प्राणी। वह उसके विपरीत दिशा म किस प्रकार सोच सकता था। तदपि सावरकर न उसको समझा दिया था कि इस स्थिति म भी भारतीय क्रान्तिकारी किसी प्रकार टूटने अथवा झुकने वाले नही है।

इस प्रकार ऋडाक प्रकरण समाप्त हुआ। वह कह गया था कि भारत सरकार उत्तर देगी। या कह कर वह अपनी खाल बचाकर अण्डमान से चला गया। या कहा जाए कि जैसा आया था वसा ही चला गया। यो भी कहा जा सकता है कि कुछ मुह की खाकर ही गया। अस्तु।

तीसरी हडताल

नानी गोपाल को अन्न त्याग किए ४५ दिन हो चुके थे। कुछ राजबन्दियो ने उसके साथ सहानुभूति प्रकट करने के उद्देश्य स स्वय भी भूख हडताल कर दी। इस प्रकार तीसरी हडताल का शुभारम्भ हुआ। कुछ दिन बाद सबने भूख हडताल आरम्भ कर दी और काम करना भी छोड दिया। उन सब पर अभियोग चलाया गया और सबको छ छ मास का बेडियो का दण्ड सुना दिया गया।

नानी गोपाल का शरीर अस्थिपजर मात्र रह गया। किन्तु फिर भी इस हडताल का उसकी भूख हडताल का निमित्त मान कर उसको भी आठ दिन का हथकडिया पर खडे रहन का दण्ड सुना दिया गया। जिन लोगो ने पहल उसकी सहानुभूति म अनशन किया था उनको भी इसी प्रकार सात दिन का दण्ड दिया गया।

सावरकर इस बार भी घर से पत्र आने की प्रतीक्षा मे थे। ज्यो ही उनको ज्ञात हुआ कि घर से पत्र आ गया है। वे भी हडताल मे सम्मिलित हो गए। उनको दो सप्ताह की आडा-बेडी का दण्ड दिया गया और उसके बाद हथकडी और अन्त मे साकल बेडी का दण्ड दिया गया।

सावरकर के पत्र मे अनेक आपत्ति जनक बाते थी, इस कारण उनको वह पत्र दिया नही गया। किन्तु इस अवधि मे एक व्यक्ति ने आकर उनको पत्र का साराश बता दिया था। उस पत्र म सर्वाधिक महत्व की बात यह थी कि सावरकर के विषय मे भारत मे प्रयत्न चल रहा था। पालियामट मे सावरकर और बीरहार्डी के परस्पर सम्बन्धो की चर्चा हुई थी। उस अवसर पर कहा गया था कि आयरलैंड म तो जनता खुले आम विद्रोह की धमकियाँ दती थी, व लोग अपनी सना को एकत्रित कर प्रदशन किया करते थे, फिर भी ब्रिटिश सरकार कुछ नही करती थी। परन्तु सावरकर जसे भारतीय क्रान्तिकारी को मात्र पिस्तौल एकत्रित करने क आराप म पचास वप काले-पानी का दण्ड दे दिया गया है।

सावरकर के लघु भ्राता ने यह सारी बात उस पत्र मे लिख दी थी। किन्तु अण्डमान जेल के अधिकारी समझत थे कि यदि सावरकर को यह पत्र द दिया गया तो पालियामेंट तक म चर्चा होने के समाचार से यहा के राजनीतिक बन्दियो का साहस बढ जाएगा। इसीलिए सावरकर को वह पत्र दिया नही गया।

सावरकर आदि ने इस तीसरी हडताल म तीन मागे रखी थी—१ हमको राजनीतिक बन्दी मानकर प्रथम श्रेणी दी जाए, २ साधारण बन्दी मान कर अण्डमान के अन्य बन्दियो के समान हम बाहर छोड दिया जाए तथा लेखन आदि काम दिए जाएँ और ३ यदि यहा यह सम्भव न हो तो हम भारत के कारागारो मे भेज दिया जाए।

इन मांगो को लेकर हडताल जारी थी। सभी राजनीतिक हडताली बन्दी दिन रात अलग अलग कमरो मे बन्द रखे रहते थे इस कारण परस्पर विचार विनिमय का अवसर था ही नही। शायद इसी कारण अधिकारियो ने उन सबको अलग-अलग रखा हुआ भी था। परस्पर मिलने पर तो न जाने क्या उपद्रव कर दें, यह भय उनको सदा ही बना रहता था। कठोर नियमो का इस कठोरता से पालन किया जाने लगा था कि खिडकी के सहारे खडे होकर उच्च स्वर से बात करना भी असम्भव था। यदि कोई इसका प्रयत्न करता तो उसको अतिरिक्त दण्ड भुगतना पडता था और कार्यसिद्धि न होने का दुःख अलग होता था।

'जहाँ चाह, वहाँ राह इस कहावत के अनुसार बन्दियो न बेडियो की ध्वनि के माध्यम से परस्पर सन्देश वहन की विधि आविष्कृत कर ली थी। कोठरी क सीखचो स बेडियाँ रगडी जाती। इसम से अक्षर ज्ञान होता। प्रारम्भ मे यह अंग्रेजी का अक्षर ज्ञान कराता था किन्तु बाद मे बाबाराव सावरकर ने उसे हिन्दी मे परिवर्तित करा कर सबक समझने मे सुविधा कर दी थी। इस प्रकार परस्पर हिन्दी म शुद्ध विचार सम्पर्क चलने लगा था।

भारत के 'कैपिटल' पत्र को इस बेतार के तार की भनक मिली तो उसने अपने पत्र में अण्डमान की गतिविधियों पर प्रकाश डालने वाला एक लेख प्रकाशित करते हुए उसमें इस बात का भी उल्लेख कर दिया कि 'गणेश दामोदर सावरकर अण्डमान के बेतार के तार यन्त्र पर नियुक्त थे। इस तार यन्त्र के माध्यम से राजनीतिक बन्दी परस्पर सन्देशों का आदान प्रदान करते थे।'

बारी बहुत परेशान था कि यह सन्देशों का आदान प्रदान परस्पर किस प्रकार हो रहा है? उसके द्वारा नियुक्त पठान तथा बलोच वार्डर या जमादार बेड़ियों की खटखटाखट का अभिप्राय क्या समझें। जब कभी वे इस खटखट के विषय में पूछते, 'यह खट खट क्या लगा रखी है?" तो बन्दी कह देते, 'हम तो बेड़ियों की झनकार पर भजन कर रहे हैं।' तदपि एक वार्डर को कुछ सन्देह-सा हो गया तो उसने अपने चाटुकारिता के स्वभाव से विवश होकर बारी को बता दिया कि 'हो न हो बेड़ियों की इस झनकार में उनके सन्देश छिप रहते हों।'

बारी एक दिन रात के समय चुपचाप सारे बन्दीगृह में घूमता रहा। बेड़ियों की ध्वनि से वह समझ तो गया कि 'बेतार का तार यन्त्र' है। उसने वार्डरों को आज्ञा दी, 'इनको बेड़ी बजाने को मना कर दो।' यह कह कर वह चला गया।

भोजन के समय सब राजबन्दी एक घण्टे के लिए आँगन में एकत्रित होते थे। कोई परस्पर बात न कर ले इस भय से बारी स्वयं उनके मध्य में भूत जैसा खड़ा रहता था। तदपि एक दिन साहस करके नानी गोपाल अंग्रेजी में बोल उठा, 'भाइयो! जन्मना हम सब स्वतन्त्र हैं। परस्पर बोलने का हमारा अधिकार जन्मसिद्ध अधिकार है। देखें, हमारा शत्रु हमारे इस अधिकार को कैसे छीनता है?" नानी गोपाल ने बारी को चुनौती दी थी। उसका वाक्य पूरा होते-होते बारी, मिर्जा खान तथा पठान वार्डरों ने उसे धर दबोचा। उसको कमरे में ले जाकर बन्द कर दिया। कमरे में जाते तक वह जोर-जोर से बोलता रहा। राजबन्दियों के बारी की इस असफलता पर हँसने से बारी क्रोध से नथुने फड़फड़ाने लगा।

मिर्जा खान निकृष्टतम प्राणियों में से था, इसका उल्लेख हम पहले भी कर आये हैं। उसी दिन जब सब अपनी-अपनी कोठरियों में चले गए तो वह सावरकर के पास आ कर कहने लगा, "बड़े बाबू! यह नानी गोपाल आपका सच्चा शिष्य है। किन्तु कोई हिन्दू इतना साहसी नहीं हो सकता। वह तो किसी पठान के बच्चे की तरह है।"

सावरकर उसके व्यंग्य को भली भाँति समझ गए थे। उन्होंने भी उसी स्वर में उत्तर देते हुए खान से कहा 'बड़े जमादार! तुम गलत समझ रहे हो। तुम पठान की सन्तान हो। यदि नानी गोपाल तुम्हारी भाँति पठान की सन्तान होता तो स्वदेश की स्वतन्त्रता के लिए यहाँ जेल में पड़ा हुआ सड़ता नहीं रहता। वह भी तुम्हारी तरह बारी के तलवे चाटता फिरता। परन्तु क्योंकि वह हिन्दू है इसलिए राष्ट्राभिमानी शूर है।'

"जमादार ऐसी भी बात नही कि सब पठान तुम जैसे ही हो। वे भी शूर-वीर होते हैं और मैं उनकी प्रशंसा करता हूँ। परन्तु सभी पठान शूर होते और सभी हिन्दू शूर नही होते, तो हिन्दू तुम्हारा मुसलमान राज किस प्रकार पलट देते ?"

सावरकर का इस प्रकार मुंह तोड उत्तर सुन कर मिर्जाखान ने वहाँ से खिसकने म ही भलाई समझी।

सावरकर के अनशन से जेल के अधिकारी तो परेशान थे ही किन्तु जब नानी गोपाल को भी उनके अनशन का समाचार मिला तो उसे बडा दुख हुआ। कुछ दिनो तक तो यो ही चलता रहा और नानी गोपाल को जब यह निश्चय हो गया कि जब तक वह अन्न ग्रहण नही करेगा तब तक सावरकर भी अन्न ग्रहण नही करेंगे तो उसने अधिकारिया से सावरकर के साथ भेंट वार्ता का आग्रह किया।

अधिकारियो को लगा कि कदाचित इस भेंट वार्ता से कुछ राह निकल आए। अत उन्होने उन दोना की भेंट वार्ता का प्रबन्ध कर दिया। सावरकर ने उस अवसर पर उसको समझाते हुए कहा, "मैं जानता हूँ कि तुम यह अनशन शरीर त्यागने के विचार से कर रहे हो। मरना तो एक दिन हम सबको ही है। किन्तु यदि मरना ही हो तो इस प्रकार स्त्री हठ की भाँति व्यर्थ जीवन की आहुति दे देना उपयुक्त नही। हमे कुछ करके ही मरना चाहिए।"

इस प्रकार बहुत समझाने पर वह अन्न ग्रहण करने के लिए राजी हो गया तो सावरकर और नानी गोपाल दोनो ने ही अन्न ग्रहण किया। यो यह अनशन समाप्त हुआ।

सावरकर प्राय कहा करते थे कि अन्न त्याग कर कायरो की भांति जीवन देना उपयुक्त नही। अन्न तो झपट कर भी लेना पडे तो ले लो। अन्न खा कर शक्तिशाली बनो और कारागार मे दिया जाने वाला काय करना बन्द कर दो। अन्न त्याग नही अपितु काय त्याग करना चाहिए।

धीरे धीरे सभी राजनीतिक बन्दी सावरकर के इस मत से सहमत होने लगे और सबने अन्न ग्रहण करना स्वीकार कर लिया।

बन्दियो की विजय

सावरकर आदि की हडताल तथा अन्याय आन्दोलना का सुपरिणाम अन्तत निकल ही आया। भारत सरकार की ओर से जेल अधिकारियो को आदेश मिला कि राजनीतिक बन्दियो की नई व्यवस्था की जाए।

भारत सरकार के आदेश की प्रमुख बातें थी —

१ राजनीतिक बन्दियो मे जो विशिष्ट अवधि के बन्दी है उन्हें भारत के कारागारो म भेज दिया जाएगा। वहाँ उनको नियमानुसार उनको प्राप्य सुविधाएँ आदि प्राप्त होगी।

मे रखा जाएगा और बाद म यदि उनका व्यवहार ठीक रहा तो उन्हें श्रम से मुक्त कर, उसी द्वीप म बसने के लिए स्वतन्त्र कर दिया जाएगा।

३ कारागार मे राजनीतिक बन्दियो को उच्च श्रेणी का भोजन और वस्त्र दिए जाएँगे और पाँच वर्ष की अवधि पूर्ण होने पर उनका अपना भोजन स्वय बनाने की छूट न दी जाएगी।

सावरकर ने अपनी पुस्तक 'माझी जन्म ठेप' मे इस विषय पर लिखा है—

"सरकार ने कुछ अंशों तक हमारी माँगें मान ली थी। तब हम सबने यही विचार किया कि जो शर्तें स्वीकार कर ली गई है उनको कार्यान्वित कराया जाए तथा अन्य सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए अवसर की प्रतीक्षा की जाए। इस प्रकार अनशन समाप्त करने के कुछ दिन बाद हमने हडताल भी समाप्त कर दी। सब बन्दी पूर्ववत काम करने लगे।

"अवधि प्राप्त बन्दियो को भारत के कारागारो म भेजा जाने लगा। जो बन्दी जाते थे, जाते समय उनको हमने कहा कि वे वहाँ जा कर अण्डमान के कष्टों के विषय मे अधिक से अधिक प्रचार करें। समाचार पत्रो म इन कष्टो के विषय म प्रकाशित करवाएँ। जब-जब देश से यहाँ बन्दी भेजे जाएँ उनके द्वारा देश के समाचार अवश्य भेजे जाएँ।

"अण्डमान से वापस भेजे गए बन्दियो को सरकार ने एक ही कारागार मे न रख कर देश के विभिन्न प्रान्तो के कारागारों म बिखेर दिया। उनके विभिन्न कारागारो मे रहने से अण्डमान मे दिए जाने वाले कष्ट और यातनाओ का चारो ओर स्वत ही सरकार ने प्रचार करने मे सहायता कर दी।

"अवधि प्राप्त बन्दियो के अण्डमान से चले जाने पर अण्डमान म अब बहुत थोडे से आजन्म कारावासीय बन्दी रह गए थे। उनका भी अपना भोजन स्वय बनाने की सुविधा प्राप्त होने के कारण भोजन कुछ अच्छा होने लगा था। कुछ बन्दियो को मुद्रण पुस्तकालय, नक्शे आदि कार्यों पर नियत कर दिया गया था। उन्हें दस पाँच रुपया वेतन भी मिलने लगा था।

राजनीतिक बन्दियो को मिलने वाली इन सब सुविधाओ स सावरकर को वंचित ही रखा गया। तदपि अपने साथी बन्दियो को सुविधा मिलने के समाचार से सावरकर को अत्यन्त प्रसन्नता हुई थी। सावरकर को न लेखन का कार्य दिया गया और न अपना भोजन स्वय बनाने की सुविधा ही दी गयी। वे दोनो भाई वही रस्सा बटने का काम करते थे। कुछ दिनो बाद सावरकर के बडे भाई और उनके साथी नासिक षडयन्त्र काण्ड के अभियोगी वामनराव जोशी को भी मिल कर भोजन बनाने की सुविधा प्राप्त हो गयी थी। किन्तु सावरकर को पहले की ही भाँति इन सब सुविधाओ से वंचित रखा गया था।

बारी जब-जब भी उस ओर आता उसके मुख से यही सुनने को मिलता,

"अशान्ति की सारी जड सावरकर ही हैं। उन पर कडी नजर रखनी चाहिए। उन्हे किसी प्रकार की सुविधा न दी जाए।"

कुछ दिनो बाद कारागार से बन्दियो को बाहर भेजा जाने लगा। वे राजनीतिक बन्दी बाहर जा कर सामान्य बन्दियो मे देश के प्रति, शिक्षा के प्रति, रुचि जागृत करने का कार्य करने लगे। कुछ ही समय मे उन्होंने बन्दी अधिकारियो, व्यापारियो तथा 'स्वतन्त्र' वर्ग के जनों मे भी शिक्षा व देशभक्ति के प्रति रुचि जागत करने मे सफलता पा ली।

अण्डमान मे रहने वाले लोगो को सुविधाएँ देने के लिए भारत से इजीनियर, डाक्टर, न्यायाधीश तथा प्रशासनिक अधिकारी भी वहा भेजे जाने लगे थे। राजनीतिक बन्दी उन तक भी पहुँचे और उनमे भी देशभक्ति जागृत करने मे उनको सफलता मिली। उनमे से अनेक अधिकारी इन बन्दियो की शिक्षा से इतने प्रभावित हुए कि उन्होने समाज सेवा, शिक्षा के प्रचार तथा देशभक्ति का सकल्प ले लिया। अण्डमान मे प्रचार काय के लिए वे अपनी आय का पाच प्रतिशत अंश भी देने लगे। प्रचार काय के लिए कारागार मे एक कोश स्थापित किया गया था, यह अश दान उस कोश मे एकत्रित होने लगा और जो बन्दी वेतन पाने लगे थे वे भी इसमे अश दान करते थे।

शुद्धि अभियान

अण्डमान कारागार मे अँग्रेज अधिकारियो की सत्ता थी। वे सभी अँग्रेज अधिकारी ईसाई मत के मानने वाले थे। भारत पर अधिकार करने से ले कर आज तक मतान्ध ईसाई एव अग्रेज अधिकारी भारतवासियो को अधिकाधिक सख्या मे ईसाई मतावलम्बी बनाने के लिए लोभ, लालच, कामना, प्रताडन, सहायता आदि अनेक प्रकार से मतपरिवतन का काय करते आ रहे हैं। भोले भाले, निधन, प्रताडित, शोपित हिन्दू उनके चगुल मे फँसते भी रहे है।

अण्डमान कारागार की स्थिति इससे सवथा भिन्न थी। वहाँ के अधिकारियो ने कभी इस मत-परिवतन पर ध्यान दिया ही नही, तदपि वहा बडी सख्या मे मत परिवतन वहाँ के पठान, बलोच और अन्य मुसलमान बन्दी हिन्दू बन्दियो को फसा कर किया करते थे।

सावरकर ने 'माझी जन्म ठेप' मे लिखा है कि "अण्डमान मे मैंने अपने १० वष के काल मे ऐसी घटना नही देखी कि हिन्दू बन्दी को लालच या दबाव के बल पर ईसाई धम ग्रहण करने को बाध्य किया गया हो। दूसरी ओर अण्डमान के मुसलमान बन्दी अत्याचारो व उत्पीडन का आश्रय ले कर हिन्दू बन्दियो का धम परिवतन करने मे कोई कसर नही उठा रखते थे। अण्डमान ही नही अपितु हिन्दुस्तान के अधिकतर कारागारो मे मुसलमान बन्दियो, मुसलमान वाडरो तथा जमादारो द्वारा तरह-तरह के हथकण्डो द्वारा हिन्दू बन्दियो का धम परिवतन कर उन्हे मुसलमान बनाने का कुचक्र चलाया जाता रहा है।

"चौदह वर्ष के अपने कारागार के अनुभव के उपरान्त, धर्म परिवर्तन की घटनाओं तथा उन्हें रोकने में स्वयं सक्रिय रहने के कारण किए गए सर्वेक्षण के आधार पर मैं साधिकार यह कह सकता हूँ कि दिल्ली अथवा बम्बई की जामा मस्जिदें उतने हिन्दुओं का धर्मान्तरण नहीं कर सकतीं जितने का कारागार के मुसलमान बन्दी व अधिकारी करा लेते हैं।

"कारागार में इस इस्लामीकरण की कोई भी योजना संगठित रूप से नहीं चलती। न इस योजना के कोई अधिकृत प्रेरक या संचालक ही होते हैं। प्रत्येक मुसलमान को बचपन से ही यह शिक्षा दे दी जाती है कि यदि वह एक हिन्दू को भी मुसलमान बना लेगा तो इस लोक में तो उसकी इस्लामी जगत में धाक जमेगी ही, परलोक में भी तमाम गुनाह माफ हो जाएँगे तथा जन्नत में उपभोग के लिए हूरें मिलेंगी। बाल्यकाल में दी गयी इस संकीर्ण मजहबी शिक्षा को पूरा करने में जेल का प्रत्येक मुसलमान अपनी पूर्ण शक्ति से लग जाता है।"

सावरकर ने अण्डमान कारागार में जाते ही यह अनुभव कर लिया था कि वहाँ वार्डर, जमादार व पेटी अफसर जैसे पदों पर धर्मान्ध, पाप परायण पठान, बलूची व सिन्धी मुसलमानों को नियुक्त किया गया है। विशेष रूप से राजनीतिक बन्दियों की निगरानी के लिए तो जमादार आदि पदों पर मुसलमानों को ही रखने की परिपाटी रही है। ये मुसलमान अधिकारी हिन्दू बन्दियों को अधिकाधिक कष्ट दे कर उनका उत्पीड़न कर, पिटाई ही नहीं अपितु उनके विरुद्ध झूठी शिकायतें कर के उनकी सजा बढ़ाने की धमकियाँ दे कर उन्हें अपमानित करते। बाद में वे ही मुसलमान इन हिन्दू बन्दियों को यह भी आश्वासन देते कि यदि वे मुसलमान बन जाएँ तो उन्हें कष्टों से मुक्ति मिल सकती है।

इस प्रकार के हथकण्डे और कुचक्र चला कर वे कुछ बन्दियों को मुसलमान बनने के लिए राजी कर लेते थे। हर माह एक-दो हिन्दू बन्दियों को भोजन के समय जब सावरकर मुसलमानों की पंक्तियों में बैठा देखते तो उन्हें अपार वेदना होती।

सावरकर ने जब इस कुचक्र को रोकने के लिए वहाँ के हिन्दुओं में चर्चा की तो उन्होंने पाया कि जब इस तरह की बातों में उनकी कोई रुचि ही नहीं है तो फिर उन्हें इससे वेदना होने का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता था। कोई-कोई तो यहाँ तक कह देता 'हमें इन बातों से क्या लेना-देना।'

सावरकर ने जब इस विषय में राजनीतिक बन्दियों से चर्चा की तो उन्होंने पाया कि कारागार के भयंकरतम कष्टों को भोगते भोगते अब वे बहुत श्रान्त हो गए हैं उनमें अब और अधिक जूझने का सामर्थ्य नहीं रहा है। उनमें से भी कुछ बन्दियों ने सावरकर को कहा, "इन क्रूर पठानों से कौन झगड़ा मोल ले? इन धर्मान्धों से व्यर्थ में झगड़ा करने से कोई लाभ नहीं होगा।"

सावरकर सोचते, एक प्रकार से तो उनका यह सोचना भी ठीक ही है। क्योंकि ने कारागार की अवधि में उनको रहना तो उन क्रूर मुसलमान वार्डरों के अधीन

है। अत उनसे झगडा मोल लेने का अभिप्राय हुआ कि अपने लिए यातनाओ को निमन्त्रण देना। लेकिन कुछ बन्दी ऐसे भी थे जो कहते थे "यदि कोई हिन्दू मुसलमान बन गया तो क्या हुआ ?' यहा तक कि उनमे से कुछ ऐसे भी थे जो उन मुसलमान वाडरो से सुख-सुविधा की लालसा मे स्वय ही कह देते 'मैं भी शीघ्र ही मुसलमान बनने की सोच रहा हूँ।'

किन्तु सावरकर जैसा क्रान्तिकारी व्यक्ति कब इन बाधाओ और अडचनो से विचलित होन वाला था। हिन्दुओ को विधर्मी बनाए जाने के दूरगामी घातक परिणामो से चिन्तित होकर उन्होने अण्डमान कारागार के राजनीतिक बन्दियो को प्रेरित करना आरम्भ कर दिया। यह सन १९१३ की बात है। सावरकर को अण्डमान कारागार मे पहुँचे दो वष ही हुए थे तब उन्हाने पठान द्वारा एक हिन्दू बन्दी को मुसलमान बनाए जाने के विरुद्ध पहला मामला अधिकारियो के समक्ष दज कराया था।

सावरकर को जब विदित हुआ कि एक हिन्दू बालक को मुसलमान बनाने की योजना है तो उन्होंने एक आवेदन पत्र तैयार कर लिया। जब सुपरिटेंडेंट उस ओर को आया तो सावरकर ने चिल्लाकर कहा, "अप्लीकेशन सर।"

सुपरिटेंडेंट ने प्रायना पत्र लिए बिना कह दिया, "अपने विषय मे तुम्ह जो कुछ कहना है कहो, तुम्हे दूसरो के मामलो मे पडने की आवश्यकता नही।"

सावरकर ने बडे ही व्यग्य भाव से उससे कहा, "क्या आपन उन अन्य बन्दियो तथा पठानो को भी, जो हमारे पत्रो को खाल लेते हैं, अथवा जो हम भाति-भाति से यातनाएँ देने मे कभी नही चूकत, कहा कि वे भी अपना काम देखें, दूसरो के कामो म अपनी टाग न अडाएँ ?"

सावरकर न दढ शब्दों म कहा "मैं तो शिकायत करूँगा ही चाहे आप सुनें या न सुनें।"

यह सुन कर सुपरिटेंडेंट कुछ ढीला पड गया। तब सावरकर ने उसको उस दिन होने वाले धमपरिवतन के विषय मे सारी बात विस्तार मे बतायी। सुपरिटेंडेंट कहने लगा, "इस प्रकार की शिकायत करने की अपेक्षा हिन्दू भी मुसलमानो को हिन्दू क्यो नही बनाते ?"

सावरकर को माग मिल गया। उन्हान बडे जोर से यह अभियान आरम्भ कर दिया और १९२० २२ तक जब तक वे वहाँ रहे उन्होंने अपने इस अभियान का जारी रखा। पठान गुण्डो ने चिढ कर कई बार उन पर आक्रमण भी किए, यहाँ तक कि उनकी हत्या का भी प्रयास किया गया। इस बात को लेकर कारागार मे अनेक बार दंगे भी हुए। सावरकर के बडे भाई पर भी पठानो ने आक्रमण किया, एक दिन तो उन्ह घायल ही कर दिया था। फिर भी उनका अभियान रुका नही।

इसके परिणामस्वरूप मुसलमाना का धम परिवतन का काय कुछ धीमा पडन लगा तो उसके बाद सावरकर ने विधर्मी बने अनेक हिन्दू बन्दिया को पुन अपन धम म

वापस ले लिया । किन्तु धर्मांध पठान कब मानने वाले थे । वे बंदियों को अधिकाधिक प्रताडित करने लगे ।

सावरकर को यह सहन करना कठिन हो गया । एक दिन उन्होंने बारी से कहा कि यदि पठानों ने इस प्रकार का उत्पीडन जारी रखा तो इससे कारागार का वातावरण बिगडेगा । बारी यद्यपि इन सब बातों को जानता था । उसने कहा, "दूसरे वार्ड की ये सब बातें आपको किसने बतायीं ?"

सावरकर बोले, "मुझे किसी भी प्रकार विदित हुई, किन्तु है तो ये सब बातें सच ही न ?"

बारी बोला, "जाने दो, इन बिगडे लौंडों को । तुम बेकार के झंझट में क्यों पडते हो ?'

सावरकर ने दूसरे दिन सुपरिंटेंडंट से बात की तो उसने भी कुछ इसी प्रकार कहा, "ऐसे दुष्ट अपराधी, पतित जन हिंदू बने रहें या मुसलमान बन जाएँ इससे क्या अंतर पडता है । और फिर यदि कोई स्वयं मुसलमान बनना चाहे तो हम उसको किस प्रकार रोक सकते हैं ?"

सावरकर ने भी कहा, "यदि कोई स्वेच्छा से मुसलमान बनना चाहे तो मुझे भी उसमें कोई आपत्ति नहीं है । परंतु यहाँ तो मुसलमान वार्डर और जमादार हिन्दू बंदियों को कष्टकारक काम दे कर, उसे डाँट डपट कर, लालच देकर मुसलमान बनने के लिए विवश करते हैं । ऐसे जबरदस्ती से किए गए धर्मांतरण को हम सहन नहीं कर सकते ।"

सुपरिंटेंडेंट बोला, 'इस प्रकार कोई जबरदस्ती करते पकडा गया तो उसे अवश्य दण्ड दिया जाएगा ।"

यह आश्वासन दे कर वह चला गया ।

सुपरिंटेंडेंट से इस वार्तालाप के माध्यम से सावरकर ने बारी तथा मिर्जाखान के विषय में भी बहुत कुछ कह दिया था । इससे वे दोनों उन पर क्रोधित रहने लगे ।

यह संयोग की ही बात थी कि दूसरे दिन इस प्रकार का बल प्रयोग करता एक पठान बंदी पकडा गया । किंतु पकडने वाला हिंदू वार्डर था । सावरकर ने कहा कि वह उसको जेल अधिकारी के पास ले जाए । किंतु हिंदू वार्डर डर गया और कहने लगा, 'यदि मैंने इसे रंगे हाथों पकड लिया तो मिर्जा खान मुझे बहुत परेशान करेगा ।'

विवश होकर सावरकर ने हल्ला मचाया । पेटी अफसर आ गया । पेटी अफसर को सावरकर ने कहा कि उस बंदी को इस पठान ने तमाखू का लालच दिया है, चाहो तो तुम उसकी तलाशी ले लो । पेटी अफसर ने तलाशी ली तो उसके पास से तमाखू निकल आया । हिंदू बन्दी ने बता दिया कि यह तमाखू उसको मुसलमान वार्डर ने दिया था । पेटी अफसर ने सावरकर को तो कोठरी में बन्द कर दिया और उस बंदी

को जेलर के पास ले चलने को कह वहाँ से चल दिया। किंतु मिर्जा खान की मिली भगत से उस मामले पर पर्दा डाल दिया गया, उसे आगे बढाया ही नही गया। शाम को सावरकर ने जब बारी से उसके विषय मे पूछा तो उसने साफ कह दिया, "यहाँ के मामलो का अधिकारी मैं हूँ तुम नही। तुम्हें दूसरो के मामले मे हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नही है। यदि किया तो व्यर्थ मे परेशानी मोल लोगे।"

सावरकर ने उससे कहा, "जब अन्य बन्दियो द्वारा राजनीतिक बन्दियो के परस्पर बात करने की शिकायत पर तुम कार्यवाही करते हो तो तुमने मेरी शिकायत पर कार्यवाही क्यो नही की? धर्म पर डाले जा रहे डाके की शिकायतो को तुमको गम्भीरता से लेना ही होगा।"

बारी ने जब सन्तोषजनक उत्तर नही दिया तो सावरकर ने सुपरिंटेंडेंट तक शिकायत पहुँचायी। उस समय भी उन्होंने यही कहा कि मुसलमान वाडर ने एक हिन्दू लडके को तमाखू का लालच दिया और उस लडके को रंगे हाथ पकडवा कर उसकी तलाशी मे तमाखू मिला तथा उस लडके ने भी स्वीकार किया कि उसका यह तमाखू अमुक वाडर ने दी थी, यह सब कुछ बारी साहब के सम्मुख हुआ किन्तु उन्होंने उस मुसलमान वाडर पर अभियोग नही चलाया, क्यो?

यह सुनकर सुपरिंटेंडेंट को क्रोध आ गया उन्होंने बारी से कहा, "कहाँ हैं वह वाडर?"

तभी बारी ने मिर्जा खान को इशारा किया और वह सामने आ गया। उसने कहा, "हजूर! इसी बाबू ने लडके के कपडे मे तमाखू रखी थी जिससे कि मुसलमान वाडर को झूठा फँसाया जा सके।"

सुपरिंटेंडेंट ने उस ब्राह्मण लडके को पेश करवाया। उससे पूछा गया तो उसने वही बात दोहरा दी जो बारी को कही थी। और जब उससे बहस मे पूछा गया कि बाबू ने रखी थी उसने साफ इन्कार कर दिया। इससे मिर्जाखान का चेहरा उतर गया, उसे बहुत फटकार पडी।

उसके बाद सुपरिंटेंडेंट ने इस धर्मान्तरण के विषय मे सावरकर से विचार-विमर्श किया। सावरकर ने उसको समझाया कि यदि कोई उस धर्म की बातो को समझ कर उसको स्वीकार करता है तो वह इस विषय मे नियमानुसार अधिकारियो को प्रार्थना करे और फिर अधिकारी जाँच करें और यदि ठीक पाएँ तो उसको धर्मान्तरित होने दें, अन्यथा किसी के दबाव मे आकर या किसी लोभ लालच मे यह कृत्य ठीक नही है। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति अवयस्क है उसका भी धर्म परिवर्तन नहीं होना चाहिए। अन्त मे सावरकर ने यही कहा कि कारागार मे तो इस पर पूर्ण प्रतिबन्ध ही रहना चाहिए।

सुपरिंटेंडेंट को यह सुझाव स्वीकार नही था। उसका कहना था कि यदि कोई स्वेच्छा से करता हो तो उसको रोकने का क्या औचित्य? हाँ, लालच और दबाव मे मैं किसी हिन्दू का धर्मान्तरण नहीं होने दूँगा।

बारी को क्रोध आ गया और वह बीच में ही बोल पड़ा, "ऐसा करना भी असम्भव है, क्योंकि सरकार ने सभी को धर्मस्वातन्त्र्य का अधिकार दिया हुआ है।"

सावरकर ने उसकी पुष्टि करते हुए कहा कि वे भी तो धर्म स्वातन्त्र्य की ही बात कह रहे हैं। किन्तु यहाँ मुसलमानों के साथ पक्षपात किया जाता है और हिन्दुओं को दबाया जाता है। सभी वार्डर और पेटी अफसर मुसलमान होने के कारण वे जब चाहें तब कष्ट और यातनाएँ दे कर उन्हें विवश कर देते हैं। इसके अतिरिक्त बारी साहब की मुसलमान वार्डरों पर कृपा दृष्टि रहती है, वे सदा उनका पक्ष लेते हैं, भले ही वह गलत क्यों न हो। अच्छा तो यही होगा कि कारागार को कारागार ही रहने दिया जाए और यहाँ का अनुशासन बने रहने में बारी विशेष ध्यान दें।

सुपरिंटेंडेंट ने सावरकर से कहा, "तुम हिन्दू लोग मुसलमानों को हिन्दू धर्म में दीक्षित क्यों नहीं कर लेते?"

सावरकर एक बार तो निरुत्तर में हो गए। फिर कहने लगे, "हिन्दू धर्म किसी को बल या छल पूर्वक अपने समाज में मिलाने में विश्वास नहीं करता। वह धार्मिक स्वाधीनता का पक्ष पोषक है। किन्तु बलात हिन्दू से मुसलमान बनाए गए व्यक्ति का वह संरक्षण करने में भी नहीं चूकता। उसको जुझारू रूप इसी कारण धारण करना पड़ता है।"

सावरकर ने इस विषय पर अनेक व्यक्तियों के, जैसे भगिनी निवेदिता आदि जिन्होंने स्वेच्छया हिन्दुत्व को न केवल स्वीकार किया अपितु उसकी प्रशंसा में बहुत कुछ लिखा भी, उदाहरण दिए तथा अनेक पुस्तकों का भी उल्लेख किया।

सुपरिंटेंडेंट ने कहा, "मैं इन बातों पर विचार करूँगा, किन्तु वह ब्राह्मण लड़का आज से हिन्दू बन्दियों की पंक्ति में बैठ कर ही भोजन करेगा।" और फिर मिर्जा खान की ओर घूम कर कहा, "यदि किसी मुसलमान ने इसमें बाधा डाली तो देख लेना।

मिर्जा खान ने साहब को घुटनों तक झुक कर सलाम किया।

उस ब्राह्मण लड़के का प्रत्यावर्तन तो हो गया किन्तु इसके लिए सावरकर को हिन्दू बन्दियों का भी बहुत समझाना पड़ा। सहसा कोई उसे पुनः हिन्दू पंक्ति में लेने के लिए उद्यत ही नहीं होता था। अन्ततः बारी और मिर्जा खान का यह दाँव असफल सिद्ध हो ही गया। सावरकर को इसकी बड़ी प्रसन्नता थी।

सावरकर के इस कृत्य का समाचार सारे अण्डमान में फैल गया। कारागार में उत्तरी भारत के अनेक ऐसे बन्दी थे जो आर्य समाज से प्रभावित थे। वे इस कार्य में उन्हें सहायता देने लगे। सावरकर के अण्डमान पहुँचने से कुछ ही पूर्व ऐसे लोगों ने आर्य समाज की एक शाखा भी स्थापित कर ली थी। किन्तु उनमें प्रचार और संगठित आन्दोलन करने की क्षमता नहीं थी। ऐसे समय में सावरकर का यह शुद्धिकरण का प्रयत्न उनके लिए उत्साहवर्द्धक सिद्ध हुआ। इतना ही नहीं कारागार में जो हिन्दू बन्दी

अथवा वाडर मुसलमान बनाए गए बंदियो को पुन हिंदू बनाए जाने के विरोधी थे, शनै शनै उन पर भी प्रभाव होने लगा और फिर वे भी इस आंदोलन मे बढ चढ कर भाग लेने लगे।

तत्कालीन सीलोन, अब श्रीलका, से तीन ईसाई बंदी भी अण्डमान मे काले पानी का दण्ड भोग रहे थे। उनमे एक ईसाई पहले हिंदू था। उसके विषय मे जब शुद्धि-कर्त्ताओ को विदित हुआ तो सावरकर को बताया गया। सावरकर ने उसको हिंदुत्व की ओर पुन प्रेरित किया और एक दिन तुलसीदल खिलाकर उसको पुन हिंदू बना लिया गया। कारागार मे ईसाई बन्दियो को प्रार्थना कराने आने वाले आदमी ने इसका हलका सा ही विरोध किया और जब सुपरिंटेंडेंट ने उसको स्थिति समझा दी तो मामला शांत हो गया।

किंतु शुद्धिकरण का यह विषय यो ही नही चलता रहा। मुसलमान तो सावरकर से खार खाए बैठे थे, व किसी न किसी प्रकार उनको वश मे करने के लिए मानो कृतसकल्प हो, इस प्रकार कार्य कर रहे थे। मुसलमानो के किसी कुचक्र का जब सावरकर के ज्येष्ठ भ्राता गणेश सावरकर को पता चला तो उन्होने हिंदू मुशी से कह कर उस हिंदू लडके का कमरा बदलवा दिया जिसे मुसलमान बनाने का षडयन्त्र किया गया था। इससे वह मुसलमान चिढ गया और जब गणेश सावरकर स्नान करके लौट रहे थे तो उस मुसलमान गुण्डे ने उनकी नाक पर जोर से घूसा मार दिया। गणेश बेहोश होकर गिर पडे और उनकी नाक से खून बहने लगा। हिंदू बंदियों ने उस मुसलमान हमलावर को रोककर दबोच लिया। किंतु बारी ने उसका भी पक्ष लिया और कहा कि इस सावरकर को भी ऐसा ही पाठ पढाया जाना चाहिए। किन्तु उस मुसलमान को दण्डित होने से वह बचा नही सका।

अण्डमान कारागार के हिंदू अब सजग हो गए थे। उनका सगठन बन गया था। यह सब सावरकर के प्रयत्न से ही सम्भव हो पाया था। कुछ वर्ष बाद एक ऐसा भी समय आया जब कारागार मे हिंदू को मुसलमान बनाने पर रोक लगा दी गयी। जब जनगणना का कार्य आरम्भ हुआ तो उसमे उन बंदियो ने जो हिंदुत्ववादी हो गए थे तथा अण्डमान मे रहने वाले आर्य समाजियो ने बढचढ कर भाग लिया और सब को हिंदू लिखाने के लिए प्रेरित किया।

अण्डमान के कारागार और अण्डमान द्वीप मे भी अब हिन्दू की अपनी पहचान बन गयी थी। कन्या पाठशाला म हिंदी का पठन-पाठन पहले ही आरम्भ हो गया था। इस प्रकार सावरकर ने हिंदुत्व के सरक्षण और सवर्द्धन मे जो कार्य वहाँ किया वह स्वर्णाक्षरो मे अंकित करने योग्य था। किन्तु 'सेक्युलर' भारत म इसका मूल्यांकन कहाँ सम्भव है ?

आर्य साम्राज्य की कल्पना

अगस्त १९१४ मे प्रथम विश्व युद्ध आरम्भ हुआ। सावरकर उस समय अण्डमान

कारागार मे थे। इस युद्ध की घोषणा तो सावरकर ने अपने लन्दन प्रवास के मध्य ही कर दी थी किन्तु दुर्भाग्य की बात यही थी कि अब जब विश्वयुद्ध आरम्भ हो गया था तो उसका अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए उपयोग करने के लिए सावरकर स्वतन्त्र नहीं थे। यह वह समय था कि जब ब्रिटिश सरकार सकट मे थी और उसकी इस सकटापन्नावस्था मे भारतवासी लाभ उठा सकते थे। तिलक ने भारतीयो के सैनिकीकरण का इसी दृष्टि से समर्थन किया था। किन्तु गाधी ने सब किए-कराए पर पानी फेर दिया। उन्होने बिना किसी शर्त के भारतीय सैनिको को न केवल अंग्रेजो के पक्ष मे लडने के लिए प्रोत्साहित किया अपितु वे घूम घूमकर भारतीय नागरिको को अंग्रेजो की रक्षा के लिए कट मरने के लिए सेना म भरती कराने के काय मे जुट गए। यह उनकी ब्रिटिश भक्ति थी। गांधी ने 'बोयर' युद्ध के समय भी ब्रिटिश सरकार की सहायता की थी और सरकार ने उनकी निष्ठा का पुरस्कार भी उन्ह दिया था।

भारतीय क्रान्तिकारियो के लिए यह अवसर था। योरोप तथा अमेरिका म जो जो क्रान्तिकारी थे, उन्होने इस समय विद्रोह करना ही एकमात्र कृत्य समझा और इसके लिए लाला हरदयाल, वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, दोनो अभिनव भारत के सदस्य थे, तथा राजा महेन्द्र प्रताप, जमन सरकार से वार्तालाप करने मे व्यस्त थ। डा० चम्पकराम पिल्लई, लाला हरदयाल और चट्टोपाध्याय के नेतृत्व म जमन वार कैबिनट की सहायता से जमनी मे इण्डियन इडिपेंडेंट लीग की बर्लिन कमेटी की स्थापना कर दी गई। जमनी के कैसर और टर्की के सुलतान ने भारतीय राजकुमारो को ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह करन के लिए दबाव डाला।

बर्लिन कमेटी ने पजाब की गदर पार्टी के लिए मुस्लिम देशो और तिब्बत के माग से अगणित मात्रा मे शस्त्रास्त्र भेजने की योजना बनाई। जिससे कि पजाब की पार्टी उन शस्त्रास्त्रो को बगाल की पार्टी के पास पहुँचाए और बगाल की पार्टी ब्रिटिश भारत के पूर्वी सीमा पर आक्रमण कर दे।

इस योजना का एक अग यह भी था कि अण्डमान की राजधानी पोर्ट ब्लेयर पर आक्रमण करके वहाँ के कारागार से सावरकर को मुक्त करके लाया जाए। सेडिशन कमेटी की रिपोर्ट के पृष्ठ १२४ पर इस विषय मे लिखा है कि अण्डमान के लिए एक स्टीमर भेजने की योजना बनाई गयी जिसम शस्त्रास्त्रो का अम्बार हो। इस प्रकार यह स्टीमर अण्डमान पहुँच कर पोर्ट ब्लेयर पर आक्रमण कर दे और सावरकर आदि सभी क्रान्तिकारियो को मुक्त कर जमनी म ले आए।

इस सम्बन्ध म सर जौन कमिंग द्वारा सपादित 'पोलिटिकल इंडिया' के पृष्ठ २३३ पर कहा गया है—'जमनी ने युद्ध के लिए किए जाने वाले प्रयत्नो के मध्य यह विचार किया कि भारतीय क्रान्तिकारियो का इस समय अपने पक्ष म प्रयोग किया जाए। इसके लिए बहुत धन और विभिन्न योजनाएँ तैयार की गयीं कि क्रान्तिकारियों के प्रयोग के लिए बगाल म प्रचुर मात्रा म शस्त्रास्त्र भेजे जाएँ। इसके लिए भारतीय

क्रान्तिकारियो के नेता अथवा दूत भारत, जर्मनी बटाविया तथा अन्यान्य स्थानो पर आने-जाने लगे जिससे कि इन प्रबन्धो को पूर्ण किया जाए।"

उधर अण्डमान कारागार मे एक दिन सुपरिंटेंडेंट ने आकर सावरकर को बताया कि विश्वयुद्ध मे जर्मनी और तुर्की मिलकर ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध कर रहे हैं। इस युद्ध के लिए पोर्ट ब्लेयर मे चन्दा एकत्रित करने की योजना बना ली गयी है। इसके लिए एक मासिक पत्र भी निकालने की योजना है आदि-आदि।

सावरकर ने जब सुना कि तुर्की जर्मनी के साथ मिल गया है तो उन्हे एक झटका सा लगा। क्योंकि वे जानते थे कि तुर्की हो या अफगानिस्तान इन सबका एक ही उद्देश्य होता है 'इस्लामीकरण'। यह सावरकर को रुचिकर नही था। वे सोचते थे कि इन दो बडी शक्तियो के युद्ध का लाभ उठाकर हिन्दुस्थानी मुसलमान तुर्की तथा रूस आदि के मुसलमानो को भारत पर आक्रमण कर मुसलमानी सत्ता स्थापित करने को आमन्त्रित कर सकते हैं।

सावरकर ने अपनी पुस्तक 'माझी जन्म ठेप' मे इस विषय मे लिखा है—

"हमने एक रूप रेखा बनाई और भारत सरकार के नाम एक पत्र भेजने की योजना बनायी। उस पत्र के अंश इस प्रकार हैं—'हिन्दुस्थान को स्वतन्त्र राष्ट्रो की पंक्ति मे बिठाना हमारा मुख्य ध्येय था और आज भी है। तथापि इस ध्येय की पूर्ति के लिए रक्तपात या सशस्त्र क्रान्ति के मार्ग को ही अपनाने की हमने दृढ प्रतिज्ञा नही की है। इतना ही नहीं, यदि किसी अन्य मार्ग से यह ध्येय सफल होने की सम्भावना रहती तो शायद हम सशस्त्र प्रतिकार का मार्ग न अपनाते। इसलिए हमारा मत है कि यदि ब्रिटिश साम्राज्य हिन्दुस्थान देश को उसकी अपनी इच्छा के अनुसार, उसकी अपनी परिस्थितियो के अनुरूप स्वातन्त्र्य का उपभोग करने देगा तो ऐसे राज्य से एकनिष्ठ रहने मे शायद किसी को कोई आपत्ति नही होगी। इस प्रकार आयरलैंड से लेकर भारतवर्ष तक सभी देशो को एक सूत्र मे बाधे रखने का कार्य करने वाला यह साम्राज्य 'ब्रिटिश साम्राज्य' नाम भी त्याज्य बनेगा। अन्य नाम प्राप्त होने तक उसे 'आर्य साम्राज्य' कहें तो उपयुक्त रहेगा।

" इस युद्ध के माहौल मे यदि सरकार दूरदर्शिता से काम लेकर हिन्दुस्थान को औपनिवेशिक स्वायत्तता देगी और केन्द्रीय विधान मण्डल मे हिन्दुस्थानी प्रतिनिधियो को बहुमत प्रदान करेगी तो हिन्दुस्थान के कल्याण के लिए हम और हमारे क्रान्तिकारी सहयोगी सशस्त्र प्रतिकार का मार्ग त्यागकर इस युद्ध मे इग्लैंड के पक्ष का समर्थन करने को तत्पर हो सकेंगे।

"ब्रिटेन हिन्दुस्थान की शृंखला तोडने के लिए तत्पर है, यह सिद्ध करने के लिए उसको चाहिए कि वह समस्त राजनीतिक बन्दियों और क्रान्तिकारियो को शीघ्राति-शीघ्र रिहा कर दे। यदि ऐसा कर दिया गया तो स्वदेश की रक्षा के लिए हम सब सेना मे भर्ती होने के लिए भी तत्पर रहेंगे। यदि सरकार को यह सन्देह हो कि मैंने यह पत्र जेल से छुटकारा पाने के लिए लिखा है और हम जेल मे छूटने पर पुन अशान्ति

उत्पन्न करें तो मेरा सुझाव है कि हम न छोड़ते हुए सरकार अन्य निर्वासित बन्दियों को तत्काल मुक्त कर दे। उनकी मुक्ति में ही हम अपनी मुक्ति का सन्तोष कर लेंगे।"

सावरकर ने अपने इस लम्बे पत्र में आयरिश राजद्रोहियों आदि-आदि के अनेक उदाहरण भी प्रस्तुत किए थे। १९१४ के सितम्बर मास में लिखे गए इस लम्बे पत्र का उत्तर दिसम्बर मास में केवल इतना आया, 'गवर्नर जनरल ने उसे पढ़ा है तथा उसका आधिकारिक तौर पर तत्काल उत्तर देना असम्भव है। बस, इतना ही सावरकर को बताया जाए।'

ला० हरदयाल का कार्य

एक तो युद्ध के आरम्भ हो जाने के कारण और दूसरे सावरकर द्वारा गवर्नर जनरल को पत्र लिखे जाने के कारण जेल अधिकारियों का राजबन्दियों के प्रति कुछ दिन तक सामान्य व्यवहार रहा। किन्तु ज्यों ही जर्मनी आगे बढ़ने लगा त्यों ही उनके व्यवहार में फिर वही कठोरता आनी आरम्भ हो गयी। लाला हरदयाल उन दिनों अमेरिका में रहकर अभिनव भारत का कार्य कर रहे थे। लन्दन में सावरकर के बन्दी बना लिए जाने के बाद इंग्लैंड में अभिनव भारत सोसाइटी का कार्य लगभग नगण्य जैसा ही रह गया था।

बारी तो सावरकर आदि राजबन्दियों को मानसिक यातना देने में कभी चूकता नहीं था। एक दिन आकर उसने सावरकर से पूछा, 'यह लाला हरदयाल कौन है ?'

सावरकर ने उसको स्मरण कराया कि सर रेगिनाल्ड क्रैडक के साथ जब उनका वार्तालाप हुआ था, उस वार्तालाप में अमेरिका में जिस क्रान्तिकारी का उल्लेख हुआ था, वे ही लाला हरदयाल थे। बारी को अवसर मिल गया और बोला, "उसे हत्या के आरोप में अमेरिका में बन्दी बना लिया गया है।' सावरकर के लिए यह समाचार बड़ा दुखद था। यह सत्य है कि लाला हरदयाल को बन्दी बनाया गया था किन्तु हत्या के आरोप में नहीं और उन्हें जमानत पर छोड़ भी दिया गया था। किन्तु बारी को तो यातना देना अभीष्ट था। सावरकर ने इस घटना की सत्यता का पता लगाने के लिए कुछ वार्डरों को गुप्त रूप से बाहर भेजा।

एक दिन सुपरिन्टेंडेंट ने आकर सावरकर से पूछा, "क्या लाला हरदयाल आपके निकट के मित्र थे ?' सावरकर ने 'हाँ' में उत्तर दिया तो सुपरिन्टेंडेंट ने भी यही कहा, "दिल्ली बम काण्ड में तथा हत्या में हाथ होने के अपराध में उन्हें बन्दी बना लिया गया है।"

सावरकर ने कहा, "यदि हत्या और बम काण्ड में उनका हाथ हो, तो भी उनके प्रति मेरी जो श्रद्धा है वह किसी प्रकार भी कम नहीं होती है।'

सुपरिन्टेंडेंट अपना सा मुख लेकर वापस चला गया, किन्तु सावरकर के सहबन्दी इस कारण चिन्तित रहने लगे कि कहीं हरदयाल के प्रति उनकी मित्रता के कारण जेल अधिकारी उनसे रुष्ट होकर उनपर अत्याचार न करने लगें। सावरकर ने उनको

सान्त्वना दी, लाला हरदयाल के क्रिया कलापों का परिचय दिया और स्वयं उनके विषय में तथ्य जानने का यत्न करने लगे। इस प्रयास में उनको सफलता मिल गयी। दो दिन बाद ही उनको पता चला कि 'लाला हरदयाल अमेरिका में पकड़े गए थे तथा जमानत पर रिहा हो गए हैं।'

उस दिन में जहाँ सावरकर आदि बारी से व्यंग्य में पूछते लाला हरदयाल दिल्ली जेल में हैं या कहीं और, वहाँ बारी भी उनको उसी प्रकार कुछ न कुछ कह देता। एक बार उसने यहाँ तक कह दिया कि हरदयाल को दण्डित कर दिया गया है और उसको शीघ्र ही अण्डमान भेजा जाने वाला है। सावरकर ने कहा 'यदि लाला जी को यहाँ लाया गया तो उनको मेरे बराबर की कोठरी में रखने की कृपा करना। बारी बोला 'इसका विचार तो बाद में किया जाएगा कि उनको कहाँ रखना है।' बारी का उत्तर सुनकर सारे राजबंदी ठहाका लगाकर हँस पड़े तब बारी यह समझा कि इन बन्दियों को सब पता है, ये केवल उसे ही मूर्ख बना रहे हैं।

सावरकर आदि राजबन्दी किसी न किसी प्रकार युद्ध के वास्तविक समाचार प्राप्त करने में सफल होते रहते थे, इससे राजबंदियों का उत्साह बढ़ता जाता था। कारागार में नियुक्त पठान, बलोच आदि वार्डर या अधिकारी इस युद्ध में विचित्र स्थिति में थे। तुर्की का सुलतान जर्मनी के साथ मिलकर युद्ध कर रहा था अतः सावरकर आदि हिन्दू बन्दी उनको चिढ़ाया करते थे। उससे क्षुब्ध होकर एक दिन रात के समय मुसलमान पेटी अफसरों ने बारी के कान भर दिए कि सावरकर बंदियों को अधिक काम न करने के लिए भड़काता रहता है और उन्हें राजद्रोह की प्रेरणा देता रहता है।

बारी ने सुपरिंटेंडेंट के कान भर दिए तो जिस निगरानी के काम पर सावरकर को लगाया था वहाँ से उनको हटा दिया गया। दण्ड के रूप में छिलके कूटने का काम दे दिया गया। इस प्रकार जेल अधिकारियों ने सावरकर को पुनः शारीरिक और मानसिक यातनाएँ देना आरम्भ कर दिया। मुसलमान वार्डर दिन भर भद्दी गालियाँ बकते रहते थे।

एमडेन मद्रास में

तभी अण्डमान में और फिर कारागार में भी समाचार मिला कि एमडेन नामक जर्मन पनडुब्बी अण्डमान के समुद्र तट तक पहुँच गई है। यह भी सुनने में आया कि उसने मद्रास पर बमबारी भी की है। इस समाचार से जहाँ राजबंदियों में प्रसन्नता की लहर दौड़ने लगी वहाँ अधिकारियों में खलबली मचने लगी। अधिकारियों ने इस समाचार को यथाशक्ति गुप्त रखने का यत्न किया, किन्तु वह अत्यन्त अतिशयोक्तिपूर्ण रीति से सारे द्वीप में फैल गया। जेल के चारों ओर खाईयाँ खोदी जाने लगीं, बारूद बिछाया जाने लगा और कारागार के भीतर गोरे सैनिकों का कड़ा पहरा लगा दिया गया। अंग्रेज अधिकारी दिन रात समुद्र पर पहरा देने लगे। इनमें से कुछ अधिकारी

जेल म आ जाते थे। एक दिन एक रूसी अधिकारी सावरकर के पास आकर बोला, "योरोप के लोग आज भी आपको स्मरण करते हैं। उनमें से अधिकांश यह जानते हैं कि आप अण्डमान में आजीवन कारावास का दण्ड भोग रहे हैं।"

सावरकर को छुड़ाने का प्रयत्न

यह सुनकर सावरकर को सन्तोष हुआ कि कम से कम संसार के लोग उन्हें क्रांतिकारी के नाम से स्मरण तो करते हैं। इससे सावरकर को यह अनुमान लगाने में विलम्ब नहीं हुआ कि जर्मन आदि ने शत्रु देशों को अपना निशाना बनाने के लिए जिन जिन स्थानों को चुना है उनमें अण्डमान भी सम्मिलित है। उन्हीं दिनों अण्डमान टापू के एक डाक्टर मित्र ने सावरकर को सन्देश भेजा कि योरोप में सक्रिय अभिनव भारत तथा अन्य क्रांतिकारी संगठनों ने जर्मनी में कैसर से सम्पर्क करके योजना बनाई है कि एक पनडुब्बी अण्डमान भेज कर बमबारी की जाए और सावरकर आदि राजबंदियों को वहाँ से मुक्त कराया जाए।

यह समाचार पाकर सावरकर को स्पष्ट हो गया कि ये अँग्रेज अधिकारी अण्डमान में क्यों तनाव में हैं और कारागार के चारों ओर खन्दकें आदि क्यों खोदी जा रही हैं। उन दिनों अफवाहों का इतना जोर होने लगा था कि तमाम सरकारी अधिकारी दूरबीन लगाकर समुद्र की ओर ताकते रहते थे। अंग्रेज अधिकारियों के मन भयग्रस्त थे और उनको यह भी भय था कि यदि 'एमडेन' अपने काम में सफल हो गया तो कारागार के सारे बन्दी संगठित होकर अंग्रेजों के विरुद्ध धावा बोल देंगे। अण्डमान में अंग्रेजों के पास युद्ध सामग्री का अभाव था। बस्ती के सारे अँग्रेजों ने अपने बंगले खाली करके एक स्थान पर रहना आरम्भ कर दिया।

सावरकर के पास कुछ क्रान्तिकारियों के सन्देश भी पहुँचते रहते थे और जब अण्डमान में अँग्रेजों में इस प्रकार की हलचल देखी तो सावरकर को विश्वास होने लगा कि भारतीय क्रान्तिकारियों की योजना के अन्तर्गत जर्मन नौकाओं का अण्डमान पर आक्रमण तथा उन्हें मुक्त कराने का प्रयास करना सम्भव है। अंग्रेजों ने सहायता के लिए जो तार कलकत्ते भेजे उन्हें जर्मन सैनिकों ने रास्ते में ही पकड़ लिया और कलकत्ता से जो सहायता अण्डमान के लिए भेजी गयी उसे भी मार्ग में लूट लिया गया। उधर कारागार में सावरकर आदि ने योजना बना ली थी कि यदि जर्मन द्वारा अण्डमान पर आक्रमण होता है तो उन लोगों को क्या क्या और किस प्रकार करना होगा।

ज्यों ज्यों जर्मन पनडुब्बी के निकट आने के समाचार बढ़ते गए सावरकर पर निगरानी भी बढ़ती गयी और अन्त में उनको सबसे अलग करके केन्द्रीय कारागार के ऊपरी भाग में एकान्त में रख दिया गया। वहाँ भी उनपर कड़ी निगरानी रखी गयी। किन्तु दुर्भाग्य! ११ नवम्बर १९१४ को 'एमडेन' पनडुब्बी को नष्ट करने में ब्रिटिशर्स को सफलता मिली और क्रांतिकारियों की सारी योजनाएँ धरी की धरी रह गयीं।

इतिहास साक्षी है कि जिस सावरकर को फ्रेंच सरकार ने निष्ठाविहीन होकर अँग्रेजों को सौंप दिया था उसी सावरकर को कारा मुक्त करने के लिए जर्मन सरकार ने निष्ठापूर्वक संघर्ष किया था।

'एमडेन' के नष्ट हो जाने के कुछ दिनों बाद ही सावरकर को एतद्विषयक सारे तथ्य विदित हो गए थे कि किस प्रकार क्रान्तिकारियों ने योजना बनाई और किस प्रकार जर्मन सरकार ने उनकी सहायता की और यहाँ तक कि जर्मनी ने कारागार से सावरकर मुक्त करा कर वहाँ से निकालने के लिए एक हवाई जहाज की भी व्यवस्था कर दी थी। किन्तु विधि को कुछ और ही स्वीकार था।

अण्डमान के अंतिम वर्ष

क्रान्ति और विश्वयुद्ध

भारत के क्रांतिकारियों को अण्डमान मे भले ही असफलता का मुख देखना पड़ा हो, किन्तु इससे वे हताश और निराश नही हुए। भारत म उनके प्रयत्न चलते रहे। सन् १९१५ मे अमरिका, कनाडा तथा सुदूर पूर्व स लगभग ८ हजार सिख क्रान्तिकारी भारत मे आ गए। इस प्रकार सरकार के लिए पजाब की स्थिति बडी भयावह हो गयी। इस सम्बन्ध म सर जौन कर्यूमिग ने अपनी पुस्तक 'पौलिटिकल इडिया' के पृष्ठ २३४ पर लिखा है "लौड हार्डिग ने अपने ससमरणो में लिखा है कि उस समय पजाब की आन्तरिक स्थिति बडी भयावह हो गयी थी। क्या कि क्रांतिकारियो को सेना की दुर्बलता का आभास हो गया था। ऐसी स्थिति मे उस समय के गवर्नर जनरल लौर्ड हार्डिग ने सविधान सभा म 'डिफेन्स आफ रूल्स एक्ट' पारित करवाया।"

उधर दसवी बलूची बटालियन म कुछ गड़बड़ होने लगी। उसकी मसूर कम्पनी ने मसोपोटामिया को जाते हुए बम्बई म अपने अधिकारी को गोली से उड़ा दिया था। इसी प्रकार दिल्ली, लाहौर, मेरठ म क्रांतिकारियों के सुदृढ़ होने के समाचार स भी सरकार तिलमिला उठी थी। मेरठ म दसवी कैवेलरी की लाइन म महाराष्ट्रियन विष्णु गणेश पिंगले नामक युवक १० भरे हुए बमो सहित पकड़ा गया। उस पर अभियोग चला और उसको फांसी पर लटका दिया गया। लाहौर पिण्डी और फिरोजपुर में शस्त्रास्त्र लूटने के षडयन्त्र का भी भण्डाफोड हो गया। बगाल म भी नरेन्द्र भट्टाचार्य और उसके बाद मानवेन्द्रनाथ राय आदि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए मरणान्तक प्रयत्न करते रहे। कामागाटामारू के ५०० यात्री २६ सितम्बर १९१४ को हुगली पर पहुँच गए, किन्तु दूसरे दिन ही बगाल पुलिस ने उसको अपने अधिकार म कर लिया।

अण्डमान कारागार म य सारे समाचार छन छनाकर प्राप्त होते रहते थ। उस समय सारे कारागार म सवत्र इन्ही समाचारो की चर्चा होती रहती थी। तभी इन मनिरो को भी अण्डमान म भेजा जाने लगा जिन्होने अग्रेजो के लिए युद्ध

करने के लिए जाने से इनकार कर दिया था। कुछ दिनों तक तो जत्थे के जत्थे अण्डमान भेजे जाने लगे किन्तु जब जर्मन रण-नौकाओं ने समुद्र में व्यापारिक जलयानों का मार्ग अवरुद्ध कर दिया तो फिर भारत से बन्दियों का अण्डमान जाना रुक गया। किन्तु कुछ दिनों बाद जब जापान, रूस और ब्रिटिश नौसेनाओं ने जर्मन रणनौकाओं को विनष्ट कर दिया तो उनका अण्डमान जाना पुनः चालू हो गया।

ब्रिटिश सरकार ने नेपाली सेना के आश्रय क्रांतिकारी आन्दोलन को कुचलने में अपनी सारी शक्ति लगा दी। केवल पंजाब में ही लगभग पांच हजार सैनिकों पर मुकदमा चलाया गया और कोर्ट मार्शल द्वारा पांच सौ क्रांतिकारियों पर अभियोग लगा कर उन्हें फांसी पर लटका दिया गया तथा ८ सौ को आजीवन कारावास का दण्ड दिया गया और दस हजार सैनिकों को बिना किसी अभियोग के सेवा निवृत्त कर दिया गया तथा इतनी ही संख्या में सैनिक वर्षों तक भूम्यान्तर्गत रहे। फिर भी भारत के गांधीवादी कहते हैं—

सावरमती के सन्त तूने कर दिया कमाल ॥

पंजाब से जो बन्दी आजन्म कारावास का दण्ड भुगतने के लिए अण्डमान भेजे गए थे उनमें भाई परमानन्द भी थे। भाई परमानन्द और सावरकर का तो पहले से ही लन्दन के समय से परस्पर परिचय था किन्तु अन्य बन्दी भी सावरकर से भली भांति परिचित थे। जो भी नया क्रान्तिकारी जेल में आता वह सावरकर से मिलने के लिए आतुर रहता। उधर कारागार के अधिकारियों का यह प्रयत्न रहता था कि वे लोग किसी भी प्रकार उनके सम्पर्क में न आने पावें, किन्तु बन्दियों की संख्या अत्यधिक होने के कारण उनके लिए यह सब कर पाना सम्भव नहीं था।

नागरिकों में क्रान्ति

सावरकर से प्रेरणा प्राप्त करने वालों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती जाती थी। अमेरिका में गदर आन्दोलन के नेता पण्डित जगतराम को भी लाहौर षड्यन्त्र काण्ड में दण्ड दे कर अण्डमान भेजा गया था। उनको जब मृत्यु दण्ड दिया गया तो उनसे पूछा गया कि वे अपने बचाव में कुछ कहना चाहेंगे। उन्होंने यह कह कर इन्कार कर दिया, "जब मैंने सशस्त्र क्रान्ति का मार्ग अपनाया है तो बचाव कैसा?" उन्होंने सावरकर को बताया, "मैं राजनीति से सर्वथा अनभिज्ञ तथा आराम का जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति था। किन्तु एक दिन मेरे हाथ में आपका ग्रन्थ '१८५७ का स्वातन्त्र्य समर' लग गया। उसे मैंने पूरे दिन और पूरी रात में पढ़ डाला। उसे पढ़ कर मेरा जीवन बदल गया और उसी समय मैंने संकल्प लिया कि अपने राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए शेष जीवन अर्पित कर दूंगा। आपकी पुस्तक के कारण ही आज मैं आपके बीच हूं।'

उस समय सावरकर ने उनसे हँसी में कहा था, "तब तो मेरी पुस्तक अण्डमान भेजे जाने के 'टिकट' का काम करती है।"

पंजाब से अण्डमान भेजे गए सिख बंदियों ने, सावरकर के कोल्हू में जोते गए चित्र का अमेरिका में किस प्रकार प्रचार हुआ, उसकी रोचक वार्ता सुनाते हुए बताया, "अमरीका में प्रकाशित होने वाले क्रांतिकारियों के समाचार पत्र में आपका कोल्हू चलाते हुए का एक रेखाचित्र प्रकाशित हुआ। अमेरिका की सड़क पर एक लड़के के हाथ में मैंने वह चित्र देखा तो उसे देख कर मेरे हृदय में भारी आघात लगा। आँखों में आँसू आ गए। मेरे मन में विचार आया कि एक ओर अपनी मातृभूमि, अपने राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए सावरकर जी आदि क्रांतिकारी बैलों की भाँति कोल्हू में जुत रहे हैं तो दूसरी ओर हम खान पान और मौज उड़ान में मस्त हैं। इन विचारों के उठते ही हम स्वयं पर लज्जा आने लगी और हमने उसी समय अपने देश भारत की स्वाधीनता के महान राष्ट्रीय कार्य में अपना सर्वस्व समर्पित करने का दृढ़ संकल्प ले लिया।'

पं० परमानन्द और बारी

लाहौर षड्यन्त्र केस से सम्बंधित राजबंदियों के अण्डमान पहुँचते ही कारागार के अधिकारियों ने और अधिक कठोरता करनी आरम्भ कर दी। पंजाब का उस टोली में सभी युवक थे और वे सब गर्म मिजाज के थे। काम की पटी अफसर बहुत कम काम आया देख कर उनके साथ दुर्व्यवहार करता। एक दिन उन युवकों ने उसका करारा जवाब दिया। उनमें झाँसी का तेज तर्रार युवक पं० परमानन्द भी था। बारी से शिकायत होने पर उसने परमानन्द को अपने कार्यालय में बुलवाया। वे ज्यों ही बारी के सामने हुए कि बारी ने उन्हें सीधा खड़ा होने को कहा। इसके बाद बारी ने उनके लिए अपमान जनक शब्दों का प्रयोग किया तो उनका मुख क्रोध से तमतमा उठा। उसके बाद बारी ने गाली गलौच करनी आरम्भ की तो परमानन्द ने झटके से स्वयं को दोनों वाडरों के हाथों से छुड़ाया और लपक कर बारी के गालों पर दो तमाचे जड़ दिए।

इस अप्रत्याशित आक्रमण से बारी सकपका गया, उसका टोप नीचे गिर पड़ा। वह पकड़ो-पकड़ो कहता हुआ कार्यालय से बाहर को भाग गया। वाडरों ने परमानन्द को दबोच लिया और घूसे मार मार कर उनके मुख को लहूलुहान कर दिया। परमानन्द का होंठ फट गया बारी ने सुपरिंटेंडट को इसकी सूचना दी। न केवल कारागार में अपितु समस्त अण्डमान द्वीप समूह में यह समाचार फैल गया कि 'बम गोले वाले ने बारी की पिटाई कर दी है।

सुपरिंटेंडट ने आकर परमानन्द को ३० बेंतों का दण्ड किया। वाडरों ने निर्दयता से बेंत मारे जिससे परमानन्द का सारा शरीर ही लहू से लथपथ हो गया। उसके बाद न उसके शरीर की मलहम पट्टी की गई न अस्पताल ले जाया गया। विपरीत इसके उसको कोठरी में बंद कर दिया गया। इससे राजनीतिक बंदियों का दबदबा बढ़ गया और अब बारी की कोई सुनता ही नहीं था।

इस अपमान से खीझ कर बारी ने सावरकर के विरुद्ध अभियान आरम्भ कर दिया। उसने भरसक यत्न किया कि सावरकर के सम्पर्क में अन्य बन्दी न आने पावें। वह बन्दियों को भड़काते हुए कहता, "सावरकर तो काम चोर है, चतुर है। यदि तुम लोग उसके कहने पर चलते रहे तो तुम संकट में पड़ जाओगे।" दूसरी ओर वह अधिकारियों के पास शिकायत भेजता कि 'सावरकर ही झगड़े की जड़ है।' जेल में होने वाली प्रत्येक घटना के लिए वह सावरकर को ही उत्तरदायी ठहराता।

सावरकर को आतंकित करने के जितने प्रकार हो सकते थे, बारी ने उन सबका प्रयोग उन पर किया। एक बार बारी ने सोचा कि क्यों न सावरकर को उन सब पत्रों और नोटस की प्रतिलिपियां लिखा दी जाएँ जो उनकी शिकायत के रूप में उसने लिख-लिख कर अधिकारियों को भेजी थी, या अभी भेजने के लिए सजा कर रखी हुई थी। उसने सावरकर को अपने कार्यालय में बुलाया। पहले तो उसने उनको सामने बैठा कर उनकी खूब प्रशंसा की। कहा आप तो बुद्धिमान विद्वान और भी न जाने क्या-क्या हैं। दूसरी ओर वह सहबन्दियों को कहता रहता था कि सावरकर कामचोर और भी न जाने क्या क्या है।

फिर उसने कहा कि उसकी सावरकर के प्रति सहानुभूति है इसलिए वह उनको वे सब आवेदन, प्रतिवेदन आदि पढ़वा रहा है जो उसने उनके विषय में अधिकारियों को भेजे हैं। फिर उसने अपनी डायरी खोली और उसमें से कुछ टिप्पणियाँ पढ़ कर सुनाईं। उसमें उसने अपनी कटुता, ओछापन और नीचता का पूर्ण परिचय दिया हुआ था। उन आवेदनों अथवा डायरी को पढ़वा अथवा सुना कर वह सोचता था कि सावरकर इससे आतंकित हो जाएँगे, भयभीत हो जाएँगे और उससे घबरा कर बारी का दबदबा स्वीकार कर लेंगे।

सावरकर पर उसकी ऐसी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। क्योंकि यह सब तो सावरकर पहले से ही जानते थे।

बारी के परिवार में उसकी पत्नी और पुत्री थे। उसकी पुत्री ने रंगून में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। बारी की पत्नी और पुत्री उसका स्वभाव विनम्र बनाने की यथाशक्ति प्रयास करती थीं। सावरकर का कहना है कि कुमारी बारी जब कभी भी रंगून से अवकाश पर अण्डमान आती तो वह उनसे अवश्य मिल कर जाती। घर पर रहने के दिनों में वह समय निकाल कर उनसे मिलती रहती थी और उनसे विभिन्न विषयों पर चर्चा करती हुई अपना ज्ञान बढ़ाती थी।

वर्ष में केवल एक ही दिन ऐसा होता था जिस दिन बारी में मानवता जागृत होती थी। वह दिन क्रिसमस का दिन होता था। उस दिन वह बन्दियों में मिठाई बाँटता था। सावरकर यदि मिठाई लेने के लिए उसके कार्यालय में न भी जाएँ तो भी वह उनकी कोठरी में मिठाई भेज देता था। अपने बगीचे के फल आदि भी वह उस दिन सावरकर को देता था।

सावरकर अस्वस्थ

सन १९१५ १६ के मध्य सावरकर एकाएक अस्वस्थ हो गए और फिर उनका स्वास्थ्य सम्भलने मे ही नही आया। सावरकर को पहली बार सन १९१० मे इग्लड म बन्दी बनाया गया था। उसके बाद निरन्तर पहल लन्दन और फिर भारत की विभिन्न कारागारो म वे भांति भाति की यातनाएँ और कष्ट सहते रहे थे और फिर अंत म उनको अण्डमान भेज दिया गया था। वहा के कष्टो का तो पारावार ही नही था। शारीरिक कष्ट के साथ साथ मानसिक चिन्ता भी रहना स्वाभाविक था। मानसिक कष्ट शरीर के लिए अत्यन्त दुखदायी होता है। अपौष्टिक भोजन के कारण व्याधियाँ पनपने लगी तो मानसिक कष्ट के कारण शरीर और भी क्षीण होता गया।

सावरकर ने अपनी अस्वस्थता की बात सुपरिंटेंडेंट को बतायी तो उसने भी इस ओर कोई ध्यान नही दिया और न ही उनको अन्य बन्दियो की भांति अस्पताल भेजा गया। यहा तक कि रोगी को दिया जाने वाला भोजन भी उनको नही दिया गया। ज्यो ही उनका ज्वर कम हुआ कि उनको फिर काम पर लगा लिया गया। वही अधकच्चा भोजन उनको मिलता था जिसके परिणामस्वरूप सावरकर को दस्त रहने लगे। साधारण बन्दियो को साधारण रोग पर भी दूध दिया जाता था किन्तु सावरकर को कभी दूध दिया ही नही गया, चाहे वे कितने ही अधिक रुग्ण क्यो न हो गए हो।

दिन बीतते-बीतते ज्वर ने शरीर म घर कर लिया था और उसके साथ ही रक्त मिश्रित दस्त भी होने लगे थ। डाक्टर भी सावरकर को देखने तभी आता था जब कि उसको भली भांति विश्वास हो जाए कि वास्तव म उनको दस्त लग ही हैं अन्यथा बारी के बार स वह भी डरता हुआ उनके पास कम ही आया करता था। डाक्टर के सम्मुख यदि सावरकर को दस्त हुआ और उसम रक्त मिश्रित हुआ तो डाक्टर औषधि भी देता था और रोगानुसार भोजन की भी व्यवस्था करवाता था अन्यथा नही। ज्यो ही ज्वर कुछ कम होता अथवा दस्त कम होते सावरकर को पुन काम पर लगा दिया जाता था। यह क्रम चलता रहा। इससे शरीर निरन्तर बिगड़ता गया।

सन १९१४ की हडताल के उपरान्त अनेक बन्दियो को अपना भोजन स्वय बनाने की अनुमति मिल गयी थी। यहा तक कि सावरकर के बड़े भ्राता गणेश सावरकर और वामनराव जोशी भी अपना भोजन स्वय बनाते थे। किन्तु सावरकर को यह सुविधा बहुत समय बाद प्राप्त हुई। जबकि उनका स्वास्थ्य बहुत गिर गया था।

सावरकर को रात्रि के समय ज्वर चढता था। रात्रि को डाक्टर को बुलाया नही जा सकता था, दिन को ज्वर न होने पर डाक्टर न औषधि देता और न पथ्य आदि की ही व्यवस्था हो सकती थी। दुर्भाग्य की बात यह कि दिन निकलते ही ज्वर गायब हो जाता था। इस कारण चिकित्सा नही हो पाती थी। डाक्टर को यदि कहो कि रात्रि म ज्वर होता है तो वह इस बात को सुनने के लिए तयार नहीं होता था।

दूसरी ओर कारागार के अधिकारी राजनीतिक बन्दियो को यातना देने का

कोई अवसर नहीं चूकते थे। अवसर न हो तो वह उत्पन्न कर लिया जाता था। काम पूरा न हो तो बेंत लगाने की धमकी। ऐसे ही एक बार एक बंगाली युवक जो कलकत्ता विश्वविद्यालय का एम० ए० था, षडयन्त्र में पकड़ कर कारागार में भेजा गया था। उसको डेढ़ पौंड छिलका कूटने का दिया गया। उसका काम पूरा होना सम्भव नहीं था। परिणामतः उसको बेंत लगाने की जब धमकी दी गई तो सभी राजनीतिक बन्दियों में रोष फैल गया। बंगाली युवक ने भी काम करने से निर्भीकता से इनकार कर दिया, उसको बेंत लगाए गए। बिना आह किए वह बेंतों की मार सहता रहा। इससे तो और भी रोष फैलने लगा।

जब अन्य कोई मार्ग नहीं दिखायी दिया तो सबने हड़ताल करने का निश्चय कर लिया। अधिकारी पिछली हड़तालों का परिणाम जानते थे। अतः इस बार इस विषय पर हड़ताल करने की नौबत नहीं आई और अधिकारियों ने यह स्वीकार कर लिया कि राजनीतिक बन्दियों से जितना काम हो सके वे उतना ही करें।

जब से कारागार में पंजाबी बन्दी आए थे, तब से एक बात और हुई। जो वार्डर पहले गालियों की बौछार किया करते थे वे अब पंजाबी बन्दियों के सम्मुख कुछ ढीले पड़ने लगे। क्योंकि उन पंजाबी बन्दियों में सब प्रकार के लोग थे और उनके पास गालियों का इतना भण्डार था कि टंडेलों और वार्डरों के बाप-दादा को भी याद नहीं होगी। यदि कोई टंडेल उन्हें 'अरे' तक कह देता तो उसे उसके उत्तर में 'क्यों बे' सुनना पड़ जाता था। वार्डर या टंडेल माँ की गाली दे तो उसे नानी की सुननी पड़ती और बाप की दे तो दादा परदादा की।

इतना सब कुछ होने पर भी राजनीतिक बन्दियों को यातना सहनी पड़ती थी। सावरकर पर तो विशेष ही कृपा थी। और अब जब उनका स्वास्थ्य गिरने लगा था तो उनमें भी वह स्फूर्ति नहीं रह गई थी, जिससे कि वे यातना को पहले की भांति सह सकें। फिर भी कारागार तो कारागार ही था, सब कुछ सहन करना पड़ता था।

सावरकर समय समय पर आवेदन करते रहते थे। और नहीं तो उन्हें कम से कम राजनीतिक बन्दियों की सुविधाएँ तो दी ही जानी चाहिए। भारत सरकार सुधारों की बात करने लगी तो उस समय सावरकर ने अपने आवेदन में कहा कि सरकार जब सुधारों की बात कर रही है तो उनको चाहिए कि वे सभी राजनीतिक बन्दियों को रिहा कर दें। उन्होंने लिखा कि जब देश में एक भाई दूसरे भाई से दूर कर दिया है तो सरकार यह किस प्रकार अपेक्षा रखती है कि देश में शांति और व्यवस्था ठीक रहेगी। किसी न किसी का कोई न कोई व्यक्ति, कोई रिश्तेदार, कोई मित्र किसी न किसी प्रकार राजनीतिक बन्दी के रूप में सताया जा रहा है। जो बचे हैं वे सेना के साथ सुदूर देशों में पड़े हुए हैं।

इसका प्रभाव यह हुआ कि सरकार ने 'मोंटग्यू चेम्सफोर्ड रिफोर्म' के विषय में सावरकर से सुझाव देने के लिए लिखा। सावरकर ने इस विषय पर अपने बुद्धिमत्तापूर्ण सुझाव दिए। अपने विचारों के अन्त में उन्होंने लिखा, 'मैं सर्वात्मना उस कौमन-

वैल्थ के साथ सहयोग करने के लिए सदा तत्पर रहूँगा जो न तो ब्रिटिश होगी और न ही भारतीय, जब तक कोई और अन्य नाम नहीं मिल जाता तब तक उसे 'आयन कॉमनवैल्थ' कहा जाए।"

चतुर्थ हड़ताल

पंजाब के एक सिक्ख राजनीतिक बन्दी सरदार मानसिंह के साथ टंडैल और पटी अफसर का किसी बात पर झगड़ा हो गया। खूब मार पीट हुई और फिर मानसिंह को कोठरी में बन्द करवा दिया गया, साथ ही बारी को भी बुलवा लिया। बारी ने मानसिंह की कोठरी में घुस कर ज्यों ही उसको गाली देनी आरम्भ की कि मानसिंह ने उसको उससे भी बड़ी और जोरदार गन्दी गाली दे डाली। बारी इससे आग बबूला हो गया और उसने अपने चाटुकार टंडैलों, पटी अफसरों और वार्डरों को उसे मजा चखाने का संकेत कर दिया।

संकेत पाते ही दस-बारह लोग लाठियाँ ले कर मानसिंह की कोठरी में घुसकर उसकी धुनाई करने लगे। उस अकेले सरदार ने इस आक्रमण का डटकर सामना किया। किन्तु वे लाठियों से लैस और सरदार था निहत्था। फिर लात घूंसों से जितना अधिक वह कर सकता था उसने किया फिर भी थक कर वह जमीन पर गिर गया। तब तो राक्षसों की बन आई। सरदार को और कोई उपाय नहीं सूझा तो उसने चिल्लाना आरम्भ किया 'भाइयो मुझे मार रहे हैं ...'

उसके आस पास के बन्दियों ने जब उसकी चीख पुकार सुनी तो जिस बन्दी के हाथ में जो कुछ भी आया वह उसी को लेकर उस ओर चल दिया। बारी ने कोठरी का द्वार बन्द कराया हुआ था और स्वयं डंडा लेकर बाहर खड़ा था। बारी ने जब बन्दियों को आता देखा तो उसके होश उड़ गए और वह पीछे की सीढ़ियों से भाग लिया।

सावरकर को जब इस घटना का ज्ञान हुआ तो उन्होंने इस घटना के विषय में उच्चाधिकारियों से शिकायत करने का सुझाव दिया। आवेदन पत्र भेजे भी गए किन्तु उन पर कोई कारवाही नहीं हुई।

बारी ने राजनीतिक बन्दियों को आतंकित करने के लिए यह कुकृत्य किया था किन्तु इससे आतंकित होने की अपेक्षा सारे बन्दी क्रुद्ध हो गए और इस अन्याय के प्रतिकार के लिए उन्होंने हड़ताल करने का निश्चय कर लिया।

बारी को जब अपने उद्देश्य में असफलता और बन्दियों के हड़ताल करने का समाचार मिला तो वह घबरा गया। ऐसे अवसरों पर वह अधिकांशतया सावरकर के पास आ कर गिड़गिड़ाया भी करता था। इस बार भी वही हुआ। शाम को वह सावरकर से मिलने आया तो उसके कुछ कहने से पूर्व ही, सावरकर ने उसके आने के उद्देश्य का अनुमान लगा कर कहना आरम्भ किया, "मिस्टर बारी! तुम्हारे अत्याचार सीमा पार कर चुके हैं। तुम्हें इसका परिणाम भयंकर रूप में भुगतना पड़ेगा।"

बारी सरलता से मानने वाला नहीं था। उसने उस घटना का सारा दोष

मानसिंह पर लगाते हुए कहा, "मानसिंह ने मुझे दाँतों से काट लिया था, इस लिए मुझे उसकी पिटाई करनी पड़ी।"

सावरकर बोले, "मानसिंह के तुम्हें काट लेने की बात यदि सत्य भी हो तो भी उसको नियमानुसार दण्ड दिया जाना चाहिए था, न कि उसकी मार पिटाई करवाई जाती। उसको तुमने ऐसा पिटवाया कि उसके नाक मुख से रक्त प्रवाहित होने लगा। अब तो सभी राजबंदी तुम्हारे इन अत्याचारों का डट कर सामना करने का निर्णय कर चुके हैं।"

दूसरे दिन जब सुपरिंटेंडेंट निरीक्षण के लिए आया तो सभी राजबंदियों ने मानसिंह के साथ हुए अत्याचार का उल्लेख करते हुए बारी को दण्डित किए जाने की माग की। बारी को तो क्या दण्डित किया जाता। विपरीत इसके जिन्होंने इस तरह की माग की थी उनको ही डाँट पड़ गयी और दण्डित करने की धमकी दी गई। जिन्होंने मानसिंह को बारी के चंगुल से बचाया था उन्हें भी धमकियां मिलने लगी। इससे विवश होकर हड़ताल करने का निश्चय किया गया था।

तभी मांटेग्यू के भारत आने का समाचार मिला। 'मांटेग्यू चेम्सफोर्ड रिफोर्म' के विषय में कुछ संकेत हम पिछले पृष्ठों पर कर आए हैं। सावरकर ने उस समय यही उचित समझा कि अण्डमान के सभी राजनीतिक बंदी इस समय हड़ताल करके मांटेग्यू का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करें। हड़ताल का निश्चय होने पर कुछ लोगों ने सुझाव दिया कि इसका नेतृत्व वे लोग करें जो काफी समय से यहां यातनाएँ और अत्याचार सहते आए हैं। किन्तु सावरकर ने उन्हें समझाया कि यदि उन जैसे लोगों ने नेतृत्व किया और अधिकारियों ने चिढ़ कर उन्हें कोठरियों में बंद कर दिया तो फिर पत्र व्यवहार के कार्य में बाधा आ जाएगी। एक बात यह भी थी कि जितने भी पुराने बंदी थे वे अब तक सहे गए कष्टों और यातनाओं के कारण अपना स्वास्थ्य खो चुके थे उनके लिए इस स्थिति में टिका रहना भी कठिन था। अतः नवागन्तुकों और युवकों को ही इस कार्य में आगे आने को सावरकर ने प्रोत्साहन दिया।

योजना बन गयी और उस योजना के अनुसार सावरकर स्वयं, उनके बड़े भाई गणेश सावरकर और वामनराव जोशी प्रत्यक्ष रूप से उस हड़ताल में सम्मिलित नहीं हुए। कुछ अन्य भी हड़ताल न करने वाले राजबंदी थे। यद्यपि उन्होंने स्वयं अपनी आँखों से मानसिंह को पिटते हुए देखा था। इसके विपरीत उन्होंने अधिकारियों के पास उन लोगों की शिकायत कर दी जिन्होंने हड़ताल की योजना बनायी थी। यद्यपि उन्होंने मानसिंह को पिटते अपनी आँखों से देखा तदपि वे उसके पक्ष में साक्षी देने के लिए भी उद्यत नहीं हुए।

सावरकर ने योजना बनायी कि हड़ताल आरम्भ करने से पूर्व दो हड़ताली नेता अधिकारियों को ज्ञापन दें कि राजबंदियों के साथ साधारण बंदियों का जैसा भी व्यवहार नहीं किया जाता है। उसके साथ ही मानसिंह के साथ हुए दुर्व्यवहार का भी उल्लेख किया जाए। यदि अधिकारी ज्ञापन स्वीकार करने से इनकार करें तो जो सक्षम

बन्दी हैं वे भूख हड़ताल की धमकी दें। भूख-हड़ताल करने वालों को यह स्पष्ट समझा दिया था कि किसी भी अमूल्य जीवन को इसमें स्वाहा करने तक की नौबत नहीं आना चाहिए।

अन्ततः वही हुआ जिसकी सम्भावना थी। अधिकारियों ने ज्ञापन नहीं लिया तो बन्दियों ने विभिन्न वार्डों में काम करने से इनकार कर दिया। लगभग एक सौ बन्दियों ने यह हड़ताल आरम्भ की थी। इससे पूर्व इतने संगठित रूप में हड़ताल नहीं हुई थी। सावरकर ने इसके प्रचार प्रसार का कार्य अपने ऊपर लिया था। यद्यपि पिछली तीन हड़तालें भी सफल हुई थीं और अधिकारियों को मुंह की खानी पड़ी थी। इस बार तो बन्दियों में पूर्वापेक्षा कहीं अधिक उत्साह दिखायी देता था। अण्डमान के इतिहास में यह हड़ताल सर्वाधिक व्यापक, प्रभावशाली और सुसंगठित हड़ताल थी।

हड़ताल आरम्भ होने पर बारी ने अपने हथकण्डे अपनाने शुरू कर दिए। उसने बन्दियों में परस्पर फूट डालने का कार्य आरम्भ कर दिया। उस फूट में वह सर्व प्रथम सावरकर का ही नाम लेता। हड़तालियों की कोठरियों के आगे खड़े हो कर वह कहता, "देखो, सावरकर ने किस प्रकार तुम लोगों को आगे फँसा कर संकट में डाल दिया है। उसने स्वयं हड़ताल में भाग नहीं लिया। तुम लोग पागल हो जो उसके बहकावे में आ गए हो।"

अब तक राजबन्दी बारी की नस नस से परिचित हो गए थे। वे सावरकर के विषय में सब कुछ जानते थे। वे यह भी जानते थे कि कारागार में आते ही सावरकर ने कितनी यातनाएँ और कष्ट सहे हैं। बन्दियों को आज जो थोड़ी बहुत सुविधाएँ मिल रही हैं वे उनके कारण ही मिल रही हैं यह भी वे भली भांति जानते थे। और हड़ताल के आरम्भ होने से पूर्व अपने हड़ताल में सम्मिलित न होने का कारण भी उन्होंने स्पष्ट कर ही दिया था। बन्दियों पर बारी का कोई प्रभाव नहीं हुआ। उलटे कोई उससे पूछ बैठा, "क्यों साहब ! जब सावरकर इतने ही डरपोक हैं तो आप दिन रात उनसे घबराते क्या रहते हैं ?"

यह सुन कर बारी खिसिया गया।

मानसिंह का बलिदान

मानसिंह को जिस दिन पीटा था उसी दिन से उसने शय्या पकड़ ली थी। शय्या पर से उठ पाना उसके लिए सम्भव नहीं था। हड़ताल जारी पर भी मानसिंह के मुख से जब रक्त वमन होने लगा तो उसको अस्पताल में भर्ती कराया गया। उससे पूर्व उसको अस्पताल में भी भर्ती नहीं कराया गया था। इसी बीच सावरकर अस्वस्थ हो गए तो उन्हें भी अस्पताल में भर्ती करा दिया गया। वहीं उन्होंने मानसिंह के लाठियों से क्षतविक्षत शरीर को देखा।

अस्पताल में मानसिंह की दशा बिगड़ती गयी। क्षत विक्षत शरीर के साथ-साथ दुर्बलता के कारण उसको क्षय रोग भी हो गया। वहाँ जैसी चिकित्सा हो सकती

थी वह की गई किन्तु एक मास के भीतर ही उस नरवीर ने देह त्याग दी। सावरकर ने उसके विषय में लिखा है—

"मानसिंह सर्वथा अशिक्षित कृषक था, परन्तु उस जैसा उत्कट देशभक्त सुशिक्षितों में भी मिलना दुर्लभ है। बेचारा अपने देश की स्वाधीनता के लिए जूझता हुआ बन्दी बनाकर, आजन्म कारावास का दण्ड पाकर अण्डमान आया और वहीं ब्रिटिश सरकार के अधिकारियों से जूझता जूझता चल बसा। उसने देशहिताय 'हुतात्मा' जैसा उच्च पद प्राप्त किया। मेरी आखें उसके परलोक प्रयाण की दुखद घटना से नम हो गयीं। प्रत्येक राजबन्दी का सिर उस वीर के चरणों में झुक गया।"

हड़ताल के असफल होने के बाद दूसरा चरण भूख हड़ताल का था। जब अधिकारियों ने हड़तालियों का ज्ञापन लेने से इनकार कर दिया तो योजनानुसार दो राजबन्दी नेता अन्न छोड़कर भूख हड़ताल पर बैठ गए। इनमें एक तो थे ६० वर्षीय सिख सरदार सोहनसिंह तथा दूसरे पंजाब के ही तेजस्वी राजपूत युवक पृथ्वीसिंह 'आज़ाद'। ये दोनों नेता पूरे बाहर दिन तक बिना अन्न ग्रहण किए अपनी-अपनी कोठरी में पड़े रहे।

उनके अनशन से कारागार के अधिकारी घबरा गए और ज्ञापन लेने के लिए तैयार हो गए। इस ज्ञापन में इंग्लैंड की भांति उन्हें राजनीतिक बंदियों की मान्यताएं व सुविधाएँ दिए जाने से लेकर सिख राजनीतिक बन्दियों को अपने केश धोने के लिए साबुन और पानी दिए जाने तक की माँगें लिखी गई थीं।

आजाद का अनशन

अधिकारियों द्वारा माँगें मान लेने पर सरदार सोहनसिंह ने तो अपना अनशन तोड़ दिया, किन्तु पृथ्वीसिंह आजाद डटे रहे। दो सप्ताह बाद जब उसकी दशा बिगड़ने लगी तो अधिकारियों ने नाक में नली डाल कर बलात उसके पेट में दूध डलवाया। उसने कपड़े पहनना और चादर ओढ़ना भी त्याग दिया। निराहार, निर्वस्त्र, कारागार की भीषण ठंड और हवा में वह कोठरी के सीमेंट के ठंडे फर्श पर पड़ा रहता। वह किसी से नहीं बोलता था। अन्त में जब कमिश्नर आया तो उसको भी उसने यही कहा, "मैंने अपने ज्ञापन में सब लिखकर दे रखा है, अतः उससे अधिक मैं कोई बात नहीं करूँगा।"

इस प्रकार एक नहीं, दो नहीं अपितु पूरे छः मास तक वह युवक बिना खाए-पीए, निर्वस्त्र, एकाकी अपनी कोठरी में तपस्या करता रहा। उसका सुगठित शरीर अस्थि कंकाल मात्र रह गया था।

सावरकर से यह स्थिति देखी नहीं गयी। उन्होंने उसके जीवन को बचाने का यथाशक्ति प्रयास किया। एक दिन वे किसी प्रकार उसकी कोठरी में जाने में सफल भी हो गए। उन्होंने उसको समझाया कि परिस्थिति के अनुसार कभी कभी कुछ पग पीछे भी हटना पड़ जाता है। सावरकर ने उसे महाराणा प्रताप के कष्टों और तपस्या

का उदाहरण दिया और बताया कि परिस्थिति के अनुसार व भी कभी-कभी दो चार पग पीछे हट जाया करते थे। उन्होंने कहा कि एकान्त में भूखे प्यासे रहकर प्राण दे देने में राष्ट्र का अहित ही होगा हित नहीं।

सावरकर ने उसे समझाया कि उसका इस प्रकार कष्ट सहकर प्राण त्याग देना अन्त में 'आत्महत्या' कहलाएगा। बन्दी तथा बाहर के लोग इसे आत्म हत्या मान लेंगे। सावरकर के समझाने का प्रभाव हुआ। उसने वचन दिया कि वह आत्म हत्या नहीं करेगा।

सावरकर ने एक ओर तो 'आजाद' को प्रेरित किया तथा दूसरी ओर अस्पताल के डाक्टर को कहा कि वह प्रतिदिन आजाद के स्वास्थ्य के विषय में उनको बताता रहे। यदि अवस्था बिगड़ जाए तो उन्हें तुरन्त सूचित किया जाए। तभी एक दिन डाक्टर ने सावरकर को बताया कि पृथ्वीसिंह की ऐसी स्थिति आ गई है कि या तो वह आत्महत्या कर लेगा या फिर पागल हो जाएगा। सावरकर ने सभी राजबन्दियों की ओर से उसके नाम एक प्रार्थना पत्र लिखवाया, जिसमें कहा गया कि वह अपना अनशन तोड़े इससे कोई यह नहीं सोचेगा कि उसने मृत्यु से डर कर अनशन तोड़ा है, अपितु इस समय परिस्थिति की यही मांग है कि अनशन तोड़ दिया जाए। बन्दियों की इस प्रार्थना का प्रभाव हुआ और आजाद ने अनशन तोड़ कर अन्न ग्रहण करना स्वीकार कर लिया।

अण्डमान कारागार में हड़ताल चल रही थी और उधर भारत में माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों पर बहस चल रही थी। सावरकर का पत्र भी माण्टेग्यू के पास गया, उस पर भी विचार किया गया।

हड़ताल चलते हुए छः मास हो गए थे। सावरकर इतनी लम्बी अवधि तक हड़ताल करने के कुपरिणाम से चिन्तित थे। इससे अनेक बन्दी रोगी हो गए थे और कुछ को तो क्षय जैसा भयंकर रोग भी लगने की सम्भावना हो गई थी। उधर अधिकारी भी कुछ मांग स्वीकार करने को तैयार हो गए थे। उस अवस्था में सावरकर ने बन्दियों को सुझाव दिया कि या तो जो मांग स्वीकार कर ली गयी है उनके आधार पर हड़ताल समाप्त कर दी जाए अन्यथा जो हड़ताल कर रहे हैं वे तो हड़ताल समाप्त करें और जिन्होंने अब तक हड़ताल नहीं की है, वे हड़ताल करना आरम्भ करें। हड़ताल तोड़ने वाले जब कोठरियों से बाहर निकलेंगे और पर्याप्त भोजन करेंगे तो उनका स्वास्थ्य सुधरने लग जाएगा। इस पर पर्याप्त चर्चा हुई और अन्त में हड़ताल समाप्त करने का निर्णय ले लिया गया।

हड़ताल सफल रही। इस हड़ताल की न केवल अण्डमान में अपितु देश भर में चर्चा भी हुई। देशभर के समाचार पत्रों में अण्डमान के राजनीतिक बन्दियों की दयनीय दशा के समाचार तथा उन पर लेख भी प्रकाशित होते रहे। उधर बारी ने स्वयं दण्डित न होने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न किया और अपने इस प्रयत्न में वह सफल गया। अन्ततः था तो वह अंग्रेजों का ही पिट्ठू वे क्या न उसको संरक्षण देते?

इस हड़ताल का सुपरिणाम यह हुआ कि कारागार के अधिकारियों का व्यवहार पूर्वापेक्षा नम्र होने लगा। अब तो जेल अधिकारी यहां तक कहने लगे कि चाहे आप लोग काम करो अथवा न करो, किन्तु मुख से 'नहीं' मत कहो।

किसी जमाने में पोर्ट ब्लेयर में परमेश्वर माने जाने वाले बारी का मूल्य तथा प्रतिष्ठा गिर गयी। साधारण बन्दी भी अब उसके आदेश की खुली अवहेलना कर दिया करते थे। यह व्यवहार देखकर बारी भी अब कुछ कुछ उदासीन सा रहने लगा था। उसका उद्देश्य था उसकी नौकरी के बचे खुचे दिन किसी प्रकार ठीक ठाक बीत जाएं। फिर भी राजनीतिक बन्दी उसका उपहास किए बिना रहते नहीं थे।

इस समय तक युद्ध की स्थिति भी बदल गयी थी। जर्मनी की विजय की आशा धूमिल होने लगी थी। इसी बीच पंजाब का रामरक्खा और बंगाल का जोगीश चन्द्र अपनी मांगों के समर्थन तथा अधिकारियों की हठधर्मी के कारण प्राणोत्सर्ग कर चुके थे। सावरकर का हृदय कहता था कि एक दिन हो सकता है उनको भी इस प्रकार जाना न पड़ जाए। किन्तु उनके लिए यह चमत्कार का ही विषय था कि विगत तीन चार वर्ष की अवधि में उनके देखते-देखते अनेक लोग स्वर्ग सिधार गए थे। किन्तु सावरकर स्वयं आठ-नौ वर्ष तक घोर यातनाओं को सहने के उपरान्त भी मृत्यु की चुनौती स्वीकार कर उसे दूर भगाते रहे थे।

सावरकर के अण्डमान के जीवन में यह अन्तिम हड़ताल थी, जो इससे पूर्व की अन्य हड़तालों की ही भांति सफल रही थी। यह सबके लिए प्रसन्नता का विषय था।

मुक्ति के लिए अभियान

जब विश्व युद्ध आरम्भ हुआ था और जर्मन तथा रूस आदि मिलकर ब्रिटिशस के विरुद्ध मोर्चाबन्दी कर आगे बढ़ते जा रहे थे तो भारत के राजबन्दी सोचते थे कि जर्मन ने अब इंग्लैंड पर अधिकार किया और कल हम सब कारागार से मुक्त हुए। लगभग सभी बन्दी इसी प्रकार की आशा लगाए बैठे थे। परन्तु कालान्तर में जब जर्मनी की पराजय के समाचार आने लगे तो उनकी आशा भी क्षीण से क्षीणतर होती गयी। सभी बन्दी निराशा, कुण्ठा और उदासीनता का अनुभव करने लगे। किन्तु मन का फिर भी चैन कहां। क्योंकि अब जब अंग्रेजों की विजय हो गयी थी तो बन्दियों को यह आशा होने लगी कि विजय की प्रसन्नता में अंग्रेज सरकार बन्दियों को मुक्त करेगी। वे उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे जिस दिन उनकी रिहाई का आदेश आएगा। कुछ लोगों को यह आशा थी कि यदि रिहा न भी किए गए तो रियायत तो मिलेगी ही।

इसके साथ ही भारत वर्ष में यह चर्चा जोरों पर थी कि अण्डमान में जलवायु खराब होने के कारण और राजबन्दियों के साथ किए जाने वाले दुर्व्यवहार एवं उत्पीड़न के कारण उनकी दशा दयनीय होती जा रही है। सावरकर का इसी आशय का पत्र जब भारत के समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ तो इससे सर्वत्र यही चर्चा होने

लगी थी। कुछ ही दिनों में यह भी चर्चा चलने लगी कि सावरकर तथा कुछ अन्य बन्दियों को अण्डमान से भारत के कारागारों में भेज दिया जाएगा। किसी ने यह भी बताया कि सावरकर को सिंगापुर भेजा जाएगा। इसके साथ ही कुछ दिनों बाद वामनराव जोशी तथा एक दो अन्य बन्दियों को भारत भेज जाने के आदेश भी आ गए। जोशी तथा उनके साथी सावरकर से विदा लेने के लिए उनसे मिलने अस्पताल में गए। वह अवसर प्रसन्नता और उदासी का अवसर था। प्रसन्नता इसलिए कि उनके साथी भारत जा रहे थे, उदासी इसलिए कि बहुत दिनों के साथी बिछुड़ रहे थे।

विश्व युद्ध सन् १९१८ में समाप्त हो गया था। उसके तुरन्त बाद ही समस्त भारत में राजनीतिक बन्दियों की रिहाई के लिए प्रचार प्रसार किया जाने लगा था। जनसामान्य, प्रख्यात नेतागण, समाचार पत्र सभी एक स्वर से राजनीतिक बंदियों की रिहाई की मांग करने लगे थे। इस निमित्त स्थान-स्थान पर सभाएँ आयोजित की जातीं, बैठकें होतीं, प्रस्ताव पारित किए जाते। बम्बई की नेशनल यूनियन, अनन्तराव गद्रे, सेनापति बापट, तथा शिवराम परांजपे आदि ने इस कार्य में बढ़ चढ़ कर भाग लिया। उन्होंने इस निमित्त हस्ताक्षर अभियान आरम्भ किया और एक याचिका बनाकर भारत सचिव माटेग्यू के पास भिजवायी। किन्तु भारत सचिव ने उसको अस्वीकार कर दिया। उसी समय अमृतसर में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तो उसमें भी एक विशेष प्रस्ताव के माध्यम से राजनीतिक बन्दियों की रिहाई की मांग की गयी। महाराष्ट्र की जिला होम रूल लीग ने अलग से अपना प्रस्ताव भेजा।

इस सबका प्रभाव हुआ।

२४ दिसम्बर, १९१९ को राजनीतिक बन्दियों के लिए सम्राट की ओर से दया की घोषणा कर दी गयी। उस घोषणा में कहा गया—"मैं अपने वायसराय को निर्देश देता हूँ कि वह मेरी ओर से, मेरे नाम पर राजनीतिक बन्दियों को दी जाने वाली दया को यथोचित रूप से विचार कर और सब प्रकार की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए पूर्ण रूप से लागू करे। मेरा यह आदेश उन सभी के लिए भी लागू होगा जो किसी प्रकार के राजद्रोह अथवा इसी प्रकार के किसी अन्य द्रोह से सम्बन्धित हैं और बन्दी का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।"

इस घोषणा के आधार पर प्रान्तीय सरकारों ने अपने कारागारों के द्वार खोल दिए तथा सभी राजनीतिक बन्दियों को रिहा कर दिया गया। अण्डमान की सेलुलर जेल से अनेक राजनीतिक तथा सामान्य बन्दियों को रिहा कर दिया गया। यहाँ तक कि जो सावरकर के बाद आए थे अथवा जो सावरकर के साथ साथ एक ही आरोप में बन्दी बनाए गए थे उन सबको भी मुक्त कर दिया गया। किन्तु जनसुरक्षा के नाम पर भारत सरकार ने सावरकर को मुक्त करना उचित नहीं माना।

सावरकर का गिरता स्वास्थ्य

उधर शारीरिक दृष्टि से सावरकर की दशा दिन प्रति दिन बिगड़ती जा रही थी। सामान्यतया जब बन्दी को अस्पताल में भर्ती कराया जाता था तो थोड़े ही समय में उसकी दशा में सुधार होने लगता था। किन्तु सावरकर को तो आठ वर्ष बाद तब अस्पताल में डाला गया था जब उनकी दशा बहुत ही बिगड़ चुकी थी। अतः उन पर अस्पताल का प्रभाव उस गति से होना सम्भव नहीं था। हाँ, अस्पताल में आने के बाद उनकी देख भाल ठीक प्रकार से होने लगी थी। डाक्टरों का प्रयत्न रहता था कि सावरकर को वह खाद्य पदार्थ दिया जाए जिसको वे सरलता से पचा सकें। दूसरी ओर ज्वर को उतारने के लिए इतनी अधिक मात्रा में क्विनीन की गोलियाँ दी जाने लगीं कि उनसे उनकी पेचिश बढ़ गई। पेचिस के कारण उनकी पचाने की प्रक्रिया पूर्णतया नष्ट हो गई थी।

अण्डमान में रोगी पर टी० बी०, मलेरिया और पेचिस एक साथ ही आक्रमण करते थे। इन तीनों घातक रोगों के सम्मिलित आक्रमण से शरीर की पूर्ण शक्ति क्षीण हो जाती थी। सावरकर को मलेरिया तथा खून की पेचिस तो थी ही, छः मास के उपरान्त डाक्टरों को आशंका होने लगी कि कहीं उनको क्षय रोग न हो गया हो। अर्थात रोग रूपी अन्तिम शत्रु ने भी उन पर आक्रमण कर दिया था।

निदान हो जाने पर सावरकर की उसी विधि से चिकित्सा भी होने लगी। इस प्रकार एक वर्ष तक सावरकर जेल के अस्पताल में रहे। एक वर्ष बाद पुनः उनको जेल की पाँच नम्बर बैरिक की तीसरी मंजिल की कोठरी में बिलकुल एकान्त में लाकर रख दिया गया। एकान्त में पड़े-पड़े अनेक प्रकार के विचार उनके मन में उठने लगते। शरीर क्षीण होने से उनकी दृष्टि भी क्षीण हो गयी थी, अतः पढ़ना बन्द कर देना पड़ा। अकेले में लेटे-लेटे सोचते रहने के अतिरिक्त उनको और कुछ काम ही नहीं था। इसी विचार मन्थन में इसी ऊहापोह में उन्होंने अपनी कविता 'मृत्यु शैया पर' की रचना की थी।

जिस समय सावरकर ने अपनी 'मृत्यु शैया पर' नामक कविता की रचना की थी, उस समय कदाचित उनको यह आशा कम ही रही होगी कि जब वह कविता पूर्ण हो जाएगी, तब उसको पुनरेण पढ़ने के लिए वे जीवित भी रहेंगे अथवा नहीं। क्योंकि उनका स्वास्थ्य इतना गिर गया था और फिर जिसको एक साथ तीन तीन रोग घेरे हुए हों, वह भी अण्डमान के कारागार में, उसका बच कर निकलना कठिन ही समझा जाता था।

सावरकर को जब पहली बार इंग्लैंड में बन्दी बनाया गया था तो उन्हें यही सम्भावना थी कि उनको फाँसी पर लटका दिया जाएगा। उस समय की अवस्था में उन्होंने 'मेरा मृत्यु पत्र' कविता की रचना की थी। जब उन्हें कारागार में रहते हुए एक सप्ताह बीत गया तो उन्होंने 'प्रथम हफ्ता' शीर्षक कविता की रचना की थी। तदनन्तर अब जब वे स्वयं को मृत्यु की देहरी पर खड़ा पाते तो उन्होंने 'मृत्यु शैया पर

कविता की रचना कर डाली थी। कालान्तर में ये कविताएँ सावरकर की अंग्रेजी पुस्तक 'इको फ्रोम दि अण्डमान' में प्रकाशित हुईं।

यों एकान्त कोठरी में सावरकर अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे।

परिजनों से भेंट

अण्डमान की कारागार के नियमों के अनुसार अन्य बन्दियों को पांच वर्ष में एक बार अपने परिजनों से मिलने की सुविधा प्राप्त थी। यहां तक कि कुछ दम्पतियों को कुछ सप्ताह तक एक साथ रहने की भी सुविधा प्रदान की जाती थी। इस प्रकार अनेक बन्दियों के सम्बन्धी कुछ सप्ताह के लिए अण्डमान आकर रहने की सुविधा प्राप्त करते रहे थे।

सावरकर के परिवार को यह सुविधा, केवल भेंट की सुविधा, आठ वर्ष बाद और वह भी न जाने कितने आवेदन, प्रतिवेदन तथा प्रार्थनाओं तथा सिफारिशों के बाद प्राप्त हुई थी। यहां तक कि एक बार तो उनके अनुज डा० नारायण दामोदर सावरकर तथा सावरकर की पत्नी अण्डमान में उनसे भेंट करने के लिए कलकत्ता तक पहुँच गए थे। किन्तु वहां पहुँचने के उपरान्त तार से उनको सूचित किया गया कि उनकी भेंट की अनुमति रद्द की जाती है। ऐसा क्रूर मजाक शायद ही किसी के साथ किया गया हो।

नारायण सावरकर जब बम्बई सरकार से अण्डमान जाकर मिलने के लिए प्रार्थना पत्र भेजते तो उनको उत्तर दिया जाता कि पोर्ट ब्लेयर से पत्र व्यवहार करो। जब वे पोर्ट ब्लेयर के कमिश्नर को प्रार्थना पत्र भेजते तो वहां से उत्तर मिलता कि भारत सरकार ही यह अनुमति प्रदान कर सकती है। हिन्दुस्तान सरकार को आवेदन पत्र दिया गया तो उत्तर मिला कि बम्बई राज्य सरकार के माध्यम से आवेदन आने पर विचार होगा। टालमटोल का यह क्रम वर्षों तक चलता रहा था।

अन्ततः आठ वर्ष बाद उनको अण्डमान में जाकर मिलने की अनुमति प्रदान की गई। मई १९१९ के अन्तिम सप्ताह में उनके परिजन, छोटा भाई नारायण दामोदर सावरकर, उनकी पत्नी तथा सावरकर की पत्नी भेंट करने के लिए पहुंचे थे। कारागार के अधीक्षक की उपस्थिति में इस भेंट की व्यवस्था की गयी थी। पर्दे के पीछे एक मराठी भाषी वार्डर की नियुक्ति की गयी थी, जिससे कि उनके मध्य होने वाले वार्तालाप को ठीक प्रकार से समझा जा सके। कदाचित यहाँ पर भी अधिकारियों को यह आशंका रही होगी कि कहीं सावरकर को मुक्त करने के लिए किसी प्रकार कोई षडयन्त्र न रचा जा रहा हो।

आठ वर्ष बाद सावरकर ने अपनी पत्नी, भाई तथा उसकी पत्नी को देखा था। सावरकर को उन्हें देखकर यह प्रसन्नता हुई कि परिवार पर आने वाले इन भीषण संकटों में भी ये लोग अपनी जीवन नौका को किसी न किसी प्रकार खेते चले आए हैं। उन भीषण संकटों में भी वे अडिग और दृढ़ रहे थे, सावरकर के लिए यह

अत्यधिक प्रसन्नता की ही बात थी। इस भेंट के विषय मे सावरकर के लिए अत्यधिक प्रसन्नता की ही बात थी। इस भेंट के विषय म सावरकर ने लिखा है—"हम सबने लगभग डेढ घटे तक अनेक विषयो पर उस निश्चिन्तता के साथ बातचीत की जिस निश्चिन्तता से कन्या का विवाह निर्विघ्न सम्पन्न कर परिवार के लोग बैठकर गपशप करते हैं।"

अपनी भाभी के प्रति सावरकर की अपार श्रद्धा और भक्ति थी। सावरकर बन्धुओ की राजनीतिक और क्रान्तिकारी गतिविधियो मे उस वीर साहसी महिला का सक्रिय समर्थन रहता था। सावरकर की वह बाल्यकाल की सखा थी, ममतामयी माता थी, उनकी गतिविधियो मे अत्यन्त विश्वसनीय सहयोगिनी थी। अपने पति तथा देवर से मिलने के लिए अण्डमान आने के लिए वे वर्षों से आतुर थी, यह बात सावरकर जानते थे। आखिर वही पूज्या माँ-स्वरूपा भाभी आज मिलने क्यो नहीं आयी, यही सावरकर के लिए पहेली बनी हुई थी।

आखिर सावरकर ने साहस करके प्रश्न कर ही दिया। तब उनको पता चला कि वे अब इस लोक मे नही हैं। अन्यथा क्या यह सम्भव था कि भेंट की अनुमति मिले और भाभी न आएँ। समाचार सुनकर सावरकर हतप्रभ से हो गए। बिना एक शब्द कहे उन्होंने उस समाचार का विषवत अपने हृदय मे उडेल लिया। स्वय को अथवा कि सामने वालो को, सान्त्वना सी देते हुए उस समय सावरकर ने कहा, "यह ससार ही परिवर्तन शील है। जो आज है वह कल नहीं। धर्मशास्त्रो मे स्पष्ट कहा गया है कि अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए वीरता के साथ रणांगण म सघर्ष करती हुई बलिदान देने वाली महिला सीधी स्वर्ग को जाती है। भाभी भी स्वाधीनता की एक ज्योतिपुज थी, उनके शरीर मुक्त हो जाने पर रोना या दुःख व्यक्त करना उचित नही है।"

सावरकर के बडे भाई गणेश सावरकर भी तब तक वहीं थे। तीनों भाइयों की यह परस्पर भेंट बारह वर्ष बाद हो रही थी। बारह वर्ष पूर्व जब सावरकर १९०६ मे लन्दन के लिए प्रस्थान कर रहे थे तो उस समय दोनो भाई उनको विदा करने के लिए बम्बई के समुद्र तट पर आए थे। उसके बाद मई १९१९ मे केवल डेढ घण्टे के लिए एक साथ मिलकर बातें करने का अवसर मिल रहा था।

सावरकर को अपनी पत्नी से भी आधा घण्टा एकान्त मे बात करने का अवसर दिया गया था।

परिवार की इच्छा थी कि चार छ दिन उस टापू मे रहकर वहाँ के दृश्य देखें, किन्तु उन्हें इसकी स्वीकृति नही दी गयी। कदाचित इसम भी सरकार को यह भय रहा होगा कि कहीं वे वहाँ रहकर सावरकर को मुक्त कराने का षड्यन्त्र न करें। अण्डमान के अनेक जन सावरकर के परिवार से मिलने के लिए आतुर थे, किन्तु किसी को भी उनसे नही मिलने दिया गया। तदपि, इस कडे प्रतिबन्ध के होने पर भी कुछ लोग परिवार से मिलने मे सफल हो ही गए थे। अपनी ओर से उन्हें फल आदि भेंट कर उनके प्रति अपने श्रद्धा सम्मान की भावना प्रदर्शित की थी।

डेढ घण्टे बाद यह भेंट वार्ता समाप्त की गयी। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है सावरकर के परिवार को न तो दो चार दिन के लिए अण्डमान में रहने की अनुमति प्रदान की गयी और न ही उत्सुक लोगों से उनको मिलने दिया गया।

उनको तुरन्त स्टीमर पर चढा कर पोर्ट ब्लेयर से रवाना कर दिया गया।

सावरकर को हवाई प्रणाम

परिवार को विदा हो गया। सावरकर का पुन वही दैनिक क्रम आरम्भ हुआ। स्वास्थ्य निरन्तर गिरता जा रहा था। बन्दियो को साक्षर करने का उनका सकल्प अब जोर मारने लगा। उसके लिए सावरकर को भाँति भाँति के यत्न करने पडते थे। यहाँ तक कि एक गुजराती मुसलमान को उन्होंने रिश्वत में तमाखू देकर पढने के लिए तैयार किया किया था। एक पजाबी ब्राह्मण को भी तमाखू का लालच दिया गया किन्तु वह फिर भी तैयार नही हुआ तो सावरकर ने उसको अपने लिए अस्पताल से मिलने वाला दूध देने का वचन दिया। इस प्रकार उसने पढना आरम्भ किया। एक बार पढने आने के बाद फिर निरन्तर आते रहगे, ऐसी बात भी नही थी। नित्य ही उनको पढने के लिए प्रेरित करना पडता था।

उन बन्दियो से जब खुलकर बातें होती तो वे अनेक विचित्र घटनाओ का उल्लेख करते। एक बार एक बन्दी ने सावरकर से कहा, "आप जब से अण्डमान आए है तब से अमेरिका की ओर से जो जहाज भारत आते हैं, उनम जो भारतीय यात्री होते हैं वे उस जहाज के सिगापुर से आगे बढते ही अण्डमान की ओर मुख करके, झुककर हाथ जोडते हैं। व कहा करते हैं कि इस अण्डमान की कारा मे राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए सावरकर जसे राष्ट्रभक्त कष्ट और यातनाएँ सहन कर रहे हैं।'

उन्ही दिनो बारी के सेवानिवृत्त होने का समय आया। उसकी सेवा के अन्तिम वर्षों म वसे भी राजबन्दियो ने उसके दाँत तोड दिए थे अब तो वह उतना खटखना नही रह गया था। उसने अपनी सेवा के अन्तिम दिनो मे वार्डरो से कहना आरम्भ कर दिया था, "राजबन्दियों की बातो का बतगड मत बनाओ। उन सबको कुछ न कुछ काम देते रहो। यदि कोई काम न करे तो शान्त हो जाओ। अधिकारियो के कानों तक कोई बात नही जानी चाहिए। वे जो चाहे करें, तुम अपने काम से काम रखो।"

सेवा निवृत्त होने से पाँच वर्ष पूर्व बारी जब एक बार अवकाश लेकर आयर-लैंड जाने लगा तो सावरकर से कहने लगा, "मि० सावरकर! सुना है तुम्हारे कुछ साथी मेरे भारत में पैर रखते ही मुझ पर बम फैंकने की योजना बना रहे है?

सावरकर ने सुनकर व्यग्य करते हुए कहा "मुझे तो इस बात का बिलकुल भी विश्वास नहीं होता। भारतीय क्रान्तिकारी इतने मूर्ख नही है कि वे किसी कौवे या गीध की हत्या के लिए बम' का उपयोग करें। यदि उन्हें बम ही फकना होगा तो किसी शेर पर फैंकेंगे।'

बारी का अन्त

किन्तु अब जब बारी सेवानिवृत्त होकर जाने लगा तो उसके मन म भय समा

रहा था। वह सोचता था कि कहीं उसको इस संसार से ही मुक्ति न मिल जाए। रह-रह कर उसको अपने कुकृत्यों का स्मरण हो जाता था। सहस्रों बंदियों के शापों के उपहार से बारी की कमर टूट गयी थी। सेवा निवृत्त होने पर अण्डमान से बारी जब तक भारत पहुँचा तब तक उसका शरीर रोग से जर्जर हो गया था। अण्डमान से सेवा मुक्त होने के उपरान्त वह आयरलैंड नहीं पहुँच पाया था, भारत में ही उसकी मृत्यु हो गयी।

बारी के परमभक्त और चाटुकार मिर्ज़ाखान की भी अकड़ समाप्त हो गयी थी। वह भी अनेक प्रसंगों पर सावरकर से क्षमा याचना किया करता था। यहाँ तक कि एक बार उसका एक हाथ किसी प्रकार खराब हो गया तो उसके ठीक होने के लिए उसने सावरकर से आशीर्वाद माँगा और कालान्तर में ठीक उपचार से उसका वह हाथ ठीक हो गया तो उसने यही समझा कि सावरकर के आशीर्वाद से ही वह ठीक हुआ है। बारी के जाने के सात आठ मास बाद मिर्ज़ा खान को भी कारागार से मुक्ति हो गयी थी। उसके विदा होते ही कारागार के पठान, बलोच और सिन्धी वार्डरों के हौसले भी पस्त हो गये थे। अब चारों ओर हिंदू वार्डर आदि थे। कारागार के बाहर भी सब हिंदू वार्डर ही नियुक्त हो गए थे। अब स्वयं पठान लोग कहा करते थे, 'अब क्या बोलना, अब तो हिंदू राज हो गया है।'

बारी के जाने के बाद नया जेलर आया तो उसने आते ही अपनी धाक जमाने का यत्न किया। उसने अपने अधिकारियों से परामर्श करके बलिष्ठ और सौम्य लोगों को चुनकर कोल्हू पर लगाने की योजना बनाई। किंतु सभी बंदियों ने कोल्हू चलाने से इनकार कर दिया। जेलर ने बारी का तरीका अपनाना चाहा। उसने कुछ बंदियों को कोल्हू से बंधवा दिया और कुछ को बनात कोल्हू पर हाथ रखवा कर उसे चलवाना चाहा। इससे एक गुजराती ब्राह्मण के हाथ पर छिल गए। सारे कारागार में यह बात फैल गयी।

सारे राजबंदियों ने भूख हड़ताल का निश्चय कर लिया और थालियाँ हाथ में लेकर सब बाहर निकल आए। जेलर ने जब उनके तमतमाए मुख देखे तो वह समझ गया कि अब इन पर उसका यह दाँव नहीं चल सकता। कुछ बंदियों ने उसको धमकी दे दी कि उनके उत्पीड़न का जब तक निर्णय नहीं हो जाता तब तक वे लोग अन्न ग्रहण नहीं करेंगे। जेलर ने कहा, "गुजराती को कोल्हू में जोतने जाने की बात गलत है।' तभी एक पंजाबी बंदी ने कहा, "तो क्या हमारा गुजराती भाई झूठ बोल रहा है? देख ले, यदि तूने इस प्रकार की बदमाशी की तो इसी थाली से तेरा सिर चकनाचूर कर दूंगा।"

जेलर तो ऐसा सुनते ही पसीना-पसीना हो गया। वह वहाँ से खिसक गया और बन्दियों को कोल्हुओं पर से हटाकर उन्हें कोठरियों में बन्द कर दिया। जब सुपरिंटेंडेंट ने आश्वासन दिया कि गुजराती समेत किसी भी बंदी को कोल्हू पर नहीं लगाया जाएगा, तभी जाकर बंदियों ने अपना अनशन तोड़ा।

एक बार जेलर ने किसी बन्दी को गाली दे दी तो उसको भी गाली सुननी पड़ी। न केवल इतना अपितु उस सप्ताह चीफ कमिश्नर निरीक्षण के लिए आने वाला था। बन्दियो के पास आकर गिड़गिड़ाया और क्षमा मांगने लगा। चीफ कमिश्नर को जब उसकी करतूत बतायी गयी तो उसने उसको डांटा और चेतावनी भी दी। परिणाम स्वरूप भविष्य म ऐसी कोई घटना नही घटी।

कुछ दिनो बाद बारी का साला डिगिन्स जेलर नियुक्त होकर आया। वह आयरिश होने पर भी भारतीयो के प्रति स्नेह भाव रखता था। तथा सुपठित होने से अध्ययनशील था। बन्दियो के साथ सौम्य व्यवहार के माध्यम से वह मनचाहा काम करवा लेता था। वह यत्न करता था कि बन्दियो को नियमानुसार मिलने वाला सब सुविधायें मिले। इसके लिए कई बार उसको उच्च अधिकारियो का कोप भाजन भी बनना पड़ा था।

जाँच आयोग का नाटक

इन्ही दिनो जेल जाच आयोग की नियुक्ति हुई और जो आयोग जाँच के लिए अण्डमान गया वह सबसे पहले सावरकर से ही मिला। आयोग के सभी सदस्य सावरकर से परिचित थे। प्रारम्भिक कुशल क्षेम के उपरान्त जब उनसे जेल के विषय में पूछना आरम्भ किया तो सावरकर ने सबसे पहले मानसिंह के उत्पीड़न का मामला सम्मुख रखा। उसे सुनकर आयोग का भारतीय सदस्य क्रुद्ध होकर सावरकर से पूछने लगा, "आप यह कैसे कह सकते है कि उसके शरीर पर जो घाव आदि थे वे मारपीट के थे?"

सावरकर ने उत्तर दिया, "तो क्या वे घाव शरीर पर स्वयं उभर आए थे?"

दूसरा सदस्य बोला, 'वह जीने से नीचे उतरते समय लुढक गया था, इससे उसके शरीर पर घाव आ गए होगे। और दूसरे फिर मार पीट के समय आप सामने तो थे नही। फिर आप कैसे कह सकते है कि वे घाव मारपीट के ही थे। आप सुनी सुनाई बात ही तो कह रहे हैं।'

सावरकर ने भी उसी की भाषा में उत्तर दिया 'जब वह जीने से लुढका था तो क्या आप वहाँ पर थे? आप भी तो सुनी सुनाई बात ही कह रहे हैं? मैं घटना के समय कारागार में तो था, किन्तु आप तो सागर के उस पार बहुत दूर भारतवर्ष में थे। मैं तो उस दीवार के समीप था जहाँ से मैंने मानसिंह की पिटाई के समय चिल्लाहट सुनी थी। दौड़ धूप तथा तमाम गड़बड़ी अपनी आँखो से देखी और जो व्यक्ति वहाँ पर उपस्थित थे उन्होंने सारी घटना मुझे पाँच मिनट बाद ही सुना दी थी।

खिसियाना सा वह बोला "हम तो अधिकारियो ने जो रिपोर्ट दी है उसके आधार पर ही मैंने ऐसा कहा है।'

सावरकर ने कहा यहाँ के अधिकारी तो आपको एक पक्षीय रिपोर्ट ही देंगे। वे तो सत्य पर पर्दा डालकर स्वयं को निर्दोष सिद्ध करेंगे ही। मुझे तो उन

बन्दियो ने आखो देखी घटना बताई थी और फिर दूसरे स्वय मैंने अस्पताल मे मानसिंह के शरीर पर छडियो के नीले चिन्ह देखे। अत आपको मेरी बात पर विश्वास करना चाहिए।"

सावरकर के तर्कों का उनके पास कोई उत्तर तो था नही। एक अन्य सदस्य ने विषय बदलते हुए पूछ लिया, "यदि इस कारागार से आपको मुक्त कर दिया गया तो बाहर जाकर आप क्या करेंगे?"

सावरकर के उत्तर देने से पहले ही एक अन्य सदस्य बोल पडा "राजद्रोह फैलाने का अपना पुराना काम ही करेंगे और क्या करेंगे।"

सावरकर ने कहा, 'लगता है आप अन्तर्ज्ञानी है। मैंने बाहर जाकर फिर राजद्रोह किया तो आपको मुझे बन्दी बनाने का भी पुराना अधिकार तो होगा ही। किन्तु आपको तो यह देखना चाहिए कि मैं आजकल क्या कर रहा हूँ। देखिए गत पाँच वर्षो मे मुझ पर एक भी अभियोग नही चला है। जबकि जेल तोड कर भागने वालो को एक वर्ष से अधिक बन्द नही रखा गया। मेरा तथा अन्य राजनीतिक बन्दियो का आचरण अच्छा होने पर भी जेल मे बन्द रखना न्याय तो नहीं है।"

इस चर्चा मे सावरकर ने अण्डमान कारागार मे दी जाने वाली यातनाओ का विस्तार से वर्णन किया। लगभग डेढ घटे तक वार्तालाप के उपरान्त आयोग ने सावरकर स कहा कि इन सब बातो को यदि वे लिख कर भेज सकें तो उनके लिए उपयोगी सिद्ध होगी। उन्होंने तीन चार अन्य बन्दियो के आवेदन पत्र भी मँगवाए। बाहर के लोगो ने अपने अलग स ज्ञापन दिए। सभी म अन्यान्य बातो के अतिरिक्त अण्डमान उपनिवेश को बन्द करने की भी माँग की थी। इसी दौरान भारत के समाचार पत्रो ने भी अण्डमान उपनिवेश को बन्द करने की माँग रखनी आरम्भ कर दी।

सावरकर ने अपने ज्ञापन मे जेल सुधार की बातें, दण्डित व्यक्ति के मानसिक, आत्मिक तथा शारीरिक सुधार की ओर ध्यान दिया जाना आदि सभी बातें विस्तार से लिखी। उन्होन अण्डमान को जल सेना का दुर्ग बनाने का भी सुझाव दिया था जिसे सुनकर सदस्य मुस्कुरा दिए थे। उस समय तो बात यो ही टल गयी किन्तु १९२६ मे भारत सरकार ने इस दिशा पर काम करना आरम्भ कर दिया था।

द्वितीय भेंट

नवम्बर सन १९२० मे सावरकर को विदित हुआ कि उनके लघु भ्राता डाक्टर नारायण सावरकर को एक बार पुन उनसे भेंट का सुअवसर प्राप्त हो गया है। सावरकर को इस भेंट से जहाँ अतीव प्रसन्नता हुई, वही उनको दुख भी हुआ। क्यो कि वे अनुभव करते थे कि इस बार उनका भाई जब उनके तथा बडे भाई सावरकर के शरीरो को देखेगा तो उसको बहुत निराशा होगी। छोटे भाई को नि हुई अथवा नहीं, यह कहा नही जा सकता, किन्तु सावरकर अब स्वय बहुत नि चुके थे।

इस बार भेंट करने के लिए सावरकर की पत्नी तथा छोटा भाई ही आए थे। नारायण की पत्नी नहीं आ पायी थी। सावरकर ने इस भेंट के विषय में अपनी पुस्तक 'माझी जन्म ठेप' में लिखा है—

"मेरे कनिष्ठ बंधु हमसे मिलने के लिए दूसरी बार अण्डमान आये। हम दोनों भाइयों की मुक्ति की अब आशा नहीं रह गयी थी। ज्येष्ठ बंधु तो शारीरिक दृष्टि से बहुत ही दुर्बल हो चुके थे। ऐसी स्थिति में मेरे मन में विचार आया कि कदाचित अपने परिजनों से यह अंतिम भेंट हो। यदि तीसरी भेंट की अनुमति मिली भी तो एक वर्ष के बाद ही तो मिल पाएगी। परन्तु क्या एक वर्ष तक यह शरीर चल पाएगा?

"मन में धैर्य रखकर कनिष्ठ बंधु से मैंने कहा, 'मैं यह उचित नहीं समझता कि वस्तुस्थिति को तुमसे छिपाया जाए। अचानक यदि कोई दुःखद समाचार मिलता है तो उससे धक्का सा लगता है। तुम उस दुःखद समाचार को सुनने का मन बना सको इसके लिए मैं पहले ही तुमको बता देना चाहता हूँ कि कालान्तर में किसी भी दिन तुमको हम दोनों भाइयों के जीवन के अन्त होने का समाचार मिल सकता है। हम लोगों का शरीर अब अधिक सहन करने योग्य नहीं रह गया है। कदाचित तुम्हारे साथ हमारी यह अंतिम भेंट हो।'

हम पहले भी उल्लेख कर आए हैं कि कभी कभी सावरकर में निराशा का भाव उत्पन्न होता था। ऐसी एक अवस्था पर उन्होंने आत्महत्या तक का निश्चय कर लिया था। इस बार तो वास्तव में उन दोनों भाइयों का शरीरक्षय हो चुका था अतः यह भाव उठना स्वाभाविक था।

पिछली भेंट के समान ही यह भेंट अल्पकालिक रही।

सावरकर जेल के अन्दर से अपनी रिहाई के लिए आवेदन करते रहे और बाहर भारत के नेतागण भी अपनी ओर से उनकी रिहाई के लिए पत्राचार करते रहे। 'नेशनल यूनियन' इस कार्य में बहुत सक्रिय थी। किन्तु परिणाम आशाजनक नहीं निकल रहा था।

दिन बीतते गये। जांच आयोग ने सरकार को अपनी रिपोर्ट दे दी। तदनुसार सरकार ने अण्डमान उपनिवेश को समाप्त करने का निर्णय भी कर लिया। अण्डमान के निवासी अब स्वयं को भारत से लगा हुआ समझने लगे थे।

उन्हीं दिनों अर्थात अगस्त सन १९२० में ही तिलक का देहान्त हो गया। इस का देशव्यापी प्रभाव हुआ। इस प्रभाव से अण्डमान भी अछूता नहीं रहा। अण्डमान में ज्यों ही यह समाचार पहुँचा सभी बंदियों ने एक दिन का उपवास किया। जेल अधिकारियों को इसकी कानोंकान खबर तक नहीं हुई।

जन जागृति और राजक्षमा

भारत में नेशनल यूनियन सावरकर आदि की रिहाई के लिए यत्न कर रही

थी। इसके साथ ही वह भारत मे प्रचार माध्यमो मे जन-जागृति अभियान भी चला रही थी। उनके इस अभियान का बहुत प्रभाव दिखायी देने लगा था। पर्यवेक्षकों का कहना था कि राजनीति के इतिहास मे यह जन जागृति अभियान एक आश्चर्य की बात थी। नारायण सावरकर इसमे बहुत सक्रिय रूप से भाग ले रहे थे।

जब आन्दोलन ने जड पकड ली तो 'नेशनल यूनियन' ने हस्ताक्षर अभियान आरम्भ किया। ७० हजार व्यक्तियो के हस्ताक्षरों से युक्त एक ज्ञापन तैयार किया गया जिसमे क्रान्तिकारियो सहित सभी राजनीतिक बन्दियो को कारामुक्त करने की मांग की गयी। इस ज्ञापन मे सावरकर बन्धुओ की रिहाई पर विशेष बल दिया गया था।

सावरकर को जब इस ज्ञापन का समाचार मिला तो उन्होंने नेशनल यूनियन के बन्धुओ को कृतज्ञता का पत्र लिखा और कहा कि उनका प्रयत्न कभी न कभी अवश्य फलीभूत होगा। इसका यह लाभ तो त्वरित हुआ कि प्रत्येक देशवासी की दृष्टि मे राजबन्दियो की छवि तथा प्रतिष्ठा उभर कर आ गयी।

और वैसा ही हुआ भी। कुछ मास बाद सरकार ने घोषणा कर दी कि प्रत्येक राजबन्दी को राजक्षमा प्रदान कर कारा मुक्त कर दिया जाएगा। इस प्रकार का समाचार एक सिख बन्दी ने बडी प्रसन्नता प्रकट करते हुए सावरकर को सुनाया, "बाबू जी! खुशी का समाचार सुनो। आज राजबन्दियो की रिहाई का आदेश आ गया है। आप सब मुक्त हो गए "

सावरकर की स्थिति विचित्र थी। वे समझते थे कि सम्भव है आदेश आ गया हो। किन्तु उनकी अपनी मुक्ति मे अभी भी सन्देह था। क्योंकि एक बार १९११ मे भी एक बन्दी इसी प्रकार दौडता हुआ आ कर मुक्ति का समाचार दे गया था। उसे सुन कर सबने अपने अपने बिस्तर तक बांध लिए थे। उस प्रसंग को बीते आठ नौ वर्ष हो गए थे और वे सभी लोग अभी तक कारागार मे ही बन्द थे। सावरकर अपने साथी की बात पर अविश्वास भी नही कर सके।

सावरकर ने उससे पूछा, "इस समाचार का आधार क्या है?"

उसने अपनी जेब से तार निकाल कर दिखा दिया। उन दिनो राजबन्दियो की समाचार व्यवस्था बडी उत्तम हो गयी थी। तार मे लिखा था—सार्वजनिक शान्ति के समर्थक राजनीतिक बन्दी ही मुक्त होगे।

तार पढकर सावरकर समझ गए कि अभी भी उन दोनो भाइयो सहित अन्य अनेक उग्रवादी बन्दियो को मुक्त नही किया जाएगा। हां कुछ बन्दी अवश्य मुक्त होगे।

वही हुआ। इस राजक्षमा मे सावरकर आदि उग्रवादियो को मुक्त नही किया गया। सर्वप्रथम पजाब तथा गुजरात के उन सैनिकों को मुक्त किया गया था जिन्हे दगो के आरोप मे अण्डमान भेजा गया था। उसके बाद माणिकटोला बम काण्ड से सम्बन्धित और पजाब और बनारस के अभियोग के कुछ आजन्म कारावास का दण्ड पाने वालो को मुक्त किया गया। उनको विदा करते हुए सावरकर ने उनसे कहा, "आज की

मुक्ति का आनन्द क्षणिक है। अभी तो आपको बाहर जा कर भारत माता की मुक्ति के लिए और जुझारू बन कर संघर्ष करना होगा।"

सरकार को इन राजबन्दियों पर सन्देह था। अतः मुक्त करते समय उनसे एक करार पत्र पर हस्ताक्षर करवाए गए। उसमें लिखा था—

"मैं आगे चल कर पुनः अवधि तक न तो राजनीति में भाग लूंगा और न राज्य क्रान्ति में। यदि मुझ पर पुनः राजद्रोह का आरोप सिद्ध हो जाए तो मैं आजीवन कारावास का दण्ड भुगतने को तत्पर रहूँगा।"

रिक्त स्थान पर बन्दी का नाम तथा अवधि का उल्लेख किया गया था।

राजबन्दियों में इस करार पत्र पर हस्ताक्षर करने अथवा न करने पर भी गरमागरम बहस हुई। मशर्त रिहा होना चाहिए अथवा नहीं, इस विषय पर विचार विमर्श हुआ। सावरकर ने इस विषय में अपना मत प्रकट करते हुए शिवाजी-जयसिंह, शिवाजी-अफजल खाँ, गुरु गोविन्दसिंह तथा भगवान श्री कृष्ण के अनेक उदाहरण देते हुए कहा कि राष्ट्रद्रोह तथा विश्वासघात को छोड़ कर नीति के अनुसार परिस्थिति वश युक्ति से काम लेना ही 'राजनीति' है। सावरकर को यह देख कर आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता हुई कि इतना कष्ट और यातनाएँ सहने के उपरान्त भी अनेक बन्दी ऐसे थे जो तिल भर भी डिगने के लिए तत्पर नहीं थे। सावरकर ने अपनी पुस्तक 'माझी जन्म ठेप' में लिखा है कि उनके प्रति मेरा मस्तक नत हो गया। अन्त में बहुत समझा कर और तर्क दे कर मैं उनको हस्ताक्षर करने के लिए सहमत कर पाया था।

इन मुक्त होने वालों में भाई परमानन्द भी थे। विदा होते समय उन्होंने सावरकर से कहा था "मुक्त होने की बारी तो आपकी थी, पर क्या करें।"

राजबन्दियों की मुक्ति का समाचार मिलते ही वहाँ बैठकें आरम्भ हो गयीं और सावरकर उनको निर्देश देते कि बाहर जाने के उपरान्त उनकी रणनीति क्या होनी चाहिए। यह एक प्रकार का उनका दीक्षान्त समारोह होता था।

अधिकांश राजबन्दियों को बारी बारी से टोली बनाकर मुक्त कर दिया गया। अन्त में सावरकर बन्धुओं सहित केवल तीस व्यक्ति रह गए थे। सावरकर बन्धुओं के मुक्त न किए जाने का कारण तो समझ में आता था किन्तु अन्य २८ बन्दियों का ऐसा क्या अपराध था जो उनको मुक्त नहीं किया गया यह समझ में नहीं आया।

सावरकर बन्धुओं के मुक्त न किए जाने से भारत भर में उनके प्रति सहानुभूति बढ़ती गयी। यहाँ तक कि दिल्ली की लेजिस्लेटिव कौंसिल में भी उनकी मुक्ति की माँग उठायी गयी। समाचार पत्रों में लेख प्रकाशित कर सावरकर बन्धुओं के प्रति सरकार के कठोर एवं अन्यायपूर्ण रुख की निन्दा की जाने लगी। यहाँ तक कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में भी सावरकर बन्धुओं सहित पंजाब के बाबा और रतन चौधरी को तुरन्त मुक्त करने की माँग का प्रस्ताव पारित किया गया।

अन्त में सावरकर को भी मुक्ति मिली। किन्तु न तो कारागार से और न ही अण्डमान से। बन्द कोठरी से कारागार के आँगन तक जाने की मुक्ति।

सावरकर अपनी सुविधा आदि के लिए लिखा पढ़ी करते रहे। अन्त में एक रुपया मासिक वेतन पर उन्हें जेल के फोरमन के पद पर नियुक्त कर दिया गया था। यह महत्व का पद था।

अण्डमान से विदाई

समय बीतता गया। मार्च १९२१ में के० वी० रंगास्वामी आयंगर ने कौंसिल में एक प्रस्ताव रख कर कौंसिल के गवर्नर जनरल से प्रार्थना की कि वे सावरकर के विषय पर विचार करें। उन्होंने तर्क दिया कि सावरकर का गांधी के विचारों से मत-भेद रहा है। उन्होंने सरकार द्वारा प्रदत्त सुधारों के अनुसार कार्य करने का निश्चय प्रकट किया था। इस प्रस्ताव पर कौंसिल में बहुत तर्क वितर्क और वाद विवाद हुआ। फिर भी उन दोनों भाइयों के वहाँ से स्थानान्तरण के आदेश ही दिए गए, उन्हें मुक्त नहीं किया गया। हयातखाँ और नवाब सर बहराम खाँ ने इस प्रस्ताव का भी घोर विरोध करते हुए कहा कि सावरकर भारत के लिए खतरा हैं। उन्होंने यहाँ तक कहा कि सरकार का उन्हें मुक्त करना आग में घी डालने के समान होगा। यह सुन कर आयंगर ने कहा कि वे सावरकर के चाल चलन का उत्तरदायित्व अपने पर लेते हैं।

इससे एक मास पूर्व ही सावरकर के सीने पर से 'डी' टिकट उतार लिया गया था। सावरकर को जब अण्डमान कारागार में रहते हुए दस वर्ष हो गए तो उन्होंने 'टिकट' प्राप्ति के लिए आवेदन किया था। यह टिकट भी उनको प्राप्त हो गया था। इस 'टिकट' का अर्थ था कि बंदी व्यक्ति स्वतंत्र रूप से अपना व्यवसाय कर सके तथा उपनिवेश में अपना घर बसा कर वहाँ सपरिवार रह सके। अन्यों को तो यह सुविधा तीन वर्ष बाद ही मिल गयी थी, किन्तु सावरकर बंधुओं को यह सुविधा दस वर्ष बाद, वह भी अनेक प्रकार की लिखा-पढ़ी करने के बाद प्राप्त हुई थी। वह भी उनको बाहर जा कर रहने की अनुमति थी। यह एक प्रकार से टिकट का उपहास मात्र ही था। अर्थात् जले पर नमक छिड़कना।

सावरकर निराश थे। दिन प्रति दिन कारागार के दिन घटते जाते थे और उसी प्रकार दिन प्रति दिन उनके जीवन के दिन भी कम होते जाते थे।

तब अचानक एक दिन कुछ अप्रत्याशित सा हो गया।

नित्य की भाँति सायंकाल की घंटी बजने पर सावरकर ने तेल गोदाम का ताला लगाया, बड़े जमादार को चाबी सौंपी और स्वयं अपनी कोठरी की ओर चल पड़े। कोठरी तक पहुँच भी नहीं पाए थे कि तभी एक वार्डर ने आ कर उनको एक पत्र देते हुए कहा, 'बाबू, अच्छी खबर है। आप लोगों को भारत भेजा रहा है।'

सावरकर ने पढ़ा, "आयुक्त के कार्यालय में आज भारत सरकार का आदेश आया है कि 'सावरकर बंधुओं' को भारत वापस भेज दिया जाए। बम्बई सरकार ने उन्हें बुलाया है।"

एक समाधान भी था कि ग्यारह वर्ष पूर्व इस कारागार में पांव रखते ही हिन्दू बन्दियों को एकता की जो दीक्षा उन्होंने दी थी, आज उसी कारागार से बाहर पग रखते समय अपने साथी बन्धुओं के समक्ष भी उनके मुख से वही शब्द निकले थे।

सावरकर अपने ज्येष्ठ बन्धु के विषय में निरन्तर चिन्तित थे। किन्तु जब वे कारागार के विकराल लौह द्वार के समीप पहुँचे तो अपने ज्येष्ठ बन्धु को भी वहां पर खड़ा पाया। जेलर ने उन दोनों को भारत ले जाने वाले सिपाहियों को सौंपा और कहा, "बेड़ियाँ निकाल दो, इनकी आवश्यकता नहीं है।" दोनों की बेड़ियां निकाल दी गईं।

विशाल लौह कपाट खुले। जिन कपाटों के खुलने पर सावरकर ने ११ वर्ष पूर्व कारागार के भीतर पग रखा था, आज उन्हीं कपाटों के माध्यम से कारागार से बाहर पग रख रहे थे। भीतर प्रविष्ट होते समय उन्हें कल्पना तक नहीं थी कि अब इससे जीवित बाहर निकल भी पाएँगे, किन्तु आज दोनों भाई जीवित बाहर निकल रहे थे।

जब उस विकराल लौह द्वार से बाहर निकले तब सावरकर को विश्वास हुआ कि वे जीवित रूप से अण्डमान से मुक्त हो गए हैं। उस पर अपने मन में उठने वाले विचारों को सावरकर ने यों लिपिबद्ध किया है—'बाबा! यह इतनी सी लोहे की देहरी, जीवन-मृत्यु की सीमा रखा है। मृत्यु की सीमा से जीवन की सीमा में उस बालिश्त भर की देहरी पार करके पैर रखा ही था कि मुख्य द्वार के बाहर भीड़ दिखायी पड़ी। अधिकारियों ने भीड़ पर नियन्त्रण के लिए व्यवस्था की हुई थी। अन्दर के बन्दी भी हमें द्वार तक छोड़ने के लिए आए थे। उनकी आँखों में तरते हुए आंसू हमें स्पष्ट दिखायी दे रहे थे। कुछ सुबक भी रहे थे।"

द्वार से आगे बढ़ कर दोनों भाई सिपाहियों के पहरे में समुद्र की ओर चलने ही लगे थे कि कुशावा पाटिल नामक एक बन्दी जमादार अधिकारी सहसा सामने आ गया। समीप आते ही छिपा कर रखा हुआ पुष्पहार उसने सावरकर के गले में डाल दिया। पहरेदार तो हल्ला कर ही रहे थे कि तब तक वह सावरकर के चरणों में झुका, नमस्कार किया सजल नयनों से उनको देखा और उनकी जय जयकार करता हुआ वहाँ से आगे बढ़ गया।

पुनः हथकड़ी

विधि का कैसा विरोधाभास है कि उधर वह बन्दी सावरकर के गले में पुष्पमाला डाल रहा था और इधर सिपाही सावरकर के हाथों में हथकड़ियाँ पहना रहे थे। पुष्पहार पहनाने वाला देशबन्धु, राष्ट्रभक्त बन्दी प्रेम के आदर का प्रतीक था तो हथकड़ी पहनाने वाला उस सरकार का प्रतीक था जो सावरकर का नाम तक मिटा डालने के लिए कृतसंकल्प थी।

समुद्र तट पर अण्डमान टापू के असंख्य जन सावरकर को विदाई देने के लिए एकत्रित थे। उन्हें अपना अन्तिम संदेश देते हुए सावरकर ने कहा, "अण्डमान में ही

यह सावरकर के एक मित्र का पत्र था। जो कारागार के बाहर उपनिवेश में रहता था। इससे पहले भी ऐसी अफवाहें अनेक बार सुनने को मिली थी। इसलिए सावरकर इन बातों को सुनने के अभ्यस्त हो गए थे और इससे उनके मन में किसी प्रकार की उमंग न उठना भी स्वाभाविक ही था।

सूचना भेजने वाले मित्र ने अन्त में लिखा था—'यह समाचार पुष्ट है, मैंने अपनी आँखों से उस आदेश को देखा है।'

इस 'पुष्ट समाचार' की बात पढ़ कर सावरकर के मन में विचार आया कि हो सकता है कि अण्डमान उपनिवेश में उनको ' ' रखने की अपेक्षा भारत सरकार देश की किसी कारागार में सड़ते रहने देना उपयुक्त समझती हो। और भी न जाने क्या-क्या विचार सावरकर के मन में उठते रहे। इन्हीं विचारों में उनकी रात बीती।

प्रातःकाल होने पर कारागार के अधिकारी ने उनसे कहा, "अपनी सभी वस्तुएं, पुस्तकें आदि समेट लो, आपको भारत जाना है।

अधिकारी ने जब यह कहा तो सावरकर को उस समाचार की पुष्टि हो गयी। और वे समझ गए कि 'इस कारागार' से मुक्ति का अवसर आ गया है। यद्यपि सामान्य बन्दी तो इस मुक्ति का अभिप्राय सदा से कारा मुक्ति ही समझ रहे थे। उन्हें क्या पता था कि यह एक कारागार से दूसरी कारागार में स्थानान्तरण मात्र है। फिर भी कारागार के बन्दी तथा अण्डमान के अन्य जन सावरकर की इस मुक्ति से प्रसन्न थे।

मन में उठने वाली अनेक प्रकार की विचार तरंगों के साथ-साथ सावरकर ने अपनी सभी सामग्री समेटी। अपनी कुछ पुस्तकें उन्होंने वहाँ के बन्दी साथियों को भेंट कर दी और कुछ पुस्तकें उपनिवेश के अपने मित्रों को 'उपहार' में दे दी। शेष सब पुस्तकें उन्होंने वहाँ के पुस्तकालय को भेंट कर दी।

अन्तिम दिन बाहर से निवास के लोग सावरकर से मिलने के लिए आने लगे। कारागार के अधिकारियों ने इस भेंट की छूट दे दी थी। भेंट करने वाले मित्र भांति भांति की वस्तुएँ सावरकर को भेंट करते थे। जो स्वयं नहीं आ पाए उन्होंने भी अपने साथियों के द्वारा उपहार भिजवाए थे। इस प्रकार दोपहर तक द्वार पर उपहार वस्तुओं का ढेर लग गया था। सावरकर ने वे सभी वस्तुएँ बन्दियों में वितरित कर दी।

सावरकर द्वारा जेल में गठित संस्था के लोग जब उनसे मिलने आए तो उन्होंने उनको संस्था की शपथ दिलाई—

एक देव, एक देश, एक आशा।
एक जाति, एक जीव, एक भाषा॥

सावरकर अपने मित्रों को इस प्रतिज्ञा का विस्तार से भावार्थ समझा रहे थे कि तभी वार्डर ने आकर कहा, "साहब आ रहा है और आपको ले जाने वाले सिपाही भी आ रहे हैं।

सावरकर उस समय एक प्रकार से भारी मन से वहाँ से उठे। किन्तु मन को

एक समाधान भी था कि ग्यारह वर्ष पूर्व इस कारागार में पाँव रखते ही हिन्दू बन्दियों को एकता की जो दीक्षा उन्होंने दी थी, आज उसी कारागार से बाहर पग रखते समय अपने साथी बन्धुओं के समक्ष भी उनके मुख से वही शब्द निकले थे।

सावरकर अपने ज्येष्ठ बन्धु के विषय में निरन्तर चिन्तित थे। किन्तु जब वे कारागार के विकराल लौह द्वार के समीप पहुँचे तो अपने ज्येष्ठ बन्धु को भी वहाँ पर खड़ा पाया। जेलर ने उन दोनों को भारत ले जाने वाले सिपाहियों को सौंपा और कहा, "बेड़ियाँ निकाल दो, इनकी आवश्यकता नहीं है।" दोनों की बेड़ियाँ निकाल दी गईं।

विशाल लौह कपाट खुले। जिन कपाटों के खुलने पर सावरकर ने ११ वर्ष पूर्व कारागार के भीतर पग रखा था, आज उन्हीं कपाटों के माध्यम से कारागार से बाहर पग रख रहे थे। भीतर प्रविष्ट होते समय उन्हें कल्पना तक नहीं थी कि अब इससे जीवित बाहर निकल भी पाएँगे, किन्तु आज दोनों भाई जीवित बाहर निकल रहे थे।

जब उस विकराल लौह द्वार से बाहर निकले तब सावरकर को विश्वास हुआ कि वे जीवित रूप से अण्डमान से मुक्त हो गए हैं। उस पर अपने मन में उठने वाले विचारों को सावरकर ने यों लिपिबद्ध किया है—"बाबा! यह इतनी सी लोहे की देहरी, जीवन मृत्यु की सीमा रखा है। मृत्यु की सीमा से जीवन की सीमा में उस बालिश्त भर की देहरी पार करके पैर रखा ही था कि मुख्य द्वार के बाहर भीड़ दिखायी पड़ी। अधिकारियों ने भीड़ पर नियन्त्रण के लिए व्यवस्था की हुई थी। अन्दर के बन्दी भी हमें द्वार तक छोड़ने के लिए आए थे। उनकी आँखों में तैरते हुए आँसू हमें स्पष्ट दिखायी दे रहे थे। कुछ सुबक भी रहे थे।"

द्वार से आगे बढ़ कर दोनों भाई सिपाहियों के पहरे में समुद्र की ओर चलने ही लगे थे कि कुशाबा पाटिल नामक एक बन्दी जमादार अधिकारी सहसा सामने आ गया। समीप आते ही छिपा कर रखा हुआ पुष्पहार उसने सावरकर के गले में डाल दिया। पहरेदार हो हल्ला कर ही रहे थे कि तब तक वह सावरकर के चरणों में झुका, नमस्कार किया, सजल नयनों से उनको देखा और उनकी जय जयकार करता हुआ वहाँ से आगे बढ़ गया।

पुनः हथकड़ी

विधि का कैसा विरोधाभास है कि उधर वह बन्दी सावरकर के गले में पुष्पमाला डाल रहा था और इधर सिपाही सावरकर के हाथों में हथकड़ियाँ पहना रहे थे। पुष्पहार पहनाने वाला देशबन्धु, राष्ट्रभक्त बन्दी प्रेम के आदर का प्रतीक था तो हथकड़ी पहनाने वाला उस सरकार का प्रतीक था जो सावरकर का नाम तक मिटा डालने के लिए कृतसंकल्प थी।

समुद्र तट पर अण्डमान टापू के असंख्य जन सावरकर को विदाई देने के लिए एकत्रित थे। उन्हें अपना अन्तिम सन्देश देते हुए सावरकर ने कहा, "अण्डमान में ही

रहो, कृषि करो। परस्पर विवाह करो। सन्तति उत्पन्न करो और हिन्दू संस्कृति के विकास मे सहभागी बनो।" (माझी जन्म ठेप)

२ मई सन् १९२१ का दिन।

'महाराजा' नामक जलपोत समुद्र के तट मे आ लगा। इसका गन्तव्य कलकत्ता था। सावरकर बन्धुओ को उस पर चढाया गया। जलपोत के तलघर म बंदियों के लिए विशेष व्यवस्था की गयी थी, वहीं दोनो बन्धुओ को भेज दिया गया। सावरकर विचार कर रहे थे कि दस वर्ष पूर्व उसी पिंजडे मे बन्द करके उनको अण्डमान लाया गया था। उस समय उस पिंजडे की यातनाओ की स्मृति होते ही उनका शरीर कांप उठा था।

पिंजडे के समीप जाते ही एक और सकट। पिंजडा पागलो से भरा हुआ था। अण्डमान के पागल उसी जलपोत से भारत ले जाए जा रहे थे। उन पागलो क साथ ही सावरकर बन्धुओ का उस पिंजडे मे बन्द कर दिया गया। पिंजडे मे जा कर देखा तो कोई हँस रहा था, कोई रो रहा था और कोई भद्दी भद्दी गालियाँ बक रहा था। उनका अधिकारी भी उन्ही पागलो मे से चुन कर रखा हुआ था। वह एक एक करके सब की पिटाई करता था। तिल धरने को स्थान न होने पर भी सावरकर बन्धुओ को उसमे ठूँस दिया गया था।

सावरकर बन्धुओ के लिए उसमे रहना दूभर हो गया। बडे भाई को वसे भी क्षयरोग था। सावरकर ने अनेक बार अधिकारियों से आग्रह किया कि उनके लिए कोई अलग व्यवस्था की जाए। बहुत कहने सुनने पर और उस जलपोत मे यात्रा कर रहे अन्य यात्रियो के बहुत आग्रह करने पर किसी प्रकार पिंजरे के बाहर एक कोने म दोनो बन्धुओ को स्थान दिया गया। किन्तु वहाँ कही से भी वायु के प्रवेश के लिए कोई प्रावधान ही नही था।

डकैतो, हत्यारो, चोरो आदि के लिए तो जलयान के ऊपर व्यवस्था की गयी थी परन्तु सावरकर बन्धुओ को इस प्रकार से प्रताडित किया जा रहा था। इसके लिए जब प्रार्थना पत्र दिया गया तो फिर किसी प्रकार दूसरे दिन से तलघर मे ऊपरी डक से थैली द्वारा दो बार शुद्ध वायु छोडने की व्यवस्था की गयी, किन्तु स्थान फिर भी नहीं बदला गया। हाँ, आधा घण्टा पहरे मे डैक पर ले जा कर बैठने की अनुमति प्राप्त हो गयी। उस समय उस पोत के अनेक यात्री सावरकर के पास आ कर उनसे वार्तालाप करते थे। भारतीय तथा योरोपियन, दोनो ही प्रकार के यात्रियो की उनके प्रति सहानुभूति थी। एक योरोपियन यात्री ने तो उनको थोमस कैंपमिस की पुस्तक 'इमिटेशन ऑफ क्राइस्ट' भेंट भी की थी। यह सावरकर की मनचाही पुस्तक थी।

इस प्रकार यह जल-यात्रा सुख और दुःख दोनों से भरी हुई बीत रही थी। १४ वर्ष बाद दोनो बन्धु पहली बार रात को एक साथ सोये थे। उस दिन ज्येष्ठ बन्धु ने अपने स्वास्थ्य से लेकर के अन्य भी अनेक बातें सावरकर को बतायीं। विगत १४ वर्षों का उनका व्यक्तिगत जीवन तथा सामाजिक जीवन किस प्रकार व्यतीत हुआ,

अभिनव भारत की क्या गतिविधियाँ रहीं आदि सब बातें बड़े भाई ने छोटे भाई को विस्तार से सुनायी।

'महाराजा' पर आरूढ़ हुए पाँच दिन बीत रहे थे। उस दिन जब सावरकर डैक पर हवाखोरी के लिए गए तो सामने तट दिखायी दिया। समीप खड़े व्यक्ति ने कहा, 'भारत का तट आ गया है।'

सावरकर चौंके 'भारत का तट?' उन्होंने मुड़ कर अपने भाई से कहा, 'बाबा! वह देखो, भारत। हमारी भारत माता।' सावरकर के मुख से काव्य फूट पड़ा—

"नील सिन्धु जल धौत चरणतल।"

दोनों बन्धुओं ने भारत माता को नमन किया और बोल उठे—

"स्वातन्त्र्य लक्ष्मी की जय, वन्दे मातरम्।"



आकाश से खजूर पर

अलीपुर कारागार

"महाराजा' जलपोत ज्यों ही 'पत्तन' पर रुका कि सावरकर बन्धुओं को उतार कर बिना एक क्षण का भी विलम्ब किए सीधे अलीपुर कारागार में ले जाया गया। अलीपुर कारागार में भी विकराल लौहद्वार को पार करते ही दो वार्डर दो भाइयों को विपरीत दिशा में ले गए। एक को इधर वाले वार्ड की गली में मोड़ा तो दूसरे को उधर वाले वार्ड की गली में मोड़ दिया। सावरकर को दूर तक अपने ज्येष्ठ बन्धु को खांसी और कराहने की ध्वनि सुनाई देती रही।

वार्ड में ले जाकर सावरकर को एक कोठरी में बन्द कर दिया। सावरकर पर जो पहरेदार था उस पर एक वार्डर भी था। उसे १४ वर्ष काले पानी का दण्ड मिला था, परन्तु तीन वर्षों में ही वह सुविधा प्राप्त कर यहाँ अलीपुर कारागार में वार्डर बन कर स्वाधीनता का उपभोग कर रहा था। परन्तु अण्डमान में जो राजबन्दी थे, उनको दस वर्षों में एक बार भी कारागार से बाहर नहीं निकाला गया था। सरकार की दृष्टि में अपराधियों और राष्ट्रभक्तों में यही अन्तर था।

दिन बीत गया, शाम हो गयी। सावरकर कोठरी के सींखचे पकड़े खड़े थे कि एक सिपाही कोठरी के पास आ कर उनसे बात करने लगा। उसके चण्डूखाने की गप भी विचित्र थी। कहने लगा, "अब तो बस एक दो मास में ही स्वराज मिलने वाला है। महात्मा गांधी नाम का एक योगबली अब अंग्रेजों के विरुद्ध मैदान में उतर गया है। अंग्रेजों की उसके सामने एक न चलेगी। क्योंकि गांधी पर तो बन्दूक की गोली का भी कोई प्रभाव नहीं होता। उसे कई बार जेल में डाला गया किन्तु वह जादू से जेल में गायब हो गया। कभी यहीं दिखायी देता है तो कभी पलभर में किसी दूसरे स्थान पर।' (माझी जन्म ठेप)

एक अन्य स्थान पर 'माझी जन्म ठेप' में सावरकर ने वहाँ के वार्डरों, बन्दियों तथा सिपाहियों में उनके अपने विषय में बनी धारणाओं का बड़ा मनोरंजक वर्णन

किया है—"मेरे समीप की कोठरी मे एक चीनी युवक बन्दी था। उसको मादक द्रव्यो तथा कोकीन आदि की बिक्री के अपराध मे दण्ड दिया गया था। वह दो दिन बाद ही मुक्त होने वाला था। वह प्रसन्नता से नाच उठता था। उससे जब सावरकर की बात हुई तो उसको चीन के क्रान्तिकारी नेता सनयात सेन का नाम विदित था। बातचीत के मध्य जब भारतीय क्रान्तिकारियो का उल्लेख आया तो उसने कहा उसने 'सावरकर' का नाम सुन रखा है। उसे जब बताया गया कि 'मैं सावरकर हूं।' तो वह चौंक उठा और मेरी बात असत्य मानने लगा।

"वह मुझे महान योद्धा मान कर अपने मन म भाति भाति की कल्पनाएँ किए हुए था। अपने मन के उस 'महान' व्यक्ति को साधारण मनुष्य के रूप मे कोठरी मे बन्द देखकर कदाचित उसे आघात लगा हो। क्यो कि उसने तुरन्त पूछा, "क्या आपके शरीर को बदूक की गोली क्षति पहुँचा सकती है?"

"मैंने कहा, 'क्यो नही। अवश्य पहुँचा सकती है।' मेरे उत्तर को सुन कर वह निराश हुआ। क्यो कि गाधी की तरह वह मुझे भी योगी' या जादू टोने वाला समझ रहा था।

"इसी प्रकार एक अन्य सिपाही ने मेरे बारे मे न जाने क्या-क्या धारणा बना रखी थी। उसने एक दिन मुझसे पूछा, 'आप जहाज से कूदने के बाद कितने दिन तक समुद्र मे तैरते रहे थे? मैंने उसको कहा, 'मैं तो दस पन्द्रह मिनट म ही तैर कर समुद्र तट पर पहुँच गया था।'

"इस उत्तर को सुन कर उसकी धारणा को भी धक्का लगा। यदि मैं गर्वोक्ति मे असत्य बोल देता, अतिशयोक्ति कर देता तो कदाचित मेरे प्रति उसके आदर भाव मे वृद्धि हो जाती। किन्तु अतिशयोक्ति अथवा असत्य बात करके आदर प्राप्त करने का अभ्यास मुझे नही था।"

जहाँ एक ओर इस प्रकार की अपार श्रद्धा का स्रोत बहता था, वहा दूसरी ओर अग्रेज और एग्लो इण्डियन्स कुछ और ही करने मे लगे थे। ज्यो ही सावरकर बन्धुओ को अलीपुर जेल म लाया गया उसके तुरन्त बाद कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले एग्लो इण्डियन के समाचार पत्र "कपिटल" मे डिचर नाम के एक व्यक्ति ने सावरकर बन्धुओ पर आरोप लगाते हुए लिखा कि सावरकर बन्धु जमनी से मिलकर षडयन्त्र कर रहे थे। यह लेख पढ कर बम्बई के प्रख्यात सोलिसिटर मैसर्स मणिलाल एण्ड सेर ने उन पर मानहानि का अभियोग करते हुए डिचर तथा कपिटल से बिना शर्त क्षमा याचना के लिए कहा।

अलीपुर मे सावरकर बन्धुओ को अधिक दिन तक नही रखा गया। आठ दिन बाद दोनो बन्धुओ को पृथक-पृथक कारागारो मे भेज दिया गया। बडे भाई बाबाराव सावरकर को वहाँ से बीजापुर और फिर साबरमती जेल भेजा। उनका स्वास्थ्य जब बहुत ही गिर गया तो सितम्बर १९२२ मे उन को कारागार से मुक्त कर दिया गया।

स्थानान्तरण

सावरकर को जिस रेल गाडी से ले जाया जा रहा था मार्ग में आने वाले रेलवे स्टेशनो पर उनके दर्शनो के लिए अपार भीड जमा हो जाती थी। लोग उनको फल, मिठाई और समाचार पत्र आदि भेंट करते थे। इससे सावरकर ने अनुमान लगाया कि किसी ने कलकत्ता से उनके अन्यत्र ले जाने का समाचार प्रकाशित करवा दिया होगा, तभी यह भीड एकत्रित हो रही है। जब रेल नागपुर स्टेशन पर पहुँची तो सावरकर ने देखा कि एक व्यक्ति समाचार पत्र पढ रहा है, जिसमे उनकी रिहाई का समाचार बडे बडे अक्षरो मे प्रकाशित किया गया था। इस प्रकार उस रेल से सावरकर को बम्बई पहुँचाया गया। मार्ग मे नासिक स्टेशन आने से पूर्व ही उनके साथ चल रहे अधिकारी ने डिब्बे की सारी खिडकियो को बन्द कर दिया था। सावरकर को तो केवल खोंचे वालो की आवाज से पता चला कि नासिक स्टेशन आया है। सावरकर के मन मे पूर्व स्मृतियाँ उभर आईं। नासिक से उनके जीवन की अनेक स्मृतियाँ जुडी हुई थी।

इसी प्रकार बम्बई भी पहुँचे। वहाँ भी जब गाडी से बाहर निकले तब पता चला कि बम्बई पहुँचे है। गाडी से उतरते ही तुरन्त मोटर द्वारा स्टीमर तक गए और वहा से किसी अज्ञात स्थान को चल दिए। रात्रि के बारह बजे किसी कारागार के लौह कपाट खुलने की ध्वनि हुई और उन्हे अन्दर डाल दिया गया। प्रात काल सावरकर को विदित हुआ कि वह रत्नागिरि कारागार है।

रत्नागिरि कारागार

सन १९२१ का काल भारतीय जन जीवन मे बडे उथल-पुथल का काल रहा है। भारतीय राजनीति मे उस समय तक गाधी के नक्षत्र बहुत ऊँचे चढ चुके थे। गाँधी द्वारा समर्थित खिलाफत आन्दोलन का अन्त जघन्य मोपला आन्दोलन के रूप मे हुआ था। इस मोपला आन्दोलन मे सहस्राधिक हिन्दुओ का नरसहार किया गया था, हिन्दू ललनाओ के साथ बलात्कार की घटनाओ का तो वर्णन करना ही कठिन है। न केवल इतना, सहस्राधिक हिन्दू डर के कारण धर्मान्तरित होकर मुसलमान बन गए थे। अनेक स्थानो पर अनेक हिन्दू परिवारो को जीवित ही भस्म कर दिया गया था। क्यो कि न उन्होंने इस्लाम के आगे घुटने टेके और न मुसलमानो के ही आगे। अपनी लाज बचाने के लिए उनकी महिलाओ ने कुँओं और नदियो मे कूद कर उनसे आत्म रक्षा की और इह जीवनपूर्ण कर दिया।

इतना सब कुछ हो गया किन्तु फिर भी 'महात्मा' गाँधी ने इन हत्यारों, लूटेरो और मदान्धो को 'ईश्वर से भय खाने वाले पवित्र मुसलमान' ही कहा था।

रत्नागिरि कारागार मे सावरकर खिलाफत आन्दोलन तथा सत्य की खोज करने वाले गाँधीवादी बन्दियो के सम्पर्क मे आये। ये सत्य की खोज करने वाले गाँधीवादी बन्दी चोरी से समाचार पत्र मँगवाया करते थे और सत्य भक्त होने के नाते उन्हे खुले मे

पढना चाहते थे। इसी प्रकार अवैधानिक और गुप्त रीति से वे बाहर से खाद्य सामग्री मगवाते थे और चोरी-चारी से उनको खाया करते थे। वे कहा करते थे कि स्वराज्य प्राप्ति मे, जो कि अब कुछ ही महीनो की बात रह गया है, यदि सारे हिन्दुओ को भी मुसलमान बना लिया जाता है तो उनको इसकी कोई चिन्ता नही है। खिलाफत आदोलन से सम्बन्धित पठानो ने रत्नागिरि कारागार के हिदू बन्दियो के साथ दगा करना चाहा था, किन्तु सावरकर द्वारा पहले ही सावधान किए जाने के कारण वे लोग बच गए थे।

रत्नागिरि पहुँच कर सावरकर के लिए फिर भोजन की समस्या उत्पन्न हो गयी। अण्डमान के अन्तिम दिनो म कुछ ठीक सा भोजन और दुग्ध मिलने के कारण सावरकर का गिरता हुआ स्वास्थ्य कुछ सुधरने लगा किन्तु रत्नागिरि मे मध्याह्न के भोजन मे वही ज्वार की कच्ची रोटी देख कर वे हतप्रभ रह गए। अण्डमान मे सघर्ष के बाद उनको लेखन और स्वाध्याय की सुविधा भी प्राप्त हो गयी थी, श्रम से मुक्ति मिल गयी थी। किन्तु यहा वह सब सुविधाएँ छिन गयी। बारह वर्ष पूर्व जेल के प्रथम दिवस पर बन्दियो का जो परिधान उनको दिया गया था, वही अब सामने था और वह बिल्ला भी जिस पर लिखा था—'रिहाई सन् १९६०।

सावरकर को यह सब देख कर रह रह कर अपने ज्येष्ठ बन्धु का स्मरण होने लगा। सोचते थे कि उनके साथ भी यदि ऐसा ही व्यवहार किया जा रहा होगा तो वे किस प्रकार यह सब झेल पाएँगे। न जाने उनको किस कारागार म रखा होगा।

रत्नागिरि आते ही सावरकर के लिए फिर उसी प्रकार क्षण क्षण बिताना दुस्तर होने लगा था। कातने के लिए उनको सूत दिया गया था किन्तु अभ्यास न होने के कारण उसे पूरा करना कठिन होता था। पुस्तको की माँग की तो उसको ठुकरा दिया गया। इस वातावरण मे सावरकर के मन मे निराशा ने पुन घर कर लिया। आत्म-हत्या का विचार फिर तरगायित होने लगा। सावरकर को लगा कि यो ही जेलो मे सडते रहने से लाभ क्या।

इन विचारो मे खोये सावरकर एक बार सहसा उठे। उस कोठरी की दीवार मे ऊपर एक छेद था। उस तक किस प्रकार हाथ पहुँचाया जाए, उसकी सलाख से लटक कर बधन से मुक्ति पाने का उपाय सोचने लगे। वह दिन का समय था। सोचा कि रात के समय यह प्रयोग ठीक रहेगा।

रात्रि होने पर चिन्तन धारा बदल गई। अण्डमान के दृश्य सामने आने लगे। इन्दुभूषण से ले कर भाई परमानन्द तक जो जो देशभक्त यातनाओ से ऊब कर आत्मघात करने की सोचने लगे थे, इन्हे सावरकर ने ही तो इस पापकृत्य को कायरता का मार्ग बता कर रोका था। इस प्रकार उन्हे अपने सकल्प का स्मरण हुआ और उन्होने वह विचार त्याग दिया।

उन्होने अपनी अब तक की खण्डित काव्य धारा को पुन प्रवाहित करने का सकल्प कर लिया। विदेश म बन्दी बनाए जाने से आरम्भ कर रत्नागिरि पहुँचने तक

का सारा विवरण अपने मन मे सकलित कर लिया। इस प्रकार उसको अपने मन में उतार कर उसे लिपिबद्ध करने की योजना बनाने लगे। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'माया जन्मठेप' की योजना उसी समय बना ली थी।

अण्डमान मे रहते हुए सावरकर ने अनेक कविताओ की रचना आरम्भ की थी, किन्तु सब अपूर्ण ही थी। रत्नागिरि म उन्होने उनको भी पूर्ण कर लिया। हिन्दू सगठन के लिए हिन्दू शब्द की प्राचीनता तथा उसका महत्व प्रदर्शित करने वाला अप्रतिम ग्रथ 'हिन्दुत्व' की रचना भी उन्होने उसी कारागार मे की थी। उसकी पाण्डुलिपि को गुप्त रूप से बाहर भेजा गया और नागपुर से वह प्रकाशित हुई। क्योंकि सावरकर उस समय कारागार म थे। लेखक के स्थान पर उनका नाम दिया जाना सम्भव नही था, अत 'मरहठा' छद्म नाम से वह प्रकाशित हुआ।

'हिन्दुत्व' ने भी एक प्रकार से तहलका सा मचा दिया। स्वामी श्रद्धानन्द ने इसकी प्रशसा करते हुए कहा कि वदिक ग्रथो की भाति यह पुस्तक भी हमारे देश वासियो को प्रेरित करेगी। इसी प्रकार विजय राघवाचारी, एन० सी० केलकर आदि अनेक विद्वानो ने पुस्तक की सराहना की।

सावरकर को इसकी सूचनाएँ प्राप्त होती रही। इससे उनको प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला। बहुत प्रयत्न करने पर अब उनको कारागार म कुछ पुस्तकें भी मिलने लगी थीं। उन्होने 'दासबोध' का पुनरेण अध्ययन किया, पुराणो का मनन। इसके साथ ही अन्य अनेक ग्रथो का प्रणयन भी करते रहे। रत्नागिरि कारावास के काल मे ही उनकी अन्य रचनाएँ—गोमान्तक, कमला आदि का प्रकाशन हुआ और उनका भी उसी भाँति स्वागत और सराहना हुई जिस भाँति कि हिन्दुत्व की हुई थी।

अपने ज्येष्ठ बन्धु के स्वास्थ्य के विषय मे सावरकर निरन्तर चिन्तित रहते थे, ऐसे म एक दिन उनको समाचार मिला कि उनके बडे भाई की दशा चिन्ताजनक है। उनके छोटे भाई नारायण सावरकर ने जब अपने बडे भाई से मिलने के लिए प्रार्थना की तो उनस कहा गया कि वे इस भेंट के समय खादी के वस्त्र नही, अन्य वस्त्र पहन कर जाएँ। नारायण ने इस शत को स्वीकार नही किया। उन्होंने राज्यपाल के पास इस विषय को पहुँचाया, वहाँ जाकर यह शत हटी तो फिर वे उनस भेंट करने के लिए गए। बाबाराव सावरकर की स्थिति खराब थी। लिखा पढी करने पर उन्हें अहमदा बाद कारागार मे भेज दिया गया।

सावरकर सदा उनके विषय मे सोचते रहते थे। तभी उनको सूचना मिली कि बाबाराव सावरकर को कारामुक्त कर दिया गया है। सुनकर सावरकर को असीम प्रसन्नता हुई। किन्तु जब पता चला कि उन्हे बेहोशी की दशा मे मुक्त किया गया है तो उनके दुख की सीमा न रही। बेहोशी की दशा मे बाबा राव सावरकर को घर लाया गया था सरकार ने कदाचित उन्हे मृत्यु के किनारे लगा जानकर अन्त्येष्टि का व्यय बचाने के लिए उन्हें मुक्त किया होगा।

सावरकर की मुक्ति के लिए भी समय समय पर माग उठती रहती थी।

नारायण सावरकर भी इसके लिए लिखा पढी करते रहते थे। उसी समय कांग्रेस का काकिनाडा अधिवेशन हुआ। वहाँ पर कांग्रेस अध्यक्ष ने सावरकर की मुक्ति से सम्बधित एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया जो सब सम्मति से स्वीकार कर लिया गया।

प्रयत्न होते रहे, किन्तु सरकार के मन म क्या था, यह कह पाना कठिन था। उन प्रयत्नो का तत्काल कोई सुपरिणाम नही निकला।

यरवदा स्थानान्तरण

दो वप बाद सन् १९२३ मे सावरकर को रत्नागिरि से यरवदा कारागार म स्थानान्तरित कर दिया गया। यरवदा कारागार मे कांग्रेसी राजनीतिक सत्याग्रहियो की सख्या बहुत अधिक थी। उन्ही दिनो सावरकर को पता चला कि लाहौर षडय त्र मे दण्ड प्राप्त करने वाले अण्डमान के कुछ बन्दियो को भी यरवदा कारागार मे रखा गया है। सावरकर ने उनसे मिलने का यत्न किया और अपने गुप्त प्रयत्न मे वे सफल भी हो गए। उ ह सबसे अलग वाड मे रखा गया था और उ हे अब भी उसी प्रकार की यातनाएँ दी जा रही थी।

गांधी के असहयोग आन्दोलन मे ब दी बनाकर यरवदा कारागार मे रखे गए ब दियो की क्रान्तिकारियो के विषय मे बडी ही विकृत धारणाएँ थी। वे उन राष्ट्र योद्धाओ को गुप्त षडय त्री, हिंस्र, हत्यारे और पापी तथा न जाने क्या-क्या समझते थे। साल छ मास साधारण कारागारो मे साधारण जेल जीवन व्यतीत करने वाले ये सुविधाभोगी असहयोगी दस-दस वर्षो तक कालापानी के अमानवीय कष्टो तथा घोर यातनाओ को सहन करने वाले क्रान्तिकारियो के सम्मुख अपने त्याग का ढिंढोरा पीटते थे। न केवल इतना अपितु वे उन क्रान्तिकारियो को स्वय से बहुत ही निम्न कोटि का भी समझते थे।

इन सुविधाभोगी असहयोगियो का अधिकाश समय तो अपने लिए जेल म सुविधा प्राप्त करने के प्रयत्नो मे ही बीतता था। जो कुछ बचा रहता, उस समय को ये असहयोगी क्रान्तिकारियो तथा हि दुत्व पोषको की नि दा मे बिताया करते थे। उ ह हि दू सगठन का काय राष्ट्रघातक और हि दू मुस्लिम एकता म बाधक दिखाई देता था। सावरकर अपने तक से उनको पराजित करते रहते थे। इसके लिए सावरकर पेड पर चढ जाते और दोनो ओर के ब दियों के मध्य विभि न विषयो पर अपना मत व्यक्त किया करते।

कालान्तर मे जब सावरकर को भी गांधीवादी बन्दियो के साथ रखा गया तो फिर तो वे उनके साथ खुलकर अहिंसा, हि दू-मुस्लिम एकता, खिलाफत आदि विषयो पर उनकी विकृत धारणाओ का खण्डन करते रहते थे। वे उनको समझाया करते थे कि केवल चरखा कातने से स्वराज्य प्राप्त नही किया जा सकता। वे कहते थे कि खिलाफत आ दोलन का समर्थन करके मुसलमानो की धर्मा धता को बल प्राप्त होगा और यह राष्ट्र के लिए घातक सिद्ध होगा। कुछ सत्याग्रहियो पर, विशेषतया युवको पर

सावरकर के तर्कों का प्रभाव भी हुआ। वे गाँधी की नीति के खोखलेपन को समझने लगे थे।

इन्हीं दिनों यरवदा कारागार के अधिकारियों में अण्डमान कारागार के अधीक्षक मेजर मुरे को पजाबी विभाग का अध्यक्ष बनाकर स्थानान्तरित करके भेजा गया था। मेजर मुरे और सावरकर का अण्डमान के समय का परिचय था। अतः दोनों एक दूसरे के स्वभाव को भली भाँति जानते थे।

मेजर मुरे ने यरवदा आते ही सावरकर से सम्पर्क किया और फिर उन्हें कोठरी से बाहर निकालकर बियनीज के मिस्त्री केन्द्र पर नियुक्त कर दिया। उसने सावरकर को फैक्ट्री के युवकों को पढ़ाने की भी अनुमति दे दी। अण्डमान और रत्नागिरि की भाँति ही सावरकर ने यरवदा जेल में भी अपना सुधार आन्दोलन चालू कर दिया। वहाँ भी पुस्तकालय की स्थापना की और पुरानी दीमक लगी पुस्तकों को हटवा कर नई-नई हिन्दी मराठी पुस्तकें मँगवायीं।

रत्नागिरि कारागार में रहते हुए सावरकर ने अनेक शुद्धियाँ की थीं। रत्नागिरि कारागार के एक ईसाई अधिकारी को उन्होंने सपत्नीक हिन्दू धर्म में दीक्षित किया था। अब यरवदा में भी उन्होंने अपना शुद्धि आन्दोलन चालू कर दिया था। कारागार का मद्रासी डाक्टर किसी समय में ईसाई बन गया था। तदपि हिन्दुत्व के प्रति उसकी आस्था कम नहीं हुई थी। उसके मकान में राम, कृष्ण आदि के चित्र अभी भी लगे रहते थे। उसकी ईसाई पत्नी ने उसे तलाक दे दिया था। वह जब सावरकर के सम्पर्क में आया तो उन्होंने उसे समझाना आरम्भ किया। परिणाम स्वरूप वह प्रत्यावर्तन के लिए मान गया तो सावरकर ने अपने भाई के नाम एक पत्र देकर उसको बम्बई भेज दिया। वहाँ हिन्दू मिशनरी सोसाइटी के माध्यम से उसकी शुद्धि कर दी गयी। एक ईसाई नर्स से उसने विवाह किया तो उसका भी शुद्ध कर लिया गया।

बम्बई से लौटकर जब वह यरवदा कारागार में आया तो सावरकर ने देखा कि वह मस्तक पर तिलक लगाए था तथा उसकी नवविवाहिता पत्नी की माँग में सिन्दूर भरा हुआ था। उसने स्वयं पूना वाले ब्राह्मणों का बाना धारण किया हुआ था। इससे सावरकर को बड़ी प्रसन्नता हुई।

लॉयड सावरकर भेंट

सन १९२३ में रत्नागिरि में तृतीय रत्नागिरि जिला राजनीतिक सम्मेलन आयोजित किया गया था। उसमें एक विशेष प्रस्ताव के माध्यम से सावरकर की बिना शर्त रिहाई की माँग की गयी थी। जमनादास मेहता की अध्यक्षता में एक सावरकर मुक्ति समिति का गठन किया गया। उस समिति ने 'सावरकर को मुक्त करना क्यों आवश्यक' शीर्षक से एक पत्रक भी वितरित किया था। बम्बई के मारवाड़ी विद्यालय में एक सभा का आयोजन किया गया और उसमें जोरदार शब्दों में सावरकर की रिहाई की माँग दोहराई गयी। विट्ठल भाई पटेल इस सभा की अध्यक्षता कर रहे थे।

हवा का रुख सावरकर की ओर होने लगा था। सर रफक इस्साक जो अब लार्ड रीडिंग कहलाता था, उस समय लन्दन मे सावरकर के अभियोग मे सरकार की ओर मे सोलिसिटर का कार्य कर रहा था। वह इस समय भारत का गवर्नर जनरल होकर आ गया था। सर ज्यार्ज लोयड उन दिनों बम्बई का गवर्नर था। मेजर मुरे यरवदा जेल का अधीक्षक बन गया था। ये सब सावरकर के साथ मन ही मन सहानुभूति रखने वाले थे।

मेजर मुरे ने एक दिन सावरकर से पूछा कि यदि उनको मुक्त कर दिया जाए तो फिर वे क्या करेंगे। सावरकर ने इसके उत्तर में कहा था कि जिस परिस्थिति मे उनको मुक्त किया जाएगा उसके अनुसार ही वे कार्य करेंगे। यदि बिना शर्त मुक्त किया गया तो राजनीति में सक्रिय हो जाएँगे। यदि राजनीति मे भाग लेने पर प्रतिबन्ध लगाया तो वे समाज सेवा के कार्य मे अपना समय खपा देंगे।

उसके कुछ दिन बाद एक दिन पेट पीड़ा से ग्रस्त सावरकर अस्पताल मे गए तो कारागार के अधिकारी ने उनसे कहा, "बम्बई के गवर्नर सर ज्यार्ज लोयड अन्य दो-तीन वरिष्ठ अधिकारियों के साथ उनसे मिलने आने वाले है।"

सावरकर को अण्डमान का स्मरण हो आया। वहाँ भारत सरकार के गृह सचिव सर रेगिनाल्ड क्राडाक उनसे मिलने के लिए आए तो थे किन्तु उस भेंट का कोई सुपरिणाम नही निकला था। देखें इस बार क्या होता है।

गृह सदस्य मौंटगुमरी के साथ गवर्नर सर ज्योर्ज लोयड सावरकर से मिलने के लिए यरवदा कारागार मे आए। उनसे राजनीति से आरम्भ कर मुक्ति तक की चर्चाएँ हुई। सावरकर ने गवर्नर को स्पष्ट शब्दों मे कहा कि जब शान्त और वैध मार्ग से राष्ट्र की राजनीतिक आकांक्षाओं को पूरा करना सम्भव नही हो पाया तभी क्रान्तिकारी मार्ग अपनाना पड़ा था। वर्तमान बदलती परिस्थिति मे यदि सुधारों के माध्यम से, वैध मार्ग से यह सब सम्भव होता दिखाई देगा तो हम संकटपूर्ण मार्ग को अपनाने की आवश्यकता क्या पड़ेगी?

यह सुनकर लोर्ड ने उनसे प्रश्न किया कि यदि सरकार उनके इस आश्वासन पर विश्वास न करे तो क्या होगा? उसका उत्तर देते हुए सावरकर ने कहा था—

"तो कुछ कालावधि तक मैं राजनीति से अलग रहकर शिक्षा और राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार और प्रसार, समाज सुधार तथा हिन्दू संगठन के कार्य मे लग कर समाज की सेवा करता रहूँगा।" (माझी जन्म ठेप)

इस वार्तालाप के अन्त मे गवर्नर ने सावरकर को कहा कि वे राजनीति मे भाग लेने पर कुछ काल के लिए प्रतिबन्ध लगा कर 'स्थलबद्धता' की शर्त पर उनकी मुक्ति का सरकार को सुझाव देंगे।

इस वार्तालाप की अवधि मे गवर्नर ने सावरकर के प्रति पूर्ण सम्मान का व्यवहार किया और फिर उसी वातावरण में उन्होंने विदा मांगी।

कारागार के अधीक्षक ने भी सावरकर की मुक्ति की सिफारिश की।

लॉड लॉयड आदि के जाने के उपरान्त सावरकर पूर्ववत अपने जागृति कार्य में जुटे रहे। नवागन्तुक राजबन्दियों में अनेक तरुण थे, उनके ज्ञानवर्धन के लिए सावरकर ने इतिहास पर व्याख्यान माला का आयोजन किया। उन्होंने उनको स्वाधीनता संग्राम के अमर हुतात्माओं की जानकारी दी। क्रान्ति के कारणों से उन्हें अवगत कराया।

यह संयोग की बात थी कि पास की कोठरी में महात्मा गांधी भी बन्दी के रूप में वहां रह रहे थे। उनके खिलाफत तथा असहयोग आन्दोलन का तो सावरकर तर्क पूर्ण रीति से नित्य ही विरोध करते थे। इस अवस्था में कुछ बन्दियों का गांधी के पास जाकर उन्हें सावरकर के विचारों से अवगत कराना भी स्वाभाविक ही था।

इस व्याख्यान माला के अन्तिम दिन सावरकर ने हुतात्मा मदनलाल ढींगरा के जीवन पर प्रकाश डाला। उन्होंने अभिनव भारत से सम्बन्धित राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए फांसी पर चढ़ाए गए वीर हुतात्माओं के विषय में तो अपने पहले व्याख्यानों में विस्तार से बता ही दिया था। मदनलाल ढींगरा के साहस और शौर्य तथा वीरोचित कार्यों की गाथा सुन कर तो सभी राजबन्दी रोमांचित हो उठे थे।

सावरकर का व्याख्यान अभी पूर्ण भी नहीं हुआ था कि तभी एक सार्जेण्ट ने आ कर बताया कि उनको कारागार के अधीक्षक ने अपने कार्यालय में बुलाया है। सावरकर वहां गए तो अधीक्षक ने उनको बताया कि सरकार ने उनकी मुक्ति के लिए कुछ कागजात भेजे हैं। उसने वे कागजात सावरकर को दे दिए। उन कागजों में अनेक पुराने पत्र भी थे। १९२० में सावरकर द्वारा अण्डमान से भारत सरकार को लिखा पत्र भी उसके साथ नत्थी था।

सावरकर ने उन कागजों को देखा। ज्योर्ज लॉयड के साथ जो वार्तालाप हुआ था उसके आधार पर ये कागजात तैयार किए गए थे। सावरकर ने उन्हें ध्यान से देखा और फिर अधीक्षक से कहा कि वे इसमें कुछ फेर-बदल करना चाहते हैं। अधीक्षक ने इसकी स्वीकृति प्रदान की तो सावरकर ने कुछ शब्दों में फेर बदल करके कागजात अधीक्षक को लौटा दिए।

राजबन्दियों को जब यह सूचना दी गयी तो उनको इससे बड़ी प्रसन्नता हुई। सावरकर भी समझते थे कि अब उनकी मुक्ति की सम्भावना लगभग कार्यरूप में परिणत होने वाली है। फिर भी, अब तक जो प्रक्रिया चली थी, उसको ध्यान में रखते हुए सावरकर अभी भी पूर्णतया आश्वस्त नहीं थे। इस लिए वे अपने सहबन्दियों को भी कहा करते थे कि जब तक अन्तिम निर्णय नहीं हो जाता तब तक सन्देह के लिए स्थान बना ही रहता है।

शर्तें एवं मुक्ति

सावरकर को २७ दिसम्बर १९२३ को भारत सरकार की ओर से जेल के अधिकारियों से जो शर्तें आदि मिली थीं उन पर विचार कर तथा अपनी ओर से कुछ

फेर बदल करने के उपरांत उन्होंने वह सब कागज पत्र अधिकारियों को वापस कर दिए थे। डा० नारायण दामोदर सावरकर को सरकार की ओर से सूचना मिली कि जनवरी ६, १९२४ को उनके भाई की रिहाई होने वाली है। अत वे अपने भाई के रत्नागिरी मे निवास के लिए उनसे परामर्श करके निवास का प्रबंध करें। तदनुसार ५ १ १९२४ को डाक्टर सावरकर अपने भाई से यरवदा कारागार मे मिले।

सावरकर पर जो शर्तें लागू की गयी थी वे निम्न थी

अ—सावरकर रत्नागिरि जिले मे ही निवास करें और बिना भारत सरकार की अनुमति के व रत्नागिरि जिले से बाहर पग नही रख सकेंगे। यदि कोई अत्यन्त ही आवश्यक काय हो तो उसके लिए भी उनको जिलाधिकारी की अनुमति से बाहर जाना होगा।

आ—बिना सरकार की स्वीकृति के वे पाच वष तक निजी तथा सावजनिक तौर से किसी भी प्रकार की राजनीति मे भाग नही लेंगे। ये पाँच वष पूण होने पर यदि सरकार चाहे तो इस प्रतिबंध का नवीनीकरण कर सकती है।

सावरकर की जेल से रिहाई के आदेश मे लिखा हुआ था कि कारागार के द्वार से निकलते ही वे सीधे रत्नागिरि के लिए प्रस्थान करें और रत्नागिरि पहुँचते ही वे वहा के जिलाधिकारी को अपने पहुँचने की सूचना दें।

५ जनवरी को भाई से भेंट होने के उपरान्त यह निश्चय हो गया कि एक दो दिन मे सावरकर कारागार से मुक्त होने वाले हैं। यह तो विदित ही था कि उनकी मुक्ति सशत होगी। ५ जनवरी की रात्रि एक प्रकार से उनके लिए कारागार की अन्तिम रात्रि थी। उस दिन वर्षा हुई थी, इसलिए वातावरण म कुछ ठण्ड थी और सावरकर के पास उससे बचने के लिए पर्याप्त वस्त्र आदि नही थे।

६ जनवरी की प्रात सावरकर उठे। नित्यकम आदि से निवृत्त हो कर अपने सह बंदियो के साथ बठकर उन्ह हुतात्मा मदनलाल ढींगरा का जीवन चरित्र सुनाने बैठ गए। कई दिन से यह चरित्र वे उनको सुनाते आ रहे थे। अब यह भी अपने अन्तिम चरण पर था और जब सावरकर को विदित हुआ कि शीघ्र ही रिहाई होने वाली है तो उन्होंने उसको सक्षेप मे सुनाना आरम्भ कर दिया। उस दिन बीच मे ही एक अधिकारी ने आकर कहा कि वे मुक्त हो गए हैं और उनको जेल सुपरिटेंडेंट ने बुलवाया है।

उस समय तो सावरकर को सीधा सुपरिटेंडेंट के पास जाना पडा। और जो आवश्यक कायवाही करनी थी वह की। वापस जब साथी बंदियो के पास आए तो वहा का वातावरण स्वय सावरकर को ही भारी सा लगने लगा। उनके अण्डमान के साथी जिन्होंने अनेक वष तक उनके साथ ही कष्ट भोगे थे, साथ मिल कर दिन-और रातें बितायी थी, शिक्षा तथा हिन्दी के प्रचार म कन्धे से कन्धा मिला कर योगदान किया था, उन सबके नेत्र आँसुओ से भर रहे थे। स्वय सावरकर को उनको अकेला छोड कर जाने की बात सोच कर दुःख सा होने लगा।

सावरकर की मुक्ति की निश्चित बात सुन कर सभी बंदी बंधु उनके गले मिलने लगे। सबके गले भरे हुए थे। सब कहते "हमें न भूलना, फिर कभी दर्शन देने के लिए आना" आदि आदि। उनमें से एक ने कहा, "आप हमसे पहले कालापानी आए थे तो पहले जा भी रहे हैं, इसमें भला दुःख की क्या बात है? आपकी मुक्ति को हम अपनी ही मुक्ति मानते हैं। इससे हमारी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हुआ है। अब तो मातृभूमि की मुक्ति का मार्ग भी खुलेगा ही।"

सावरकर ने कहा, "यह सब तो भगवान की कृपा पर निर्भर है। वे हमें अपना लक्ष्य पूरा करने की कृपा प्रदान करें।"

इस प्रकार सबसे मिल कर और प्रत्येक से कुछ न कुछ बात करके सावरकर उनसे विदा होने लगे तो उन्होंने घोष किया—'स्वातन्त्र्य लक्ष्मी की जय!' सब ने एक स्वर में उस घोष को दोहराया।

बन्दियों से विदा लेकर सावरकर कार्यालय में आए तो सुपरिंटेंडेंट ने उन्हें मुक्ति का आदेश पढ़ कर सुनाया—"पाँच वर्षों तक राजनीति में भाग न लें। रत्नागिरि में ही स्थान बद्ध रहें।"

मेजर मुरे ने भी सावरकर को हार्दिक बधाई दी और उसके साथ ही यह भी कह दिया कि भविष्य में वे सतर्क रहें। उनसे कहा गया कि मार्ग में बिना कहीं रुके सीधे रत्नागिरि पहुँचें।

सावरकर ने वहीं पर बन्दियों के वस्त्र उतार कर रखे और घर के वस्त्र पहिनने को प्राप्त हुए। बम्बई के डोंगरी कारागार में जो वस्त्र सन १९११ में उतार कर रखे थे अब १४ वर्ष बाद उन वस्त्रों को पुनः शरीर पर धारण किया। किन्तु इस सुदीर्घ अवधि में उनके शरीर की दशा बहुत दुर्बल हो गयी थी। वे वस्त्र उनके नहीं, मानो किसी अन्य के हों, ऐसा लगने लगा था।

उस समय तक वहां पर कार्यालय के अनेक बंधु और बन्दीगण एकत्रित हो गए थे। किसी ने कह दिया, "भगवान राम की ही भांति आप भी चौदह वर्ष तक वनवास में रहे हैं।"

सावरकर उनके उस हार्दिक स्वागत से अभिभूत हो गए और उनके मुख से निकल पड़ा, "राम और मेरी अवधि की तुलना में एक अंतर है। वह अंतर मेरे मन में सदा ही हूक उत्पन्न करता रहा है। क्योंकि राम ने तो वन गमन के उपरान्त रावण का संहार करके रणक्षेत्र में विजयश्री का वरण किया था जब कि मैं वनवास में गया, महान यातनाएं भी सहीं, परन्तु रावण तो अभी भी जीवित खड़ा हमें चुनौती दे रहा है। मैं अपने जीवन की सार्थकता उसी दिन समझूंगा जब इस रावण का संहार हो जाएगा। यदि ईश्वर ने चाहा तो एक न एक दिन वह कार्य भी सम्पन्न होगा ही।" (माझी जन्मठेप)

डा० नारायण सावरकर आदि सावरकर के सम्बन्धी उनको लेने के लिए आ बाहर प्रतीक्षा कर रहे थे।

कारागार का लौह द्वार खुला और सावरकर उससे बाहर निकले। सावरकर के स्वय के तथा अन्यान्य जनो के कितने कठिन प्रयासो और जन आदोलनो से उनकी मुक्ति हो पाई थी, इसे सारा जग जानता था। सावरकर अब मुक्त थे।

द्वार के बाहर निकल कर सावरकर ने मुक्त आकाश मे चारो ओर दृष्टिपात किया। उन्होने मन ही मन कहा होगा 'मैं मुक्त तो हो गया, किन्तु यह निश्चय से तो नही कहा जा सकता कि किसी न किसी बहाने से मुझको वापस पुन बन्दी बना लिया जाएगा। मार्सेल्स मे भी तो कुछ मिनटो के लिए मुक्त हुआ था। परन्तु वहा तो तुरन्त ही पुनरेण पिंजरे मे बन्द कर दिया गया था।'

यद्यपि मार्सेल्स की और आज की स्थिति मे अन्तर था। तब सावरकर मुक्त हुए नही थे अपितु उन्होने मुक्ति के लिए स्वय यत्न किया था। उस समय उनकी स्थिति भगोड़े जैसी थी। हा, ईश्वर की कृपा होती और उनके साथी समय पर वहा पहुँच जाते तो कदाचित वे सरकार के शिकजे से मुक्त हो जाते, भले ही फिर उनको अज्ञात वास भुगतना पडता, किन्तु कारागार मे जो यातनाएँ उन्होने सही थी वे तो नही सहन करनी पडती।

जहाँ तक देश का प्रश्न था, जिनके लिए कि सावरकर अब तक सघर्ष करते आए थे, वह सब समस्याएँ तो वैसी ही थी। जैसा कि उन्होने कारागार के अपने साथी बन्दियो से कहा था 'रावण तो अभी जीवित है।' अग्रेजो का आधिपत्य भारत पर बरकरार था। मातृभूमि को मुक्त करने का सघर्ष तो अभी भी जारी था।

सावरकर बाहर निकल कर उस कार मे सवार हो गए जो उनको ले जाने के लिए वहा खडी थी। उसके चक्रो ने गति पकडी और उन्हे आजन्म कारावासीय सीमा को लाघ कर जीवन की सीमाक्षा मे पहुँचा दिया।

देश विदेश से सावरकर को बधाइयो के सन्देश मिलने लगे। किसी ने उन्हे 'राष्ट्रयोद्धा' के विशेषण से अलकृत किया तो किसी ने 'वीर' अलकरण से। इसी प्रकार अनेक अलकरणो से उनको विभूषित किया जाने लगा।

रत्नागिरि महाराष्ट्र के उत्तम नगरो मे से एक नगर हो सकता है। वह वीरान और उजाड भी नही था, वहा लोग रहते थे और छोटे बडे, धनी निर्धन, सरकारी-गैरसरकारी कर्मचारी, दुकानदार, कारखानेदार, अध्यापक, डाक्टर, वकील, न्यायाधीश, जिलाधिकारी आदि-आदि सभी नागरिक तो वहाँ रहते ही थे। किन्तु सावरकर के लिए एक अपशकुन भी वहाँ माना जाता था। प्रसगवशात् उसकी यहाँ पर चर्चा कर दें तो अयुक्त नही होगा।

यह कहा जाता था कि बर्मा के तृतीय युद्ध के उपरात बर्मा के राजा महाराज थिबा को रत्नागिरि मे स्थान बद्ध किया गया था और वही उनकी मृत्यु हो गयी थी। वह पुन जीवित रूप मे अपने देश नहीं लौट पाया था।

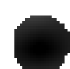
इतना होने पर भी भारत की स्थिति अब चौदह वर्ष पूर्व जैसी नही रह गयी थी। देशवासियो मे भी कुछ-कुछ जागृति आने लगी थी, यद्यपि गाँधी के तथाकथित

अहिंसक प्रयत्न देश को पीछे धकेलने में सहायक हो रहे थे। तदपि क्रांति के बीज विलुप्त नहीं हुए थे। क्यों कि तब तक जवाहरलाल नेहरू का भी नेता के रूप में उदय नहीं हुआ था। राजनीतिक मंच पर जवाहरलाल नेहरू का उदय १९२९ के अन्तिम दिन लाहौर कांग्रेस के अवसर पर हुआ था। सावरकर के कारामुक्त होने के ६ वर्ष बाद।

'गांधी के असहयोग और खिलाफत आंदोलन के असफल होने पर सरोजिनी नायडू ने कहा था कि महात्मा गांधी को चाहिए कि वे राजनीति में दखल न दें। वे महात्मा हैं और उनको चाहिए कि जनता ने जो श्रद्धा उन पर अब तक व्यक्त की है, वे उससे सन्तुष्ट हो जाएं।' (लोकमान्य २२ ८ १९२४)

उस समय गांधी की अपेक्षा तिलक और सी० आर० दास के विचारों को प्रमुख स्थान प्राप्त होने लगा था। किन्तु न गांधी ने, सरोजिनी नायडू के कथनानुसार अपनी उपलब्धि पर सन्तोष किया और न तिलक और दास की विचारधारा को अधिक बल मिल पाया।

ऐसी राजनीतिक स्थिति में सावरकर को कारामुक्त करके रत्नागिरि में स्थान बद्ध किया गया था।



रत्नागिरि में स्थानबद्ध

शौकत अली को लताड़

पराजित और पदच्युत तथा दिवगत बर्मा का राजा थिबा को जहाँ स्थानबद्ध किया था वह रत्नागिरि नगर स्थान बद्ध सावरकर का निवास स्थान बन गया। ज्येष्ठ बन्धु सावरकर का स्वास्थ्य तब तक ठीक हो चुका था, उन पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध भी नही था। अत वे मुक्त हो कर सामाजिक काय करने लगे थे। उसी प्रकार सावरकर जब रत्नागिरि पहुँचे तो व भला कब चुप रहने वाले थे। दोना भाइयो के सम्मिलित प्रयत्न से सावरकर के रत्नागिरि पहुँचने के दो सप्ताह के भीतर वहाँ रत्नागिरि हिन्दू सभा की स्थापना हो गयी।

उस समय हिन्दू सभा के मुख्य उद्देश्य थे, हिन्दुओ को सगठित, एकत्रित और सुगठित करना। जिससे कि वे अपने पर होने वाले अन्याय का प्रतिकार कर सकें तथा इस प्रकार वे अपने सांस्कृतिक, धार्मिक एव आर्थिक विकास का सरक्षण कर सकें। मानवता की रक्षा मे हिन्दुओ का सगठित होना परमावश्यक समझा जाने लगा था।

उधर राजनीतिक जगत मे भी सावरकर के स्थानबद्ध किए जाने पर असेम्बली मे अनेक लोगो ने अनेक प्रकार के प्रश्न करने आरम्भ कर दिए थे। सघटनिस्ट पार्टी इसमे विशेष रुचि प्रकट कर ही थी। प्रश्नकर्ताओ ने पूछा कि क्या सरकार ने सावरकर और उनके परिवार के रहने के लिए रत्नागिरि मे सब व्यवस्था भली प्रकार की है? सरकार का उत्तर नकारात्मक था।

सघटनिस्ट पार्टी ने उस वर्ष मई मे शिवाजी उत्सव के अवसर पर रत्नागिरि मे जगत गुरु शकराचार्य को आमन्त्रित किया था। इस अवसर से सघटनिस्ट पार्टी अपने सगठन को बलिष्ट बनाने का लाभ उठाना चाहती थी। किन्तु तभी रत्नागिरि मे प्लेग ने महामारी का रूप धारण कर लिया और इससे सघटनिस्ट पार्टी के काय मे बाधा उत्पन्न हो गयी।

ऐसी स्थिति मे जब सावरकर ने वहाँ से नासिक जाने की अनुमति चाही तो,

वह उनको प्राप्त हो गयी। इस प्रकार उनीस वर्ष बाद सावरकर ने नासिक मे, उस नासिक मे जिसको उन्होने १६ वर्ष पूर्व क्रान्तिकारियो का यरुशलम बना दिया था, पुन पदार्पण किया। नासिक मे प्रविष्ट होने पर २४ ८-१९२४ को समस्त महाराष्ट्र की ओर से सावरकर का स्वागत किया गया और उन्हें अपनी श्रद्धा के रूप म थली भेंट की गयी।

नासिक म सावरकर ने हिन्दू समाज के उद्धार के काय म सहयोग देना आरम्भ कर दिया। उन्होने अनेक महारो को आगाखानी मुसलमान बनने से रोका। इस काय के लिए सरकार से अनुमति ल कर उन्होन नासिक के समीप के विभिन्न नगरो का दौरा किया। रूढिवादी हिन्दुओ के विरोध क बावजूद उन्होंने महारो के साथ बैठ कर अनक बार चाय पान किया।

सावरकर स्थान-स्थान पर जाकर जागति का निनाद करत थे। उनके भाषण सुनन के लिए दूर दूर स लोग आत थे। नासिक म इस प्रकार की उनकी गतिविधिया को देख कर और उनकी सभाओ मे उमडत जनसमूह का विचार कर सरकार ने उन्ह पुन रत्नागिरि म जाने के लिए विवश कर दिया।

नवम्बर १९२४ म नासिक से रत्नागिरि जाते हुए सावरकर जब बम्बई मे थे तो वहा शौकत अली न उनसे भेंट की। शौकत अली न सावरकर की देशभक्ति तथा उसके लिए किए गए प्रयत्न एव सहे गए कष्टो के लिए उसने सावरकर की बडी प्रशसा की किन्तु साथ ही उसने सावरकर की हिन्दू सगठन की वत्ति को अनुचित ठहराते हुए कहा कि उन्ह यह काय स्थगित कर देना चाहिए। सावरकर ने उसका उसकी ही भाषा मे उत्तर देत हुए कहा कि यदि वह चाहता है कि सावरकर हिन्दू सगठन का विचार स्थगित कर दें तो उसको चाहिए कि वह अपना खिलाफत आन्दोलन समाप्त कर दे। इसका उत्तर देत हुए शौकत अली न कहा कि खिलाफत आदोलन तो उसकी रग रग और नस नस मे समाया हुआ है, वह उसको किस प्रकार समाप्त कर सकता है?

सावरकर ने कहा कि जब तक भारत मे मुसलमानो के लिए पृथक सगठन विद्यमान रहेंगे तथा उनके द्वारा धर्मान्तरण का आन्दोलन जारी रहेगा, तब तक न तो हिन्दू सगठन स्थगित किया जाएगा और न ही हिन्दुओ द्वारा धर्मान्तरण का आन्दोलन रोका जाएगा। शौकत अली कहने लगा कि इसमे मुसलमानो म क्रोध की भावना है इसलिए वे हिन्दू सगठन का विरोध कर रहे हैं। यदि आप इसको बन्द नहीं करेंगे तो जो परिणाम होगा उसको भुगतने के लिए भी आपको उद्यत रहना चाहिए। सावरकर ने भी उसी लय मे उसको उत्तर देते हुए कहा कि जिस ब्रिटिश राज्य का सूर्य कभी अस्त नही होना माना जाता है, वह ब्रिटिश राज उनको अपने पथ से विचलित नही कर सका तो यह थोडे से मुसलमान जो चाकू लिए घूमते हैं उनकी परवाह कौन करता है?

उसके बाद शौकत अली कहने लगा कि मुसलमानो के लिए भारत ही एक देश नहीं रह गया है। ससार म अनेक मुसलमान देश हैं, यदि उनके लिए अनिवाय हो गया तो वे यह देश छोड कर किसी भी मुस्लिम देश म जाकर बस जाएँगे।

जब महामारी फैली थी तो सबके साथ उनको निरोधक टीके नहीं लगाए गए थे। क्यों कि जब पिछली बार उनको टीके लगाये गए थे तो उन्हें बहुत तीव्र ज्वर हो गया था। बिना टीके लगाये उनका महामारी के क्षेत्र में रहना भयावह होगा, अतः उन्हें नागर अथवा सतारा में रहने की अनुमति दी जाए। निकटस्थ बेलगाम का प्रश्न नहीं उठता, क्योंकि वहां तो कांग्रेस का अधिवेशन होने वाला था।

सरकार ने स्थानान्तरण के लिए स्पष्ट मना कर दिया। हाँ, यह कह दिया कि रत्नागिरि में वे जिस स्थान पर भी रहना चाहें उसकी उनको अनुमति मिल सकती है।

सरकार ने उनको अनुमति दे दी थी कि वे उच्च न्यायालय में वकालत करने के लिए अनुमति की प्रार्थना कर सकते हैं। सावरकर ने उसके लिए आवेदन किया। किन्तु बम्बई उच्च न्यायालय ने उनकी प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया।

सावरकर के रत्नागिरि में रहते हुए देश भर से अनेक देश प्रेमी उनसे मिलने के लिए आते रहते थे। मार्च १९२५ में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के संस्थापक डाक्टर केशवराव बलीराम हेडगेवार भी उनसे भेंट करने के लिए आए थे। सावरकर की पुस्तक 'हिन्दुत्व' ने बहुत लोगों को उनकी विचार धारा से प्रभावित किया था। आज तक हिन्दू राष्ट्रीयता और हिन्दू राज्य की किसी ने पूर्णरूपेण कल्पना ही नहीं की थी। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की स्थापना से पूर्व डाक्टर हेडगेवार ने सावरकर के साथ सुदीर्घ काल तक विचार-विनिमय किया। डाक्टर हेडगेवार चाहते थे कि हिन्दू युवक अपनी शक्ति देश और जाति के उत्थान के लिए समर्पित करें। इसी उद्देश्य से उन्होंने कालान्तर में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की स्थापना की थी। किन्तु जब तक सावरकर रत्नागिरि में रहे तब तक संघ की किसी भी शाखा की वहां स्थापना नहीं हुई थी।

शिरगांव से सावरकर पुनः रत्नागिरि आ गए। वहां गांधी के परम भक्त अप्पा साहब पटवर्धन ने उनका बड़ा आदर सम्मान किया। गांधी के परमभक्त होने पर भी वे सावरकर को ही अपना प्रेरक मानते थे। यद्यपि काका साहब कालेलकर ने पटवर्धन को सावधान कर दिया था कि कहीं वे उनके विचार प्रवाह में ही बह न जाएं। सावरकर अछूतोद्धार के कार्य में लगे हुए थे, पटवर्धन उसमें उनके सहायक थे। गांधी ने उनके इस कार्य की आलोचना नहीं की।

कालान्तर में सावरकर ने अपने विचारों को कार्य रूप देने के लिए रत्नागिरि हिन्दू सभा के मंच का उपयोग किया। उस समय तक हिन्दू महासभा को राजनीतिक मंच नहीं माना जाता था। उन दिनों डाक्टर एम० जी० शिन्दे उनके मुख्य सहयोगियों में से थे। उनके अतिरिक्त बाबूकाका जोशी, नानल, रावबहादुर पारुलेकर, 'सत्यशोधक' के सम्पादक दत्तोपन्त लिमये 'बलवन्त' के सम्पादक भवानीनराव पटवर्धन, राव साहब राणाडे, डा० वी० एन० सावन्त काशीनाथ पन्त पालवणकर, जी० डी० सुवरी, आर० वी० चिपलूणकर, विष्णुपन्त दामले, वामनराव चवन, भालचन्द्र पाटकर, अच्युतराव भामुष्टे, नारायणराव थाटू, हरिभाऊ गोंधी, दत्तात्रय सावन्त,

आत्मारामराव साल्वी, केरुजी महार आदि अनेक सज्जन उन दिनो सावरकर को सब प्रकार से सहयोग कर रहे थे।

मुसलमान स्वराज्य के विरुद्ध

यह स्वाभाविक ही था कि इस प्रकार का विशुद्ध हिंदूवादी आंदोलन मुस्लिम-परस्त एव मुस्लिम पोषक गांधीवादियो की आख की किरकिरी बन जाए। इस लिए गांधीवादियो और मुसलमानो मे इसकी यह प्रतिक्रिया होने लगी कि कही ये लोग मुसलमानो के विरुद्ध कोई कार्य न कर बैठें। उधर सघटनिस्ट युवको ने भी निश्चय कर लिया था कि अपने हितो की रक्षा के लिए, अपनी जाति के उत्थान के लिए वे सब प्रकार के साधनो का सदुपयोग करेंगे। इसके लिए कुछ स्थानो पर दण्ड आदि का अभ्यास भी कराया जाने लगा था।

मुसलमानो द्वारा मस्जिद के सामने बाजा न बजाने देने का राग १९२७ मे रत्नागिरि मे भी फैल गया। यद्यपि सभी योरोपियन देशो मे ही नही अपितु स्वय टर्की मे इस प्रकार का कोई प्रतिबध नही है और न ही मजिस्द तथा अन्याय सार्वजनिक स्थानो पर बाजा बजाने पर किसी को कोई आपत्ति होती है। इसी प्रकार इस्लामिक विधिविधान मे कही भी गोहत्या का प्रावधान नही है। हज के अवसर पर मक्का मदीना मे भी किसी प्रकार से गो की हत्या का कोई विधान नही है।

अपनी पुस्तक 'थोटस ऑन पाकिस्तान' के पृष्ठ २६७ पर डा० भीमराव अम्बेदकर ने लिखा है कि किसी भी मुस्लिम देश मे मस्जिद के सामने बाजा बजाने पर प्रतिबध नही है।

रत्नागिरि के मुसलमानो ने जिलाधीश के सम्मुख प्रार्थना की कि मसजिदो के सामने बाजा बजाने पर प्रतिबध लगाया जाए, किंतु समझदार जिलाधीश ने अपना निर्णय देते हुए लिखा कि ऐसा कोई प्रावधान अब तक लागू नही रहा है। यह हाल ही मे किसी सिरफिरे के मस्तिष्क की उपज है। अत इस प्रार्थना पर विचार करने का कोई औचित्य नही है।

मुसलमानो मे इसकी बडी विपरीत प्रक्रिया हुई। उन्होंने बडे-बडे गत्तो पर लिखकर 'हमे स्वराज नही चाहिए' प्रदर्शित करना आरम्भ किया तो सघटनिस्ट पार्टी ने कहा, अल्ला उनकी यह पुकार सुन ले तो अच्छा ही है। अन्यथा यदि मुसलमानो को स्वराज मिल गया तो वे कोहाट, मालाबार और गुलबर्गा जैसे काण्डो की पुनरावृत्ति करने लग जाएँगे।

कांग्रेस पार्टी, विशेषतया इसके नेता, समझौता और तुष्टीकरण मे अन्तर को समझने मे सर्वथा असमर्थ रहे अथवा उन्होंने समझना ही नही चाहा। विगत तीन वर्षों मे सावरकर ने इस विषय पर अनेक लेख लिखकर समाचार-पत्रो मे प्रकाशित करवाये थे। उन्होंने उनमे न केवल गांधी अपितु मोतीलाल नेहरू को भी दोषी सिद्ध किया था। सावरकर ने यहाँ तक लिखा था कि गांधी हिंदुओं द्वारा परावर्तन कार्य की

तो नि दा करते है कि तु अपन अली ब धुओ को धम परिवतन स रोकने का सामथ्य उनम नही है। याकूब हुसन, मुहम्मद अली और शौकत अली सदा गांधी से आशीर्वाद प्राप्त करते रहे।

इतना ही नही जब अब्दुल रशीद नामक हत्यारे ने दिल्ली मे स्वामी श्रद्धान द की दिन दहाडे हत्या की तो गांधी उसकी तक नि दा नही कर सका। न हत्यार की और न हत्या की ही। उस षडय त्र मे कौन-कौन सम्मिलित थे, यह गाधी भली भाति जानता था कि तु उसने उनकी भी नि दा नही की। यहाँ तक कि मोपलाओ द्वारा मालाबार म किया गया नर-सहार गांधी की दृष्टि म मुसलमानो का धमयुद्ध था, हि दू की जघन्य हत्या नही। इस सम्ब ध म गांधी ने 'यग इण्डिया' पत्र के ४ मई १९२१ क अक मे लिखा था 'वीर कि तु ईश्वर स डरने वाले मोपला जो समझते थे कि व अपने धम के लिए और जिसे वे धम युद्ध कहते थे, उसके लिए लड रहे थे।' इतना ही नही गांधी ने अफगानिस्तान के अमीर द्वारा भारत पर आक्रमण का भी समथन करते हुए लिखा था, 'यदि अफगानिस्तान का अमीर ब्रिटिश राज्य सरकार के विरुद्ध युद्ध का आह्वान करता है तो निश्चय ही मैं उसकी सहायता करूँगा।'

इस पष्ठ भूमि मे माच १९२७ म गांधी रत्नागिरि पधारे। उनके पधारने पर वहाँ के काग्रेसी स्वाभाविक रूप स यह चाहते थे कि रत्नागिरि नगरपालिका गांधी का स्वागत और अभिन दन करे। कि तु सावरकर ने इस प्रकार के किसी प्रस्ताव का स्पष्टतया और निर्भीकता से विरोध किया। १ माच १९२७ को गांधी रत्नागिरि पधारे। काग्रेसजनो ने सावरकर के विरुद्ध उनके कान भर दिए और प्रयत्न किया कि वे किसी भी प्रकार सावरकर से भेंट न करें। कि तु परिस्थिति न विचित्र मोड लिया। नगरपालिका द्वारा किए गए अपने स्वागत के उत्तर मे गांधी ने रत्नागिरि की प्रशसा करते हुए उस तिलक का ज मस्थान होने से तीथ के रूप म चित्रित किया और साथ ही कहा कि 'यह नगर सावरकर का शरण स्थल होने से भी प्रशसनीय है। सावरकर को मैं ल दन से ही जानता हूँ, जिनकी देशभक्ति पर किसी का कोई सदेह ही नही हो सकता। उनके बलिदानो की जितनी सराहना की जाए वह कम होगा। यद्यपि हम दोनो मे मत भिन्नता है किन्तु इसका यह अभिप्राय नही कि हम दोनो की परस्पर मित्रता म इससे कुछ कमी आ गयी हो।'

सावरकर उस दिन ज्वर ग्रस्त थे। जब उनको गांधी के उक्त भाषण के विषय मे बताया गया तो उ होने गांधी को अपने स्थान पर पधारने का निम त्रण भेजा। सावरकर का निम त्रण पाकर गाधी अपने अ य कायक्रमो को स्थगित कर उनसे मिलने के लिए आए। उनके साथ उन की धमपत्नी श्रीमती कस्तूरबा गांधी भी थी। यह समाचार फलते ही सावरकर के निवास स्थान पर भीड एकत्रित होने लगी।

गांधी सावरकर भेंट

यह अनुमान लगाया जाता है कि गांधी जी का सावरकर के पास जाने का

मुख्य कारण यह जानना था कि सावरकर के भीतर क्रांति की जो ज्वाला अठारह वर्ष पूर्व धधक रही थी, वह वैसी ही है अथवा इतने दिनो के कष्ट और यातना से वह बुझ गयी है।

दोनो म परस्पर राजनीति पर खूब चर्चा हुई। किन्तु दोनो म किसी भी बात पर सहमति नही हो सकी। उसके बाद शुद्धि की समस्या पर विचार विमर्श हुआ। सावरकर ने गाँधी से सीधा प्रश्न किया कि शुद्धि के विषय म उनके क्या विचार है? गाँधी ने कहा कि मैं यह नही समझ पा रहा कि कोई आदमी अपना धर्म खो दे। यह अच्छा नही है। सावरकर ने उनके कथन से अर्द्ध सहमति जताते हुए कहा कि आज हिन्दुओ म जो जातिवाद पनप रहा है वह घातक है। उस स्थिति मे यह आवश्यक हो जाता है।

गाँधी ने कुछ कुछ सहमति प्रकट करते हुए कहा कि मैं उन मुसलमानो के परावर्तन के पक्ष म नही हूँ जिनके पूर्वजो ने सदियो पूर्व इस्लाम स्वीकार कर लिया था। मैं मनुष्य को अपने धर्म म स्थिर रहना श्रेयस्कर समझता हूँ बनिस्बत इसके कि वह किसी दूसरे धर्म को अपना ले। किसी का बलात धर्म परिवर्तन नही किया जाना चाहिए।

सावरकर ने कहा कि यदि कोई सोच-समझ कर भला बुरा विचार कर हिन्दुत्व को अगीकार करता है तो फिर इसमे हानि क्या है? हिन्दू धर्म तो विचार स्वातन्त्र्य का पोषक ही है। सावरकर ने यह भी कहा कि मुस्लिम नेताओ की आकांक्षा भारत को मुस्लिम राष्ट्र के रूप मे परिवर्तित करने की है, जिससे हम सदैव सतर्क और सावधान रहना चाहिए।

सावरकर से विदा लेते हुए गाँधी के शब्द थे, "यह तो निश्चय है कि कुछ समस्याओ पर हम दोनो मे परस्पर मतभेद है। किन्तु मैं समझता हूँ कि मेरे प्रयोगो के विषय मे आपको कोई आपत्ति नही होगी।" सावरकर ने स्पष्ट उत्तर देते हुए कहा, "आप राष्ट्र के मूल्य पर अपना प्रयोग कर रहे हैं।" उसी बीच मे मालवन तालुका कांग्रेस कमेटी के प्रधान आर० के० गवाण्डे ने बीच म हस्तक्षेप करते हुए कहा, "मेरी समझ मे यह आया है कि गाँधी और सावरकर बराबर हैं स्वराज के।" उसकी बात सुन कर गाँधी हँस पड़े।

अछूतोद्धार और गाधी

गाँधी विदा हो गए और सावरकर अपने काय म लग गए। अछूतोद्धार उनका मुख्य लक्ष्य था। उन्होंने रूढिवादी हिन्दुओ को पग-पग पर सावधान किया, चुनौती दी और बार-बार कहा कि जब तुम ईसाई अथवा मुसलमानो को आगे बढ़ने से, सार्वजनिक स्थानो का उपयोग करने से, कुओ स पानी भरने मे, धार्मिक अनुष्ठान करने आदि से नही रोक सकते, तो फिर अछूतो ने क्या पाप किया है। वे म्लेच्छों से कही अधिक अच्छे हैं। जब कोई महार ईसाई अथवा मुसलमान बन जाता है तो उसको सब प्रकार

भी सुविधाएँ मिलने लग जाती हैं। किन्तु जब वह महार रहता है उसकी ओर कोई ध्यान नहीं देता।

सावरकर ने इस दिशा म इतना काय किया कि कालान्तर म जहाँ रूढ़िवादी हिन्दू उनके स्वर म स्वर मिलाने लगे वहाँ रत्नागिरि मे कार्यरत अमेरिकन मिशन को भी अपना बोरिया बिस्तरा बाँध कर जाना पड़ा। किन्तु शुद्धिकृतों के पुत्रियों के विवाह के प्रश्न पर उनको पर्याप्त कठिनाई का सामना करना पड़ा। इस प्रकरण मे विनायक महाराज मसूरकर के साथ सावरकर न तालमेल बठाया। मसूरकर महाराज पहल से ही शुद्धि आदोलन म संलग्न थे। कालान्तर म सावरकर ने उनके काय के साथ सहयोग करते हुए उन्हें आर्थिक सहायता भी दिलवाई। किन्तु कांग्रेस का व्यवहार विरोधी ही रहा। यद्यपि कांग्रेस अध्यक्ष मोहम्मद अली, याकूब हुसैन आदि जो कि अछूतों को धर्मान्तरित करने मे संलग्न थे, गांधी की दृष्टि से देशभक्त मुसलमान ही थे। किन्तु सावरकर आदि का शुद्धि काय उनको फूटी आँखों भी नहीं सुहाया था। मोपला विद्रोही तो उनकी दृष्टि म प्रगतिशील और देश भक्त थे किन्तु लाला लाजपतराय और स्वामी श्रद्धानन्द को वे साम्प्रदायिक मानते थे।

इस क्षेत्र म डाक्टर अम्बेदकर जो काय कर रहे थे सावरकर न केवल उनकी प्रशंसा करते थे अपितु उनको यथाशक्ति सहयोग भी देते थे। अछूतों का उपनयन संस्कार कराने म, उनके मन्दिर प्रवेश के सम्बन्ध म, उनके साथ सहभोज मे, उनके वेद पढ़ने के अधिकार के सम्बन्ध म, सावरकर ने निरन्तर अम्बेदकर स सहयोग किया और उनके इस काय स अभिभूत होकर पूना के अछूतों के नेता श्री पी० एन० राजभोज न सार्वजनिक रूप से कहा, "आरम्भ मे तो मैं सावरकर जी के आदोलन को केवल एक द्रष्टा के रूप मे देख रहा था। किन्तु जब मैंने उनसे चर्चा की और स्वय अपनी आँखों से उनके काय को देखा तो मैं उससे अभिभूत हो गया। मैं अनुभव करता हूँ कि वे राजनीति के क्षेत्र मे ही नहीं अपितु सामाजिक क्षेत्र मे भी उसी प्रकार की क्रांति लाने के लिए कृत सकल्प हैं।"

रत्नागिरि के विठोबा मन्दिर मे अछूतों के प्रवेश के समय जो काय सावरकर ने किया वह न केवल सामाजिक इतिहास मे स्वर्णाक्षरों मे उल्लेखनीय था अपितु प्रशास निक दृष्टि से भी उसकी बड़ी सराहना की गयी। रत्नागिरि के जिलाधिकारी, जिला-धीश के साथ उस अवसर पर उपस्थित थे। जिस शान्ति से सब काय सम्पन्न हुआ, वह उनके लिए अत्यन्त आश्चयजनक था। जिलाधीश सावरकर के भाषण से इतना अभि भूत हुआ कि अपना पद और स्थान भूल कर वह मंच पर चढ़ गया और बोला, "बताइए, किसी को अब कोई शंका रहती है?" जिलाधीश का अभिप्राय रूढ़िवादियों को ललकारने का था। किन्तु कोई भी सामने नहीं आया।

सर्वजाति सहभोज

रत्नागिरि का पतित पावन मन्दिर सावरकर का स्मारक है। उस मन्दिर के

माध्यम से उन्होंने अनेक सामाजिक काय सम्पन्न किए। समय-समय पर वे वहाँ सहभोज और सम्मिलित पूजा आदि कराते रहे। किन्तु उनके सम्मुख अछूतो मे अछूत-पने से एक विचित्र समस्या उत्पन्न हुई। महार भंगियो के साथ बैठ कर खाने को पसद नही करते थे और भगी ढोर जाति के लोगो के साथ नही खाते थे। वे सवर्णों के साथ बैठकर भोजन करने के लिए लालायित रहते थे किन्तु साथी अछूतो के साथ बैठने के लिए तत्पर नही थे। इससे मुक्ति पाने के लिए सावरकर ने 'सवजाति विशाल सहभोज' का आयोजन किया। यह सहभोज उन दिनो के समाचार पत्रो मे बडी चर्चा का विषय रहा।

सावरकर के यह प्रयत्न सब शाति पूर्वक सम्पन्न होते रहे, ऐसा नही कहा जा सकता। समाज सुधारक का काय बडा ही कष्ट और यातनाओ भरा होता है। पोंगा पण्डितो, रूढिवादियो, राजनेताओ, असामाजिक तत्वो की ओर से उनको समय समय पर चेतावनिया और धमकिया मिलती रही। यहाँ तक कि उनको जान से मार डालने तक की धमकिया दी जाती रही। इतना ही नहीं उनके समथको को भी बहुत कुछ झेलना पडा। एक उदाहरण। सावरकर के एक सहयोगी की कन्या अपनी ससुराल मे रुग्ण हो गयी। रोग बढ गया किन्तु उसकी चिकित्सा ठीक से नही हो पायी। कन्या के पिता ने कन्या के श्वसुर से आग्रह किया कि उसकी कन्या को उसके घर भेज दिया जाए जिससे कि वह उसकी उचित चिकित्सा करा सके। निलज्ज श्वसुर ने कहा कि जब तक वे सावरकर के काम से सम्बद्ध हैं तब तक उनका उनसे कोई नाता रिश्ता नही है और न वे अपनी पुत्रवधू को उनके पास भेजेंगे, व सावरकर से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लें। परिणामस्वरूप चिकित्सा के अभाव मे कन्या परमलोक को पधार गयी।

भगतसिंह की गुप्त भेंट

सावरकर के रत्नागिरि निवास के दिनो मे ही बलिदानी वीर भगतसिंह भी उनसे भेंट करने के लिए गया था। सरदार भगतसिंह सावरकर की अनन्य कृति '१८५७ का स्वातन्त्र्य समर' से बहुत प्रभावित था। उन दिनो वह पुस्तक अप्राप्य थी। सरदार भगतसिंह चाहते थे कि उस ग्रथ का पुनर्मुद्रण हो और उसे क्रातिकारियो को पढने के लिए दिया जाए।

इस सम्बन्ध म पहले उन्होंने बाबाराव सावरकर से सम्पक स्थापित किया। सरदार भगतसिंह चाहते थे कि सावरकर से ग्रथ के मुद्रण की स्वीकृति लें। इस प्रकार उनके दशन भी हो जाएगे। एतदथ उन्होंने बाबाराव सावरकर से परिचय पत्र प्राप्त किया और १६२८ म वे उनसे मिलने के लिए गुप्तरूप से रत्नागिरि जा पहुँचे। यह भेंट भी गुप्त रूप से ही हुयी थी। रात्रि के नौ बजे भगतसिंह उनके पास गए।

उनके चरण स्पश कर सरदार भगतसिंह ने स्वय को धन्य समझा और अनेक विषयो मे वार्तालाप करने के उपरान्त ग्रथ के पुनर्मुद्रण की स्वीकृति प्राप्त कर वे वहाँ से विदा हुए।

कालान्तर मे अमर शहीद सुखदेव सिंह भी सावरकर के दर्शना के लिए रत्नागिरि गए थे।

सेनापति बापट, जो कि लन्दन के दिनो मे सावरकर के अनन्य सहायक थे, वे सावरकर से मिलने के लिए रत्नागिरि गए। इसी प्रकार ठाकुर चन्दनसिंह ने भी उन दिनो सावरकर के रत्नागिरि मे दर्शन किए। बापट तो रत्नागिरि जिला राजनीतिक सम्मेलन की अध्यक्षता करने के लिए गए थे। किन्तु उन्होने घोषणा कर दी थी कि रत्नागिरि मे उनका सर्व प्रथम कार्य सावरकर के दर्शन करना होगा। सावरकर के पास जा कर उन्हे अति प्रसन्नता हुई और लन्दन की अन्तिम भेंट से आरम्भ कर अद्य-पर्यन्त अपने जीवन के सारे कार्य सावरकर के सम्मुख गिना दिए।

हडसन हत्या

क्रान्ति के इतिहास मे जुलाई २२, १९३१ का एक अन्य स्वर्णिम पृष्ठ जुड गया। उस दिन फर्गुसन कालेज पूना मे बम्बई के गवर्नर जे० ई० बी० हडसन को वासुदेव बलवन्त गोगटे ने गोली से उडा दिया था। इस शुभ एव साहसिक कार्य को करने से पूर्व गोगटे सावरकर से भेंट करने गया था। उधर जब बापट रत्नागिरि पहुँचे तो उन्होने राजनीतिक सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए गोगटे के कार्य की भूरि भूरि प्रशसा की। परिणामस्वरूप उन पर अभियोग चलाया गया और उसमे उनको सात वर्ष कारावास का दण्ड मिला।

सितम्बर १९३१ मे अखिल भारतीय गोरखा लीग के अध्यक्ष ठाकुर चन्दनसिंह राज परिवार के एक सदस्य हेमचन्द्र शमशेर जग के साथ सावरकर को मिलने के लिए रत्नागिरि गए। हिन्दू सभा द्वारा नेपाल मे किए जा रहे कार्यों के परिणाम स्वरूप यह भेंट सम्भव हो पायी थी। भेंट वार्ता मे सावरकर ने भारत के लिए नेपाल के और नेपाल के लिए भारत के महत्व पर प्रकाश डाला। किन्तु आश्चर्य तो इस बात पर होता है कि गांधी जी की काग्रेस ने तथा स्वय गाधी ने टर्की के लिए खिलाफत आन्दोलन का सचालन किया और चीन के च्याग काई शेक के लिए दवाओ के अम्बार भेजे, कम्युनिस्ट स्पेन के लिए अन्न भेजने का प्रस्ताव किया। किन्तु अपने निकटतम पडोसी देश, जिसका कि भारत के लिए विशेष महत्व है, एसे नेपाल की सदा उपेक्षा की।

चन्दनसिंह सावरकर के अनन्य प्रशसको मे से था। उसने सावरकर के लेखो का नेपाली मे अनुवाद कर उन्हे अपने देश के पत्रो मे प्रकाशित करवाया। 'तरुण गोरखा' और 'हिमालया टाइम्स' उन दिनो वहाँ के प्रमुख समाचार पत्र थे।

सरकारी अकुश

ये भेंट वार्ताएँ सरकार की दृष्टि से ओझल नही रह सकती थी। अग्रेज सरकार की दृष्टि मे सावरकर का यह राजनीति मे हस्तक्षेप माना जाने लगा। ठाकुर चन्दनसिंह के आने पर पतित पावन मन्दिर मे एक सभा आयोजित की गयी जिसकी

अध्यक्षता सावरकर ने की थी। दो दिन बाद गृह विभाग ने सावरकर को लिखा कि पतित पावन मन्दिर मे दिए गए भाषण की प्रति भेजें। उसके दो दिन बाद स्वयं जिलाधीश ने वहां आ कर उनसे भाषण की प्रति के लिए कहा। सावरकर ने अपने भाषण का सारांश उसको दे दिया। यद्यपि उस भाषण में कोई भी आपत्तिजनक अंश नही पाया गया तदपि सावरकर को चेतावनी दी गई कि उनका स्पष्टीकरण संतापजनक नही है और भविष्य मे उन्होंने इस प्रकार के भाषण दिए तो यह शर्तनामे का उल्लंघन माना जाएगा।

ठाकुर चन्दनसिंह सावरकर से मिल कर और उनसे वार्तालाप कर तथा उनका भाषण सुन कर बहुत ही प्रभावित हुआ। किन्तु सरकारी अंकुश के कारण सावरकर को फिर सीमित क्षेत्र मे स्वयं को संकुचित करना पड़ा। उन्होंने शुद्धि पर बल देना आरम्भ कर दिया। यद्यपि उससे पूर्व भी आर्य समाज, प्रार्थना समाज, ब्रह्म समाज तथा आगरकर आदि समाजोत्थान का कार्य करते रहे थे। सरकार को उनके कामों में कोई आपत्ति नही थी और न ही गांधी ने खुल कर इनका विरोध किया था। यह कदाचित इस कारण कि उस समय के सभी तथाकथित सुधारवादी नेता और संस्थाएँ गांधी की विचारधारा से प्रेरित होकर ही कार्य कर रहे थे। यहां तक कि आर्य समाज भी स्वामी दयानन्द का मार्ग छोड़ कर गांधी के मार्ग पर चलने लगा था। जातिवाद पर विश्वास करने वाले गांधी चाहते थे कि अछूतोद्धार हो जाए। यह किस प्रकार सम्भव था? गांधी ने मुल्ला-मौलानाओं द्वारा किए जा रहे धर्मान्तरण पर तो कभी कोई अंगुली उठायी नही किन्तु सावरकर के हर प्रयत्न का वे विरोध करते रहे।

गांधी का विकार

समाज सुधार और अछूतोद्धार कार्य के अतिरिक्त सावरकर ने रत्नागिरि में रहते हुए, 'भाषा सुधार' का भी कार्य किया था। अपने 'भाषा शुद्धि आन्दोलन' के प्रचार के लिए उन्होंने भाषा शुद्धि शीर्षक से एक विस्तृत लेख लिखा था। जिसमें उन्होंने कहा था कि हिन्दी भाषा को शुद्ध बनाने के लिए सर्व प्रथम उसमें सम्मिलित उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों को बाहर निकालना होगा। संस्कृतनिष्ठ हिन्दी ही विशुद्ध हिन्दी हो सकती है।

देवनागरी लिपि को सावरकर भारत की एकता का आधार मानते थे। इस सम्बन्ध मे उन्होंने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि भारत के सब भाषा भाषी जन यदि अपनी भाषाओं को देवनागरी लिपि के माध्यम से लिखना आरम्भ कर दें तो भारत की भाषा समस्या बड़ी सरलता से सुलझ सकती है। सावरकर के इस प्रयत्न की बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन ने बड़ी सराहना की और एक अवसर पर तो यह भी दिया कि मुझे इसकी प्रेरणा वीर सावरकर से ही प्राप्त हुई है।

दूसरी ओर 'हिन्दुस्तानी' के प्रेरक गांधी ने जब राम को शाहजादा दशरथ को बादशाह दशरथ, बेगम सीता, मौलाना बाल्मीकि आदि सम्बोधन

आरम्भ किए तो सावरकर ने उनके इस अनुचित हस्तक्षेप पर क्षोभ व्यक्त करते हुए उनकी कडी आलोचना की और इसे हिन्दुत्व पर आघात बताया। यही कारण है कि पूना हिंदी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर 'हिंदुस्तानी' भाषा का प्रस्ताव पारित नही हो सका।

हिन्दुत्व, हिंदू पदपादशाही, वीर बंदा वैरागी आदि कृतियाँ सावरकर के रत्नागिरि प्रवास काल की ही रचनायें हैं। हिंदू महा सभा के भगवा ध्वज मे कृपाण, ओंकार, और कुण्डलिनी का समावेश सावरकर की प्रेरणा से ही हुआ। सावरकर जी तेरह वर्ष तक रत्नागिरि मे स्थानबद्ध हो कर रहे थे। इस अवधि मे उन्होंने अछूतोद्धार, समाज सुधार भाषा सुधार आदि अनेक आंदोलनो का सूत्रपात और उन्नयन किया।

रत्नागिरि म सावरकर से मिलने वालो से अनेक अन्य जनों के साथ-साथ प्रसिद्ध पत्रकार एन० सी० केलकर, डाक्टर मुंजे, भाई परमानन्द, वी० वी० एस० अय्यर, ज्ञानचन्द्र वर्मा, शचीन्द्रनाथ सान्याल, नानी गोपाल, जी० वी० मावलकर, डा० महादेव पटवर्द्धन, डा० एस० केलकर आदि अनेक महानुभाव थे। इनम स अधिकांश उनके पुराने साथी थे, जिनका कि उल्लेख यथा स्थान किया गया है। मावलकर आदि कुछ नये भी थे। सोशलिस्ट नेता यूसफ मेहर अली भी उनमे से थे। सावरकर उन्हे पतित पावन मंदिर म भी ले गए।

द्विधा सृष्टि

रत्नागिरि म रहते हुए सावरकर ने अनेक ग्रन्थो की रचना की। अछूत समस्या को ले कर उन्होंने एक नाटक लिखा था 'उश्शाप'। इसका सर्वप्रथम मचन ६ अप्रल १९२७ को हुआ था। अहिंसा के प्रत्युत्तर मे उन्हाने जो नाटक लिखा, उसका नाम है सन्यस्त खडग'। सन्यस्त खडग से पूर्व उन्होने बुद्ध के जीवन पर भी एक नाटक लिखा था 'बोधि वृक्ष'। सन् १९३४ मे उन्होने एक अन्य नाटक लिखा 'उत्तरक्रिया। इस नाटक मे उन्हाने मराठा इतिहास के पानीपत के युद्ध के उपरात का विवरण प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही उन्होने उपन्यास और कविता सग्रहो की भी रचना की।

सावरकर की जो जीवित सन्तति थी, एक कन्या और एक पुत्र, उनका जन्म रत्नागिरि प्रवास के काल मे ही हुआ था। उस काल मे एक मझली कन्या भी उत्पन्न हुई थी, किन्तु शैशवकाल म ही उसका देहात हो गया था।

रत्नागिरि म सावरकर की गतिविधियाँ यद्यपि असवैधानिक नही थी। तदपि सरकार उनके क्रियाकलापो स बेचैन रहती थी। और वह किसी ऐस निमित्त की खोज म रहती थी कि जिसस उनकी स्थानबद्धता की अवधि पाँच वर्ष के उपरात पुन पाँच वर्ष के लिए बढायी जा सके। इसके लिए वे जहाँ सावरकर के निवास और उनकी गतिविधि पर कडी निगाह रखते थे वहाँ तनिक भी सदेह होने पर उनकी तलाशी लेने मे भी नहीं चूकते थे। इनमे से एक अवसर था 'दि इण्डियन वार ऑफ इण्डिपडेंस' का पुनप्रकाशन।

इस प्रकरण मे हम उल्लेख कर आए हैं कि सरदार भगतसिंह सावरकर से भेंट करने और उनसे पुस्तक के पुनप्रकाशन की अनुमति लेने के लिए रत्नागिरि म आए थे। वहाँ से जाने के उपरान्त उन्होंने इस पुस्तक की दो हजार प्रतिया प्रकाशित की थी। जिससे कि उन पुस्तको को क्रान्तिकारियो को पढाया जा सके और उसकी बिक्री से क्रान्तिकारियो की कुछ आर्थिक सहायता की जा सके। सरकार को भनक मिली तो वह तलाशी लेने आ गयी। सावरकर परिवार सहित घर से बाहर आए और पुलिस अधिकारी से बोले 'लीजिए हम बाहर आ गए हैं अब आप भीतर जाकर तलाशी लीजिए। किन्तु ध्यान रखिए, मैं चार वप तक स्कॉटलैंड याड से सघप करता रहा हूँ और उसको बुद्धू बनाने मे सफल रहा हूँ।'

पुलिस को उस तलाशी मे कुछ नही मिला और वह अपना सा मुख लेकर लौट गयी।

एक अन्य अवसर पर सहसा गुप्तचर विभाग के अधिकारी ने आकर तलाशी का वारण्ट दिखाया। सावरकर एक बार को तो सकपका गए किन्तु उन्होंने तलाशी के काय मे किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नही की। तलाशी के समय वे उनके साथ अवश्य खडे रहे। तलाशी समाप्त होने के बाद जब रिपोट लिखने के लिए सावरकर से कागज माँगा गया तो सावरकर के पास उस समय एक ही पेड था, यही उन्होंने अधिकारी के सम्मुख रख दिया। उस पैड के भीतर सावरकर की वह कविता थी, जो उन्होंने बलिदानी वीर सरदार भगतसिंह की प्रशसा मे लिखी थी। किन्तु कदाचित अधिकारी को रिपोट लिखने की त्वरा थी, अत उसने उसके भीतर कुछ नही टटोला और ऊपर के कागज पर अपनी रिपोट लिख कर पड सावरकर को वापस दे दिया।

उसी अवधि मे डाक्टर नारायण राव सावरकर के सम्पादकत्व मे सावरकर ने 'श्रद्धानन्द' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ करवाया था। इसका प्रकाशन बम्बई से होता था और समय समय पर सावरकर के क्रान्तिकारी विचारो से परिपूण लेख तथा कविताएँ, इसमे प्रकाशित होते रहते थे। 'मराठा' म भी उनके लेख और कविताएँ प्रकाशित होते रहे थे।

कांग्रेस का अध्यक्षत्व

सन १९२७ की बात है। जबलपुर मे हिन्दू महासभा का अधिवेशन होने वाला था। स्वागत समिति ने सोचा था कि सावरकर को इसका अध्यक्ष घोषित किया जाए। किन्तु उनकी स्थानबद्धता के कारण यह सम्भव नही हो पाया। तब एन० सी० केलकर को अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। अपने अध्यक्षीय भाषण मे उन्होंने इस बात का उल्लेख किया—'सावरकर का अध्यक्ष न बनाए जाने पर जितना दुख आपको हुआ है, मैं स्वय भी उसम आपका समभागी हूँ।'

इसी प्रकार दिसम्बर १९२७ मे दलित सघ की दिल्ली मे आयोजित सभा की अध्यक्षता करने के लिए भारत सरकार ने उनको अनुमति नही दी थी। इन्ही दिनो

महाराष्ट्र के एक प्रमुख कांग्रेसी नेता ने सुझाव दिया था कि सावरकर को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अध्यक्ष निर्वाचित किया जाए और यदि सरकार उनके उसम सम्मिलित होने की अनुमति न दे तो हमे मच पर उनकी एक विशाल-काय प्रतिमा स्थापित कर उनके अध्यक्षीय भाषण को पढ कर सुना दिया जाय । न केवल इतना अपितु भाई परमानन्द ने तो यहाँ तक सुझाव दिया कि उन्हें गोल मेज कान्फ्रेंस म कांग्रेस का प्रतिनिधि बना कर भेजा जाना चाहिए । इसी प्रकार हिन्दू महा सभा के नेता पद्मराज जैन की इच्छा थी कि सावरकर को हिन्दुओं का प्रतिनिधि बना कर गोल मेज काफ्रेंस मे भेजा जाए । किन्तु यह हिन्दुओं का दुर्भाग्य था कि उनका कोई प्रतिनिधि न तो गया और न ही बुलाया गया ।

स्कीट लैंड वध

मई १९३१ म बम्बई म श्री वामनराव चवन नामक एक युवक ने एक सैनिक अधिकारी स्कीट लड को गोली से उडा दिया तो उस षड्यन्त्र म सावरकर को बन्दी बना लिया गया । इस प्रकार दो सप्ताह तक उनको हवालात म रखा । सावरकर ने सरकार को लिखकर दिया कि उनका वामनराव चवन और गजानन दामले से किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध कभी रहा ही नही । उनका कहना था कि वे उन सहस्रों युवको मे म होगे जो सामाजिक कार्यों म सक्रिय भाग लेत रहत है । यद्यपि सरकार के कानो मे इससे जू तक नही रेंगी किन्तु जब उनको इस अभियोग मे सावरकर क विरुद्ध कुछ नही मिला तो विवश होकर उन्ह पन्द्रह दिन बाद मुक्त कर दिया गया ।

गांधी कौन सावरकर ?

एक ओर सरकार सावरकर को स्थानबद्ध बनाए रखने के लिए बहाने खोजती रहती थी तो दूसरी ओर सावरकर क प्रशसक उनकी मुक्ति के लिए प्रयत्न करते रहत थे । इसके लिए अनेक आवेदन और प्रार्थना की गयी और उनका कोई प्रभाव नही हुआ तो फिर हस्ताक्षर अभियान चलाया गया । इस प्रकार की अपील ले कर जब सावरकर के प्रशसक गाधी क पास गए तो गाधी ने कहा, 'मैं नही जानता कि वह कौन सा सावरकर है " और पूछा कि क्या यह वही सावरकर है जिसने दि इण्डियन वार ऑफ इडिपेंडस १८५७ लिखी है ? गाधी न कहा कि सावरकर की मुक्ति देश के हित म नही है ।

नेहरू इससे एक पग और आग बढ गया । ऐसा सुना गया है कि हस्ताक्षर करने की तो बात ही दूर उसने 'सावरकर मुक्ति प्रतिवेदन' नामक कागज के टुकडे-टुकडे कर दिए । सावरकर से गाँधी और नेहरू इतने भयभीत रहत थे ।

स्थान बद्धता से मुक्ति

अपने ध्येय के प्रति सावरकर कितने निष्ठावान थे, इसका एक उदाहरण रत्नागिरि म देखने को मिला था । सावरकर चितपावन ब्राह्मण थे, इसलिए 'चितपावन

विद्यार्थी सहायक सघ' के अधिकारी एक बार सावरकर के पास गए और उनसे कहा कि वे सघ के वार्षिकोत्सव को सम्बोधित करें। सावरकर ने स्पष्ट अस्वीकार करते हुए कहा कि जो सस्था किसी जाति विशेष के लिए ही बनायी गयी हो वे उसमे भाग नही ले सकते। हाँ यदि वे अपनी सस्था का नाम बदल कर केवल 'विद्यार्थी सहायक सघ' कर दें और तदनुसार अपने सविधान मे भी सशोधन करें तो वे उसमे सम्मिलित हो सकते हैं।

सावरकर के इस सुझाव का प्रभाव हुआ और सघ ने अपना नाम और विधान बदला। इस प्रकार सावरकर मानव धर्म के उन्नायक थे। वे वास्तविकता पर विश्वास करते थे, थोथे आदर्शों पर नहीं।

सन् १९३७ मे श्री जमनादास मेहता और श्री धनजीशा कूपर को सरकार द्वारा मन्त्रिमण्डल मे सम्मिलित करने का प्रस्ताव आया तो उन दोनो ने शर्त रखी कि अपने मन्त्रिमण्डल मे सम्मिलित होते ही वे जो प्रथम कार्य करेंगे, वह होगा वीर सावरकर की ससम्मान और बिना शर्त स्थानबद्धता से मुक्ति। सरकार ने उनकी शर्त को स्वीकार किया और इस प्रकार १० मई १९३७ को सावरकर की रत्नागिरि की स्थानबद्धता से मुक्ति हुई।

मुक्ति के अनन्तर

गाधी नि शब्द

सावरकर की स्थानबद्धता से मुक्ति का समाचार जगल की आग की भाँति समस्त देश म प्रसारित हो गया। इससे सभी हिन्दुत्ववादी भारत भक्ता को असीम प्रसन्नता हुई। सब श्री एन० सी० केलकर, भाई परमानन्द, डाक्टर मुजे और अणे ने अपने अपने वक्तव्यो मे इसको राष्ट्रीयता की विजय बताया और आशा व्यक्त की कि इससे हिन्दू राष्ट्र के उत्थान मे प्रगति होगी। काग्रेस उच्चाधिकारियो की प्रतिक्रिया भी स्मरणीय थी। पण्डित नेहरू ने सावरकर की रिहाई का स्वागत किया। राजगोपालाचारी ने सावरकर की रिहाई पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए उन्हें वीरता, देशभक्ति साहस, धैर्य और शौर्य का प्रतीक बताया। देशगौरव सुभाषचन्द्र बोस ने उनकी रिहाई का स्वागत करत हुए उन्ह काग्रेस मे सम्मिलित होकर राष्ट्रीय आन्दोलन को सदृढ करने के लिये आमन्त्रित किया। उन्होने कहा कि उज्ज्वल भविष्य सावरकर की प्रतीक्षा कर रहा है। रेडिकल पार्टी के नेता एम० एन० राय ने सावरकर की रिहाई का स्वागत करते हुए आशा व्यक्त की कि भविष्य मे सावरकर अपने ही ढग और विचारो स भारत की प्रगति के लिये पुन प्रवृत्त हो जायँगे।

सावरकर की स्थानबद्धता से मुक्ति पर जिस एक नेता ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नही की वह महात्मा गाधी थे। वे मौन ही रहे।

इसी प्रकार जो कट्टर गाधीवादी काग्रेसी थे उन्होने भी इस विषय मे कोई उत्साह नही दिखाया। मानो किसी आघात से वे सहम से गये हो। काग्रेस के वे नेता भलीभाति जानते थे कि सावरकर उस धातु के नही बने है, जिसको जब चाहा और जस चाहो तोड मरोडकर अपनी इच्छानुसार ढाल लो। और वे यह भी भलीभाति जानत थे कि विपरीत इसके, यदि सावरकर ने काग्रेस का नेतृत्व सम्भाल लिया तो, वे उन सभी को एक झटके मे झुका कर अपनी राह निष्कण्टक करने म समर्थ है। उनका मोहक व्यक्तित्व, प्रवहमान भाषण पटुता तथा प्रभावी एव प्रखर राजनीतिज्ञता इस

प्रकार के कांग्रेसियो के लिये उनके अपने अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लगाने वाला था।

जिस व्यक्ति न अपने वीरतापूर्ण कृत्यो से स्वय इतिहास का निर्माण किया हो, राजनीतिक विचारो का जो स्वय प्रेरक रहा हो, जो विश्वविख्यात क्रान्तिकारी दल का निर्विवाद नेता रहा हो, ऐसा व्यक्ति अपनी सफलता के लिये अपने सिद्धान्तो की बलि चढा दे और इस प्रकार अपने क्रान्तिकारी बलिदानी साथियो की आत्मा के साथ विश्वासघात करे, यह न सम्भव था और न सोचा जा सकता था।

राजनीति मे प्रवेश

सावरकर एकाकी अपने काय की ओर अग्रसर हुए। रत्नागिरि स उन्होने विदा ली और यह देखने निकल पडे कि उनकी मातृभूमि की आत्मा का स्फुरण किस दशा म विद्यमान है। स्वस्वाधिकार की चिनगारी धधक रही है अथवा कि बुझ गई है। उन्होंने कोल्हापुर मे शिवाजी की गद्दी को श्रद्धा सहित प्रणाम किया और भारतीय राजनीति मे अपने प्रवेश की प्रबल शब्दो म घोषणा की। यही वह स्थान था जहाँ पर सावरकर ने घोषणा की कि हिन्दू राज्य ही शक्ति के केन्द्र बन सकते हैं। पण्ढरपुर जाकर उन्होने महाराष्ट्र के महासन्त को श्रद्धा सुमन अर्पित किये।

मीरज वह स्थान था जहाँ से उन्होने कांग्रेस की धज्जिया उडानी आरम्भ की। उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त मे मुसलमान गुण्डो ने जब एक हिन्दू कन्या का अपहरण कर लिया तो केन्द्रीय विधान सभा मे विद्यमान कांग्रेसी नेताओ के सम्मुख इसकी गुहार पुकार की गई। उसको छुडाने के लिये कोई चारा जोई करने की अपेक्षा उन नपुसको ने सार्वजनिक रूप से बडी निलज्जता से घोषणा की कि यह कोई बहुत बडी बात नही, केवल मनुष्य की शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति की बात है।

सावरकर ने इस विषय पर कांग्रेस नीति और उसके नेताओ की कटु और प्रभावी शब्दो मे आलोचना करके उन पर सीधा और तीव्र प्रहार किया। परिणाम स्वरूप, अपने अभ्यास के अनुसार कांग्रेसियो ने सावरकर के इस वक्तव्य को अनेक भाँति तोडा-मरोडा, उसके विरोध मे बहुत कुछ कहा, अपनी सफाई भी दी। इतने से भी जब उनको चैन प्राप्त नही हुआ तो उन्होने न केवल सावरकर के स्वागत समारोहो का बहिष्कार किया अपितु उनको काले झण्डे दिखाने आरम्भ कर दिये। विरोधी के दमन का यही अहिंसक उपाय उनके राजनीतिक गुरु गाधी ने कदाचित उनको बताया होगा।

पूना व बम्बई मे स्वागत

जब सावरकर महाराष्ट्र के राजनीतिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक गढ पूना मे पहुँचे तो पाया कि सारा पूना नगर आन्दोलित हो उठा है। उनके आगमन की सूचना से नगर निवासियों म नव जीवन का सचार हो गया था। यही पर सावरकर ने हिन्दू ध्वज को लहराया था। सावरकर के नाम से ही पूना के हिन्दुओं मे नवीन

जागृति का सचार होने लगा था । विगत निर्वाचनो म काग्रेस के मिथ्या प्रचार के कारण जिन राजनीतिक कायकर्ताओ का हतोत्साह होना पडा था, सावरकर के पूना मे प्रविष्ट होत ही उनम प्राणो का सचार होने लगा था ।

पूना के बाद सावरकर बम्बई पहुँचे । सन १९०९ के बाद उस दिन पहली बार तीनो भाई एक साथ दादर स्टेशन पर परस्पर मिले थे । बाबाराव सावरकर को भी नासिक म स्थानबद्ध किया हुआ था और उनको भी उसी सप्ताह वहाँ से मुक्त किया था । सावरकर के स्वागत मे बम्बई निवासियो न बोरी बदर स गिरगाव तक एक शोभायात्रा का आयोजन किया था । तदनन्तर कृष्णा सिनमा हाल मे उनका नागरिक अभिनन्दन और स्वागत किया गया । इस सभा को अन्यो के अतिरिक्त सवश्री के० एफ० नरीमन, एम० एन० राय तथा एस० के० पाटिल ने सम्बोधित करत हुए सावरकर के त्याग, तपस्या और बलिदान की प्रशसा की । एम० एन० राय न तो यहाँ तक कहा कि सावरकर व महान् वट वृक्ष हैं जिसकी हम सब छोटी छोटी शाखायें जसी हैं ।

बम्बई स्थायी निवास

सावरकर ने बम्बई को अपना स्थायी निवास बनाया ।

बम्बई मे रहते हुए सावरकर समय-समय पर विभिन्न नगरो मे जा-जाकर अपना प्रचार काय करत रहे । इसके साथ ही उन्होने लेखन काय को भी बडी तीव्र गति से आरम्भ किया । उनकी लेखनी मे वाल्टेयर का व्यग्य और लूथर का तेज और प्रवाह पाया जाता था । जिस प्रकार वाल्टेयर और लूथर ने रूढिवादिता के विरुद्ध जेहाद किया था उससे भी अधिक त्वरा, तज और प्रवाह से सावरकर न भी अपनी लेखनी के माध्यम से एक प्रकार से आन्दोलन ही खडा कर दिया था । मराठी मे इस प्रकार का लेखन न आज तक किसी ने किया था और हम यह कहने म तनिक भी सकोच नहीं है कि सावरकर के दिवगत होने के बाद भी उस प्रकार की लेखनी देखने मे नही आई ।

सावरकर विज्ञान के प्रबल समथक थे । अनक लोगो का अनक बातो से सावरकर से मतभेद हो सकता है । मत भिन्नता बुद्धिमत्ता का चिन्ह है । अन्धश्रद्धा मनुष्य को अवगति की ओर प्रवाहित करती है । सावरकर अनीश्वरवादी नहीं थे और न ही वे नास्तिक थे । किन्तु उनके कुछ विचार कुछ लोगो के लिये पूणतया ग्राह्य नहीं भी हो पाये तो इसमे आश्चय करने की बात नही है । सावरकर मानते थ कि बलि देने से वर्षा नही हो सकती तो साथ ही व यह भी मानते थे कि सभी पशु-पक्षी मनुष्य के उपयोग के लिये रचे गये हैं, फिर भले ही वह गाय ही क्यो न हो । उनकी दृष्टि म कोई भी पशु-पक्षी पूज्य नही था । यह कुछ ऐसी बातें हैं जिनसे सभी का सहमत होना सम्भव नहीं ।

सावरकर अपने भाषणो तथा लेखो एव निजी वार्तालाप के अवसर पर मशीन के उपयोग की ओर विशेष बल देते थ । विज्ञान म उनकी विशेष रुचि होन पर भी वे सम्प्ररूपण उसको स्वीकार करने के लिये उद्यत नहीं होते थे । उन्होने

अनेक बार यह भी कहा कि विज्ञान स्वयं में उतना बुरा नहीं है जितना कि उसके अन्वेषक और उपयोगकर्ता उसे सिद्ध कर देते हैं। इसी प्रकार वे 'जो पुराना है, वह सब ठीक है' इस मत के भी विरोधी थे। वेद और स्मृति ग्रन्थों के प्रति उनकी आस्था थी किन्तु पुराणों में विकृत इतिहास का होना भी वे स्वीकार करते थे।

लेखन की विशेषता

सावरकर और नेहरू, दोनों ने ही इतिहास पर लेखनी उठाई है। किन्तु दोनों के लेखन में अन्तर है। नेहरू ने यदि गांधी और कांग्रेस की प्रशंसा में कलम चलाई है तो सावरकर ने राष्ट्रीयता और देश प्रेम पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। सावरकर के लेखन में मौलिकता है किन्तु नेहरू के लेखन में आज भी उथलापन ही दिखाई देता है। नेहरू की स्वयं की दृष्टि में जो वीर पुरुष थे उनकी ही उसने प्रशंसा की है और दूसरों की निन्दा की है। किन्तु सावरकर ने इस प्रकार का पक्षपात नहीं किया है। उन्होंने राष्ट्र को प्रेरित किया है और असत्य का प्रत्याख्यान करने में ही अपनी लेखनी का सदुपयोग किया है।

नेहरू का विकृत इतिहास

नेहरू और सावरकर के लेखन में और भी अनेक विसंगतियां हैं। नेहरू ने अपनी पुस्तक 'विश्व इतिहास की झलक' में शिवाजी के विषय में जो कुछ लिखा है वह विकृत इतिहास है। उसने शिवाजी के व्यक्तित्व को बहुत बौना कर दिया है, जबकि उस स्थिति में उन जैसा वीर पुरुष जो कर सकता था वही उन्होंने किया। इसी प्रकार 'भारत की खोज' में भी उन्होंने इतिहास को सर्वथा विकृत कर दिया है। हिन्दुत्व की नेहरू ने सदा अवमानना की है। इसीलिए उसने महाराणा प्रताप के कार्यों की प्रशंसा नहीं की, विपरीत इसके अकबर द्वारा प्रतिपादित 'दीने इलाही' की प्रशंसा की है। क्योंकि 'दीने इलाही' ही गांधी और नेहरू का धर्म है। न केवल इतना नेहरू ने जयचन्द की भी प्रशंसा की है। जबकि सावरकर के लिए वह विश्वासघाती के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं था। सावरकर की दृष्टि में महाराणा प्रताप राष्ट्रीय वीर पुरुष और अकबर विदेशी आक्रामक मात्र था।

जिन्होंने सावरकर के चित्तौड़, पानीपत और १८५७ के विषय में विचार पढ़े और सुने हैं वे भलीभांति उनका आकलन कर सकते हैं। यहीं पर एक बहुत बड़ा प्रश्न भी उपस्थित होता है। वह यह कि क्या ट्रेफलगर और वाटरलू के युद्ध के बिना इंग्लैंड के इतिहास को इतिहास कहा जायगा ? नहीं, कभी नहीं।

दूसरा प्रश्न है—क्या किसी ने ऐसी भी कोई इतिहास पुस्तक देखी है, जिसमें 'चित्तौड़' का उल्लेख न हो ? जी हां, देखी है और कांग्रेस सरकार ने राजीव गांधी के प्रधानमंत्रित्व के काल में दूरदर्शन पर उसको दिखाया भी है। वह कुख्यात इतिहास पुस्तक है 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' अर्थात् 'भारत की खोज'। जिसके ख्यातनामा (?)

लेखक हैं पण्डित जवाहरलाल नेहरू। बीसवीं शताब्दी के नवम दशक के उत्तरार्द्ध के भारत के प्रधानमन्त्री राजीव गांधी के मातामह अर्थात् नाना। इसी कारण राजीव गांधी ने दूरदर्शन पर उसके दर्शन कराये हैं।

सावरकर ने 'माझी जन्मठेप' की रचना अपनी रत्नागिरि स्थानबद्धता की अवधि में ही की थी। नेहरू की आत्मकथा उसके सम्मुख कहीं भी नहीं टिक सकती।

हिन्दू महासभा में

बम्बई में स्थिर होने के उपरान्त सावरकर ने वहाँ के युवकों को सम्बोधित करते हुए कहा था, "जीवन में नाटक, कविता तथा साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है इसमें सन्देह नहीं। किन्तु जब माता मृत्यु शय्या पर पड़ी हो उस समय जलवायु परिवर्तन के लिये अन्यत्र जाना अथवा जीवन को मनोरंजन-मय बनाना महान पाप है।" उन्होंने युवकों से अपील की कि वे राइफल क्लबें आरम्भ करें।

१ अगस्त १९३७ को अपने पूना प्रवास में सावरकर ने घोषणा की कि वे तिलक की डैमोक्रैटिक स्वराज पार्टी में प्रविष्ट हो गये हैं और उसके तुरन्त बाद ही उन्होंने हिन्दू महासभा में प्रवेश ले लिया। जो लोग उनकी विचारधारा से परिचित थे उनको इससे किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं हुआ। उन्होंने कांग्रेस को इसलिए नहीं अपनाया क्योंकि उसने अपने प्रजातान्त्रिक तथा राष्ट्रीय पथ से विचलित होकर अराष्ट्रीय तत्वों के सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया था। स्वराजपार्टी और हिन्दू महासभा दोनों ही गांधीवाद के विरुद्ध थे। किन्तु जो प्रभावशाली लोग थे, पूंजीपति अथवा उद्योग पति थे, वे सब उस समय गांधी की सहायता कर रहे थे।

उन्हीं दिनों सावरकर के योरोप के साथी वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय योरोप में रहते हुए ही कम्युनिस्ट बन गये थे। वे रूस चले गये। किन्तु वे कम्युनिस्टों में भी ट्रोटस्की के विचारों के पोषक थे और उन दिनों रूस पर स्टालिन की कम्युनिस्ट पार्टी हावी थी। ऐसा माना जाता है कि स्टालिन की सरकार ने चट्टोपाध्याय को गोली से उड़ा दिया। सावरकर ही एक मात्र भारतीय नेता थे जिन्होंने इसके विरोध में वक्तव्य प्रसारित किया था और मांग की थी चट्टोपाध्याय की मृत्यु की जांच कराई जाय। किन्तु ब्रिटिश और रूसी सरकारें चुप्पी साधे रहीं।

हरदयाल भी उन दिनों योरोप में निर्वासित का जीवन बिता रहे थे। भारत में सर तेजबहादुर सप्रू ने उनके निवासन को निलम्बित कर उन्हें भारत आने के लिए ब्रिटिश सरकार से बातचीत की और उन्हें अनुमति मिल गई। किन्तु शीघ्र ही ४ मार्च १९३९, को उनका देहान्त हो गया। इसी प्रकार तब तक मादाम कामा और पण्डित श्यामजी कृष्ण वर्मा भी परलोक सिधार चुके थे। राणा निर्वासित जीवन व्यतीत कर रहे थे। सेनापति बापट और डाक्टर राजन कांग्रेस में प्रविष्ट हो गये थे।

अपने राजनीतिक विचारों के सम्बन्ध में सावरकर स्पष्टतया कहा करते थे कि वे भारत में हिन्दूराज के पक्षपाती हैं। ऐसे हिन्दुओं का राज, जो जागृत हों, निष्ठावान

हो और कार्यक्षम हो। उनका उद्देश्य पूर्ण राजनीतिक स्वराज्य प्राप्त करना था। वे येन-केन प्रकारेण स्वराज्य प्राप्त कर लेने के पक्षपाती थे। तीसरा उनका उद्देश्य था हिन्दुओं का पुनर्जागरण। हिन्दुत्व की सावरकर की अपनी व्याख्या थी, जो कालान्तर मे सर्वसम्मत व्याख्या स्वीकार कर ली गई।

इस विचारधारा और इस मन स्थिति तथा देश की ऐसी परिस्थिति मे सावरकर ने देश भ्रमण आरम्भ किया। भ्रमण का अभिप्राय मनोरजनार्थ भ्रमण नही अपितु राजनीतिक जागरण के हेतु भ्रमण था। सर्व प्रथम वे नासिक गये और वहाँ उन्होने अपने पुराने मित्रो के साथ विचार विमर्श किया और जन सभा को सम्बोधित किया। उन्होंने वहाँ के जक्सन उद्यान का नाम कान्हारे उद्यान के रूप मे परिणत करने का आग्रह किया। एक अन्य जनसभा मे उन्होने छुआ छूत को जड मूल से समाप्त करने का आग्रह किया। वहाँ से वे सतारा तथा अन्यान्य स्थानो पर जाकर अपने व्याख्यानो द्वारा हिन्दुओ मे राजनीतिक जागृति उत्पन्न करने के लिये उन्हे उत्साहित करते रहे।

गाँधी की भर्त्सना

पूना मे सावरकर ने वह झण्डा लहराया, जिसे मादाम कामा ने सर्वप्रथम जर्मनी मे लहराया था, इसे गजाननराव केतकर बड़े प्रयत्न से भारत लाकर अब तक इसको सुरक्षित रख पाये थे। पूना से वे अन्य अनेक स्थानोपर गये और डाक्टर हेडगेवार के आग्रह पर वे वर्धा मे राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ की शाखा मे भी गये। सावरकर के नागपुर पहुँचने पर उनका भव्य स्वागत किया गया। १३ दिसम्बर, १९३७ की नागपुर की विशाल जनसभा को सम्बोधित करते हुए उन्होने हिन्दुओ को सावधान किया कि वे पाकिस्तान की योजना को असफल करने के लिए सन्नद्ध हो जाय। उसी सभा मे उन्होने चेतावनी दी कि काश्मीर का हिन्दू राज्य बना रहना बड़ा कठिन हो जायेगा। यदि अभी से अहिन्दू शक्तियो का सामना न किया गया तो कालान्तर मे उसे सम्हाल पाना कठिन होगा। काश्मीर के विषय मे उनकी भविष्यवाणी कितनी सार्थक सिद्ध हुई यह आज की स्थिति से स्पष्ट है। महात्मा गाँधी ने महाराजा काश्मीर को परामर्श दिया था कि वे अपना राज्य मुसलमानों को सौंपकर स्वय बनारस जाकर प्रायश्चित्त करें। सावरकर ने उसी सभा मे गाँधी के इन ओछे विचारों की जोरदार भर्त्सना की थी। उन्होने कहा कि महाराज काश्मीर को तो गाँधी ने परामर्श दे दिया किन्तु निजाम हैदराबाद से उसी भाषा मे बात करने का साहस उनको क्यो नही हुआ। उनको कहना चाहिये कि भारत मे सभी नवाब देश छोड़कर मक्का मे जाकर प्रायश्चित करें। किन्तु नही, मुसलमानो के प्रति गाँधी के हृदय मे बड़ा सम्मान का स्थान था। इसी जनसभा मे उन्होने महिलाओं को रसोई और घर की चारदीवारी से बाहर निकल कर राष्ट्रोत्थान के कार्य मे हाथ बटाने का आग्रह किया।

महासभा के अध्यक्ष

सावरकर को हिन्दू महासभा का अध्यक्ष मनोनीत किया गया और ३० दिसम्बर, १९३७ को अहमदाबाद में सम्पन्न महासभा के वार्षिक अधिवेशन को सम्बोधित करते हुए उन्होंने पहली बार सार्वजनिक मंच से 'हिन्दू' को व्याख्यायित किया। यहीं पर उन्होंने घोषणा की—

आसिन्धु सिन्धु पर्यन्ता यस्य भारत भूमिका।
पितृभू पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरिति स्मृत ॥

सिन्धु से आरम्भ कर समुद्र तट तक विस्तृत इस भारत भूमि को जो अपनी पितृभूमि, पुण्यभूमि मानता है, वही हिन्दू है।

इस अधिवेशन में सावरकर ने गांधी के 'मुसलमानों को साथ लिए बिना स्वराज्य मिलना असम्भव है।' इस कथन को गांधी द्वारा मुसलमानों का तुष्टीकरण करना कहते हुए इसकी निन्दा की और उसी समय उन्होंने मुसलमानों को चेतावनी देते हुए कहा—

यदि तुम साथ आते हो तो तुमको साथ लेकर, यदि तुम साथ नहीं आते तो बिना तुम्हारे अकेले ही, और यदि तुम हमारा विरोध करोगे तो तुम्हारे उस विरोध को कुचलते हुए हम हिन्दू, देश की स्वाधीनता का युद्ध निरन्तर लड़ते रहेंगे।'

सावरकर ने गांधी पर आरोप लगाया कि उसने असामाजिक प्रकार के मुसलमानों को सिर चढ़ाकर देशघातक कार्य किया है। उसका परिणाम आज भी देखने में आ रहा है और भविष्य में इसका बहुत ही भयंकर परिणाम होने वाला है।

सावरकर ने उस समय जो कुछ कहा था कालान्तर में वह अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ है। उन्होंने उर्दू भाषा के विषय में भी उसी अधिवेशन में, भविष्यवाणी करते हुए कहा था—

"मुसलमानों ने मुस्लिम लीग की लखनऊ बैठक में उर्दू को राष्ट्रभाषा बनाने का जो प्रस्ताव किया है वह घोर साम्प्रदायिकता और हिन्दुओं तथा हिन्दी के प्रति घृणा पर आधारित है। आज तो मुसलमानों को 'वन्दे मातरम्' जैसा राष्ट्रगीत भी असह्य होने लगा है। हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए चिन्तित कांग्रेसियों ने मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए 'वन्दे मातरम्' में बहुत काट-छाट तक कर दी है। किन्तु वे तो 'वन्दे मातरम्' शब्द को ही अस्वीकार करते हैं।

"हिन्दुओं को यह बात भलीभांति समझ लेनी चाहिए कि मुसलमानों की इस कुचाल का कारण केवल यही है कि हिन्दुओं को ही हिन्दू मुस्लिम एकता रूपी पिशाच के पीछे पड़ने की लगन लगी हुई है। जिस दिन हमने मुसलमानों के मन में यह उत्पन्न कर दिया था कि उनके सहयोग दिए बिना स्वराज्य मिलना असम्भव है उसी दिन से उन्होंने हमारे सिर पर चढ़ना प्रारम्भ किया है।

फरवरी १९३८ में सावरकर का आगमन दिल्ली में हुआ। ६-२-१९३८ को दिल्ली के स्टेशन पर हजारों हजारों की संख्या में उपस्थित होकर दिल्ली वासियों ने

उनका हार्दिक स्वागत किया । यद्यपि उस समय उनका स्वास्थ्य बहुत खराब था फिर भी दिल्ली में उनकी शोभायात्रा निकाली गई । एक सुन्दर सज्जित रथ पर उन्हें बैठाकर ८ किलोमीटर की शोभायात्रा निकाली गई । इस शोभायात्रा में सावरकर जी के साथ डाक्टर मुंजे, लाला नारायणदत्त, भाई परमानन्द, प्रो रामसिंह, डा जयकर और श्री एम एस अणे आदि महानुभाव विराजमान थे । सभी चौराहों पर मिठाई बांटी जाती रही और उन चौराहों को बहुत सजाया गया था । उस दिन पहली बार 'जिन्दाबाद' के स्थान पर 'अमर रहे' शब्द का प्रयोग किया गया और तब से यह प्रयोग स्थायी बन गया । दिल्ली में उनके स्वागत में एक भव्य विशाल जनसभा का आयोजन किया गया और उपरिलिखित सभी महानुभावों ने उसमें भाग लिया ।

दिल्ली से लौटते हुए भोपाल स्टेशन पर उनका शानदार स्वागत किया गया । इस यात्रा म वे १३-२-१९३८ को नागर पहुंचे जहां कांग्रेस के प्रख्यात नेता रावसाहब पटवर्धन ने उनका जोरदार स्वागत सम्मान किया । श्री नाना साहेब मोदक ने उनसे भेंट की । कोपरगांव मे श्री जमनादास मेहता न उस जनसभा की अध्यक्षता की जो सावरकर के स्वागत के लिए आयोजित की गई थी । इस अवसर पर भी उन्होंने इस बात को दोहराया कि उन्होंने मन्त्रिमण्डल म इसी शर्त पर सम्मिलित होना स्वीकार किया था कि सावरकर जी को पहले कारागार से मुक्त करना होगा ।

सावरकर की इस यात्रा के सफल आयोजन के लिए डाक्टर भोपे, श्री गोपाल राव गायकवाड़, डा खानोलकर और श्री सहस्रबुद्धे आदि महानुभावों ने अनथक प्रयत्न किया था ।

क्रान्तिकुंज कानपुर

इसी यात्रा के सावरकर स्वातन्त्र्य समर की क्रांति भूमि के रूप मे प्रख्यात अनेकानेक नगरो मे गए । ३-४-१९३८ को उन्होंने कानपुर की एक विशाल जनसभा को सम्बोधित करते हुए १८५७ के स्वातन्त्र्य युद्ध पर ही अपना सारा भाषण दिया था । उन्होंने कानपुर की भूमि का अभिनन्दन करते हुए कहा था "यह वही क्रांतिभूमि, ऐतिहासिक नगर कानपुर है जिसने ब्रिटिश साम्राज्यवादियो की पराजय देखी थी । इसी पवित्र भूमि पर सेनापति तात्या टोपे ने ब्रिटिश सेना का गर्व चकनाचूर करके उसे पराजित किया था । मेरे हृदय में अपने बाल्यकाल से ही कानपुर, बनारस और मेरठ जैसे पवित्र नगरों को देखने की उत्कट आकांक्षा थी । कानपुर और मेरठ मेरे लिए क्रांति तीर्थ और बनारस पुण्य तीर्थ के रूप मे वन्दनीय हैं । जब से मैं इस नगरी मं प्रविष्ट हुआ हूं मेरे हृदय मे क्रांतिवीर नाना साहेब व तात्या टोपे की हिन्दू सेना के युद्ध उद्घोष तथा उनके तोपों की गड़गड़ाहट की ध्वनि निरन्तर प्रतिध्वनित हो रही है । यह मेरा परम सौभाग्य है कि बाल्यकाल से जिस पवित्र भूमि के दर्शनों के मैं स्वप्न संजोया करता था आज मैं प्रत्यक्षतया उनके दर्शन करके उनको प्रणाम करने के लिए यहां पर विद्यमान हूं ।"

सावरकर गंगाजी के तट पर उस घाट को भी देखने के लिए गए जहाँ भारतीय रणबांकुरों ने अंग्रेज आततायियों को मौत के घाट उतारा था। भगवान शिव के जिस मन्दिर में सेनापति तात्या टोपे ने सर्वप्रथम शंखध्वनि के द्वारा क्रांति का बिगुल बजाया था सावरकर उस मन्दिर में भी गए और उन्होंने भगवान शिव के चरणों में अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किए।

कानपुर से सावरकर फैजाबाद के गुरुकुल और संस्कृत पाठशाला में भी गए, जहाँ क्रांतिवीरों को देशभक्ति के पाठ पढ़ाये जाते रहे थे। अपने स्वागत भाषण के उत्तर में सावरकर ने कहा था कि उनको यह जानकर प्रसन्नता हुई कि इन शिक्षण संस्थानों में बिना किसी जाति भेद के सब हिन्दुओं को समानरूप से समान शिक्षा दी जाती है। फैजाबाद से सावरकर बाराबंकी गए वहाँ भी उनका भव्य स्वागत हुआ। बाराबंकी के बाद सावरकर उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध नगर लखनऊ पहुँचे। ५४ ३८ को लखनऊ में उनके सम्मान में विशाल शोभा यात्रा निकाली गई। वहाँ पर भी सावरकर ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि किस प्रकार कांग्रेस अपने मूल लक्ष्य से भटक कर असामाजिक तथा अराष्ट्रीय मुसलमानों के सम्मुख घुटने टेक कर देश का अहित कर रही है।

लखनऊ में उन दिनों सावरकर के अण्डमान के साथी शचीन्द्रनाथ सान्याल विराजमान थे। उन्होंने सावरकर के सम्मान में अपने निवास पर एक विशाल भोज का आयोजन किया, वहाँ तत्कालीन कांग्रेस के नेता, कालांतर में समाजवादी नेता के रूप में प्रख्यात, आचार्य नरेन्द्रदेव ने सावरकर से भेंट की। अपनी बातचीत में नरेन्द्रदेव ने अपनी पार्टी की स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा कि क्योंकि भारत में मुसलमान अल्पसंख्या में हैं, इसलिए उनको कुछ न कुछ सुविधा तो मिलनी ही चाहिए। उसके उत्तर में सावरकर ने कहा कि किन्तु मुसलमान तो अपने अल्पसंख्यक होने का आभास हिन्दु समुदाय को नहीं देते वे तो आक्रमणकारी रूप का ही आभास देते रहते हैं। वास्तव में उन्होंने तो हिन्दू बहुमत को धर्मान्तिरण के द्वारा अल्पमत में लाने का यत्न किया था, जिसमें वे असफल रहे हैं। लखनऊ नगर पालिका का अध्यक्ष उन दिनों मुसलमान था, उसने सावरकर के सम्मान में भाषण दिया था।

सैनिक प्रशिक्षण की आवश्यकता

लखनऊ से चलकर सावरकर हसनगंज और शाहगंज की सभाओं में उपस्थित होते हुए आगरा पहुँचे। आगरा में सावरकर का भव्य स्वागत किया गया। वहाँ विशाल सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। अपने भाषण में सावरकर ने सैनिक शिक्षा का महत्व बताते हुए युवकों को परामर्श दिया कि वे या तो सेना में प्रविष्ट होकर सैनिक शिक्षा का प्रशिक्षण प्राप्त करें अथवा जो सेना में न जा सकते हों वे अपने नगर में ही राइफल क्लबों की स्थापना कर इस प्रकार के प्रशिक्षण अवश्य प्राप्त करें।

अपने प्रवासकाल में सावरकर आगरा में हृदयनाथ कुंजरू के भाई राजनाथ कुंजरू के घर पर ठहरे थे। वहीं तत्कालीन संयुक्त प्रांत के मुख्यमंत्री पण्डित गोविन्द-

बल्लभ पन्त ने उनसे भेंट की थी। आगरा में सावरकर आगरा का वह दुर्ग और स्थान भी देखने के लिए गए जहाँ छत्रपति शिवाजी ने औरंगजेब से भेंट की थी।

अपने इस प्रवास के अन्त में १५ अप्रैल १९३८ को सावरकर ने मराठी साहित्य सम्मेलन को सम्बोधित किया था। उस सम्मेलन में जहाँ सावरकर ने साहित्य सम्बन्धी अनेक विधाओं आदि पर विचार किया वहाँ उन्होंने अपने भाषण के अन्त में उद्बोधन रूप में कहा था, "मैं जितने उच्च स्वर से बोल सकता हूँ, उतने उच्च स्वर से यह कहता हूँ कि भारत की वर्तमान आवश्यकता अथवा समय की पुकार कहती है कि इस समय हम साहित्यकारों की नहीं सैनिकों की आवश्यकता है। यदि यह सारा दशक भी साहित्यविहीन हो जाता है तो इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। भले ही इस दशक में कोई गाना न गाया जाय अथवा कोई कविता न रची जाय। किन्तु भारत के नगरों की वीथियाँ शस्त्रास्त्रों से सज्जित, सैनिकों के बूटों की ध्वनियों से ध्वनित होती रहें। कभी-कभी बदलाव के लिए कोई सुन्दर सी कविता अथवा कोई हृदय तन्त्री को झंकृत करने वाली कथा लिख भी ली जाय तो ठीक है, क्योंकि हम जानते हैं कि नेपोलियन जैसे बहादुर को भी विश्राम की आवश्यकता पड़ती ही थी। अपने शत्रुओं से घुटने टिकवाने के बाद बाजीराव प्रथम ने भी कुछ समय के लिए प्रेम प्रलाप किया था।

"किन्तु अब मैं आज भारत की यह स्थिति देखता हूँ तो मेरा हृदय कराह उठता है। इसलिए ओ साहित्यकारो! मैं आपको कहता हूँ कि क्या आप तेग, तलवार और बन्दूकों के पक्ष में अपनी लेखनी को कुर्बान कर सकते हैं? क्योंकि आप यह बात भली-भाँति हृदयंगम कर लें कि दास देश में साहित्य कभी नहीं पनप सकता। यह कहा जाता है कि ज्ञान विज्ञान की उन्नति शस्त्रास्त्रों से सज्जित स्वतन्त्र देश में ही हो सकती है, किसी दास देश में नहीं।"

उस वर्ष अपनी भारत यात्रा में सावरकर लाहौर, अमृतसर, अजमेर, नासिक, ग्वालियर आदि आदि स्थानों पर गए और वहाँ सब स्थानों पर उनका भव्य स्वागत किया गया। सावरकर ने अपने ओजस्वी भाषणों के माध्यम से देश के युवकों का आह्वान किया और तद्स्थानीय नेताओं से भी भेंट वार्ता की।

सितम्बर १९३८ में सावरकर ने दस दिन की सिन्ध यात्रा की। सिन्ध के प्रत्येक नगर में उनका भव्य स्वागत किया गया। कराची में उनकी शोभायात्रा को अपने गन्तव्य पर पहुँचने में पूरे पाँच घण्टे लगे थे। सक्खर में आयोजित हिन्दू सम्मेलन के अध्यक्ष सावरकर थे। उन्होंने उसी समय हिन्दुओं को सावधान कर दिया था। किन्तु उस समय सिन्ध के हिन्दू कांग्रेस के दुष्प्रभाव में होने के कारण सावरकर की चेतावनी को समझ नहीं पाए, परिणामस्वरूप उन्हें भारत विभाजन के अवसर पर महान कष्ट और यातनायें सहनी पड़ीं। सावरकर की सिन्ध यात्रा के विषय में वहाँ के कांग्रेस समर्थक समाचार पत्र 'सिन्ध ऑब्जर्वर' ने लिखा था—'वे आए, उन्होंने देखा, वे विजयी हुए।'

निजाम का विरोध

वर्तमान में आन्ध्र प्रदेश की राजधानी हैदराबाद, सन् १९४८-४९ तक हैदराबाद रियासत के रूप में थी। हैदराबाद नगर तथा उसके आसपास के अन्य अनेक नगर तथा ग्राम उन दिनों हैदराबाद के अन्तर्गत थे। यह बड़ी विस्तृत और सुदृढ़ मुस्लिम रियासत मानी जाती थी। वहाँ का नवाब 'निजाम' कहलाता था। वह कट्टर और सनकी मुसलमान था। गांधी के खिलाफत आन्दोलन में उसने बढ़ चढ़ कर इसलिए भाग लिया था क्योंकि एक तो वह स्वयं मुसलमान था और दूसरे टर्की के खलीफा की कन्या का उसके पुत्र से विवाह होने के कारण, वह खलीफा का सुदृढ़ पक्षधर बन गया था।

निजाम के राज्य में हिन्दुओं को अनन्य कष्ट और यातनायें सहनी पड़ रही थी। निजाम का अत्याचार प्रतिदिन बढ़ता ही जाता था। उसने हिन्दुओं के सभी धार्मिक अधिकारों को छीन लिया था। हिन्दुओं का पूजा-पाठ, हवन आदि करना तो दूर वे यज्ञोपवीत तक धारण नहीं कर सकते थे। यज्ञोपवीत तो शरीर पर धारण कर वस्त्रों के भीतर रहता है, किन्तु वहाँ वस्त्रों के भीतर छिपा यज्ञोपवीत तक धारण नहीं करने दिया जाता था। तब फिर मन्दिरों में शंखध्वनि करना, भजन कीर्तन करना, पूजा पाठ करना, रामायण, गीता, भागवत अथवा महाभारत आदि पुराणों की कथा आदि करना किस प्रकार सम्भव हो सकता था? वहाँ वह सब असंवैधानिक घोषित कर दिया गया था। मुसलमान गुण्डे हिन्दुओं पर मनमाना अत्याचार करते थे, उसकी कोई सुनवाई नहीं होती थी। हिन्दू कन्याओं तथा महिलाओं का अपहरण वहाँ सामान्य घटना समझी जाने लगी थी। धर्मान्तरण ही नहीं अपितु बलात धर्मान्तरण भी वहाँ पुण्य का और दीन का काम समझा जाता था।

इस प्रकार निजाम ने औरंगजेब और नादिरशाह आदि को भी अनाचार और अत्याचार में पीछे पछाड़ दिया था। जब हिन्दू जनता के लिए यह सब असह्य होने लगा, पाप, अत्याचार और अनाचार का घड़ा जब छलकने लगा तो हिन्दुओं में कुछ हलचल हुई। शोलापुर आर्य समाज ने निजाम के इन अत्याचारों के प्रतिकार के लिए शोलापुर में आर्य महासम्मेलन का आयोजन किया। दिसम्बर १९३८ में आयोजित इस महासम्मेलन के आयोजक थे महात्मा नारायण स्वामी सरस्वती और अध्यक्ष थे श्री बापूजी अणे। आर्य समाज के अनेक नेताओं ने सावरकर से आग्रह किया कि वे उस सम्मेलन में पधार कर अपने ओजस्वी भाषण से हिन्दू जनता का मार्ग दर्शन करें।

जहाँ हिन्दू पर आई विपत्ति के निवारण की बात हो, सावरकर कब पीछे रहने वाले थे। वे तुरन्त शोलापुर पहुँचे और घोषणा करते हुए कहा, "इस आन्दोलन में आर्य समाज को अपने को अकेला अनुभव नहीं करना चाहिए। हिन्दू महासभा अपनी पूर्ण शक्ति से आर्य समाज के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर निजाम की हिन्दू विरोधी नीति व

जघन्य क्रिया कलापों को चकनाचूर करके ही चैन की सांस लेगी।"

सावरकर ने उसी सभा में घोषणा करके २२ जनवरी, १९३९ को 'निजाम विरोधी दिवस' के रूप में आयोजित करने का आह्वान किया। उन्हीं दिनों नागपुर में हिन्दू महासभा का अधिवेशन होने वाला था। इस महासम्मेलन में जापान के बौद्ध भी सम्मिलित हुए थे। हिन्दू महासभा के नव निर्वाचित अध्यक्ष की शोभायात्रा को अपने गन्तव्य स्थल पर पहुँचने में पाँच घण्टे लगे थे। इतना उत्साह था नागपुर की जनता में। सावरकर पर वायुयान से पुष्प वर्षा की गई। नागपुर अधिवेशन के अवसर पर सावरकर ने जो अध्यक्षीय भाषण दिया वह हिन्दू महासभा में ही नहीं अपितु अध्यक्षीय भाषण के इतिहास में अनन्य था। इस अधिवेशन के अवसर पर सभी सभा समितियों में हैदराबाद संघर्ष की जोरदार चर्चा रही।

बिरला को करारा उत्तर

हिन्दू महासभा के अधिवेशन के प्रसंग में जब सावरकर नागपुर में थे तो उन्हें भारत के महान उद्योगपति (स्व) घनश्यामदास बिरला का एक तार मिला। बिरला ने सावरकर से अनुरोध किया था कि अपने अध्यक्षीय भाषण में वे गांधी द्वारा किए तथाकथित हरिजनोद्धार का उल्लेख अवश्य करें। सावरकर ने उस तार को चुपचाप एक ओर को सरका दिया और घनश्यामदास बिरला को लिख दिया कि हिन्दू महासभा के अध्यक्ष के कार्यालय के रख रखाव के लिए जो राशि वे देते हैं उसे देना बन्द कर दें। घनश्यामदास ने यह अपमान चुपचाप सह लिया।

निजाम हैदराबाद के अत्याचारों के विरोध में चलाए जाने वाले आन्दोलन में हिन्दू महासभा ने पूर्ण सहयोग दिया और सावरकर की प्रेरणा पर सनातन धर्मी विचार-धारा के भी अनेक व्यक्ति हैदराबाद सत्याग्रह में कूद पड़े थे। सावरकर ने पूना जाकर इस सत्याग्रह के लिए नाथूराम गोडसे के नेतृत्व में हिन्दू महासभा का विशाल जत्था हैदराबाद भिजवाया था।

न केवल साधारण कांग्रेसी नेता अपितु गांधी तक ने उस हैदराबाद आन्दोलन को साम्प्रदायिक आन्दोलन घोषित करते हुए एक वक्तव्य प्रसारित कर दिया। तुरन्त ही उस वक्तव्य का इतना विरोध हुआ कि गांधी के लिए उसका प्रतिवाद प्रकाशित करना अनिवार्य हो गया। तब गांधी ने कहा, "धार्मिक स्वतन्त्रता के लिए चलाए गए आन्दोलन से तो मुझे सहानुभूति है, किन्तु हिन्दू महासभा द्वारा आन्दोलन में कूद पड़ने से यह साम्प्रदायिक हो गया है।"

सावरकर भला यह असत्य किस प्रकार सहन करते। डाक्टर मुंजे के साथ उन्होंने इस वक्तव्य का उत्तर देते हुए कहा, "गांधी जी बतायें कि 'वन्दे मातरम्' को सहन न करने वालों, हिन्दी भाषा का विरोध करने वालों एवं स्वाधीनता संग्राम में योग न देने वालों की चापलूसी करना, उन्हें सिर पर चढ़ाना क्या बड़ा भारी धर्म, निष्पक्षता व न्याय का कार्य है? क्या यह सब साम्प्रदायिकता का पोषण करना नहीं है?"

निजाम का विरोध

वर्तमान में आन्ध्र प्रदेश की राजधानी हैदराबाद सन् १९४८-४९ तक हैदराबाद रियासत के रूप में थी। हैदराबाद नगर तथा उसके आसपास के अन्य अनेक नगर तथा ग्राम उन दिनों हैदराबाद के अन्तर्गत थे। यह बड़ी विशाल और सुदृढ़ मुस्लिम रियासत मानी जाती थी। वहाँ का नवाब 'निजाम' कहलाता था। वह कट्टर और सनकी मुसलमान था। गांधी के खिलाफत आन्दोलन में उसने बढ़ चढ़ कर इसलिए भाग लिया था क्योंकि एक तो वह स्वयं मुसलमान था और दूसरे टर्की के खलीफा की कन्या का उसके पुत्र से विवाह होने के कारण। वह खलीफा का सुदृढ़ पक्षधर बन गया था।

निजाम के राज्य में हिन्दुओं को अनन्य कष्ट और यातनायें सहनी पड़ रही थी। निजाम का अत्याचार प्रतिदिन बढ़ता ही जाता था। उसने हिन्दुओं के सभी धार्मिक अधिकारों को छीन लिया था। हिन्दुओं का पूजा-पाठ, हवन आदि करना तो दूर वे यज्ञोपवीत तक धारण नहीं कर सकते थे। यज्ञोपवीत तो शरीर पर धारण कर वस्त्रों के भीतर रहता है, किन्तु वहाँ वस्त्रों के भीतर छिपा यज्ञोपवीत तक धारण नहीं करने दिया जाता था। तब फिर मन्दिरों में शंखध्वनि करना, भजन कीर्तन करना, पूजा पाठ करना, रामायण, गीता, भागवत अथवा महाभारत आदि पुराणों की कथा आदि करना किस प्रकार सम्भव हो सकता था? वहाँ यह सब असवैधानिक घोषित कर दिया गया था। मुसलमान गुण्डे हिन्दुओं पर मनमाने अत्याचार करते थे, उसकी कोई सुनवाई नहीं होती थी। हिन्दू कन्याओं तथा महिलाओं का अपहरण वहाँ सामान्य घटना समझी जाने लगी थी। धर्मान्तरण ही नहीं अपितु बलात धर्मान्तरण भी वहाँ पुण्य का और दीन का काम समझा जाता था।

इस प्रकार निजाम ने औरंगजेब और नादिरशाह आदि को भी अनाचार और अत्याचार में पीछे पछाड़ दिया था। जब हिन्दू जनता के लिए यह सब असह्य होने लगा, पाप, अत्याचार और अनाचार का घड़ा जब छलकने लगा तो हिन्दुओं में कुछ हलचल हुई। शोलापुर आर्य समाज ने निजाम के इन अत्याचारों के प्रतिकार के लिए शोलापुर में आर्य महासम्मेलन का आयोजन किया। दिसम्बर १९३८ में आयोजित इस महासम्मेलन के आयोजक थे महात्मा नारायण स्वामी सरस्वती और अध्यक्ष थे श्री बापूजी अणे। आर्य समाज के अनेक नेताओं ने सावरकर से आग्रह किया कि वे उस सम्मेलन में पधार कर अपने ओजस्वी भाषण से हिन्दू जनता का मार्ग दर्शन करें।

जहाँ हिन्दू पर आई विपत्ति के निवारण की बात हो, सावरकर कब पीछे रहने वाले थे। वे तुरन्त शोलापुर पहुँचे और घोषणा करते हुए कहा, "इस आन्दोलन में आर्य समाज को अपने को अकेला अनुभव नहीं करना चाहिए। हिन्दू महासभा अपनी पूर्ण शक्ति से आर्य समाज के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर निजाम की हिन्दू विरोधी नीति व अधन्य क्रिया कलापों को चकनाचूर करके ही चैन की सांस लेगी।"

सावरकर ने उसी सभा मे घोषणा करके २२ जनवरी, १६३६ को 'निजाम विरोधी दिवस' के रूप मे आयोजित करने का आह्वान किया। उन्ही दिनों नागपुर मे हिन्दू महासभा का अधिवेशन होने वाला था। इस महासम्मेलन मे आसाम के बौद्ध भी सम्मिलित हुए थे। हिन्दू महासभा के नव निर्वाचित अध्यक्ष की शोभायात्रा को अपने गन्तव्य स्थल पर पहुँचने मे पाँच घण्टे लगे थे। इतना उत्साह था नागपुर की जनता मे। सावरकर पर वायुयान से पुष्प वर्षा की गई। नागपुर अधिवेशन के अवसर पर सावरकर ने जो अध्यक्षीय भाषण दिया वह हिन्दू महासभा के ही नही अपितु अध्यक्षीय भाषण के इतिहास मे अनन्य था। इस अधिवेशन के अवसर पर सभी सभा समितियो मे हैदराबाद सघर्ष की जोरदार चर्चा रही।

बिरला को करारा उत्तर

हिन्दू महासभा के अधिवेशन के प्रसग मे जब सावरकर नागपुर में थे तो उन्हे भारत के महान उद्योगपति (स्व) घनश्यामदास बिरला का एक तार मिला। बिरला ने सावरकर से अनुरोध किया था कि अपने अध्यक्षीय भाषण मे वे गाँधी द्वारा किए तथाकथित हरिजनोद्धार का उल्लेख अवश्य करें। सावरकर ने उस तार को चुप-चाप एक ओर को सरका दिया और घनश्यामदास बिरला को लिख दिया कि हिन्दू महासभा के अध्यक्ष के कार्यालय के रख रखाव के लिए जो राशि वे देते हैं उसे देना बन्द कर दें। घनश्यामदास ने यह अपमान चुपचाप सह लिया।

निजाम हैदराबाद के अत्याचारो के विरोध मे चलाए जाने वाले आन्दोलन में हिन्दू महासभा ने पूर्ण सहयोग दिया और सावरकर की प्रेरणा पर सनातन धर्मी विचार-धारा के भी अनेक व्यक्ति हैदराबाद सत्याग्रह म कूद पड़े थे। सावरकर ने पूना जाकर इस सत्याग्रह के लिए नाथूराम गोडसे के नेतृत्व में हिन्दू महासभा का विशाल जत्था हैदराबाद भिजवाया था।

न केवल साधारण काग्रेसी नेता अपितु गांधी तक ने उस हैदराबाद आन्दोलन को साम्प्रदायिक आन्दोलन घोषित करते हुए एक वक्तव्य प्रसारित कर दिया। तुरन्त ही उस वक्तव्य का इतना विरोध हुआ कि गांधी के लिए उसका प्रतिवाद प्रकाशित करना अनिवार्य हो गया। तब गाँधी ने कहा, "धार्मिक स्वतत्रता के लिए चलाए गए आन्दोलन से तो मुझे सहानुभूति है, किन्तु हिन्दू महासभा द्वारा आन्दोलन म कूद पड़ने से यह साम्प्रदायिक हो गया है।"

सावरकर भला यह असत्य किस प्रकार सहन करते। डाक्टर मुजे के साथ उन्होंने इस वक्तव्य का उत्तर देते हुए कहा, "गाँधी जी बतायें कि 'वन्दे मातरम्' को सहन न करने वालो, हिन्दी भाषा का विरोध करने वालों एव स्वाधीनता सग्राम मे योग न देने वालो की चापलूसी करना, उन्हें सिर पर चढाना क्या बड़ा भारी धर्म, निष्पक्षता व न्याय का काय है? क्या यह सब साम्प्रदायिकता का पोषण करना नही है?"

गाँधी के पास इसका कोई उत्तर नही था।

सावरकर ने हैदराबाद आन्दोलन मे प्राण फूकने के लिए अनेक स्थानो पर जा-जाकर उसके समर्थन मे जोशीले भाषण दिए। अनेक स्थानो से सत्याग्रही जत्था को भिजवाया।

कांग्रेस की तलवा चाटू नीति

महाराष्ट्र का प्रवास पूर्ण कर सावरकर ने बगाल और बिहार की ओर मुख किया। फरवरी १९३९ म सावरकर ने 'वन्दे मातरम' की जन्मभूमि, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, सी आर दास, विपिनचन्द्र पाल, अरविन्द घोष और खुदीराम बोस की मातभूमि मे पदार्पण किया।

हिन्दू परिषद की ओर से खुलना मे एक विशाल आयोजन किया गया था। सावरकर की सिंहगर्जना ने सोये बगाल को जागृत कर दिया। कांग्रेस समर्थक समाचार पत्र 'अमृत बाजार पत्रिका' तक को लिखना पडा कि कांग्रेस को चाहिए कि वह मुस्लिम तुष्टीकरण तथा मुस्लिम लीग के तलुवे चाटने की अपनी नीति को तुरन्त त्याग दे। यही कांग्रेस और देश के हित म होगा।

इस सभा म डा श्यामाप्रसाद मुखर्जी, सर मन्मथनाथ मुखर्जी, एन सी चटर्जी तथा बगाल के अन्याय सार्वजनिक नेता एव कार्यकर्ता उपस्थित थे। यही स डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी भारतीय राजनीति की ओर उन्मुख हुए और कालान्तर म वे हिन्दू सगठन के लिए बडे उपयोगी सिद्ध हुए। सावरकर के बगाल प्रवासकाल म डाक्टर मुखर्जी उनकी खोज थी। बगाल के समाचार पत्रो ने सावरकर के बगाल अभियान का 'भारतीय रोबिनहुड अभियान' का नाम दिया।

खुलना स भी हैदराबाद सत्याग्रह के लिए जत्था भेजा गया।

बगाल के बाद सावरकर बिहार प्रान्त के प्रवास पर निकले। मार्च १९३९ के तृतीय सप्ताह म मुगेर मे हिन्दू सम्मेलन का आयोजन किया गया था। जिसकी अध्यक्षता सावरकर ने की। उस अवसर पर सावरकर की जो शोभा यात्रा निकली थी वह मुगेर के इतिहास मे 'न भूतो न भविष्यति' जैसी ही थी।

बिहार के प्रवासकाल मे वहा के पत्रो—प्रभाकर, इडियन नेशन—आदि ने सावरकर के भाषणों को प्रमुख स्थान दिया और बताया कि हिन्दू सगठन की उनकी अपील बडी मार्मिक थी। उनका प्रत्येक वाक्य हृदय को आन्दोलित करता था। उनके भाषण म मात्र भावुकता नही अपितु तर्क और बुद्धिमत्ता का समावेश था।

बिहार के उपरान्त सावरकर महाकोशल के प्रवास पर गए वहाँ भी अनेक नगरो मे उनका वैसा ही भव्य स्वागत हुआ। महाकोशल म वे बरार के विभिन्न नगरो और ग्रामो मे जाकर हिन्दू जागरण का काम करते रहे।

सावरकर जहां कही भी गए, वे हैदराबाद म हिन्दुओ को नहीं भूले। सर्वत्र

उन्होंने हैदराबाद के निजाम के अत्याचारों की चर्चा की और यथासम्भव अधिक से अधिक लोगों को उन्होंने हैदराबाद सत्याग्रह में भाग लेने के लिए प्रेरित किया।

गाधी की साम्प्रदायिकता

यह हिन्दुओं की विडम्बना ही कहा जाएगा कि जो गाधी हैदराबाद मे हिन्दू सत्याग्रहियो को साम्प्रदायिक कहकर उनकी भर्त्सना कर रहा था, वही गाधी काश्मीर मे मुसलमानो द्वारा महाराजा कश्मीर के विरुद्ध चलाए गए अभियान का समर्थन कर रहा था। कांग्रेस तथा कांग्रेसियो की ओर से प्रकाशित होने वाले पत्र-पत्रिकाओ ने भी स्वय को हैदराबाद सत्याग्रह से अलिप्त रखा। तदपि उस आन्दोलन की ध्वनि ब्रिटिश पार्लियामेंट तक पहुंची। कर्नल वेजवुड ने ब्रिटिश पार्लियामेंट मे हैदराबाद सत्याग्रह की आवाज उठाई और हिन्दुओ पर होने वाले अत्याचार तथा उनके सघर्ष की कहानी सुनाई तो उसी दिन बापूजी भिड ने हैदराबाद की ब्रिटिश रेजिडेंसी के ऊपर हिन्दू ध्वज लहरा दिया।

हैदराबाद आन्दोलन शान्तिपूर्ण रीति से नहीं निपटा। निजाम के अत्याचारो से अनेक हिन्दुओ की कारागार मे ही जानें चली गईं। किन्तु अन्त मे अपनी गद्दी की सुरक्षा को देखते हुए निजाम को झुकना पडा। १९ जुलाई, १९३९ को निजाम ने नागरिक सघर्ष आन्दोलन को मान्यता दी और उनकी अधिकाश मागो को स्वीकार करते हुए हैदराबाद विधान सभा में हिन्दुओं को ५० प्रतिशत प्रतिनिधित्व देना स्वीकार किया। जबकि इससे पूर्व वहां की विधान सभा में हिन्दुओ के प्रतिनिधि का प्रवेश तक नहीं था।

आर्य समाज तथा हिन्दूसभा की यह महान सफलता उनके कठिन सघर्ष और बलिदानो से ही प्राप्त हुई थी। सावरकर का इसमे विशेष योगदान था।

सावरकर के बढते वर्चस्व को देखकर गाधी और उसकी पार्टी कांग्रेस मे खलबली मचने लगी। वे और तो कुछ नही कर सके, उन्होंने हिन्दू महासभा और उसके नेता सावरकर का राजनीतिक बहिष्कार करने का ऐलान कर दिया। इससे सावरकर तथा हिन्दू महासभा मे तो किसी प्रकार की हलचल नहीं हुई किन्तु देश के कुछ अन्य नेताओ को कांग्रेस का यह नाजीवाद बहुत अखरा तो उन्होंने कांग्रेस के विरुद्ध एक वक्तव्य दे डाला।

इन वक्तव्य देने वालो मे प्रमुख थे—इडियन लिबरल्स की ओर से सर कावसजी जहांगीर, सर चिमनलाल सीतलवाड, सर वी एन चन्द्रावरकर, डेमोक्रेटिक स्वराज पार्टी की ओर से एन सी केलकर और जमनादास मेहता, इडिपेंडट लेबर पार्टी की ओर से डाक्टर भीमराव अम्बेदकर और हिन्दू महासभा की ओर से सावरकर। इन्होंने वक्तव्य मे कहा, 'कांग्रेस और कांग्रेस सरकार नाजी और फासिस्ट राज्य की ही भांति सभी पार्टियों को निगलकर अपना वर्चस्व स्थापित करना चाहती है, जो कि प्रजातन्त्र के लिए मृत्यु सिद्ध होगा।"

इस वक्तव्य का जन साधारण पर अच्छा प्रभाव रहा। जनता कांग्रेस की ओर से

सावधान हो गई। कांग्रेसी क्षेत्रो मे इसकी बडी तीव्र प्रतिक्रिया हुई; उन्होने इसका विरोध किया। कांग्रेसी पत्रो मे इसके विरोध स्वरूप सावरकर पर बहुत कीचड उछाली गई। कांग्रेस के नाजीवाद से सावधान करना मानो देशद्रोह हो और सब कुछ जिन्ना के चरणो म समर्पित कर देना कांग्रेस के लिए देशभक्ति का काय दिखाई देता था। अपने आरम्भ से लेकर कांग्रेस का कार्य भारतीयता की पीठ पर छुरा भोंकना ही रहा था किन्तु गांधी के नेतृत्व मे यह प्रक्रिया अधिक तीव्र हो गई थी।

द्वितीय विश्व युद्ध

जिन्ना का वर्चस्व

१९३५ के सुधार एक्ट में एक धारा भारत के महासंघ के निर्माण के रूप में भी थी। सावरकर अनुभव कर रहे थे कि वर्तमान में जिन्ना बड़ी चतुराई से राष्ट्रीय हित को आघात लगाने में प्रवृत्त था और कांग्रेसी नेता उसकी इस चाल को समझते हुए भी सत्ता के मोह में फँसे हुए उसके सम्मुख नत होते जा रहे थे। इसलिए सावरकर ने 'भारत महासंघ' का विषय उठाया तो कांग्रेस के गले यह नहीं उतर सका। उसमें उनको स्पष्ट दिखाई देता था कि पूर्ण सत्ता उनके हाथ में न रहने से उनका वर्चस्व क्षीण हो जाएगा।

जिन्ना को भय लगा कि यदि 'भारत महासंघ' बन गया तो फिर उसकी राजनीति का ही नहीं अपितु उसका भी सार्वजनिक जीवन समाप्त हो जाएगा। महासंघ में मुसलमानों के अलगाववाद की हत्या हो जाएगी और उनका पृथक अस्तित्व नगण्य हो जाएगा। इसलिए उसने इस योजना को 'सर्वथा सड़ी गली, सिद्धान्ततया निकृष्ट तथा पूर्णतया अग्राह्य' कहकर इस योजना का बहिष्कार कर दिया।

यह संयोग की ही बात थी कि लगभग उसी समय द्वितीय विश्व युद्ध आरम्भ हो गया। युद्ध की अफरातफरी में 'महासंघ' की योजना खटाई में पड़ गई। युद्ध आरम्भ होते ही कांग्रेस ने तो सरकार से पल्ला झाड़ लिया और निजी असहयोग आन्दोलन जैसा कोई आन्दोलन आरम्भ कर दिया। इस अवसर पर मद्रास में सम्पन्न मुस्लिम लीग के अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में जिन्ना ने कहा, "जब से युद्ध आरम्भ हुआ है तब से अन्यान्य अनेक बुरे समाचारों में एक शुभ समाचार यह मिला कि वायसराय ने घोषणा कर दी है कि ब्रिटिश सरकार ने 'गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट १९३५' के अन्तर्गत अखिल भारतीय फेडरेशन स्कीम को रद्द कर दिया है। यह हमारी बहुत बड़ी जीत है।"

कांग्रेस ने जब मन्त्रिमण्डल से त्यागपत्र दे दिया तो उस समय उस मन्त्रिमण्डल में मुसलमान मन्त्रियों और विधायकों की संख्या बहुत कम थी। किन्तु कांग्रेस के जेल

भरो आन्दोलन ने जिन्ना को बहुत सहारा दिया और कुछ ही दिनो मे वह पाच राज्यों मे मुस्लिम मन्त्रिमण्डल गठित करने मे सफल हो गया। ये मन्त्रिमण्डल उसकी भावी नीति और योजना के लिए सीढ़ी के रूप मे सिद्ध हुए। सात राज्यो से कांग्रेस मन्त्रिमण्डल के त्यागपत्र के दिन को मुस्लिम लीग ने 'मुक्ति दिवस' के रूप मे मनाया।

गाधी, नेहरू और कांग्रेस पार्टी के अन्य लोग समझते थे कि जिन्ना तो कुछ गिने चुने मुसलमानो का नेता है, मुस्लिम जन साधारण का नहीं, इसलिए उन्होने मुसलमानो को कांग्रेस की ओर आकर्षित करने के लिए सम्पर्क अभियान आरम्भ किया। नेहरू की मुसलमानो के विषय मे यह धारणा न केवल गलत सिद्ध हुई अपितु इससे मुसलमानो मे परस्पर विरोध उत्पन्न होने के कारण उनमे जागृति का सचार भी होने लगा। जिन्ना को अवसर मिल गया और उसने मुसलमानों मे प्रचार आरम्भ कर दिया।

विश्वयुद्ध प्रगति करने लगा तो १ सितम्बर, १९३९ को ब्रिटेन ने जर्मनी पर आक्रमण की घोषणा कर दी। परिणामस्वरूप भारत के तत्कालीन वायसराय लॉर्ड लिन-लिथगो ने घोषणा कर दी कि भारत का इस समय जर्मनी से युद्ध हो रहा है अत भारत-वासियो को चाहिए कि वे नाजी शक्ति के सफाए के लिए जी जान से युद्ध मे प्रवृत्त हो जाय।

गाधी-नेहरू ने घुटने टेके

इस अवसर पर गाधी और नेहरू ने घुटने टेक दिए। गाधी ने तो वायसराय से कह दिया कि वह इस समय ब्रिटेन को इस सकट की घडी मे उसको किसी प्रकार के सकट मे नहीं डालना चाहता। नेहरू उस समय चीन गया हुआ था। वहाँ से लौटते हुए उसने भारत पहुचने से पूर्व ही बर्मा मे वक्तव्य दिया कि, "मैं घोषणा करता हूँ कि ब्रिटेन की इस सकट की घडी मे भारत की ऐसी कोई आकाक्षा नहीं है कि वह उससे लाभ लाभ कर।"

लिबरल नेताओ ने विचार किया कि इस समय यदि भारत सशर्त सहायता करता है तो यह भारत के हित मे नहीं होगा। पारसियो ने ब्रिटिश की विजय के लिए प्रार्थनाये की तो डाक्टर अम्बेदकर ने कह दिया कि ब्रिटेन को चाहिए कि वह भारत को अपना बचाव करने के लिए सब प्रकार की सुविधा प्रदान करे। मुस्लिम लीग ने शर्त रखी कि ब्रिटिश सरकार भारत के मुसलमानो की सुरक्षा की गारटी दे तो वह इस युद्ध मे उसकी सहायता कर सकती है।

सावरकर इस प्रकार झुकने के लिए तयार नहीं थे। परिणामस्वरूप ९ अक्टूबर, १९३९ को वायसराय लिनलिथगो ने सावरकर को वार्त्तालाप के लिए आमन्त्रित किया। यह भेंट दिल्ली मे हुई। वायसराय ने जब उनसे पूछा कि विश्व युद्ध के सम्बन्ध मे उनकी क्या नीति है तो सावरकर ने स्पष्ट शब्दो मे बताया, "क्रान्तिकारी होने के नाते मैं देश के सनिकीकरण के पक्ष मे हूँ, मैं इसमे देश का हित समझता हूँ। देश के भीतर और देश सीमाओं पर हिन्दू सैनिकों की टुकडियाँ यदि रहें तो यह देश के हित मे होगा। इसमे

ही हिन्दुओं का हित भी निहित है।"

वायसराय पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ा और बाद में एक पत्रकार सम्मेलन में उसने कहा, "सावरकर अनेक वर्ष तक अण्डमान में कारागार की यातना झेलते रहे हैं। किन्तु इससे न तो उनका तेज क्षीण हुआ है और न ही उनके क्रान्तिकारी विचारों में किसी प्रकार का परिवर्तन हुआ है। इस द्वितीय विश्व युद्ध के प्रश्न पर भी वे सर्वप्रथम भारतीय हित को सम्मुख रखते हुए ही कुछ बात करते हैं।"

लिनलिथगो ने यह बात न केवल पत्रकारों को बताई अपितु उसने अपने कौंसिल के कुछ सदस्यों को भी बताई। डा० मुखर्जी के सम्मुख भी लॉर्ड ने सावरकर की प्रशंसा की। परिणामस्वरूप उनके दिल्ली प्रवास के समय वायसराय की एक्जीक्यूटिव कौंसिल के दो सदस्य सर जगदीशप्रसाद और सर रामास्वामी मुदालियार ने सावरकर को सायंकालीन चाय पर आमन्त्रित कर उनसे वार्तालाप का सौभाग्य प्राप्त किया।

सैनिकीकरण का प्रचार

उस समय भारत में सावरकर ही एक ऐसे हिन्दू नेता थे जो भारत के सैनिकीकरण पर बल दे रहे थे। सावरकर जहाँ कहीं भी भाषण देते, अपने भाषण में वे युवकों को सेना में प्रविष्ट होकर सैनिक प्रशिक्षण लेने के लिए प्रवृत्त करते। वे कहते थे कि जो सेना में न जा सकते हों वे अपने-अपने स्थानों पर राइफल क्लबों की स्थापना करें।

१९३९ के दिसम्बर में कलकत्ता में हिन्दू महासभा का वार्षिक अधिवेशन निश्चित हुआ। सावरकर इसके अध्यक्ष थे। ऐसा माना जाता है कि हिन्दू महासभा और सावरकर के जीवन के इतिहास में यह अधिवेशन 'न भूतो न भविष्यति' सिद्ध हुआ। इस अधिवेशन के समय इतनी भीड़ उमड़ी थी कि जिसका अनुमान नहीं किया जा सकता। सावरकर के स्वागत के लिए हावड़ा स्टेशन पर इतनी भीड़ एकत्रित थी कि कहीं तिल धरने को ठौर नहीं। और उस समय निकाली गई सावरकर की शोभा यात्रा बंगाल के इतिहास में अभूतपूर्व थी।

कलकत्ता के प्रमुख समाचार-पत्र—हिंदुस्तान स्टण्डर्ड, अमृत बाजार पत्रिका, आदि ने अपने पत्रों के पृष्ठों को सावरकर की प्रशंसा से भर दिया था। उनका कहना था 'कम से कम भारतीय राजनीति में कोई तो ऐसा उत्पन्न हुआ जो बुरे को बुरा कहने में तनिक भी संकोच नहीं करता। न केवल कलकत्ता के अपितु देश के विभिन्न प्रान्तों के पत्रों ने भी उस अधिवेशन के समाचारों को प्रमुखता से प्रकाशित कर सावरकर के वर्चस्व को स्वीकारा।

तदनन्तर अगले वर्ष भर सावरकर भारत के विभिन्न प्रान्तों और नगरों में जा जाकर भारतीयों को उनके अस्तित्व के प्रति जागरूक रहने का आह्वान करते रहे। वे स्थान-स्थान पर जाकर सैनिकीकरण की बात पर बल देते रहे उनका कोई भी भाषण ऐसा न रहा जिसमें उन्होंने सैनिकीकरण की बात न की हो।

'हिंदुओं का सैनिकीकरण और सेना का हिन्दूकरण' सावरकर का मुख्य उद्-

घोष बन गया था।

वायसराय लौर्ड लिनलिथगो ने सावरकर से दोबारा ५ जुलाई, १९४० को शिमला में भेंट की। उस समय जब भारतीयों के सैनिकीकरण की बात हुई तो सावरकर ने वायसराय से स्पष्ट शब्दों में कहा था, "ब्रिटिश सत्ता के हित को दृष्टि में रखते हुए ही आपको भारतीय सेना की आवश्यकता अनुभव होती है। किंतु हमारा दृष्टिकोण इससे सर्वथा भिन्न है। हम हिंदू और हिंदुस्थान के हित को देखते हुए अधिकाधिक हिंदुओं की भरती को उपयुक्त समझ रहे हैं। भारतीय सेना में हिन्दुओं को कमीशन नहीं मिलते। यह प्रतिबन्ध हटाया जाना चाहिए। कुछ हिन्दू जातियों पर असैनिक होने का जो आरोप है उसे रद्द करके प्रत्येक हिन्दू मात्र को सेना में भर्ती की छूट मिलनी चाहिए।"

वायसराय ने उनकी बातों को ध्यान से सुना और आश्वासन दिया कि उनकी मांगों पर तदनुरूप विचार किया जाएगा। परिणामस्वरूप भारतीय सेना में हिन्दुओं की संख्या प्रतिदिन बढ़ने लगी।

उसी दिन शाम को लाहौर हाईकोर्ट के सेवानिवृत्त जज श्री जियालाल ने सावरकर के सम्मान में एक चायपार्टी का आयोजन किया। सर जोगेन्द्रसिंह, राजा सर दलजीतसिंह, सरदार रघुवीरसिंह और पटना हाईकोर्ट के जस्टिस वर्मा आदि अनेक प्रमुख व्यक्ति उस पार्टी में विद्यमान थे। चायपार्टी में अन्यान्य विषयों के साथ सावरकर ने उन्हें हिंदू राजनीति का पाठ भी पढ़ाया।

शिमला से लौटते हुए सावरकर की गाड़ी में ही यात्रा कर रहे बड़े उद्योगपति वालचन्द हीराचन्द और सर सिकन्दर हयात खां से उनकी पृथक्-पृथक बात हुई और सिकन्दरहयात खां की पहल पर दिल्ली में मदनमोहन मालवीय से भेंट वार्ता निर्धारित की गई। किन्तु समयाभाव के कारण सावरकर नहीं जा सके।

नेताजी को परामर्श

वायसराय लिनलिथगो से भेंटवार्ता से पूर्व २२ जून, १९४० को नेताजी सुभाष बोस उनसे मिलने के लिए बम्बई आए। वे सावरकर के सैनिकीकरण के उद्घोष से बहुत प्रभावित थे। उससे पूर्व सुभाष बाबू जिन्ना से मिलकर आए थे। उस समय जिन्ना ने कह दिया कि कांग्रेस से उनको निकाला जा चुका है, फारवर्ड ब्लॉक कोई बड़ी संस्था नहीं है। सुभाष ने जब कहा कि वे तो हिन्दू के नाते मिल रहे हैं तो जिन्ना ने कह दिया, "हिंदुओं के एकमात्र नेता सावरकर हैं।" इस प्रकार वह भेंटवार्ता असफल हो गई।

सुभाष बाबू ने सावरकर को बताया कि वे कलकत्ता में अंग्रेजों की प्रतिमाओं को खण्डित करना चाहते हैं। सावरकर ने उनको कहा कि इन छोटे से साधारण कामों को करके उन जैसे तेजस्वी नेता का अंग्रेजों की जेलों में सड़ना उपयुक्त नहीं है। बहुत बातचीत के उपरान्त सावरकर ने उनको परामर्श देते हुए कहा, 'इस समय आपको भी रासबिहारी बोस आदि नेताओं की भांति अंग्रेजों को चकमा देकर निकल जाना चाहिए

और विदेश पहुंचकर जर्मनी और इटली में फंसे भारतीय सैनिकों का मार्ग दर्शन कर सम्पूर्ण भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा कर देनी चाहिए। जापान के युद्ध की घोषणा करते ही बंगाल के उपसागर या ब्रह्मदेश से हिंदुस्थान की ब्रिटिश सत्ता पर आक्रमण किया जा सकता है। इस प्रकार का सशस्त्र प्रयास किए बिना हिंदुस्थान को कदापि स्वतन्त्र नहीं कराया जा सकता।"

नेताजी सुभाष बोस पर इस कथन का प्रभाव हुआ और वे गुप्त रूप से भारत से बाहर जाकर अपनी योजना को कार्यान्वित करने में लग गए। तदनन्तर १९४४ के अपने एक प्रसारण में नेताजी ने स्वयं स्वीकार किया कि जब कि गांधी आदि कांग्रेसी नेता भारतीय सैनिकों को ब्रिटिश किराये के टट्टू कहकर बदनाम कर रहे थे उस समय सावरकर ने भारतीय युवकों को सेना में भर्ती होने की प्रेरणा दी और वे ही युवक आज 'आजाद हिन्द सेना' के सिपाही बनकर भारतीय स्वतन्त्रता के लिए जूझ रहे हैं।

वायसराय के साथ सावरकर की शिमला भेंटवार्ता का गांधी और उसके अनुयायियों पर विपरीत प्रभाव पड़ा और समय-समय पर वे सावरकर पर दश मारते रहे। सावरकर ने एक बार गांधी को उत्तर देते हुए कहा, "सत्य, अहिंसा से ब्रिटिश साम्राज्य को ध्वस्त करने की कल्पना किसी बड़े दुर्ग को बारूद की अपेक्षा फूंक से उड़ा देने का स्वप्न देखने के समान ही हास्यास्पद है। अत्याचार व आतंक पर आधारित ब्रिटिश साम्राज्य को ध्वस्त करने के लिए पहले उसकी नींव में बारूद ही लगानी पड़ेगी और यह सन् १८५७ से निरन्तर लगाई जाती रही है।"

आसाम को मुस्लिम बहुल प्रान्त बनाने के लिए मुसलमान बाहर से आ-आकर बसने लगे थे। १९४१ में इस संकट की ओर संकेत करते हुए सावरकर ने कहा कि यदि आसाम में मुसलमानों की संख्या बढ़ जाने दी तो यह आसाम और हिंदुओं के लिए भयावह सिद्ध होगा। नेहरू ने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा कि आसाम में खाली जगह पड़ी थी मुसलमान वहां आकर बस रहे हैं। प्रकृति नहीं चाहती कि कोई स्थान रिक्त पड़ा रहे।

सावरकर ने इसका उत्तर देते हुए कहा, "जवाहरलाल नेहरू न दार्शनिक हैं और न शास्त्रज्ञ। उन्हें विदित नहीं कि प्रकृति तो सदा ही घुस आई हुई विषाक्त वायु को सदा दूर ही फेंकना चाहती है।"

आज की आसाम की स्थिति जहां सावरकर की दूरदृष्टि का लोहा मानती है वहां वह नेहरू और उसके अनुयायियों के मुख पर करारा थप्पड़ भी है।

सुभाष से भेंटवार्ता के प्रकरण में हमने रासबिहारी बोस के नाम का उल्लेख किया है। क्रान्तिकारी रासबिहारी बोस यद्यपि देश से बाहर थे तदपि सावरकर के साथ उनका पत्र-व्यवहार चलता रहता था। द्वितीय विश्वयुद्ध के दिनों में श्री बोस ने एक बौद्ध भिक्षु के माध्यम से जापान से सावरकर को एक पत्र भेजा था। उसमें उन्होंने संकेत किया था कि जापान और इटली द्वारा प्राप्त धन और अस्त्रशस्त्रों की

अंग्रेजों के विरुद्ध एक क्रान्ति सेना तैयार की जा रही है। आप भारत मे भी इसी प्रकार की योजना बनाएं।

सिंगापुर का पतन

सन् १९४१ के अन्तिम दिनो मे सुधार आयुक्त हडसन, जो उन दिनो भावी भारत के विधान निर्माणार्थ विवरण एकत्रित करने के लिए भारत का दौरा कर रहा था, उसने सावरकर से भेंट की। प्रो० रेगिनाल्ड कूपर, जो भारत के विधान के विषय मे अध्ययन कर रहे थे, बम्बई के गवर्नर के सेक्रेटरी के साथ सावरकर से मिले। इसी अवधि मे विदेशो के अनेक समाचार-पत्रों के प्रतिनिधि आदि ने भी सावरकर से भेंट करके भारत की राजनीति के विषय मे विस्तृत रूप से चर्चाएँ कीं। उस समय तक सावरकर के वर्चस्व के साथ-साथ राजनीतिक मंच पर हिन्दू महासभा का वर्चस्व भी स्थापित हो चुका था।

द्वितीय विश्वयुद्ध की स्थिति भी इस समय तक संकट की स्थिति मे पहुंच गई थी। उसी समय ११ फरवरी, १९४२ को चाइनीज रिपब्लिक के चैयरमैन च्यांग काई शेक भारत के वायसराय से विचार विमर्श के लिए भारत आए और उन्होंने भारत वासियो से सहायता की अपील की तो सावरकर ने उसका उचित उत्तर दिया। च्यांगकाई शेक दम्पति सावरकर ने इसके लिए का धन्यवाद किया। उसके तुरंत बाद सिंगापुर पर जापानियों ने अधिकार कर लिया। ब्रिटिशस की स्थिति संकटापन्न हो गई थी। उस समय सावरकर ने वक्तव्य दिया कि अब समय है जब अंग्रेजो को भारत को समानता का पद देना होगा। यह किसी प्रकार की धमकी नहीं थी अपितु परिस्थिति का मूल्यांकन मात्र था।

इसी वातावरण में मार्च १९४२ मे कांग्रेस के महान् नेता महात्मा गांधी के समधी राजगोपालाचारी ने मुसलमानो की पाकिस्तान की मांग को उचित ठहराया तो सावरकर ने जोरदार शब्दों में इसका खण्डन किया। सावरकर ने राजाजी के 'फेयर एण्ड जस्ट' शब्दों की जो खिल्ली उड़ाई वह उचित ही था। सावरकर ने ब्रिटिश गवर्नमेंट को चेतावनी दी कि कांग्रेस द्वारा किया गया यह समझौता हिन्दू महासभा को स्वीकार नहीं होगा।

युद्ध की स्थिति बिगड़ती गई तो अवसर पाकर सावरकर ने चर्चिल को तार द्वारा सावधान किया कि अब भी समय है कि ब्रिटिश सरकार भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा करते हुए इण्डो ब्रिटिश कोमनवैल्थ मे उसे बराबर का भागीदार बनाए। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री चर्चिल ने भारत के वायसराय के माध्यम से उस तार का उत्तर देते हुए सावरकर का धन्यवाद भी किया था। इसी समय कांग्रेस और लीग मे किसी प्रकार का समझौता होने लगा। सर सिकन्दर हयात खाँ उसमें मुख्य भाग ले रहा था। सावरकर ने सिकन्दर हयात खाँ को सावधान किया कि हिन्दुओ को दबाकर किया गया कोई भी समझौता हिन्दुओं को मान्य नही होगा।

क्रिप्स योजना

११ मार्च, १९४२ को प्रधानमन्त्री चर्चिल ने भारत में क्रिप्स मिशन भेजने की घोषणा कर दी। २३ मार्च को सर स्टैफर्ड क्रिप्स भारत पहुँच गया। क्रिप्स ने जो योजना प्रस्तुत की वह किसी भी भांति भारत के हित में नहीं थी। क्रिप्स ने भारत के प्रमुख राजनीतिज्ञों से भेंट की। इसी प्रसंग में डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी, डा० मुंजे सर ज्वालाप्रसाद श्रीवास्तव और लाला गणपतराय को साथ लेकर सावरकर ने क्रिप्स से भेंट की। सावरकर ने क्रिप्स को स्पष्ट बता दिया कि हिन्दुओं को भारत विभाजन की योजना किंचित् भी स्वीकार नहीं है। क्रिप्स ने कालान्तर में वक्तव्य दिया कि भारत कभी भी एक रूप में, एक देश के रूप में, रहा ही नहीं। सावरकर ने इसका ऐसा करारा उत्तर दिया कि क्रिप्स भौंचक्का रह गया। सावरकर के तर्क को निरस्त करना क्रिप्स के वश में नहीं था।

सावरकर ने स्पष्ट घोषणा की कि 'रक्त की अन्तिम बूंद तक हम पाकिस्तान के विचार का विरोध करेंगे' क्रिप्स से सावरकर की इस भेंट का विवरण समाचार-पत्रों में विस्तार से प्रकाशित हुआ। नेहरू के अपने पत्र 'नेशनल हेरल्ड' तक को कहना पड़ा— 'सावरकर से राजनीति में भले ही हमारे मतभेद हों किन्तु वे वर्तमान युग के उन युग पुरुषों में से हैं जिन्होंने इतिहास निर्माण किया है और जन जागृति के लिए योगदान किया है।' हिन्दू महासभा की कार्यकारिणी ने क्रिप्स का 'केबिनेट' प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।

भारत के उदारवादी नेता यह अनुभव कर रहे थे कि कांग्रेस की नीतियाँ भारत को गर्त की ओर धकेल रही हैं। इस प्रकार कांग्रेस और कांग्रेसेतर राजनीतिज्ञों में एक प्रकार से रस्सा-कशी सी होने लगी। मई २, १९४२ को इलाहाबाद में आयोजित कांग्रेस के अधिवेशन में बाबू जगतनारायण ने 'अखण्ड हिन्दुस्तान' का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जो विशाल बहुमत से स्वीकार कर लिया गया। किन्तु राजगोपालाचारी ने इस प्रस्ताव का भी विरोध करना आरम्भ कर दिया और जब उसी दिन उन्होंने पाकिस्तान निर्माण सम्बन्धी प्रस्ताव प्रस्तुत किया तो १५ के विरुद्ध १२० मतों से कमेटी ने उसको अस्वीकार कर दिया। तब तथाकथित नेशनलिस्ट मुसलमानों ने अखण्ड भारत प्रस्ताव का विरोध करना आरम्भ किया। पण्डित नेहरू और मौलाना आजाद उनकी पीठ थपथपाने लगे। गांधी ने नेहरू और मौलाना की पीठ थपथपा दी।

'मुसलमानों को साथ लिए बिना स्वराज्य मिलना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव है।' गांधी के इस अदूरदर्शितापूर्ण विचार से जिन्ना आदि पृथक्तावादी मुसलमानों को बहुत बल मिला। कांग्रेसियों के हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रयासों को मिटाते हुए मुस्लिम लीग ने 'पाकिस्तान' का नारा घोषित कर दिया और समस्त देश में मुसलमानों की ओर से उसका स्वागत हुआ।

पाकिस्तान की बढ़ती हुई मांग को देखकर गांधी विचलित हो गया तो कोई

अन्य उपाय न देख उसने घोषणा कर दी कि 'पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा' इसके साथ ही वे मुसलमानों की खुशामद में जुट गए।

सावरकर की भविष्यवाणी

सावरकर अब तक गाँधी और उनकी कांग्रेस को भली प्रकार जान और समझ चुके थे। सावरकर ने इस आत्मघाती नीति के विरोध में चेतावनी देते हुए कहा, 'पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा' की घोषणा करने वाले नेता एक दिन मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए पाकिस्तान की योजना को अवश्य ही स्वीकार कर लेंगे। अतः हिन्दुओं को चाहिए कि वे उनके आश्वासनों पर तनिक भी भरोसा करके उनके जाल में न फँसें।

अन्त में वही हुआ जिसकी ओर सावरकर ने संकेत किया था। डेढ़ वर्ष बाद ही १९४४ में राजाजी ने कांग्रेसी नेताओं को कुछ शर्तों के साथ भारत विभाजन का समर्थन करने के लिए तैयार कर ही लिया। किन्तु उधर जिन्ना था कि किसी अन्य की शर्तों को माने बिना अपनी शर्तों पर 'पाकिस्तान' की अपनी माँग को पूर्ण करवाने के लिए कृत संकल्प था।

ज्योंही गाँधी ने भारत विभाजन की माँग को स्वीकार किया कि समस्त भारत में क्षोभ की लहर सी कौंधने लगी। न केवल कांग्रेसेतर जन अपितु अधिकांश कांग्रेसजन भी इस कार्य से खिन्न दिखाई देने लगे। सावरकर को जब यह विदित हुआ तो उस समय के हिन्दू महासभा के कार्यकारी अध्यक्ष डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी को गाँधी के पास भेजकर उनके माध्यम से उन्हें यह बताने का यत्न किया कि गाँधी की यह नीति नितान्त आत्मघाती नीति होने के साथ साथ देशवासियों के साथ भी विश्वासघात है। मुखर्जी ने गाँधी को यह भी बताया कि इससे समस्त भारत में विशेषतया मुस्लिम बहुल प्रान्तों में भयंकर नर संहार होने की सम्भावना है।

गाँधी ने कभी किसी का सत्परामर्श स्वीकार नहीं किया। विशेषतया सावरकर जैसे हिन्दू नेताओं का। गाँधी की ओर से निराश होकर सावरकर ने हिन्दू महासभा के नेताओं तथा कार्यकर्ताओं को परामर्श दिया कि समस्त देश में पाकिस्तान योजना विरोधी सभायें करके इसका कड़ा विरोध किया जाय। परिणामस्वरूप समस्त भारत में हिन्दू महासभा के प्रयत्न से पाकिस्तान विरोधी जन सभायें और आन्दोलन किए गए, जिनमें भारतीय जनता को पाकिस्तान बनने के दुष्परिणामों से अवगत कराया गया। इन सभाओं में वीर सावरकर, आशुतोष लाहिड़ी, डा. मुंजे, भाई परमानन्द आदि अनेक नेताओं ने अपनी बात रखी। अक्टूबर १९४४ में नई दिल्ली में अखण्ड भारत सम्मेलन का आयोजन किया गया। देशभर के सभी हिन्दू नेता और शंकराचार्यों ने इस सम्मेलन को सम्बोधित किया। इस ऐतिहासिक सम्मेलन का देशवासियों पर यथोचित प्रभाव हुआ। परिणामस्वरूप स्थान-स्थान पर कांग्रेसी नेताओं का काले झण्डों से स्वागत सत्कार होने लगा।

किन्तु जब निर्वाचन का समय आया तो कांग्रेस ने कुटिल चाल चलकर 'अखण्ड भारत' का आश्वासन देकर निर्वाचन में भाग लिया। उस समय भी सावरकर ने हिन्दू मतदाताओं को सावधान करते हुए कहा था, "कांग्रेसी नेता निर्वाचन में हिन्दुओं का मत प्राप्त करने के लिए ही 'अखण्ड भारत' का नारा लगा रहे हैं। किन्तु निर्वाचन सम्पन्न होते ही ये दो मुंह कांग्रेसी नेता पुनः पाकिस्तान का समर्थन करके देश के साथ विश्वास-घात करेंगे।"

सावरकर की यह भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई। न केवल गांधी अपितु उनके सभी अनुयायियों ने पाकिस्तान योजना का समर्थन किया और यथासमय पाकिस्तान को भी 'सहर्ष' स्वीकार कर लिया। लाश पर बनने वाला पाकिस्तान भी सहज ही उन्होंने स्वीकार कर लिया। भले ही उसमें असंख्य हिन्दुओं को लाश के रूप में धराशायी कर दिया हो।

इस अवधि में देश विदेश के अनेक लोग सावरकर से मिलकर अथवा पत्र व्यवहार द्वारा उनसे भारत की राजनीति, विशेषतया पाकिस्तान निर्माण की कार्यविधि आदि, पर विचार विमर्श करते रहे थे। इन सबके साथ सावरकर ने अपने विचारों में भारत विभाजन का प्रबल शब्दों में विरोध किया और घोषणा की कि भारत का विभाजन घोर अराष्ट्रीय कार्य होगा।

प्रसिद्ध गांधीवादी अमेरिकी पत्रकार लुई फिशर उन दिनों भारत का भ्रमण कर भारत विभाजन के बारे में नेताओं की प्रतिक्रिया जानने में लगे हुए थे। इसी प्रसंग में पहले वे जिन्ना से और फिर हिन्दू नेता के रूप में सावरकर से मिलने के लिए भी गए। उस समय उन्होंने सावरकर से पूछा कि यदि मुसलमानों को पृथक देश पाकिस्तान दे दिया जाय तो उसमें सावरकर को क्या आपत्ति है ?

सावरकर ने उसको ऐसा सटीक उत्तर दिया कि फिशर 'फिश' हो गया। उन्होंने कहा कि अमेरिका में इतने दिनों से नीग्रो जाति के लोग पृथक 'नीग्रोलैंड' की मांग कर रहे हैं, आप उसे स्वीकार क्यों नहीं कर लेते ?

फिशर ने बिना सोचे समझे और एक क्षण का भी विलम्ब किए बिना उत्तर दिया, "देश का विभाजन करना राष्ट्रीय अपराध होगा, इसलिए हम उनकी मांग को स्वीकार नहीं करते।"

सावरकर ने कहा, 'आपका उत्तर न केवल राष्ट्रभक्ति से ओत प्रोत है अपितु तथ्यपरक भी है। कोई भी राष्ट्रभक्त अपने देश का विभाजन स्वीकार नहीं कर सकता। जो देश का विभाजन चाहते हैं उनको देशभक्त नहीं कहा जा सकता। हम भी इसीलिए भारत विभाजन की योजना को राष्ट्र विरोधी मानकर उसका विरोध कर रहे हैं। जब कि मुस्लिम लीग जो इस देश को ही 'नापाक' मानती है, इसके टुकड़े करने पर तुली हुई है।"

फिशर के पास इसका क्या उत्तर हो सकता था। वह चुप हो गया।

लुई फिशर ने कालान्तर में अपने एक लेख में लिखा, "सावरकर के हृदय में

जहाँ मैंने राष्ट्रभक्ति की असीमित भावना पाई, वहाँ जिन्ना के हृदय में भारत व भारतीय संस्कृति के प्रति घोर घृणा के बीज दिखाई दिए।"

सत्यार्थ प्रकाश पर प्रतिबन्ध

भारतीयता के विरुद्ध मुसलमानों का अभियान अनेक पक्षीय था। जहाँ भी और जिस स्तर पर भी हो सकता था, वे भारत का विरोध करने से नहीं चूकते थे। बीसवीं शती के पाँचवें दशक के पूर्वार्द्ध में सिन्ध में मुसलमानों का बहुमत होने के कारण वहाँ लीग का मन्त्रिमण्डल शासन कर रहा था। १९४३ में वहाँ मुस्लिम लीग का अधिवेशन हुआ और उसमें एक प्रस्ताव द्वारा 'सत्यार्थ प्रकाश' के चौदहवें समुल्लास को इस्लाम के विरुद्ध बताकर उस पर प्रतिबन्ध की माँग की गई। माँग तो समस्त भारत वर्ष के लिए की गई थी परन्तु क्योंकि उस समय सिन्ध में लीग मन्त्रीमण्डल शासन कर रहा था अतः सिन्ध में सत्यार्थ प्रकाश के चौदहवें समुल्लास पर तुरन्त प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

इस प्रतिबन्ध से समग्र भारत में, न केवल आर्यसमाज के क्षेत्र में, अपितु समस्त हिन्दू समाज में क्षोभ की लहर दौड़ गई। २० फरवरी, १९४४ को दिल्ली में एक विशाल आर्य सम्मेलन आयोजित कर उसमें इस विषय पर भाषण हुए और प्रतिबन्ध की निन्दा कर उसे हटाने के प्रस्ताव पारित किए गए। देश के कोने-कोने से वायसराय को असंख्य तार भेजे जाने लगे। भाई परमानन्द ने इस विषय को केन्द्रीय असेम्बली में उठाया और कहा कि इसी प्रकार के आपत्तिजनक अनेक अंश कुरान में हैं, अतः उस पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया जाना चाहिए।

सावरकर ने इससे आगे बढ़ कर कहा, "जब तक सिन्ध में सत्यार्थ प्रकाश पर प्रतिबन्ध है तब तक कांग्रेस शासित प्रान्तों में कुरान पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाना चाहिए।"

सावरकर ने भारत के वायसराय और सिन्ध के गवर्नर को तार देकर कहा, "सत्यार्थ प्रकाश आर्य समाजियों के लिए तो विशेषतया पवित्र पुस्तक है और सामान्य हिन्दू भी उसका उसी भाँति आदर करता है। प्रत्येक शास्त्र ग्रन्थ, जिसमें 'बाइबल' भी सम्मिलित है, कुछ न कुछ अन्य मतों के विषय में विपरीत बात कहते ही हैं। किन्तु किसी हिन्दू मन्त्रिमण्डल ने अहिन्दू शास्त्र ग्रन्थ पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया है। सिन्ध सरकार द्वारा सत्यार्थ प्रकाश पर प्रतिबन्ध लगाए जाने से साम्प्रदायिक वैमनस्य उत्पन्न होगा। यदि सत्यार्थ प्रकाश पर से प्रतिबन्ध न हटाया गया तो हिन्दू कुरान पर प्रतिबन्ध का आन्दोलन आरम्भ कर देंगे। अतः उचित यही है कि सिन्ध में सत्यार्थ प्रकाश पर से प्रतिबन्ध तुरन्त हटा लिया जाय।"

खिलाफत आन्दोलन पर प्राणपण से न्यौछावर गांधी और उनके अनुयायियों ने इस सम्बन्ध में कहीं एक शब्द भी नहीं बोला। किन्तु सावरकर तार और वक्तव्य देकर ही चुप नहीं बैठे, उन्होंने इस विषय में वायसराय से भेंट करके उनके समक्ष अपना पक्ष

प्रस्तुत किया।

जयपुर के दीवान मिर्जा इस्लाम ने जब रियासत मे हिन्दी के साथ खिलवाड कर उर्दू को प्रस्थापित करना चाहा तो वहा के हिन्दू नेता पण्डित रामचन्द्र शर्मा 'वीर' ने उसके इस कृत्य के विरुद्ध आमरण अनशन की घोषणा कर दी। उन्होने इस्माइल के राज्य शासन को हिन्दू विरोधी शासन बताया। उनके आमरण अनशन ने मिर्जा इस्माइल की नीतियों का पर्दा-फाश कर दिया और अन्त म सावरकर के आग्रह पर उन्होने पैंतालीस दिन बाद अपना अनशन समाप्त किया।

इस अवधि मे आजाद हिन्द फौज ने भी अपने काय मे पर्याप्त प्रगति कर ली थी। इसके नेता सावरकर से ही प्रेरणा प्राप्त करके काय मे जुटे थे। २५ जून, १९४४ को सिंगापुर रेडियो से प्रसारण मे नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने कहा था, "जबकि अन्ध-विश्वास और अन्धानुकरण से प्रभावित होकर कांग्रेस के नेता हमारे सनिको को हतोत्साह कर रहे है ऐसे म वीर सावरकर हमारे भारतीय युवको को सेना मे प्रविष्ट होने के लिए प्रोत्साहित कर हमारा उत्साह बढा रहे हैं। वे ही युवक कालान्तर मे प्रशिक्षित होकर हमारी सेना मे आकर भारत मुक्ति के काय म सलग्न होते हैं।"

इसी प्रकार रासबिहारी बोस ने भी अपने रेडियो प्रसारण मे सावरकर के काय और प्रेरणा के लिए उनका आभार जताया।

अक्टूबर, १९४४ मे नई दिल्ली मे अखण्ड हिन्दुस्तान सम्मेलन मे सावरकर ने गांधी और कांग्रेस की नीति का पर्दाफाश करते हुए भारतवासियो, विशेषतया हिन्दुओ, को पुनरेण सावधान किया।

सावरकर ऐसा कोई भी अवसर नही चूकते थे जिसमे कि वे अखण्ड भारत और हिन्दू की बात कर सकते हो।

बडे भाई का निधन

ज्यो-ज्यो सावरकर का सगठन और जागरण का काय प्रगति करता जाता था त्यो त्यो उनको अधिक परिश्रम करना पडता था। परिणामस्वरूप अण्डमान म जिस रुग्णता ने जड जमाई थी वह धीरे धीरे उभरने लगती। इस स्थिति को ध्यान मे रखते हुए सावरकर न हिन्दू महासभा का उत्तरदायित्व अब डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी के कन्धा पर डालना आरम्भ कर दिया और विलासपुर अधिवेशन के अवसर पर डा मुखर्जी को हिन्दू महासभा का अध्यक्ष निर्वाचित कर दिया गया। विलासपुर अधिवेशन म सावरकर ने केवल सत्याय प्रकाश सम्मेलन की अध्यक्षता की।

सन १९४५ का वष सावरकर के जीवन मे अनेक प्रकार से महान परिवतन का वष सिद्ध हुआ। निरन्तर गिरता हुआ स्वास्थ्य उन्हे अब काय करन से रोक रहा था। कुछ समय बाद ऐसी स्थिति आ गई कि उनका हिलना डुलना भी दूभर हो गया। सन् १९३७ म जब वे रत्नागिरि म स्थानबद्ध हुए थे तब से निरन्तर अथक प्रयत्न कर रहे थे। किन्तु अब उनका स्वास्थ्य जबाव दे गया।

सावरकर स्वयं तो रुग्ण थे ही, किन्तु मार्च १९४५ में उनको एक बहुत बड़ा झटका लगा। उनके बड़े भाई बाबाराव सावरकर, जो अनेक महीनों से रुग्ण चले आ रहे थे मार्च, १९४५ में सांगली में उनका देहान्त हो गया। सावरकर के लिए उनके बड़े भाई, मात्र बड़े भाई नहीं अपितु उनके परामर्शदाता, सहयोगी और प्रेरणा के स्रोत थे। वे उनके सुख-दुःख में निरंतर सहयोगी रहे थे। भाईचारे के इतिहास में ऐसे भाई कदाचित ही कहीं देखने को मिलते हों। उनके देहान्त के कुछ दिन पूर्व सावरकर उनसे मिल कर आए थे। डा. नारायण सावरकर निरन्तर उनकी सेवा कर रहे थे। भाई से मिलकर जाने के उपरान्त सावरकर ने अपने बड़े भाई को एक सांत्वनापूर्ण पत्र लिखा था कि उन्होंने अपने जीवन में जितना अधिक से अधिक हो सकता था, वह किया और अब मृत्यु आपके समीप खड़ी है। उसे आप शत्रु नहीं अपितु मित्र समझें। आपने क्रांति की मशाल को सुख तथा संकट, दोनों ही घड़ियों में ऊँचा उठाए रखा, यही आप और हमारे लिए गर्व की बात है।

बाबाराव सावरकर की मृत्यु पर सावरकर को देश विदेश से पत्रों और तारों का ढेर मिला। किन्तु मोहनदास कर्मचन्द गाँधी, जिसने निजाम की माता की मृत्यु पर उस देशद्रोही और हिन्दू द्रोही को सांत्वना का तार भेजा, सावरकर के प्रति उसकी सहानुभूति की स्याही सर्वथा सूखी रही। बहुत सोच समझ कर उसने सावरकर को पत्र तो भेजा किन्तु उस पते पर जहाँ सावरकर कभी रहे ही नहीं थे। देश विदेश के नेता, समाचार पत्र, राजनेता सब जानते थे कि सावरकर बम्बई में हैं, किन्तु गाँधी के मस्तिष्क में यह बात नहीं आई। फिर भी सावरकर ने उसके पत्र के लिए धन्यवाद का पत्र भेजा था।

युद्ध के उपरान्त

भारत के वायसराय लॉर्ड वेवल २१ मार्च, १९४५ को अन्तरिम सरकार का प्रस्ताव लेकर लन्दन के लिए रवाना हुए। यह हिन्दुओं के लिए और अधिक हानि की बात थी। कांग्रेस में तथा उसके बाहर भी केवल हिन्दु महासभा को छोड़कर कोई भी ऐसा नहीं था जो हिन्दू हितों की रक्षा के लिए कुछ कर रहा हो। हाँ हिन्दुओं के साथ विश्वासघात करने वाले सभी थे।

सावरकर निरन्तर हिन्दू नेताओं को हिन्दू हितों की रक्षा के लिए प्रेरित करते रहते थे अतः जब अप्रैल १९४५ में बड़ौदा में अखिल भारतीय हिन्दू राज्य सम्मेलन हुआ तो आयोजकों के आग्रह पर अत्यन्त रुग्ण होने पर भी सावरकर उसकी अध्यक्षता करने के लिए बड़ौदा गए। मई में अपनी कन्या के विवाह के अवसर पर सावरकर पूना गए तो वहाँ पर उन्होंने राष्ट्रदल को सम्बोधित किया।

भारत के वायसराय लॉर्ड वेवल लन्दन में ही थे तभी जर्मनी ने आत्म समर्पण कर दिया। इस प्रकार मई के प्रथम सप्ताह में योरोप में द्वितीय विश्व युद्ध का अन्त हुआ। मई १९४५ में ही चर्चिल ने प्रधानमन्त्रित्व से अपना त्याग पत्र दे दिया था।

जापान अभी भी ऐशिया म युद्ध जारी रखे हुए था। १४ जुलाई, १६४५ को वायसराय न एक रेडियो प्रसारण द्वारा भारतीय नेताओ को बातचीत का निमन्त्रण दिया। इस योजना के अन्तगत हिन्दू और मुसलमानो को बराबर का प्रतिनिधित्व देने की बात थी किन्तु भारतीय राज्यो के प्रतिनिधित्व का उसमे किंचित भी उल्लेख नही था। इसी अवसर पर 'भारत छोडो' आन्दोलन के हीरो लोगो को बन्धनमुक्त किया गया। इस घोषणा के बाद कांग्रेसी नेता अंग्रेज साम्राज्यवाद की रक्षा के लिए जापान के विरुद्ध, इतना ही नही अपितु नेताजी सुभाष बोस तथा उनकी आजाद हिन्द सेना के विरुद्ध, लडने के लिए प्रवृत्त हो गए। पण्डित नेहरू ऐसी घोषणा करने वालो मे अग्रिम व्यक्ति थे।

शिमला समझौता

गाधी नेहरू और लॉर्ड वेवल की मिली भगत से २२ प्रतिशत जनसख्या वाले मुसलमानो और ७८ प्रतिशत जनसख्या वाले हिन्दुओ को भारत के शासन म आधा-आधा भाग दिये जाने का निश्चय हो गया। शिमला म इस सम्बन्ध म जो सम्मेलन हुआ था उसम कांग्रेस का नेता मौलाना आजाद था और लीग का नेता जिन्ना। अर्थात् हिन्दुओ का नेता भी मुसलमान और मुसलमानो का नेता भी मुसलमान। हिन्दू महासभा ने शिमला सम्मेलन का बहिष्कार किया था। २८ ६-१६४५ को सम्पन्न शिमला सम्मेलन की पहली बैठक के पहले ही कुछ क्षणो मे वेवल योजना को स्वीकृति की मोहर लगा दी गई। इसमे जापान और आजाद हिन्द फौज का विरोध मुख्य था। किन्तु केन्द्रीय मन्त्रि-मण्डल मे किस किस को सम्मिलित किया जाय इस पर अनेक दिनो तक बहस के उपरात भी निर्णय नही किया जा सका और यह सम्मेलन १४ जुलाई को समाप्त घोषित किया गया। इस प्रकार भले ही वेवल योजना असफल रही हो किन्तु इससे मुसलमानो को और अधिक लाभ की बात भी स्पष्ट हो गई। वेवल मुस्लिमो का घोर पक्षपाती था। उसके आश्रय ही राजनीतिक दल मुस्लिम लीग साम्प्रदायिक दल के रूप मे परिणत हो गया। जून १६४५ की पूना मे सम्पन्न हिन्दू महासभा की कार्य कारिणी म लॉर्ड वेवल तथा शिमला सम्मेलन का विरोध व्यक्त किया गया। हिन्दू और मुसलमानो म समानता के वेवल के प्रस्ताव की सावरकर ने घोर निन्दा की। इस सभा म जो नेता ब्रिटिश सरकार के उपाधिधारी थे उन सबने इसके विरोध स्वरूप अपनी-अपनी उपाधियाँ त्याग दी।

सयोग की बात थी कि जुलाई म ब्रिटेन मे आम निर्वाचन हुए और उन निर्वाचनो म मजदूर दल विजयी रहा। उधर जापान को अणु-बम ने ध्वस्त कर दिया तो अगस्त १६४५ म उसने भी हथियार डाल दिए। घटनायें द्रुत गति से आगे बढ़ती जा रही थी। वायसराय एकबार पुन लन्दन गया और वहाँ से लौटकर उसने भारत मे सार्वजनिक चुनाव की घोषणा कर दी, जिसमे कि भारत की राजनीतिक पार्टियो की शक्ति का अनुमान लगाया जा सके।

सन् १६४६ के आरम्भ मे सार्वजनिक निर्वाचन हुए। सावरकर अस्वस्थ थे,

तदपि उन्होने हिन्दुओ और हिन्दू महासभा को निर्देश दिया कि इन निर्वाचनो मे उनका ध्येय 'पूर्ण स्वाधीनता और अखण्ड भारत' होना चाहिए। उनका कहना था 'कांग्रेस को वोट, पाकिस्तान को वोट' है। नेहरू ने जब देखा कि हिन्दू मतदाता कांग्रेस की रीति नीति से रुष्ट हैं तो उसने कलकत्ता की एक सभा मे स्पष्ट घोषणा करते हुए कहा, 'मुस्लिम लीग साम्प्रदायिक दल है, हम उससे कदापि समझौता नही करेंगे और न भारत का विभाजन ही स्वीकार करेंगे।' उस समय के मध्य प्रान्त और बरार के मुख्यमन्त्री रविशकर शुक्ल ने तो यहाँ तक कह दिया कि यदि पाकिस्तान की स्थापना हो गई तो भारत मे मुसलमानो को विदेशी समझा जाएगा।

इसके विपरीत लियाकत अली और सुहरावर्दी जैसे मुसलमान नेताओ ने मुसलमानो को भडकाने के लिए बडे ही जोशीले और घिनौने भाषण दिए। जिनसे मार काट और हत्या की दुर्गंध आती थी। उन्होंने नेहरू तक को चेतावनी दे डाली कि वह मुस्लिम बहुल क्षेत्रो मे एक भी स्थान जीतकर दिखा दे। यह घटनावश था अथवा कि हिन्दुओ का दुर्भाग्य इस निर्वाचन मे कांग्रेस अच्छे बहुमत से जीती थी और हिन्दू नेता हार गए थे।

आजाद हिन्द सेना के बन्दी

जापान के अगस्त १९४५ मे आत्म समर्पण के साथ ही आजाद हिन्द सेना के सैनिक और अधिकारी बन्दी बना लिए गए थे। दिसम्बर मे सावरकर ने ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री मि एटली से आग्रह किया कि आई एन ए के सभी बन्दियो को मुक्त कर दिया जाय। अतीत मे जिस कांग्रेस ने सुभाष बोस और उनकी आजाद हिन्द सेना का घोर विरोध किया था अब स्थिति बदलने पर और हिन्दू महासभा द्वारा उनके मचम्व को राजनीतिक मच पर स्थापित कर देने पर कांग्रेस ने अवसरवादिता का रुख अपनाया और आई एन ए के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त करनी आरम्भ कर दी। निर्वाचनो को ध्यान मे रखते हुए कांग्रेस ने आई एन ए के अभियुक्तो की पैरवी करने का निश्चय भी कर लिया।

इस प्रसग मे एक बात ध्यान देने की है कि जहाँ एक ओर कांग्रेस जी जान से हिन्दुओ का अहित करने पर उतारू थी, वहाँ दूसरी ओर हिन्दू महासभा उतनी ही शक्ति और प्राण-पण से हिन्दुओ का हित करने के लिए कृत सकल्प थी। किन्तु भारत मे राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ और आर्य समाज जैसी दो विशाल अखिल भारतीय सस्थायें थी, वे उस स्थिति मे क्या कर रही थीं, यह विचारणीय था। हिन्दुओं के लिए जहाँ जीवन मरण का प्रश्न बन गया था, जहाँ हिन्दू राष्ट्र दाँव पर लगा हुआ था वहाँ ये दोनो सस्थायें मौन थीं। आर्य समाज के अधिकाश सदस्य तो कांग्रेसी होने के कारण उसके साथ बधे हुए थे। भाई परमानन्द आदि जैसे कुछ लोग ही एसे थे, जो हिन्दू महासभा के मच से हिन्दुओ के हित साधन मे सलग्न थे। किन्तु 'सघ'? सघ क्या कर रहा था? हिन्दुओ के लिए हिन्दुओ का सगठन अथवा सगठन-सगठन के लिए कहने वाला केवल सघ-स्थान पर या तो कबड्डी खेल रहा था या फिर लाठी चलाना सीख भर

रहा था। हाँ, निर्वाचनो मे दोनो सस्थाओ के सदस्यो ने कांग्रेस की विजय मे कोई कोर-कसर नही छोडी थी।

सावरकर का स्वास्थ्य निरंतर गिरता गया, उनकी गतिविधियो पर रोक लगती गई। जनवरी २०, १९४६ के दिन उन्हे प्रबल हृदयाघात लगा। डा साठे की औषधि और शोलापुर के गोकुलचन्द हीराचन्द की परिचर्या से सावरकर ने वह आघात किसी प्रकार सह लिया।

सैनिक विद्रोह

निर्वाचन हुए। यदि कांग्रेस के प्रचार आदि को देखा जाय तो कहना पडेगा कि मुसलमानो के सामने उसने मुह की खाई। हिन्दू महासभा के साथ जो विश्वासघात का बीज कांग्रेस ने बोया उसके परिणामस्वरूप निर्वाचनो मे उसका तो सफाया ही हो गया किन्तु कांग्रेस को भी प्रान्तीय सभाओ मे ५०७ स्थान ही प्राप्त हुए, जबकि २२ प्रतिशत जनसख्या वाला मुस्लिम समुदाय ४२७ स्थान प्राप्त करने मे सफल हो गया।

परिस्थिति दिन प्रति दिन बदलती जा रही थी। आई एन ए के जवानो पर किए गए और किए जाने वाले अत्याचार रग दिखा रहे थे। वायु सेना और नौ सेना के बम्बई, कलकत्ता और कराची केन्द्रो मे विद्रोह के स्वर उभरते दिखाई देने लगे थे। उधर स्थल सेना भी स्वतन्त्रता का रग देखने लगी थी।

इस सब स्थिति को देखते हुए ब्रिटिश सरकार ने १० सासदो का एक प्रतिनिधि मण्डल भारत भेजा जो चार सप्ताह तक देशभर मे भ्रमण, सर्वेक्षण तथा विभिन्न दलो के नेताओ से भेंट वार्ता करता रहा। उसने भेंट वार्त्ता के लिए सावरकर को भी आमन्त्रित किया था, किन्तु सावरकर अस्वस्थ होने के कारण नही जा सके। अन्त मे शिष्ट मण्डल १० फरवरी, १९४६ को वापस चला गया।

इस शिष्ट मण्डल के वापस जाने के उपरान्त १९ फरवरी १९४६ को सर स्टैफर्ड क्रिप्स, ए वी अलेक्जेडर और लोर्ड पथिक लारेन्स का एक अन्य शिष्ट मण्डल भारत भेजने का निश्चय किया गया। १५ मार्च १९४६ को ब्रिटिश प्रधानमन्त्री ने भारत को ब्रिटिश कोमनवैल्थ के भीतर रहते हुए अथवा बाहर रहते हुए, जैसा वह चाहे स्वतन्त्रता देने की घोषणा कर दी। अल्पसख्यक समस्या के विषय मे एटली का कहना था कि हम अल्पसख्यको को बहुसख्यको पर 'वीटो' का अधिकार देना स्वीकार नही कर सकते।

२४ मार्च, १९४६ को ब्रिटिश केबिनट मिशन दिल्ली पहुँच गया।

इस अवसर पर नेहरू ने जो घोषणा की उससे पत्रकार जगत मे खलबली मच गई। सभी ने कहा कि आखिरकार नेहरू ने पाकिस्तान के कफन मे आखिरी कील ठोंक ही दी। दूसरी बात जो उल्लेखनीय थी वह यह कि इस अवसर पर भी मुसलमानो का नेतृत्व जिन्ना कर रहा था तो कांग्रेस के हिन्दू दल के रूप मे मौलाना आजाद उसका नेतृत्व कर रहा था। ब्रिटिश सरकार तथा लीग आरम्भ से ही कांग्रेस को हिन्दुओ की

पार्टी मानते आए थे। उसी अवसर पर गांधी के तथा कथित परमभक्त हसन शहीद सुहरावर्दी ने घोषणा कर दी कि 'पाकिस्तान मुसलमानों की नवीनतम माग है, किन्तु यह ध्यान रहे कि यही अंतिम माग नहीं है। यदि अंग्रेजों ने भारत का भाग्य कांग्रेस के हाथ में सौंपा तो मुस्लिम लीग केन्द्रीय सरकार को एक दिन भी नहीं चलने देगी।' सर फिरोजखान नून ने तो यहाँ तक कह दिया कि वह भारत को चगेजखाँ के दिनों का स्मरण करा देगी।

अन्तरिम सरकार

१२ मई, १९४६ को शिमला में त्रिपक्षीय वार्ता हुई किन्तु वह किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पाई। भारत की स्वतन्त्रता पर केबिनेट मिशन के प्रस्तावों पर विचार करना कांग्रेस ने १६ मई को स्वीकार किया तो लीग ने २२ मई को। जून के अन्त में केबिनेट मिशन वापस लन्दन चला गया। समय समय पर नेहरू मूर्खतापूर्ण और जिन्ना धूर्तता-पूर्ण वक्तव्य देते रहे। २४ अगस्त को वायसराय ने अन्तरिम सरकार की स्थापना की इच्छा की घोषणा कर दी। १६ सदस्यों के मन्त्रिमण्डल में से ६ कांग्रेस के, ५ लीग के तथा शेष ५ विभिन्न अल्पसंख्यक समुदायों के प्रतिनिधि के रूप में लेने का निर्णय हुआ। कांग्रेस ने २ सितम्बर को शपथ ग्रहण करते हुए अपने भाग के ६ स्थानों में से एक स्थान शोषित समाज को दिया तथा एक स्थान मुसलमानों को। इस प्रकार अपने बहुमत को स्वयं ही कांग्रेस ने अल्पमत में परिणत कर दिया।

इससे पूर्व अगस्त में मुस्लिम लीग ने नोआखाली, कलकत्ता आदि अनेक स्थानों पर डायरेक्ट ऐक्शन के रूप में 'जिहाद' आरम्भ कर दिया। मुस्लिम गुण्डों ने वह करके दिखा दिया जो फिरोजखाँ नून ने कहा था। इतना ही नहीं जो चगेजखाँ ने नहीं किया होगा वह इन मुसलमान गुण्डों ने हिन्दुओं के साथ किया। सावरकर ने उस समय अपनी रुग्ण शैया से वक्तव्य देकर हिन्दुओं को कहा, "हिन्दुओं को इन अत्याचारों का दृढ़ता से सामना करना चाहिए। 'अहिंसा' व 'सहिष्णुता' जैसी मूर्खतापूर्ण नीति को त्याग कर गुण्डों को उन्हीं की भाषा में जब तक उत्तर नहीं दिया जाएगा, वे विराम नहीं लेंगे।" हिन्दुओं ने वही किया और अपने अपमान का बदला लिया।

अक्टूबर में मुसलमानों के प्रतिनिधियों ने भी मन्त्रिमण्डल में अपना स्थान ग्रहण कर लिया।

देश में भारत विभाजन की बात फिर बल पकड़ने लगी। कांग्रेस कार्यकारिणी विचलित होती रही। कालान्तर में कांग्रेस कार्यकारिणी ने पंजाब का विभाजन स्वीकार कर लिया। किन्तु बंगाल के विभाजन की बात पर बहुत विवाद होता रहा। ऐसी स्थिति में सावरकर ने खिन्न और दुःखी होते हुए कहा, 'बंगाल में हिन्दू बहुल प्रान्त का निर्माण किया जाना चाहिए। जो कि केन्द्रीय हिन्दू राज्य के प्रति वफादार रहे।"

ब्रिटिश सरकार की घोषणा के अनुसार २२ मार्च १९४७ को भारत में नए वायसराय के रूप में लॉर्ड माउन्टबेटन भारत पहुँच गया। सावरकर ने उसको तार द्वारा

सूचित किया कि भारत को स्वतन्त्रता देने के विषय पर कोई सैद्धान्तिक निर्णय होने से पूर्व हिन्दू महासभा और मास्टर तारासिंह से भी वार्तालाप किया जाय। सावरकर ने ४ अप्रैल, १९४७ को बंगाल की हिन्दू महासभा को लिखा कि वे पश्चिम बंगाल में एक पृथक हिन्दू प्रान्त के निर्माण की जोरदार माँग करें। आसाम से बंगाल में घुसकर आने वाले मुसलमानों को बंगाल से निष्कासित किए जाने की माँग के लिए सावरकर ने बंगाल हिन्दू महासभा को लिखा। उन्होंने माँग की कि सिंध के हिन्दू बहुल जिलों को बम्बई के साथ मिला दिया जाना चाहिए। मुस्लिम बहुल प्रान्तों में मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं के साथ दुर्व्यवहार किया जा रहा है। हिन्दू बहुल प्रान्तों में मुसलमानों के साथ भी वैसा ही व्यवहार किया जाना चाहिए।

लॉर्ड माउण्टबेटन ने कांग्रेसी और लीगी नेताओं से विचार विमर्श किया और १८ मई, १९४७ को अपने अधिकारियों से वार्तालाप करने के लिए लन्दन चला गया। सावरकर समझ गए कि निर्णायक घड़ी आ पहुँची है। सावरकर ने कांग्रेसियों से अपील की कि वे भारतवासियों के साथ विश्वासघात करके भारत विभाजन को किसी भी मूल्य पर स्वीकार न करें। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि यदि उनको गद्दी की बहुत ही ललक हो तो वे अपने सभी मन्त्रिमण्डलों तथा पदों से त्यागपत्र देकर इस मुद्दे पर पुनः चुनाव लड़ लें। किन्तु कांग्रेस पार्टी में ऐसा कौन था जो इस प्रकार की बुद्धिमत्ता की बात को समझने और फिर उस पर कार्य करने के लिए उद्यत होता? उनको तो प्रसन्नता थी कि जैसी कैसी भी सही स्वतन्त्र सत्ता तो प्राप्त हो रही है। क्या किसी अन्य देश ने भी इस प्रकार का अनाचार अपने लोगों के हाथों सहा है?

जवाहरलाल नेहरू ने तो २९ मई, १९४७ को ही लखनऊ राजनीतिक कान्फ्रेंस में कह दिया था कि यदि मुसलमान चाहते हों कि उन्हें पाकिस्तान चाहिए तो वे ले सकते हैं।' सरदार पटेल ने उससे भी पूर्व १४ अप्रैल, १९४७ को बम्बई में कह दिया था कि 'यदि भारत का विभाजन करना ही हो तो वह तभी सम्भव है जब हम लोगों से भी उस विषय में परामर्श किया जाय और शान्तिपूर्ण रीति से समझौता किया जाय।' डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने सुरक्षा सैनिकों के भी विभाजन की माँग की। इस प्रकार भारत की एकता और अखण्डता का विषय केवल सावरकर का ही सिरदर्द रह गया था।

३ जून की घोषणा

मई के अन्त में वायसराय लन्दन से वापस आया और ३ जून, १९४७ को ब्रिटिश प्रधानमन्त्री ने लन्दन से तथा वायसराय माउण्टबेटन ने दिल्ली से वक्तव्य प्रसारित कर दिया कि पंजाब तथा बंगाल का विभाजन कर पाकिस्तान की स्थापना के साथ भारत और पाकिस्तान को स्वतन्त्रता प्रदान की जायगी। इसको जून ३ की घोषणा कहा गया।

३ जून की घोषणा पर नेहरू ने कहा था, "भारत में विद्यमान हिन्दू और

मुस्लिम समस्या का सदैव के लिए समाधान करने हेतु ही हम भारत का विभाजन स्वीकार कर रहे है।"

वीर सावरकर ने उस समय नेहरू और उनकी कांग्रेस को सावधान करते हुए कहा था हिंदू मुस्लिम समस्या के समाधान के रूप मे देश को खण्ड-खण्ड करने वालो को मैं चेतावनी देता हूँ कि देश के बटवारे स यह समस्या सुलझने के स्थान पर और भी अधिक उलझ जाएगी। क्योंकि यह प्रश्न दो जातियो के बीच का नही है। पाकिस्तान की स्थापना होते ही यह समस्या और भी तीव्र रूप धारण कर लेगी।"

६ जून को गांधी की प्रार्थना सभा के बाद उसी सभा मे गांधी का सदेश पढकर सुनाया गया— 'कांग्रेस द्वारा ब्रिटिश सरकार की नई योजना स्वीकार किए जाने का मैं विरोध नही कर रहा हूँ।"

भारतवासियो को भली प्रकार स्मरण है कि गांधी ने अनेक बार यह घोषणा की थी कि पाकिस्तान मेरे शव पर बनेगा। नेहरू ने भी कहा था कि हम पाकिस्तान नही बनने देगे और अब सत्ता के लोभ म किसी को अपने पूर्व वचन का स्मरण नही रहा। यहाँ तक कि किसी ने क्षमा याचनापूर्वक यह भी नही कहा कि 'हमने जो वचन दिया था उसे निभा न पाने का हमे खेद है।'

१४ जून, १९४७ को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के दिल्ली अधिवेशन म ३ जून योजना को स्वीकार कर लिया गया। उस समय मौलाना आजाद कांग्रेस का अध्यक्ष था और उसने कहा कि मुझ प्रसन्नता है कि हमने इस समस्या का शान्तिपूर्ण उपाय ढूढ लिया है। आजाद को प्रसन्नता क्यो न हो ? मुसलमानो को पृथक राज्य के रूप मे भारत का बहुत बडा भाग जो मिल गया था।

इस योजना को स्वीकार करने मे कांग्रेस के भीतर के सोशलिस्ट तटस्थ रहे। कांग्रेस जनो म से केवल एक ही विरोध का स्वर जो उठा वह बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन का था। उन्होंने उस समय भी कहा था कि भले ही कांग्रेस कार्य समिति ने इसे स्वीकार कर लिया हो किन्तु कांग्रेसजन इसको अब भी अस्वीकार कर सकते हैं और उनको इसे अस्वीकार करना ही चाहिए।

सरदार पटेल का सहसा पाकिस्तान के पक्ष मे हो जाना सबके लिए आश्चर्य की बात थी।

उस अधिवेशन म गांधी ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को 'अल्टीमेटम' भेजा कि या तो पाकिस्तान की योजना को इसके वर्तमान रूप मे स्वीकार करो या फिर कांग्रेस के अब तक के परीक्षित नेताओ के स्थान पर दूसरे नौसिखिए लोगो को बैठा दो। कांग्रेस जनो का यह कर्तव्य है कि व अपने नेताओं की इच्छाओ का आदर कर उनका पालन करें। कांग्रेस नेताओं के लिए राष्ट्र और करोडो जनो की प्रतिष्ठा की अपेक्षा अपनी प्रतिष्ठा महत्वपूर्ण थी।

सावरकर तो कांग्रेस की रीति नीतियों का निरन्तर विरोध करते ही रहते अतिरिक्त डा भीमराव अम्बेडकर भी एक ऐसा व्यक्ति था जिसने विधान

सभा में कांग्रेसी नेताओं को कहा था कि लोगो के भाग्य का निणय करते समय किसी व्यक्ति विशेष या नेताओ अथवा दलो की प्रतिष्ठा का प्रश्न नगण्य समझा जाना चाहिए।

किन्तु गांधी ने इस प्रस्ताव के पक्ष मे तूफान खडा कर दिया। दस वर्ष पूर्व जिस गांधी ने अपने शव पर पाकिस्तान बनने की बात कही थी वही गाधी पाकिस्तान बनाने की बात पर अड गया था। सत्य शोधक गांधी का सत्य यही था।

भारत मे केवल दो ही व्यक्ति ऐसे थे जो इस विभाजन को रोक और रुकवा सकते थे। एक था गांधी और दूसरा सावरकर। उनमे से गांधी ने तो स्वय ही विभाजन स्वीकार कर लिया था और सावरकर आरम्भ से ही बार-बार कांग्रेस नताओ और देशवासियो को चेतावनी देते आते हुए भी वतमान मे अत्यन्त रुग्णता के कारण सीधे खडे होने मे सवथा असमथ थे।

'ग्रह एण्ड तारे' मे 'सत्याग्रही' ने पष्ठ ६० पर लिखा है "गांधी ने अपने राजनीतिक गुरु गोखले की भविष्यवाणी को साथक सिद्ध किया। जिसन कहा था कि जन साधारण मे गाधी का बहुत प्रभाव होगा किन्तु जब कभी राजनीतिक महासघो का इतिहास लिखा जाएगा तो उसमे गांधी का नाम असफल नेताओ के रूप म अकित होगा।"

कम्युनिस्टो तथा वामपन्थी दलो ने भी विभाजन की योजना को स्वीकार किया था। वे कहते थे कि दोनो भागो म मानवता का सन्देश प्रसारित करना उनका उद्देश्य है।

इतना होने पर भी पाकिस्तान निर्माण का विरोध अभी शान्त नही हुआ था। ३ जुलाई १९४७ को समस्त भारत मे विरोध दिवस मनाया गया। इसमे बम्बई, पूना, दिल्ली आदि अनेक बडे नगरो म पूण हडताल रही। प्रभात फेरियां निकाली गईं, विरोध सभायें की गईं, काले झण्डे लहराये गए और कहा गया कि देश की स्वतन्त्रता के लिए क्रान्तिकारी बलिदानी वीरों ने अपने प्राणो की आहुति दी थी। पाकिस्तान स्वीकार करना उनके रक्त के साथ विश्वासघात करना है।

किसी ने किसी की नही सुनी। कांग्रेस नेता अब वृद्ध होने के साथ-साथ चुक गए थे। कांग्रेस के अनेक नेता इस अवधि मे अनेक विषयो पर बातचीत करते रहे और मुसलमानो की ओर स अकेला जिन्ना वायसराय से बात करता रहा। अन्त मे अंग्रेजो ने मुसलमानो का साथ दिया और पाकिस्तान बनना निश्चित हो गया।

मोसले लियोनार्ड ने अपनी पुस्तक 'दि लास्ट डेज औफ दि ब्रिटिश राज' के पृष्ठ २४८ पर लिखा है, 'पण्डित नेहरू ने बाद म कहा था—'यदि गाधी जी ने हम पाकिस्तान स्वीकार न करने की बात कही होती तो हम लोग निरन्तर लडते-लडते प्रतीक्षा करते रहते।"

जब पाकिस्तान बनना निश्चय हो गया तो सावरकर को इससे बडा दु ख हुआ। तभी त्रावणकोर के दीवान ने 'इडियन इडिपेंडेंस एक्ट' के अन्तगत त्रावणकोर को स्व-

तन्त्र राज्य घोषित करने का निश्चय किया तो सावरकर ने उसका समर्थन किया। डा अम्बेडकर ने त्रावणकोर तथा हैदराबाद राज्य को सुझाव दिया कि वे भारत राज्य म सम्मिलित हो जाय।

आय समाज और राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ, भारत के विभाजन को मूक दशक के रूप म दखत रह। विभाजन विरोधी शक्तियो के साथ न आय समाज ने सहयोग किया और न ही राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ ने।

भारत स्वतंत्र

खण्डित भारत

संविधान सभा ने तिरंगे झंडे को राष्ट्रीय झंडा स्वीकार कर उसके मध्य में चरखे के स्थान पर धर्मचक्र स्वीकार किया और खादी के स्थान पर रेशम को ग्रहण किया तो गांधी ने इसे स्वीकार नहीं किया। ३ अगस्त १९४७ के अपने 'हरिजन' में उन्होंने एक लेख द्वारा अपनी असहमति व्यक्त कर दी।

जब कांग्रेस में मन्त्रीमण्डल गठन की भीतरी प्रक्रिया चलने लगी तो दक्षिण पंथी कांग्रेसियों ने सावरकर को अपने पक्ष में करने के अनेक प्रयत्न किए। सर्वश्री द्वारकाप्रसाद मिश्र, रामराव देशमुख तथा सरदार पटेल आदि इसमें प्रमुख थे। उन्होंने सावरकर को पत्र तक लिखे। किन्तु उनकी योजना नहीं चल पाई।

अन्त में १५ अगस्त १९४७ का वह दिन भी आया और भारत, विभाजित भारत, स्वतन्त्र हुआ। किन्तु इसके साथ ही समस्त देश में हिन्दू मुस्लिम दंगे भी आरम्भ हो गये। दंगे तो मुसलमानों ने जून मास से ही आरम्भ कर दिए थे, किन्तु अब उन्होंने भीषण रूप धारण कर लिया था। कांग्रेसी न तो यह चाहते थे कि विभाजित पंजाब और बंगाल के हिन्दू भारत आएं और न यह कि भारत के मुसलमान पाकिस्तान जाएं। नेहरू को इसकी बड़ी पीड़ा थी और वह इस सबके लिए हिन्दू संगठनकारियों को कोसता और लताड़ता रहता था। उसने तो एक बार यहाँ तक कह दिया कि भले ही उसको प्रधानमन्त्रित्व से त्यागपत्र देना पड़ जाय, किन्तु वह इन हिन्दू संगठनकारियों से निपट लेगा। (फ्री हिन्दुस्तान बम्बई, पृष्ठ १६ १८, ६९ ७१)

उस समय मुसलमानों का एक ही नारा था 'हँस के लिए पाकिस्तान, लड़के लेंगे हिन्दुस्तान'। यह नारा आज भी भारत के मुसलमानों की जिह्वा पर विद्यमान है और जब कभी भी साम्प्रदायिक दंगे भड़कते हैं मुसलमान यही घोष दोहराते रहते हैं।

नेहरू की इस धमकी का सावरकर ने उसी भाषा में उत्तर दिया था। लोगों में बड़ा रोष था। स्वतन्त्रता मिलने से २४ घण्टे पूर्व गांधी के कलकत्ता निवास को जनता ने घेर लिया और 'गांधी वापस जाओ' के नारे लगाए। जिस सोहरावर्दी को बंगाली जन मानस हत्यारा मानता और कहता था वही सोहरावर्दी गांधी का अभिन्न मित्र बन गया था। इतना ही नहीं, गांधी ने जब अपना अंतिम अनशन किया था उस समय नेहरू आदि अनेक कांग्रेस नेताओं को जनता के मुख से यह सुनकर कि 'गांधी को मरने दो' बड़ा आश्चर्य होता था। तब से गांधी की प्रार्थना सभा में भक्तों की अपेक्षा गुप्तचरों की संख्या अधिक रहने लगी थी।

गांधी का अनशन एवं वध

अक्टूबर १९४७ में पाकिस्तान ने कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। दूसरी ओर पाकिस्तान ने भारत से पाकिस्तान जाने वाले मुसलमानों के बसाने के लिए ५५ करोड़ रुपयों की मांग की। पटेल और नेहरू भी अब यह समझते थे कि यदि पाकिस्तान को धन दिया गया तो यह उसके कश्मीर में घुसपैठ को बढ़ावा देने के लिए ही होगा। किन्तु गांधी चाहता था कि धन तुरन्त दिया जाए। जब भारत सरकार तुरन्त तैयार नहीं हुई तो गांधी ने १३ जनवरी १९४८ को आमरण अनशन आरम्भ कर दिया।

गांधी का कहना था कि मुसलमानों को भारत में उनके अपने मकानों में बसाया जाय, नष्ट की गई मस्जिदों को उनको सौंपा जाय और उनकी मरम्मत की जाय, पाकिस्तान को वांछित धन दिया जाय। ऐसी ऐसी सात मांगें गांधी के आमरण अनशन का आधार थीं।

गांधी के इस आमरण अनशन ने तो पाकिस्तान से अपनी जान बचाकर भाग कर आए दर दर के भिखारी बने हिन्दुओं के घावों पर मानो नमक ही छिड़क दिया हो। पाकिस्तान के अत्याचारों से त्रस्त हिन्दुओं ने जब गांधी को पाकिस्तान और मुसलमानों के अधिकारों की रक्षा के लिए अनशन करते देखा तो उनमें अत्यन्त क्षोभ छा गया। हमने ऊपर वर्णन किया है कि उस समय सबके मुख से यही निकलता था 'गांधी को मरने दो।'

कांग्रेसी सरकार असंख्य हिन्दुओं को भले ही मरने देना चाहती हो, अनगिनत ललनाओं को बलात् मुस्लिम हरमों में ले जाने और उतनी ही महिलाओं का वैधव्य का दुख भोगने के लिए विवश होने को भले ही साधारण बात मानती हो किन्तु एक गांधी के जीवन बचाने के लिए वह इन सबका परित्याग कर सकती थी।

और वही हुआ। सरकार ने गांधी की सब मांगें मान लीं। गांधी का अनशन टूट गया। किन्तु क्या वे कांग्रेसी गांधी को बचा सके?

३० जनवरी १९४८ को सायंकाल प्रार्थना सभा में जाने से पूर्व गांधी ने सरदार पटेल से वार्तालाप किया और उन्हें परामर्श दिया कि वे नेहरू के साथ भारत के प्रति मुसलमानों की निष्ठा के सम्बन्ध में अपने मतभेदों को तुरन्त दूर करें।

... ३ से १२ फरवरी तक सेवाग्राम में रहकर विश्राम करने का कार्यक्रम

बना चुके थे।

गांधी अब भंगी कालोनी में नहीं अपितु बिरला हाउस में ठहरने लगे थे। वहीं उन्होंने अनशन किया था और वहीं सरदार पटेल से वह भेंटवार्ता हुई थी, जिसका हमने ऊपर उल्लेख किया है।

सरदार पटेल से वार्ता पूर्ण कर ठीक साढ़े पांच बजे गांधी दो कन्याओं के कन्धों पर हाथ रखे हुए प्रार्थना के लिए बाहर के मंच पर आ रहे थे कि नथूराम गोडसे नामक युवक ने गांधी को नमस्कार किया और तुरन्त अपना रिवाल्वर निकाल उन पर गोली चलाकर उनका वहीं पर वध कर दिया।

इस प्रकार न केवल भारतीय राजनीति अपितु विश्व की राजनीति के मंच के एक प्रमुख पात्र के जीवन का अन्त हो गया। गांधी वध का समाचार भीषण वन-अग्नि की भांति समस्त विश्व में फैल गया। भारत में तो जैसे भूकम्प ही आ गया हो। दुकानें बन्द हो गईं। सिनेमा शो स्थगित कर दिए गए। झंडे झुकाए जाना तो साधारण सी बात थी। चारों ओर भांति भांति की बातें और चर्चायें होने लगी।

गांधी वध पर कांग्रेसियों और कम्युनिस्टों की दृष्टि हिन्दू महासभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर पड़ी। क्योंकि नथूराम गोडसे प्रारम्भ में संघ का स्वयंसेवक था और कालान्तर में हिन्दू महासभा में प्रविष्ट होकर उसकी अखिल भारतीय समिति का प्रमुख सदस्य बन गया था। महाराष्ट्र में अपनी उग्र पत्रकारिता के लिए वह प्रसिद्ध था।

स्वाभाविक ही गांधीवादियों तथा गांधीवादी सरकार का नजला इन दो संस्थाओं पर ही ढलना चाहिए था। परिणामस्वरूप कांग्रेसियों और कम्युनिस्टों की अनियंत्रित भीड़ ने ३१ जनवरी १९४८ को बम्बई के 'सावरकर सदन' पर आक्रमण कर दिया। इसके साथ ही स्थान स्थान पर हिन्दू सभा और संघ के कार्यालयों पर भी आक्रमण किए गए। ध्वज जलाए गए, कार्यालय लूटे गए, मकान गिराए गए। संघ के नागपुर कार्यालय पर आक्रमण बोल दिया। हिन्दू महासभा तथा संघ से सम्बन्धित सभी स्थानों तथा भवनों को नष्ट भ्रष्ट करने में कांग्रेसी और कम्युनिस्ट गुंडों में होड़ लग गई।

परिणाम स्वरूप दुर्बल आत्मा हिन्दुओं ने हिन्दू महासभा और संघ से अपने सम्बन्ध विच्छेद की घोषणाएं आरम्भ कर दीं। नथूराम गोडसे पूना का निवासी था। अतः पूना में भयंकर दंगे हुए तो वहां कर्फ्यू लगा दिया गया। न केवल संघी और सभाई लोगों पर अपितु कहीं कहीं तो ब्राह्मण मात्र पर आक्रमण किए जाने लगे क्योंकि नथूराम गोडसे जन्मना ब्राह्मण था।

सावरकर के साथ उसी क्षेत्र में उनके छोटे भाई का निवास था। गुंडे वहां पहुंचे और उस मकान को घेर कर दामोदर सावरकर को घायल कर दिया, घर को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। सावरकर पर भी आक्रमण होने वाला था किन्तु सावरकर स्वयं रिवाल्वर लेकर खड़े थे और साथ ही उसी समय हिन्दू महासभा के कार्यकर्ता

उन्हें बचाने के लिए वहां पहुच गए। उन्होंने पीछे से कांग्रेसी गुण्डो पर आक्रमण कर वहा से भगा दिया। सावरकर ने अपने पुत्र विश्वास सावरकर को वहां से अन्यत्र जाकर अपनी सुरक्षा करने का परामर्श दिया। बाल सावरकर और भास्कर शिन्दे सावरकर की रक्षा के लिए सन्नद्ध रहे। विश्वास सावरकर भी उनके साथ द्वार पर सन्नद्ध था।

३० जनवरी १९४८ की रात से ही सरकार की ओर से पकड़ा धकड़ी आरम्भ हो गई थी। सावरकर के अंगरक्षक और निजी सचिव को पहले ही बन्दी बना लिया गया था। ३१ जनवरी को सावरकर के घर की तलाशी ली गई। पुलिस अधिकारी ने सावरकर को परामर्श दिया कि उनको किसी सुरक्षित स्थान पर रखा जा सकता है किन्तु सावरकर ने यह सुझाव अस्वीकार कर दिया।

३१ जनवरी को सावरकर ने एक वक्तव्य प्रसारित करते हुए कहा, 'गांधी के वध का समाचार दहला देने वाला है। भारत की जनता को चाहिए कि वह इस समय देश में शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने के लिए केन्द्रीय सरकार के साथ सहयोग करे।'

स्वतन्त्र भारत में बन्दी

१ फरवरी से लेकर ५ फरवरी १९४८ तक समस्त देश में हिन्दू महासभा तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के नेताओं एवं कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी का भीषण दौर चला। जिस पर तनिक भी सन्देह हुआ अथवा किसी कांग्रेसी को किसी साधारण व्यक्ति से अपना वैर चुकाना था तो उसको सभी अथवा सभाई बता कर बन्दी बनवा दिया। इस प्रकार २५-३० हजार लोगों को पकड़ कर जेलों में ठूस दिया गया। उनमें अनेक बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति भी थे।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

४ फरवरी की रात्रि में एक सरकारी डाक्टर ने आकर सावरकर का निरीक्षण परीक्षण किया और बता दिया कि सावरकर सब प्रकार से स्वस्थ हैं। जब कि विगत एक वर्ष से सावरकर क्षीण ज्वर और हृदय पीड़ा से ग्रस्त थे। जिस समय डाक्टर उनका निरीक्षण परीक्षण कर रहा था, उस समय भी उनको ज्वर था।

५ फरवरी के दिन मुह अंधेरे ही पुलिस की गाड़ी आई और पुलिस अधिकारी ने सावरकर से कहा बम्बई पब्लिक सिक्योरिटि मेजर्स एक्ट के अन्तर्गत उनको बन्दी बनाया जा रहा है। सावरकर ने स्वीकृति में सिर हिलाया और कहा कि बाहर जाने से पूर्व वे शौचालय जाना चाहते हैं।

पुलिस अधिकारी अनिश्चय की स्थिति में था। सम्भवतया उसको सावरकर के मार्सेल्स में इसी प्रकार भाग निकलने की घटना का भान हो और इस समय वही स्मरण आ रहा हो। उसको अन्यमनस्क देख सावरकर ने कहा 'घबराओ नहीं। मैं अब बहुत बूढ़ा हो गया हूं आप मार्सेल्स की घटना की पुनरावृत्ति की चिन्ता न करें,

न ही उसके लिए अब कोई अवसर ही है।"

सावरकर को बम्बई की आर्थर रोड कारागार में रखा गया।

कांग्रेस जनों तथा कांग्रेसी समाचार पत्रों को सावरकर से बदला लेने का यह अच्छा अवसर हाथ लगा था। अतः उन सब ने कम्युनिस्टों के साथ मिलकर कुप्रचार आरम्भ कर दिया। उनका आरोप था कि गांधी वध का षड्यन्त्र सावरकर के मस्तिष्क की उपज था। सावरकर इस सारी अवधि में शान्त रहे। उन्होंने घर से भोजन मंगाने के प्रस्ताव को भी अस्वीकार कर दिया। मार्च २३ तक उनके साथ उनकी पत्नी और पुत्र की उनसे भेंट तक नहीं होने दी गई। कांग्रेस और कम्युनिस्ट पत्रों में जो कुछ उनके विरुद्ध प्रकाशित होता रहा उसके अतिरिक्त तब तक उनके विषय में किसी को कोई समाचार भी नहीं मिला कि वे कहाँ हैं और कैसे हैं।

बम्बई के स्थानीय एडवोकेट श्री एस० बी० देवधर सावरकर की पैरवी के लिए हाथ पैर चलाते रहे। वकील होने के नाते किसी प्रकार ६ फरवरी को उनको सावरकर से मिलने की अनुमति मिल गई। उस समय उनको अनुभव हुआ कि इस गिरफ्तारी का सावरकर पर गहन प्रभाव पड़ा है। बहुत दिनों तक तो सावरकर पर किसी प्रकार के आरोप भी नहीं लगाए जा सके। अन्त में ११ मार्च १९४८ को दिल्ली के मजिस्ट्रेट के आदेश से गांधी वध षड्यन्त्र में सावरकर को प्रमुख बताकर उन्हें पुनः आर्थर रोड कारागार में लाया गया। उस समय श्री देवधर ने उनकी जमानत की प्रार्थना की जो अस्वीकार कर दी गई। हाँ, श्री देवधर को इस बात में सफलता मिल गई कि सावरकर की पत्नी और पुत्र उनसे भेंट कर सकते हैं। उनके ही प्रयत्न से सावरकर अपने पुत्र को अपने घर के संचालन आदि के विषय में पावर ऑफ अटॉर्नी देने में भी सफल हुए।

हिन्दू महासभा के तत्कालीन अध्यक्ष श्री एल० बी० भोपतकर, जो स्वयं अच्छे वकील भी थे, अपने प्रयत्नों से सावरकर के बचाव के लिए जुट गए और उन्होंने एक समिति गठित की। उधर बम्बई विधान सभा में श्री माण्डलिक ने प्रश्न उठाया कि सावरकर की जब्त सम्पत्ति, उनके पिछले बलिदान को ध्यान में रखते हुए उनके परिवार को वापस क्यों नहीं की गई? इसके उत्तर में तत्कालीन बम्बई के गृहमंत्री मोरारजी देसाई, जो अपने गांधीवादी होने के लिए प्रसिद्ध रहे, उन्होंने उत्तर दिया, 'सावरकर की विगत सेवाओं से उनका वर्तमान कार्य अत्यन्त निन्दनीय है, अतः उनकी सम्पत्ति वापस नहीं की जा सकती।" कालान्तर में वही मोरारजी देसाई दुर्घटनावश भारत का प्रधानमंत्री बना और उस काल में अपने पुत्र के कुकृत्यों के कारण उसे पर्याप्त अपकीर्ति का सामना करना पड़ा। इतना ही नहीं अमेरिका के एक पत्रकार ने भारत पर लिखी अपनी पुस्तक में गांधीवादी मोरारजी देसाई को सी०आई०ए० का एजेण्ट तक सिद्ध कर दिया। अर्थात् मोरारजी ने भारत के साथ द्रोह किया। श्री माण्डलिक ने उस समय भी विधान सभा में मोरारजी की खबर लेते हुए उससे पूछा था, मोरारजी बताएं कि सावरकर ने कौन-सा निन्दनीय कृत्य

किया है ?" किंतु मोरारजी के पास इसका कोई उत्तर नहीं था। वह मौन रहा।

ऐतिहासिक वक्तव्य

गांधी वध अभियोग में साढ़े तीन मास बाद प्रारम्भिक कार्यवाही पूर्ण की गई। सावरकर के विषय में जब सरकार को अन्य कोई आक्षेप कहीं से भी उपलब्ध नहीं हो सका तो ऐसे वीर बलिदानी को षड्यन्त्र में सम्मिलित व्यक्ति घोषित कर उन्हें आठवाँ अभियुक्त बनाया गया। १५ मई १९४८ को सभी अभियुक्तों के नाम एक विशेष गजट में प्रकाशित कर दिए गए। उसी गजट में आई०सी०एस० अधिकारी श्री आत्मा चरण को इस अभियोग के लिए जज की नियुक्ति तथा अभियोग के दिल्ली के लालकिले में चलाए जाने की भी घोषणा की गई।

अभियोग आरम्भ होने से कुछ दिन पूर्व २४ मई १९४८ को सभी अभियुक्तों को दिल्ली लाया गया। सावरकर के साथ अन्य अभियुक्त थे गोडसे, आप्टे, करकरे, बडगे, मदनलाल पाहवा, गोपाल गोडसे, डॉ० दत्तात्रय परचुरे तथा किस्तैया। कालान्तर में बडगे पुलिस का गवाह बन गया और उसने पुलिस के आदेशानुसार अपने वक्तव्य में कहा कि गांधी का वध करने के पूर्व १७ जनवरी १९४८ को गोडसे और आप्टे बम्बई में सावरकर से भेंट करने के लिए गए, वहाँ सावरकर ने उन्हें गांधी व जिन्ना और सोहरावर्दी के वध की सफलता के लिए आशीर्वाद दिया।

यह अभियोग उसी स्थान पर चलाया गया जहाँ आजाद हिन्द सेना के अधिकारियों पर अभियोग चलाया गया था।

बम्बई के एडवोकेट जनरल सी० के० दफ्तरी अभियोग पक्ष के प्रमुख वकील थे और श्री भोपतकर बचाव पक्ष के प्रमुख वकील थे। इसके अतिरिक्त अलग-अलग अभियुक्तों के अलग-अलग वकील भी थे। वे सभी सम्मानित वकील थे। २७ मई १९४८ को जब अभियोग आरम्भ हुआ तो सरकारी पक्ष द्वारा घोषित १२ अभियुक्तों में से केवल ९ को वहाँ लाया गया और शेष तीन—गंगाधर दण्डवते, गंगाधर जाधव तथा सूर्यदेव शर्मा को भगोड़ा घोषित किया गया। उस दिन प्राथमिक औपचारिकता के बाद ३ जून के लिए अभियोग स्थगित कर दिया गया। ३ जून को कुछ अन्य आवश्यक प्राथमिकताओं और नियम आदि का निर्धारण कर २२ जून के लिए अभियोग स्थगित कर दिया गया। २२ जून को अभियोग आरम्भ होने पर आठ अभियुक्तों पर गम्भीर दोषारोपण करके अभियोग पक्ष के प्रमुख वकील दफ्तरी ने सावरकर को उन सबका गुरु घोषित करते हुए उनको एक विशिष्ट विचार धारा का पोषक और उसी विचारधारा की एक संस्था का बहुत समय तक अध्यक्ष तथा अहिंसा के सिद्धान्त पर किंचित भी विश्वास न करने वाला एवं मुसलमानों का कट्टर शत्रु बताया। और कहा कि इसके प्रभूत प्रमाण हैं कि इस कृत्य का न केवल सावरकर को ज्ञान था अपितु बिना उनकी अनुमति के यह कार्य हो ही नहीं सकता था।

अभियोग पक्ष ने अपने समर्थन में १४९ गवाह प्रस्तुत किए। अन्त में

८ ११-४८ को नथूराम गोडसे ने अपना वक्तव्य प्रस्तुत किया और उसमे उसने स्पष्टतया स्वीकार किया कि उसने पाकिस्तान के पिता गांधी पर अपने रिवाल्वर से तीन गोलियाँ चलाई। गोडसे और आप्टे दोनों ने ही बार-बार अपने वक्तव्यो मे बताया कि उनके इस कृत्य से सावरकर का लेशमात्र भी सम्बन्ध नही रहा। गोडसे का वक्तव्य ९२ पृष्ठ का था, जो दूसरे दिन ही प्रतिबन्धित कर दिया गया था।

२० ११-१९४८ को सावरकर ने अपना ५२ पृष्ठ का वक्तव्य पढा। जिसमे उन्होने कहा कि उनको जानबूझ कर मिथ्या अभियोग म फसाया गया है। "एक पुलिस गवाह बडगे के कहने पर कि 'जाओ, विजयी बन कर लौटो' मैंने कहा था, के अतिरिक्त पुलिस के पास अन्य कोई प्रमाण नही है।" और बडगे की गवाही कितनी विश्वसनीय हो सकती है इस विषय पर सावरकर ने विस्तार से अपना बचाव प्रस्तुत किया। उन्होने यह तो स्वीकार किया कि गांधी के साथ उनकी विचार समानता नही रही। किन्तु इसके साथ ही उन्होने १९०८ से आरम्भ कर अब तक की गांधी के साथ हुई भेंट वार्तायें, पत्र व्यवहार और कस्तूरबा के निधन पर शोक सन्देश आदि का उल्लेख करते हुए गांधी और नेहरू को समय-समय पर गलत रीति से बन्दी बनाए जाने के तथा जिन्ना पर किए गए घातक आक्रमण के विरोध मे दिए गए अपने वक्तव्यो का उल्लेख करते हुए कहा कि 'भारत विभाजन का दुख हम लोगो को सालता रहा है। किन्तु मुझे प्रसन्नता है कि मैं अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए कार्यरत रहा और मुझे इस बात की भी प्रसन्नता है कि उसे स्वतन्त्र देखने के लिए मैं जीवित रहा।'

उस दिन की कार्यवाही का विवरण देते हुए समाचार पत्रो ने लिखा कि उस समय न्यायालय म उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति सावरकर के विचारो के साथ स्वय भी प्रवहमान दिखाई देता था। समस्त न्यायालय म रात्रि की सी गहन निस्तब्धता छाई हुई थी।

यह उल्लेखनीय है कि गांधी भक्त मोरारजी देसाई ने भी इस अभियोग म गवाही दी थी, जिसे सावरकर जी ने 'कही-सुनी बातों पर आधारित' बता कर उसकी खिल्ली उडा दी थी। सावरकर ने यह भी कहा कि उनके घर से जिन १०,००० पत्रो को सरकार उठा कर लाई है क्या किसी एक म भी इस प्रकार की कोई बात पाई गई है? अन्त म सावरकर ने अपने ससम्मान रिहा किए जाने का अनुरोध करते हुए अपना वक्तव्य पूर्ण किया।

सभी अभियुक्तो से पूछा गया कि क्या वे अपने पक्ष मे कोई गवाही प्रस्तुत करना चाहेंगे? सभी अभियुक्तों ने गवाही प्रस्तुत करने तथा अपने वक्तव्यो के समर्थन म कुछ और प्रस्तुत करने से इनकार कर दिया।

रिहाई

इन वक्तव्यों के उपरान्त १ दिसम्बर से ३० दिसम्बर तक न्यायाधीश न

वकीलों के तर्क सुने। और अन्त मे सात मास म ८४ दिनों की सुनवाई के बाद १० फरवरी १९४९ को न्यायमूर्ति आत्माचरण ने अपना ऐतिहासिक निर्णय सुना दिया।

११ बजे अपने आसन पर आसीन होते ही न्यायमूर्ति आत्माचरण ने सर्व प्रथम सावरकर पर ही अपना निर्णय सुनाते हुए कहा, "सावरकर सहित सभी आठ अभियुक्तों के वक्तव्यों पर विचार करते हुए, तथा सरकारी गवाह बडग की गवाही का निरीक्षण करने पर, यही निष्कर्ष निष्पन्न होता है कि २० १ १९४८ से ३० १ १९४८ तक दिल्ली म क्या होता रहा है, इसका सावरकर से कोई सम्बन्ध नही था। इस लिए उन पर जो अभियोग लगाया है उसम वे किसी प्रकार भी दोषी नही पाये जाते। अत उनको यदि किसी अन्य अभियोग म लिप्त न करना हो तो उन्ह तुरन्त मुक्त कर दिया जाय।"

नथूराम गोडसे और आप्टे को मृत्यु दण्ड तथा करकरे, पाहवा, गोपाल गोडसे किस्तया एव परचुरे को आजीवन कारावास का दण्ड घोषित किया गया। ज्यो ही न्यायमूर्ति अपने आसन से उठे सभी अभियुक्त सावरकर के चरणो म झुक गये। नमन के साथ ही उन्होंने 'अखण्ड भारत अमर रहे हिन्दू हिन्दी हिन्दुस्तान—कभी न होगा पाकिस्तान' के नारे लगाए।

सावरकर की रिहाई का समाचार जगल की आग की भाति सारे देश मे तुरन्त फैल गया और चारो ओर से बधाई के सन्देश आने लगे। हिन्दू महासभा की ओर से लाल किले से उनकी शोभा यात्रा निकालने का प्रबन्ध किया जाने लगा। किन्तु सावरकर जिन महापुरुषों (?) की आख की किरकिरी बने हुए थे और जो इस समय केन्द्रीय सरकार के सर्वेसर्वा थे, व यह सब किस प्रकार सहन कर सकते थे। अत उनकी इच्छा के अनुरूप दिल्ली के मजिस्ट्रेट ने सावरकर के लाल किला से बाहर जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

न केवल इतना उसके कुछ ही घन्टो बाद पजाब पब्लिक सिक्योरिटी मेजर्स एक्ट उन पर लागू करके तीन मास तक दिल्ली म उनके प्रवेश और निवास पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

पुलिस ने सावरकर को अपनी गाडी म बैठाया और रेलगाडी से बम्बई भेज दिया गया। १२ फरवरी को प्रात काल साढे दस बजे वे बम्बई पहुँच गये। यद्यपि उनके प्रस्थान को नितान्त गुप्त रखा गया था अत किसी को इसकी कानो कान सूचना तक नही थी। फिर भी सकडो लोगो न बम्बई स्टेशन पर सावरकर का स्वागत और अभिनन्दन किया। दिल्ली का पुलिस अधिकारी उनके साथ था, उसने बाहर मोटर कार मे उनको बैठाया और उन्हें 'सावरकर सदन' पहुँचा दिया।

सावरकर के ससम्मान मुक्त होने पर अ०भा० हिन्दू महासभा के अध्यक्ष तथा सावरकर के वकील श्री भोपतकर ने बम्बई के गृहमन्त्री को लिखा कि सावरकर को गांधी वध अभियोग मे जानबूझ कर फसाए जान की सरकारी जाँच का जानी चाहिए।

सावरकर को जब इस बात का ज्ञान हुआ तो उन्होंने भोपतकर को लिखा कि बिना उनकी स्वीकृति के इस प्रकार की प्रार्थना करना उपयुक्त नहीं था। वे चाहते हैं कि यह प्रकरण अब यहीं पर समाप्त कर दिया जाना चाहिए। यही उनके हित में होगा और सार्वजनिक हित में भी यही उचित होगा। जो होना था हो चुका है, अब उस पर अधिक विवाद उठाना ठीक नहीं। इसी प्रकार एक पत्र उन्होंने बम्बई के गृहमन्त्री मोरारजी देसाई को भी लिख दिया कि भोपतकर द्वारा दिया गया प्रार्थना पत्र निरस्त कर दिया जाय, उस पर आगे कोई कार्यवाही न की जाय।

बम्बई पहुँचने पर सावरकर ने उन सब लोगों को धन्यवाद के पत्र लिखने आरम्भ किए जिन्होंने इस संकट की घड़ी में उनका साथ दिया था। अपने एक अन्य प्रमुख वकील श्री पी०आर० दास को भी जब इसी प्रकार का पत्र लिखा तो उसके उत्तर में श्री दास ने लिखा कि "न्यायमूर्ति को केवल आपको कारामुक्त कर देना ही मेरे तर्कों का उद्देश्य नहीं था। मैं तो न्यायमूर्ति के मुख से यह सुनने के लिये ही अपने तर्क प्रस्तुत कर रहा था कि 'आपके चरित्र में कहीं कोई दोष नहीं है।' उसने वही किया, इसकी मुझे प्रसन्नता है।"

बम्बई में कुछ दिन रहने के उपरान्त वे विश्राम करने के लिए बंगलौर चले गए।

१० मई १९४९ को सावरकर की आत्मकथा 'माझ्या अठावणी' का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ। इसमें भगूर से नासिक तक की जीवन गाथा का वर्णन है। मई के अन्त में जब संविधान सभा ने पृथक मताधिकार समाप्त किया तो सावरकर ने सरदार पटेल को इसके लिये बधाई संदेश भेजा। जुलाई के मध्य में जब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर से प्रतिबंध हटा तो उन्होंने सरसंघचालक श्री मा०स० गोलवलकर को बधाई संदेश भेजकर संघ की प्रगति की कामना की।

५ अगस्त १९४९ को सावरकर ने संविधान सभा के अध्यक्ष को एक तार भेजकर आग्रह किया कि देश का नाम 'भारत' रखा जाय।

छोटा भाई दिवंगत

उसी वर्ष सावरकर को एक अन्य आघात लगा। उनके छोटे भाई को अक्टूबर में पक्षाघात हो गया और एक पखवाड़े तक मूर्छित रहने के उपरान्त १९ अक्टूबर को उनका ६१ वर्ष की आयु में देहान्त हो गया। छोटे भाई नारायण सावरकर को कांग्रेसी गुण्डों ने गांधी वध के अवसर पर घायल कर दिया था तब से वे पूरी तरह स्वस्थ नहीं हो पाये थे और अन्त में उसी आघात से उनका देहान्त हुआ।

दिसम्बर १९४९ में कलकत्ता में हिन्दू महासभा का अधिवेशन होने वाला था। गांधी वध के बाद हिन्दू महासभा का कार्य लगभग स्थगित हो गया था। सभा के अधिकारी सभा के विधान और ध्वज में परिवर्तन करने का विचार करने लगे

थे तब सावरकर ने उनको इसके लिये सावधान किया था। परिणाम स्वरूप न ध्वज बदला गया और न ही संविधान। कलकत्ता अधिवेशन म सावरकर का विशाल जलूस निकाला गया। यद्यपि इस अवसर पर सावरकर अस्वस्थ थे तदपि अपन मित्रा के आग्रह का उन्होंने सम्मान किया और कलकत्ता गए। इसी अधिवेशन म सावरकर ने 'राजनीति के हिन्दूकरण और हिन्दुओं के सैनिकीकरण' की आवश्यकता पर बल दिया।

डाक्टर मुखर्जी उस समय हिन्दू महासभा के प्रतिनिधि के रूप म केन्द्रीय मन्त्री मण्डल म औद्योगिक मन्त्रालय के अध्यक्ष थे। किन्तु नेहरू लियाकत पैक्ट के विरोध म उन्होंने मन्त्रीमण्डल से त्यागपत्र दे दिया और २८ अप्रैल १९५१ को जन सघ के संस्थापक अध्यक्ष बन गए।

२६ जनवरी १९५० को भारत को गणराज्य घोषित कर दिया गया। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद इसके प्रथम राष्ट्रपति बनाए गए। सावरकर ने राष्ट्रपति को बधाई सन्देश देने के साथ साथ देशवासियो से अपील की कि वे इस अवसर पर उत्सव मनाए।

माघ १९५० मे पूर्वी बगाल म मुसलमानों ने हिन्दुओ का नरसहार करना आरम्भ कर दिया। ढाका, नारायणगज नोआखाली आदि अनक नगर आग की लपटो मे धू धू करने लगे। उस समय सावरकर को बडी ठेस लगी और उसी दुःख मे उन्होंने अपना वक्तव्य देते हुए कहा, "पाकिस्तान सदा सदा क लिए भारत के लिए सिर दर्द बन गया है। पाकिस्तान भारत की शान्ति और सुरक्षा के लिए घातक सिद्ध होगा।'

उन्ही दिनों रोहतक म हिन्दू सम्मेलन आयोजित किया गया था। सावरकर उस सम्मेलन मे भाग लेने के लिये दिल्ली पहुँचे। उन्ही दिनो नेहरू ने पूर्वी बगाल की समस्या के हल के लिए वार्तालाप करने के उद्देश्य से पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री लियाकत अली खाँ को दिल्ली बुलवाया था। इससे कुछ ही दिन पूर्व लियाकत अली ने पाकिस्तान की पार्लियामेंट म हिन्दू महासभा और वीर सावरकर के पूर्वी बगाल सम्बन्धी वक्तव्यो की निन्दा की थी। इतना ही नहीं सरदार पटेल ने उन दिनों कलकत्ता मे जो भाषण दिया था उस पर भी लियाकत अली न रोष व्यक्त किया था।

नेहरू तो आरम्भ से ही मुसलमानो का क्रीत दास था। उसने लियाकत अली को प्रसन्न करने के लिए सावरकर सहित अनेक हिन्दू महासभा के नेताओं के बन्दी बनाए जाने के आदेश दे दिए। तब तक सावरकर बम्बई पहुँच गए थ। उन्हे ४ अप्रल १९५० को बम्बई मे बन्दी बना लिया गया।

सावरकर को बन्दी बनाए जाने के आधार म सरकार ने कहा कि व बम्बई मे अपन भाषणा मे हिन्दुओ को मुसलमानो के विपरीत भडकाने का काय कर रहे थे। जबकि उनके साथी अन्य बन्दियो पर यह आरोप लगाया था कि वे लोग केन्द्रीय मन्त्रियों की हत्या का षडयन्त्र कर रहे थे। जब कि तथ्य यह था कि गाँधी वध काण्ड से मुक्ति के बाद सावरकर ने बम्बई में तब तक कोई भाषण दिया ही नहीं

था। सावरकर का स्वास्थ्य इतना गिर गया था कि वे कारागार का जीवन सहन करने मे सर्वथा असमर्थ थे। सावरकर ने जमानत पर छोडने की प्रार्थना की। २८ मई को सर्वत्र भारत म सावरकर का जन्मदिन मनाया गया और उसमे भी उनकी मुक्ति के प्रस्ताव पारित कर सरकार को भेजे गए। अन्त म हाई कोर्ट म याचिका देने पर जुलाई मे सावरकर का सशर्त रिहा किया गया। तब तक नेहरू का प्रिय लियाकत अली भारत मे अपनी मनोकामना पूर्ण कर पाकिस्तान वापस जा चुका था।

१५ अगस्त निकट आने पर सावरकर ने सरकार से पूछा कि क्या उनका अपने भवन पर झडा फहराना राजनीतिक कार्य माना जायेगा ? सरकार ने उन्ह सुझाव दिया कि वे झण्डा तो फहरा सकते हैं, किन्तु उस अवसर पर किसी प्रकार का कोई भाषण आदि नही दे सकते।

तदनन्तर सावरकर ने अछूतोद्धार को अपना लक्ष्य बनाया। जब सविधान सभा ने अछूतोद्धार के लिए धारा १७ पारित की तो सावरकर न एक वक्तव्य मे कहा कि जिस प्रकार अशोक स्तम्भो पर उसके आदेश उल्लिखित हैं, उसी प्रकार सविधान की इस धारा के भी शिलालेख स्थान स्थान पर लगवा देने चाहिए।

समय बीतता गया किन्तु सावरकर पर से प्रतिबन्ध उठाना सरकार के लिए कठिन होता जा रहा था। भारत गणराज्य घोषित होने के उपरान्त सन् १९५२ के निर्वाचन सन्निकट दिखाई देने पर सरकार नही चाहती थी कि सावरकर राजनीतिक मच पर विद्यमान रह। अत उनकी अपीलों को निरस्त किया जाता रहा। किन्तु अन्त म सरकार को जुलाई १९५१ मे सावरकर पर स सारे प्रतिबन्ध उठाने ही पड़े।

गणराज्य भारत

सन् १९५२ के आरम्भ म स्वतन्त्र भारत म गणतन्त्र के आधार पर प्रथम निर्वाचन सम्पन्न हुए। हिन्दु महासभा न यद्यपि उसम भाग लिया किन्तु सावरकर के अन्यमनस्क तथा अस्वस्थ रहने के कारण उसे मुह की खानी पड़ी। विपरीत इसके सावरकर सदा यही उपदेश देते रहे कि सैनिक साज-सज्जा से सन्नद्ध एक ऐसा दल भारत मे होना चाहिए जो कि भारत क हितो की रक्षा म तत्पर रहे। सन् ५२ के निर्वाचनो म जनसघ और हिन्दू महासभा को ३ ३ स्थान प्राप्त हुए। यद्यपि कांग्रेस को सारे भारत के पचास प्रतिशत से भी कम मत प्राप्त हुए तदपि उसने ४८९ स्थानों पर विजय प्राप्त की। वामपंथियों म सोशलिस्टो को १२ और कम्युनिस्टो को १६ स्थान प्राप्त हुए। राज्य विधान सभाओ म हिन्दू दलो की स्थिति इससे भी निम्न स्तर की रही।

इस सब विवरण का सावरकर के जीवन से भले ही कोई सम्बन्ध न हो किन्तु हिन्दू जीवन दर्शन, जिसके कि सावरकर पोषक रहे, उसको सदा से आघात लगता रहा है। यह बात विचार करने की है। इसी उद्देश्य से यहाँ पर इसका

उल्लेख आवश्यक समझा गया। इतना ही नही जो सावरकर सदा अछूतों के पक्ष म बोलते रहे, उनके साथ बैठ कर खाते रहे और उनके मन्दिर प्रवेश का आन्दोलन करते रहे तथा भीमराव अम्बेदकर को सदा प्रोत्साहित करते रहे, उसी सावरकर ने इन निर्वाचनों म भीमराव अम्बेदकर के विरुद्ध खडे कांग्रेस प्रत्याशी एन०एस० किजरोलकर के पक्ष मे मतदान किया था।

मांसाहार का पोषण

भारत मे उस समय खाद्य समस्या विकराल रूप धारण कर रही थी। यहा तक कि लोगो ने यह कहना आरम्भ कर दिया था कि इससे तो अग्रेज ही भले थे, कम से कम उनके राज मे भूखों तो नही मरे थे। उस समय सावरकर ने कहा कि लोगो को इस प्रकार के विचार व्यक्त करना उचित नही है उन्हे स्वय भी इसका समाधान ढूढना चाहिए। ऐसे अवसर पर उन्होने जो वक्तव्य दिया वह भी विचारणीय है—

"यदि समस्त हिन्दू समाज जिसमे ब्राह्मण, बौद्ध, जैन लिंगायत, वैष्णव, वरकारिस आदि सभी रूढिवादी हिन्दू अपने खान पान की आदतें बदलें और वे मासाहार आरम्भ कर दें तो इसस करोडो लोगो की खाद्य समस्या सुलझ जाएगी।

"मनुष्य क्या खाये और क्या पिये यह धर्म का विषय नही है। धर्म को इसम कोई दखलन्दाजी नही करनी चाहिए। मनुष्य को चाहिए कि इस सम्बन्ध म वह आयुर्विज्ञान के सिद्धान्तो का पालन करे। जो कोई भी खाद्य सामग्री मनुष्य को स्वस्थ रख सके पाचन क्रिया को ठीक रख सके, उसका यदि मनुष्य पसन्द करता है तो उस खाने म कोई बाधा नही होनी चाहिए। उसको यह विचार नही करना चाहिए कि धर्मशास्त्र इस विषय म क्या कहता है।"

जब टिड्डी दलो ने भारत के खाद्यान्नो का सफाया कर दिया तो सावरकर ने सुझाव दिया कि भारतवासी अपनी क्षुधा शान्ति के लिए मछली और मुर्गी पालन आरम्भ करें और मछली तथा अण्डो के माध्यम से अपनी खाद्य समस्या का समाधान ढूढें। उन्होने कहा कि शास्त्रो का क्या है कोई शास्त्र मासाहार के पक्ष म लिखता है तो कोई शास्त्र इसका घोर विरोध करता है।

सावरकर के इस सुझाव पर कितने लोगो ने ध्यान दिया होगा स्वय हिन्दू सभा के सदस्यो ने कितना इसका पालन किया होगा यह गणना करने का विषय भले ही बन जाय, किन्तु इतना निश्चित रूपेण कहा जा सकता है कि कुछ अस्थिरचित्त व्यक्तियो के अतिरिक्त इस दिशा म किसी स्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्ति ने विचार तक नही किया होगा। क्योंकि सभी समझदार व्यक्ति यह भला भाति जानते हैं कि मानव शरीर की रचना मांस भोजी के रूप मे नही हुई है। मनुष्य के लिए मांस को पचाना सहज सरल नहीं है। मांसाहार का तो राजसी भी नहीं अपितु तामसी भोजन माना गया है। तामसी भोजन की सिफारिश कोई भी बुद्धिशील प्राणी नहीं

कर सकता। हाँ, आपत्तिकाल का धर्म इससे भिन्न होता है।

परम्परावश अथवा किसी भी कारण से हो, कुछ प्रदेशों में मांसाहार का प्रचलन हो गया था। सम्भवतया यह चार्वाक का दर्शन था, जिस ओर मनुष्य प्रवृत्त हुआ था 'खाओ, पियो, मौज करो।' उस काल की यह दुष्प्रवृत्ति महाराष्ट्र आदि प्रांतों के ब्राह्मणों में भी समा गई थी और उन्होंने मांसाहार को अपनाया था। आज भी अनेक ऐसे चितपावन ब्राह्मण हैं, जो मांसाहार करते हैं। सावरकर भी उन्हीं चितपावन ब्राह्मणों के वंशज थे। बंगाल में सभी वर्ण और वर्ग के प्राणी मत्स्याहार करते हैं। वहाँ सामान्य घरों में भी मत्स्यपालन बहुत पहले से किया जाता रहा है। यह प्रचलन भी चार्वाक कालीन है। काली को बलि चढ़ाना भी इसी निमित्त आरम्भ किया गया होगा। जिससे कि बलि के मांस को प्रसाद के रूप में ग्रहण कर मांसाहार का औचित्य सिद्ध किया जा सके।

सरकार ने इस सूत्र को अवश्य पकड़ा और धीरे-धीरे सरकार की ओर से मुर्गी और मत्स्य पालन केन्द्र संचालित होने लगे। इसे हम सावरकर की उपलब्धि भले ही कह दें, किन्तु ग्राह्य नहीं कह सकते।

'अभिनव भारत' का समापन

बलिदानियों का स्मृति दिवस मनाने के लिए सावरकर की प्रेरणा से 'शहीद स्मृति समिति' का गठन किया गया और पूना में १० से १२ मई १९५२ को शहीदों को राष्ट्रीय श्रद्धांजलि समर्पित करने का आयोजन किया गया। १८५७ से १९४७ तक जितने भी बलिदानी थे उन सबको श्रद्धांजलि अर्पित करने का कार्यक्रम आयोजित किया गया। उसी अवसर पर नासिक में १८९९ में सावरकर द्वारा स्थापित गुप्त क्रान्तिकारी संस्था अभिनव भारत का समापन समारोह भी सम्पन्न करने का निश्चय किया।

देश भर से हजारों लोग इस समारोह में भाग लेने के लिए उपस्थित हुए। इसी प्रकार शताधिक क्रान्तिकारियों ने भी इस समारोह को शोभान्वित किया। इस अवसर पर सावरकर ने अपने भाषण में कहा 'स्वतन्त्रता प्राप्त हुई, यह कहना सर्वथा गलत है। अपितु स्वतन्त्रता ली गई है यह कहना उपयुक्त होगा।' सावरकर इस अवसर पर अत्यन्त भावुक हो गए थे और बोलते हुए उनका गला अवरुद्ध होने लगा था। उसी अवरुद्ध गले से उन्होंने भारत विभाजन की स्मृति में कहा—'हे सिन्धु! मुक्त करेंगी तुझे महाराष्ट्र की रक्त बिन्दु।'

इसी समारोह में 'अभिनव भारत' का समापन किया गया। इससे कांग्रेस क्षेत्र में बड़ी प्रसन्नता व्यक्त की गई। यह कांग्रेस संचालित एवं कांग्रेस समर्थक तथा कांग्रेस समर्पित पत्रों में प्रकाशित विवरण से स्पष्ट परिलक्षित होता था। किन्तु सावरकर ने जब कहा कि हमारा देश सैन्य दृष्टि से असावधान है तो इन्हीं पत्रों में उसकी खूब आलोचना भी हुई।

जन संघ के अध्यक्ष डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी जब २६ अगस्त १९५२ को सावरकर से भेंट करने गए तो उस अवसर पर सावरकर ने उनसे कहा कि यदि 'जन संघ' ने मुसलमानों की तुष्टीकरण की नीति अपनाई तो यह न केवल जन संघ के लिए अपितु देश के लिए भी घातक सिद्ध होगी। क्योंकि मुसलमान कभी मनसा, वाचा, कर्मणा, पूर्ण रूप से भारतीय बनेंगे ही नहीं।

उसी वर्ष नवम्बर ३० में सावरकर ने 'भारतीय इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ' पर व्याख्यान माला आरम्भ कर दी थी। उनका प्रथम व्याख्यान चित्रगुप्त पर, दूसरा पुष्यमित्र पर, तीसरा विक्रमादित्य पर, चौथा यशोधर्मन पर हुआ।

१९५३ के वर्ष में उन्होंने शहीद स्मारक के लिए धन एकत्रित करने के लिए व्याख्यानमाला आरम्भ की।

सावरकर ने अनेक प्रचलित अंग्रेजी नामों और संज्ञाओं को हिन्दी नाम दिए। यथा मेयर को महापौर, बजट को अर्थ संकल्प, टेलीविजन को दूरदर्शन, इसी प्रकार रेलवे, अण्डरग्राउण्ड, थ्री डायमेन्शन, हाईस्कूल आदि के लिए हिन्दी शब्दों का प्रयोग बताया।

१० मई १९५३ को उन्होंने नासिक में शहीद स्मारक का उद्घाटन किया। उन दिनों में नासिक में अनेक स्थानों पर अनेक अवसरों पर, सावरकर के सार्वजनिक भाषण का आयोजन किया गया। इस अवसर पर आयोजित संवाददाता सम्मेलन में पत्रकारों ने विभिन्न प्रकार के प्रश्नों में एक प्रश्न यह भी पूछा कि उनके इस दीर्घ जीवन की कुंजी क्या है? सावरकर ने कहा कि एक तो जेल जीवन और दूसरे समय समय पर देश भ्रमण के कारण वे अपने खान-पान पर ठीक से ध्यान नहीं दे पाए, जहां और जिस समय, जो मिला वह खाया इस कारण उनका स्वास्थ्य निरन्तर गिरता जा रहा है, तदपि उनकी जिजीविषा ही इसकी मुख्य कुंजी हो सकती है। मनुष्य की आत्म शक्ति मनुष्य से बहुत कुछ कराने में समर्थ होती है।

सावरकर अपने जन्म ग्राम भगूर में गए। वहां अपने इष्ट देवता के दर्शन कर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। उस अवसर पर सावरकर के स्वागत में आयोजित भाषण में सावरकर ने कहा कि वे अब अपने जीवन के आठवें दशक को पूर्ण कर रहे हैं, कदाचित यह उनका अन्तिम आगमन हो अतः "मैं आज विशेषतया आप लोगों से विदा लेने के लिए यहां आया हूं।" उनके इन शब्दों ने लोगों को अभिभूत कर दिया था। उसके बाद वे शोषित श्रेणी के जनों की बस्ती में भी गए और उनको कहा कि अपने जीवन में उनके लिए वे जो कुछ कर सकते थे वह करने का उन्होंने यत्न किया। उन्होंने दलितों को सावधान करते हुए कहा कि वे हिन्दुत्व से चिपके रहें, यदि उन्होंने किसी अन्य समुदाय में पग रखा तो फिर वे न इधर के रहेंगे और न उधर के। वहां भी उनकी दशा नहीं सुधरेगी। ईसाई और मुसलमानों की ओर से किया जाने वाला धर्मान्तरण का खेल राजनीति का एक खेल है, इससे अधिक कुछ नहीं। वे इससे राजनीतिक लाभ तो उठा लेंगे किन्तु आप लोगों को किसी प्रकार का लाभ पहुंचायेंगे

इसमे सन्देह है । अत उनके लिए उचित यही है कि वे अपने धर्म मे बने रहे ।

मुखर्जी की हत्या ?

सन् १९५३ मे देश की स्थिति बडी विचित्र थी । जिस खाद्य समस्या का उल्लेख हम पिछले परिच्छेद मे करके आये हैं वह अभी बरकरार थी, कही कही तो अकाल की स्थिति तक आ गई थी । मई मे सावरकर का जन्म दिन पडता था यह सावरकर का ७१ वाँ जन्म दिन था । किन्तु सावरकर न अपने प्रशसको को सूचित कर दिया कि इस स्थिति मे जन्म दिन मनाना उचित नही है । इस अवसर पर बिहार के एक बहुत बडे जमीदार ने सावरकर को एक हजार एकड भूमि क्षेत्र दान म देना चाहा तो सावरकर न उसे अस्वीकार करते हुए लिखा कि यदि आप उस भूमि का दान करना ही चाहते हैं तो श्रद्धानन्द महिला आश्रम बम्बई की भाँति वहाँ किसी आश्रम की स्थापना कर दें । और भूमि की आय से उस आश्रम की व्यवस्था करें ।

कश्मीर की स्थिति बडी भयकर होती जा रही थी । कश्मीर के भारत म विलय को लेकर जन सघ के अध्यक्ष डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने आन्दोलन आरम्भ किया हुआ था । कश्मीर म निर्बाध प्रवेश के लिए चलाये गए उनके आन्दोलन के आधार पर वे अपने दो साथियो, दिल्ली जनसघ के अध्यक्ष वैद्य श्री गुरुदत्त और अपने तत्कालीन निजी सचिव श्री टेकचन्द शर्मा के साथ काश्मीर म प्रवेश करना चाहा तो कश्मीर सरकार न उन्हें जम्मू म ही बन्दी बना लिया ।

उन दिनो शेख अब्दुल्ला कश्मीर का बेताज बादशाह बना हुआ था । किन्तु ऐसा माना जाता है कि डाक्टर मुखर्जी से सम्बन्धित मामलो मे केन्द्र के सकेत पर उसको नर्तन करना पडता था । डाक्टर मुखर्जी के व्यक्तित्व के सम्मुख नेहरू का व्यक्तित्व फीका पडता जा रहा था । नेहरू को अवसर मिल गया और उसने अब्दुल्ला के माध्यम से अपनी चाल चली । डॉ० मुखर्जी हृदय रोगी थे, यह बात अब्दुल्ला और नेहरू दोनो को ही ज्ञात थी किन्तु कश्मीर म उनके साथ जो व्यवहार किया गया उससे २३ जून १९५३ को सन्देहास्पद स्थिति म उनका देहान्त हो गया । देहान्त के समय न वैद्यजी उनके पास रखे गए और न टेकचन्द शर्मा ही । इस प्रकार 'एक प्रधान, एक विधान, एक निशान' आन्दोलन के समयक डाक्टर मुखर्जी का अस्तित्व समाप्त करने मे नेहरू-अब्दुल्ला षड्यन्त्र सफल हो गया ।

सावरकर को इसस आघात लगा । उन्होने अपने अनुयायियो को कहा कि हमे यह नारा अपना कर उसकी सफलता के लिये प्रयत्न करना चाहिये । अपनी सवेदना मे उन्होंने कहा था, 'मेरे लिए यह मात्र राष्ट्रीय क्षति नही अपितु इससे मेरी निजी क्षति भी हुई है ।'

डॉ० मुखर्जी के निधन पर सारे भारत वर्ष म एक प्रकार का आन्दोलन सा उठ खडा हुआ और जिन परिस्थितियो म उनका निधन हुआ उसकी जाँच की माँग जोर पकडने लगी । किन्तु जवाहरलाल नेहरू की सरकार के कानो तक राष्ट्र की

पुकार पहुँची ही नही अथवा यो कहा जाय कि उसने सुनी ही नहीं। सन्देहास्पद स्थिति म डाक्टर मुखर्जी का निधन सदा सदा के लिए नेहरू सरकार के लिए लज्जा का कारण माना जाता रहेगा।

किन्तु यह भी विचित्र घटना ही थी कि जिस अब्दुल्ला का नेहरू आरम्भ से ही समर्थन ही नही सहायता भी करता आ रहा था, जिसके कारण उसने कश्मीर के महाराज से अघोषित युद्ध तक ठान लिया था, उसी देशद्रोही, विध्वंसक अब्दुल्ला को नेहरू के प्रधानमन्त्रित्व काल मे ही बन्दी बनना पडा था। ९ अगस्त १९५३ को भारत सरकार ने अब्दुल्ला को बन्दी बना लिया।

ईसाई वर्चस्व

अकाल का लाभ यदि उस समय कोई अर्जित कर रहा था तो वह था भारत का ईसाई समुदाय। भारत मे कार्यरत ईसाई मिशनरी इस अवसर का लाभ उठाकर अपने धन बल से निर्धन हिन्दुओ को अन्न और औषधि आदि की सुविधा देकर लोभ-लालच म फसाकर उन्हें धर्मान्तरित करने मे लगे थे। सावरकर बार बार इस तथ्य को दोहराते रहते थे कि 'धर्मान्तरण का अभिप्राय है राष्ट्रान्तरण' यह तथ्य भारत के सम्मुख स्पष्ट था। सभी जानते हैं कि भारत के अधिकाश मुसलमान भारत मूल के ही थे। उनके पूर्व पुरुष इसी प्रकार के लाभ लालच म फसकर मुसलमान बन गए थे। उन्ही मुसलमानो ने १००-२०० वर्ष बाद पाकिस्तान की माँग उपस्थित कर दी थी। यही स्थिति ईसाई भी करेंगे, इस विषय मे सावरकर अपने राष्ट्रवासियो को समय समय पर बताते रहते थे। आसाम के नागाओ ने स्वतन्त्र नागालैड की माँग रखनी आरम्भ कर दी थी और जब नेहरू ने उसको अस्वीकार कर दिया तो उन्ही नागाओ ने आसाम म नेहरू की सार्वजनिक सभायें होने ही नही दी।

इस प्रकरण म एक और घटना उल्लेखनीय है। कार्डिनल ग्रेसियस को बम्बई का आर्चबिशप नियुक्त किये जाने पर जब वह बम्बई आया तो बम्बई के गवर्नर और काग्रेसी नेता उसका स्वागत करने के लिए गए। उस अवसर पर सावरकर ने कहा था। क्या इस प्रकार किसी गवर्नर और काग्रेसी नेता ने कभी किसी जगद्गुरु शकराचार्य का भी स्वागत किया था? काग्रेस सरकार ने जिस ग्रेसियस का स्वागत किया था—अपने भारत दौरे के अवसर पर उसी ने नेहरू और काटजू की ईसाई मिशनरियो के प्रति सम्मान न दिखाने के लिए आलोचना की। सरदार पटेल के देहान्त के बाद उन दिनो काटजू भारत के गृहमन्त्री थे, नेहरू तो आजीवन प्रधानमन्त्री था ही। किन्तु दूसरे दिन ही पूना के हिन्दू सगठनकारियो ने पूना से ईसाई मिशनरियो को खदेड कर भगा दिया। सावरकर ने उनकी प्रशसा करते हुए कहा था, हिन्दुओ ने जैसे को तैसा का पाठ पढाकर उचित ही किया।' सावरकर ने उस अवसर पर हिन्दुओ से कहा कि वे ईसाई पब्लिक स्कूलो और अस्पतालो का भी बहिष्कार करें, क्योकि यही दो मुख्य स्थल हैं जहाँ मिशनरी ईसाइयत के बीज बोया करते हैं।

जब आन्दोलन ने जोर पकड़ा तो मध्य प्रदेश सरकार ने श्री नियोगी के नेतृत्व में क्रिश्चियन मिशनरी ऐक्टिविटी इन्क्वायरी कमेटी का गठन कर दिया। इस कमेटी ने अपने प्रतिवेदन में ईसाई मिशनरियों का कच्चा चिट्ठा खोल कर रख दिया।

सन् १९५० में चीन ने तिब्बत पर आक्रमण करके उसको अपने अधिकार में कर लिया था। उस समय भारत की संसद में बहुत कुछ कहा और सुना गया। किन्तु इस सम्बन्ध में कोई कुछ नहीं कर सका। उसका कारण था चीन और नेहरू, दोनों का ही रूस भक्त कम्युनिस्ट होना। इतना ही नहीं नेहरू ने 'हिन्दी चीनी भाई-भाई' के नारे को जन्म दिया और 'पंचशील' के सिद्धान्त को पुनर्जागृत करने का श्रेय अर्जित करने का यत्न किया। यद्यपि नेहरू के जीवन काल में ही चीन ने उसके पंचशील की शवयात्रा निकाल दी थी।

इस सबको भूलकर नेहरू ने २६ जून १९५४ को चीन के प्रधानमन्त्री चाऊ-एन लाई का दिल्ली में स्वागत किया। उस समय कई करारों पर हस्ताक्षर किए गए। उस समय सावरकर ने भारतवासियों को सावधान करते हुए कहा कि यह सब महाशक्तियों की भारत को दुर्बल करने की चालें हैं। क्योंकि वे चाहेंगे कि भारत तो पंचशील का पालन करता रहे किन्तु वे इसके लिए बाध्य न किए जाएं।

सन १९५५ में हिन्दू महासभा के जोधपुर अधिवेशन के समय सावरकर ने हिन्दू राष्ट्र को सम्बोधित करते हुए पुनः कहा था कि 'राजनीति का हिन्दूकरण और हिन्दू का सैनिकीकरण' करना ही समय की माँग है। जब तक ऐसा नहीं होगा तब तक भारत की स्वतन्त्रता सुरक्षित नहीं है। हिन्दू युवकों को चाहिए कि वे अधिकाधिक संख्या में सेना में प्रविष्ट होकर शस्त्र विद्या ग्रहण करें। जिससे कि आवश्यकता पड़ने पर वह विद्या राष्ट्र की सुरक्षा के काम आ सके।

उसी वर्ष 'गोआ मुक्ति आन्दोलन' आरम्भ हुआ तो समस्त देश से सत्याग्रही जत्थे गोआ की ओर प्रस्थान करने लगे। मेरठ का जत्था जब गोआ के लिए चला तो मार्ग में बम्बई रुककर सावरकर से आशीर्वाद लेने भी गया। जत्थे के नेता दैनिक प्रभात के सम्पादक स्व० विनोद थे। सावरकर ने उनसे कहा 'आप क्रान्तिभूमि मेरठ से गोआ को मुक्त कराने की अभिलाषा से इतनी दूर आये हो, यह आप लोगों की देशभक्ति का परिचायक है। किन्तु सशस्त्र पुर्तगाली दानवों के सम्मुख आप निरस्त्र मरने के लिए जायें, यह नीति मैंने न कभी पहले ठीक समझी और न ही अब ठीक समझता हूँ। आप लोगों के मन में महान बलिदान की भावना थी तो आप अपने हाथों में राइफलें लेकर क्यों नहीं आये? शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर जाओ और दुश्मन को मारकर मरो।

"गोआ की मुक्ति के लिए तो सरकार को चाहिए कि वह यह कार्य सेना को सौंप दे। सशस्त्र सैन्य कार्यवाही से ही गोआ मुक्त होगा। सत्याग्रह की अपेक्षा शस्त्राग्रह से ही सफलता मिलेगी।"

यही हुआ। इस आन्दोलन में अनेक वीर बलि चढ़े, अनेक घायल हुए। अनेक वीरों ने कारागार की यातना सही। किन्तु गोआ मुक्त नहीं हुआ। अन्त में सन् १९६१ में सरकार को गोआ पर सशस्त्र सैनिक कार्यवाही करनी पड़ी, तभी गोआ मुक्त हुआ। सावरकर ने इस विजयोत्सव पर अपने निवास स्थान पर ध्वज फहराया।

अक्टूबर १९५६ में जब डाक्टर भीमराव अम्बेदकर बौद्ध बने तो उस अवसर पर सावरकर ने कोई विशेष प्रतिक्रिया व्यक्त न करते हुए केवल यही कहा था कि बौद्ध बनकर अम्बेदकर ने यही सिद्ध किया है कि वे हिन्दू ही हैं। उन्होंने वैदिक धर्म को छोड़कर अवैदिक धर्म को स्वीकार तो किया है किन्तु बौद्ध धर्म भी हिन्दुत्व का ही एक अंग है। उसी वर्ष दिसम्बर में डा० अम्बेदकर की मृत्यु पर सावरकर ने कहा था कि भारत ने एक महान व्यक्ति खो दिया है।

क्रान्ति की शताब्दी

१९५७ में १८५७ के स्वातन्त्र्य समर की शताब्दी मनाई गई। सुरेन्द्रनाथ सेन और आर० सी० मजूमदार जैसे तथाकथित भारतीय इतिहासकारों की अपेक्षा ब्रिटिश समाचार पत्र—दि न्यु स्टेट्समन नेशन, द टाइम्स, द गार्जियन आदि ने इस अवसर पर विशेष लेख प्रकाशित किए और उनमें यह कहा गया कि तथाकथित इतिहासकारों की अपेक्षा सावरकर ने इस विषय पर जो कुछ लिखा है वही वास्तविक इतिहास है। सावरकर ने भारतीय दृष्टिकोण का स्पष्ट और सुन्दर शब्दों में चित्रण किया है।

इस समारोह के लिए दिल्ली में एक समिति का गठन किया गया। और सावरकर को उसमें मुख्य अतिथि के रूप में आमन्त्रित किया गया। समिति का एक शिष्ट मण्डल नेहरू से भेंट करके उनसे निवेदन करने गया कि सावरकर के मुख्य अतिथित्व में किए जाने वाले इस समारोह में वे भी सम्मिलित हों। उस अवसर पर नेहरू ने कहा—

"सावरकर बहुत ही वीर पुरुष हैं वे हीरो हैं वे महान हैं। जब मैं इंग्लैंड में विद्याध्ययन कर रहा था मैंने उनकी पुस्तक १८५७ पढ़ी थी। उससे मुझे प्रेरणा मिली थी। यह महान् पुस्तक है जिसने अनेक भारतीयों को प्रेरित किया है। किन्तु उसको इतिहास नहीं कहा जा सकता। अनेक समस्याओं पर हममें परस्पर मतभेद हैं और यह अच्छा नहीं होगा कि उनके सम्मुख मैं किसी दूसरे ही स्वर में बोलूं। सावरकर के प्रति मेरे मन में अत्यधिक आदर भावना है और मुझे उनसे मिलने में प्रसन्नता होती किन्तु एक ही मंच से विभिन्न भाषा में बोलना हम दोनों के लिए ही ठीक नहीं होगा।"

सावरकर अस्वस्थ होते हुए भी इस समारोह में सम्मिलित होने के लिए दिल्ली पधारे। उनका भव्य स्वागत किया गया और एक शोभायात्रा निकाली गई। उसमें सावरकर के साथ अन्य अनेक क्रांतिकारी राजा महेन्द्र प्रताप आशुतोष

लाहिरी, वी वी गोगटे, हार्डिग बम केस के लाला हृदयराम, लाला हनुमन्त सहाय और क्रान्तिवीर शहीद भगतसिंह की माता तथा सरदार अजीत सिंह की विधवा पत्नी उस रथ पर विराजमान थे। दिल्ली के प्रमुख नागरिक और अनेक ससद सदस्य इस समारोह मे उपस्थित थे। लाला हसराज गुप्ता इस समारोह के स्वागताध्यक्ष थे।

१२-५-१६५७ को रामलीला मदान म विशाल जनसभा क सम्बोधितो करते हुए सावरकर ने कहा, ' हमारे सम्मुख बुद्ध और युद्ध, इस प्रकार से दो आदश हैं, जिन मे से हमको एक को चुनना होगा। यह हमारी दूरदर्शिता पर निभर करता है कि हम बुद्ध की आत्मघाती नीति को अपनाते हैं अथवा कि युद्ध की विजयिनी वीर नीति को। शान्ति और अहिंसा की बात हम लोगो क लिए नई नही है, यह हमारी वदिक परम्परा मे आदि काल से निहित है। किन्तु केवल मन्त्रो से ही रक्षा सम्भव न होने के कारण भारत वासियो न शस्त्र के महत्व को समझा और उनको अपनाया।"

१० ५ ५७ का इसी स्थान पर अपनी क्षप मिटाने के लिए काग्रेस ने भी शान्तिदिवस मनाया था और इसम पण्डित नहरू मुख्य वक्ता थ। किन्तु १२ ता० वाले समारोह म उससे दुगुनी भीड थी। इस सभा के वक्ताओ ने स्पष्ट शब्दो म कहा था कि यह उनका परमसौभाग्य है कि आज उनको 'वीर' सावरकर को सुनने का सुअवसर प्राप्त हो रहा है।

सावरकर को यही प्रसन्नता थी कि कम स कम सरकार ने भी क्रान्तिवीरो को मान्यता देकर १८५७ की शताब्दी का आयोजन तो किया। अर्थात् काग्रेस सरकार ने क्रान्ति और क्रान्तिकारियो के महत्व को स्वीकार तो किया। गांधी उस समय जीवित होता तो काग्रेस सरकार इस दिवस को कदाचित ही मनाती। क्या होता, यह तब अथवा अब कहना कठिन है। किन्तु गांधी ने क्रान्तिकारियो की जिस प्रकार अवहेलना की थी, उससे यही निष्कर्ष निष्पन्न होना स्वाभाविक है।

उसी वर्ष नवम्बर म राजा महेन्द्र प्रताप ने ससद म एक बिल प्रस्तुत किया कि सावरकर सहित अन्य अनक जीवित क्रान्तिकारियो की राष्ट्र के प्रति की गई सेवाओं का मान्यता प्रदान की जाय। किन्तु केन्द्रीय मन्त्रियो ने इस पर सवधानिक आपत्ति उठाई तो तत्कालीन लोकसभाध्यक्ष सरदार हुकमसिंह ने उसे निरस्त करते हुए बिल प्रस्तुत करने की आज्ञा दी। अन्त म जब मतदान हुआ तो ७५ और ४८ के विभेद से उसे अस्वीकार कर दिया गया। यह देखकर सभी विपक्षी सदस्य बहिर्गमन कर गए। सरकार और काग्रेस की सर्वत्र भर्त्सना हुई।

काग्रेस अथवा नेहरु चाहें अथवा न चाह किन्तु देश की जनता चाहती थी, अत समस्त देश मे १८५७ की शताब्दी धूमधाम से मनाई गई। इसम प्रादेशिक सरकारो ने भी बढ चढकर भाग लिया। बम्बई मे महाराष्ट्र सरकार न भी १५ अगस्त के अवसर पर शहीद दिवस का आयोजन किया। यद्यपि सावरकर इस

समारोह में सम्मिलित नहीं हो पाए तदपि तत्कालीन महाराष्ट्र के मुख्य मंत्री यशवंतराव चह्वाण ने सावरकर की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए उनके प्रति सम्मान और आदर व्यक्त किया। यह माना जाता है कि अपने यौवनकाल में डांगे और एस० एम० जोशी की ही भाँति चह्वाण ने भी सावरकर से प्रेरणा प्राप्त की थी।

उन्हीं दिनों नाना साहब पेशवा की प्रतिमा की प्रस्थापना की उत्तर प्रदेश सरकार ने पेशवा की ओर जो प्रतिमा उन्होंने निश्चित की उस पर विवाद उत्पन्न हो गया कि यह नाना साहब पेशवा के व्यक्तित्व को उजागर नहीं करती। सावरकर को जब सारे तथ्य विदित हुए तो उन्होंने उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री डाक्टर सम्पूर्णानन्द को लिखा कि पेशवा की जो प्रतिमा उन्होंने चुनी है वह सर्वथा भ्रामक है। सावरकर ने उनको लिखा कि लन्दन के 'इलस्ट्रेटेड न्यूज' में नाना साहब के नाम से जो चित्र छपा था वह नाना साहब का न होकर भारतीय व्यापारी अयोध्या प्रसाद का था, जिसे उस व्यापारी के वकील की दुरभिसंधि से उसमें प्रकाशित कराया गया था।

इसके साथ ही सावरकर ने डाक्टर सम्पूर्णानन्द को नाना साहब का वास्तविक चित्र भेजा और सुझाव दिया कि इसके आधार पर प्रतिमा का निर्माण किया जाए। डाक्टर सम्पूर्णानन्द ने इसके लिए सावरकर का बहुत आभार माना और कृतज्ञता का पत्र भेजा।

१५ अगस्त के अपने रेडियो प्रसारण में डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने भी १८५७ की क्रांति का उल्लेख किया और उसे स्वतन्त्रता का युद्ध सिद्ध करने वालों की उन्होंने सराहना की।

पूना में स्मृति चिह्न

पूना वासियों ने निश्चय किया कि सावरकर के नाम पर पूना में एक सभागृह का निर्माण किया जाए। तुरन्त ही इस निश्चय को कार्यान्वित किया गया और एक सभागृह का निर्माण कर उसका नाम 'स्वातन्त्र्यवीर सावरकर सभागृह' रखा गया। फरवरी १६ १९५८ को सर सी०पी० रामास्वामी अय्यर ने उसका उद्घाटन किया। उसी दिन उन्होंने सावरकर की प्रतिमा का भी अनावरण किया। उस अवसर पर श्री अय्यर ने कहा कि आज वह समय आ गया है कि अब कोई स्वयं को हिन्दू कहता है तो उसको साम्प्रदायिक करार दिया जाता है। सावरकर हिन्दुत्व के संरक्षक होते हुए भी रूढ़िवाद से बहुत दूर हैं। वे प्रगतिवादी हिन्दू हैं। उनका हिन्दुत्व दूसरे के प्रति घृणा पर आधारित नहीं है। मेरा विश्वास है कि सावरकर के सिद्धान्तों पर यदि राष्ट्र का कार्य चले तो इससे देश में सुख समृद्धि का साम्राज्य आएगा।

उन्हीं दिनों सावरकर का ७५वाँ जन्म दिन मनाने के उद्देश्य से एक अमृत महोत्सव समिति का गठन कर उसका कार्य आरम्भ कर दिया गया। बम्बई के महा-

पौर की अध्यक्षता मे एक नागरिक समिति का गठन किया गया। बम्बई नगर निगम ने सावरकर का अभिनन्दन करने का निश्चय किया।

२८ मई १९५८ को बम्बई के कमला नेहरू पार्क म बम्बई नगर निगम ने विशाल स्तर पर सावरकर का अभिनन्दन करते हुए उनका ७५वा जन्म दिन अमृत महोत्सव के रूप म मनाया। इस अवसर पर सावरकर के प्रशसकों की अपार भीड़ देखने लायक थी। सारा मैदान नर मुण्डों से भरा दिखाई देता था। बम्बई के महापौर श्री मिराजकर ने सावरकर का अभिनन्दन किया और उनकी प्रशसा के गीत गाये। उसके उत्तर म सावरकर ने कहा मुझे आशा है कि भारत कुछ ही समय मे रूस की भाँति सुदृढ शक्ति वाला देश बन जाएगा।

अप्रैल १९५९ में पूना विश्वविद्यालय ने सावरकर को 'डाक्टर' की मानद उपाधि से सम्मानित किया। सावरकर को डाक्टरेट प्रदान करने के लिए पूना विश्वविद्यालय के उपकुलपति आदि अपने अन्यान्य अधिकारियों के साथ स्वय बम्बई के सावरकर सदन म पधारे थे।

मार्च १९६० से सावरकर का स्वास्थ्य निरन्तर गिरता गया। उसी समय ससद मे निर्दलीय सांसद श्री पी० आर० पटेल न ससद मे प्रस्ताव प्रस्तुत किया कि अग्रेज सरकार ने सावरकर की जो सम्पत्ति जब्त कर ली थी अब वह उनको सौंप दी जानी चाहिए। लोक सभा न उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

राजा महेन्द्र प्रताप तो उस बिल की परिधि म आ गए किन्तु सावरकर फिर भी रह गए। जब राजा महेन्द्र प्रताप ने सावरकर से कहा कि वे इसके लिए सघर्ष करें तो सावरकर न कह दिया, "मैंने तो अपनी सम्पत्ति के लिए अग्रेजों से सघर्ष नहीं किया। मैं तो केवल भारत माता की मुक्ति के लिए ही सघर्ष करता रहा हूँ। अपनी निजी सम्पत्ति के लिए मैं सघर्ष नहीं करूँगा।"

नेहरू का ओछापन

वाह री कांग्रेस सरकार! वाह रे प्रधानमन्त्री नेहरू! ब्रिटिश सरकार ने सावरकर की जिस सम्पत्ति को जब्त किया था कांग्रेस सरकार को चाहिए था कि सरकार बनाते ही सबसे पहले सावरकर की सम्पत्ति उन्हें ससम्मान सौंपने का पुण्य कृत्य करती। किन्तु वह तो ससद मे विधि विधान के स्वीकार हो जाने पर भी उस सम्पत्ति को लौटाने के लिए उद्यत नहीं हुई।

ऐसे थे हमारे युवक हृदय सम्राट, किन्तु तन मन मस्तिष्क-बुद्धि से सर्वथा वृद्ध नेहरू।

पूना के बाद बम्बई विश्वविद्यालय ने भी सावरकर को मानद डाक्टर की उपाधि से सम्मानित किया। १ मई १९६० को महाराष्ट्र राज्य की स्थापना हुई। उस अवसर पर सावरकर ने अपने सदेश म इच्छा व्यक्त की कि महाराष्ट्र भारत की तलवार का काम करे।

सावरकर की सम्पत्ति के विषय म श्री वी० वी० गोगटे न बम्बई सरकार

से बातचीत की तो तत्कालीन महाराष्ट्र के नहीं अपितु भारत सरकार के अधिकार म है। तब लोगो ने उनसे कहा कि यदि उनकी इच्छा हो तो उसके लिए माग भी बन सकता है। जहाँ चाह, वहाँ राह।' किन्तु चौहाण मन्त्री मण्डल इस काय म सफल नहीं हुआ। इसका कारण नेहरू सरकार का सावरकर के प्रति विद्वेष पूण व्यवहार ही था।

सावरकर के स्वास्थ्य को देखते हुए उनका मत्युजय दिवस निरन्तर मनाया जा रहा था और स्थान स्थान से समय-समय पर उनके प्रशसक, भक्त आ-आ कर उनको सम्मानित करते रहते रहते थे। इनम आचाय डोंडे आचाय अत्रे, भिडे गुरुजी, हीरेन मुखर्जी, राजा महेन्द्र प्रताप, किशनचन्द्र सेठ, प० ब्रजनारायण ब्रजेश, राजगोपालाचारी आदि अनक लोगो ने अनेक समारोहो पर सावरकर की प्रशसा म अपनी वाणी को धन्य किया। राजाजी ने उनकी प्रशसा करते हुए कहा था "भारत के स्वातन्त्र्य सग्राम म सावरकर गिने चुने वीर पुरुषो मे से एक हैं। स्वातन्त्र्य समर मे अधिरथ की भाँति उनका सदा आदर और सम्मान होता रहेगा और जनता उन्हे प्यार देती रहेगी।"

एक प्रश्न के उत्तर म कि 'नेहरू के बाद कौन?' सावरकर ने कहा कि किसी के बिना कोई काम नही रुकता। उन्होने यह भी कहा कि नेहरू का सारा क्रिया कलाप बाजीराव द्वितीय के समान रहा है। नेहरू ने इस देश को जितनी हानि पहुँचायी है कोई भी साधारण व्यक्ति यदि उसके स्थान पर होता तो वह भी देश की इतनी हानि नही करता जितनी कि नेहरू ने की है।

'अमत महोत्सव' का समापन १५ जनवरी १९६१ को पूना की सवदलीय समिति की ओर से आयोजित सभा मे सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर न केवल सव-साधारण नेताओ अपितु राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद, उपराष्ट्रपति डा० राधा-कृष्णन, महाराष्ट्र के मुख्यमन्त्री श्री यशवन्तराव चह्वाण आदि अनेक गण्यमान्य जनो ने अपने शुभकामना सदेश भेजे।

सेनापति बापट ने समारोह की अध्यक्षता की। उन्होने कहा कि उन्होने सदा सावरकर को अपना नेता माना और उनके आदेशो का पालन करते रहे। समाज-वादी नेता एस० एम० जोशी ने कहा कि अपने यौवनकाल मे वे सावरकर के पूण स्वराज्य की माँग से प्रभावित और प्रेरित हुए थे। इनके अतिरिक्त भी लोकमान्य बालगगाधर तिलक के पौत्र और तत्कालीन विधायक श्री जयन्त तिलक, श्री भाऊ-राव मोदक श्री ग० वि० केतकर आदि नेताओं ने वीर सावरकर की प्रशस्ति मे भाषण देते हुए उन्हे स्वाधीनता सग्राम का अजेय पराक्रमी सेनानी बताया।

गोआ मुक्ति का आन्दोलन जोर पकडने लगा था। इससे यह आशा होने लगी थी कि गोआ मुक्ति अब सन्निकट है। गोआ के भीतर से भी सघष हो रहा था और पुतगालियो पर बाहर स भी दबाव पडने लगा था। भारतीयो ने भारत पर ही जोर दे डाला और एक प्रकार से सरकार के विरुद्ध युद्ध का अभियान कर दिया। परिणाम स्वरूप २० दिसम्बर १९६१ को गोआ भी पुतगालियो के चगुल से

मुक्त हुआ। जब भारतीय सेना ने गोआ मे प्रवेश किया तो उस अवसर पर सावरकर ने अपने घर पर राष्ट्रीय ध्वज फहराया। लगभग ४५० वर्ष बाद गोआ मुक्त हुआ था। भारत की पसली पर चुभा काँटा, जो भारत को बहुत पीडा पहुँचा रहा था, आखिर किसी न किसी प्रकार निकल ही गया।

अक्टूबर १९६२ मे नेहरू के मुँह बोले भाई चाउ एन लाई ने भारत पर आक्रमण कर दिया। चीन के इस आक्रमण से सावरकर को बडा आघात लगा। उनका स्वास्थ्य पहले से ही गिरता आ रहा था इससे उन्हे अतीव मानसिक वेदना हुई। उस समय सावरकर ने कहा था, "काश! अहिंसा, पचशील व विश्व शान्ति के भ्रम मे फँसे ये शासनाधिकारी मेरे सुझाव को मान कर सवप्रथम राष्ट्र का सनिकीकरण कर देते तो आज हमारी वीर व पराक्रमी सेना चीनियों को पीकिंग तक खदेड कर उनका मद चूर चूर कर डालती। किन्तु अहिंसा व विश्व शान्ति की काल्पनिक उडान भरने वाले ये 'महापुरुष' न जाने कब तक देश के सम्मान का अहिंसा की कसौटी पर परीक्षण करते रहेंगे।"

उस समय सावरकर ने एक वक्तव्य भी दिया जिससे उन्होने कहा, "भारत के शासनधिकारियो को यह भली भाँति समझ लेना चाहिए कि आज के युग मे 'जिसकी सेना उसका ही राज्य सुरक्षित है।' का सिद्धान्त ही व्यावहारिक है। यदि हमारे शत्रु चीन के पास अणुबम है तो हमे उसका सामना करने के लिए उससे भी अधिक शक्तिशाली बमों के निर्माण के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। 'हम अणु बम कदापि नही बनाएँगे' की घोषणा करना मूर्खता तथा कायरता का ही परिचायक होगा।'

चीन के आक्रमण से रुष्ट हो कर देशवासियो ने तत्कालीन रक्षा मन्त्री और पण्डित नेहरू के अनन्य मित्र वी० के० कृष्ण मेनन को एक क्षण के लिए भी सहन नही किया। विवश नेहरू को उसे हटाना पडा। नेहरू की ही भाँति मेनन भी प्रच्छन्न कम्युनिस्ट था। यही कारण था कि भारत की निर्माणियो मे आयुध आयुध नहीं अपितु कॉफी परकोलेटर आदि का निर्माण किया जा रहा था।

मेनन के त्यागपत्र के उपरान्त जब आयुध निर्माणियो मे आयुध बनने लगे तो सावरकर ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा था, "कम से कम २५ लाख सैनिको की नियमित सेना बनाओ और उसे आधुनिकतम शस्त्रास्त्रों से सज्जित करो।" उसी अवसर पर पुन उन्होंने देश के प्रत्येक नवयुवक को आधुनिकतम शस्त्रास्त्र और सनिक शिक्षा दिए जाने का भी सुझाव दिया था।

सावरकर का स्वास्थ्य निरन्तर गिरता जा रहा था। और जब सारा राष्ट्र उनका ८० वाँ जन्म दिन मना रहा था उस दिन सावरकर रुग्णता एव दुर्बलता के कारण घर मे ही गिर पडे और उनकी जाँघ की हड्डी टूट गयी। उन्हें अस्पताल पहुँचाया गया। ३० मई को उनकी जाँघ का ऑपरेशन किया गया। इससे उनके स्वास्थ्य मे और गिरावट आ गयी। २४ जून १९६३ को वे घर आ गए।

पत्नी का निधन

तीन मास के उपरान्त जब वे किसी अन्य की सहायता से कुछ चलने के योग्य हुए कि तभी उनकी धर्मपत्नी बहुत सख्त बीमार हो गयी। उन्हें तुरन्त डा० तलवरकर के अस्पताल में ले जाया गया। श्रीमती यमुनाबाई अस्पताल में पड़ी पड़ी सावरकर से मिलने के लिए छटपटा रही थी किन्तु सावरकर अब उनसे मिलने के लिए जाने में कोई सार न समझ उनसे अन्तिम विदा लेने के लिए भी नहीं गए। यद्यपि अनेक बार नर्स के माध्यम से सावरकर ने कहलवाया कि वे उनको देखने के लिए आएँगे, किन्तु गए नहीं। तब उनकी पत्नी ने आग्रह किया कि उनको घर वापस ले जाया जाय जिससे कि वे अपने पति के समीप रह कर अपने प्राण त्याग सकें। अन्त में ८ नवम्बर १९६३ को ७६ वर्ष की आयु में उनका देहान्त हो गया। सावरकर को इससे दुःख तो हुआ किन्तु उन्होंने अपने अनुयायियों को कहा कि उनके मृत शरीर को चुपचाप चन्दनवाड़ी विद्युत शवदाह गृह ले जा कर बिना किसी समारोह के भस्म करवा दिया जाए।

२७ मई १९६४ को नेहरू की मृत्यु हुई तो उस समय सावरकर की ओर से कोई सन्देश अथवा वक्तव्य प्रसारित नहीं किया गया। नेहरू के बाद जब लालबहादुर शास्त्री प्रधानमन्त्री बने तो उन्होंने सावरकर को मासिक सहायता देनी आरम्भ कर दी। यह सहायता अक्टूबर १९६४ से आरम्भ हो गई थी। इसके साथ ही उनके गीतों पर लगा प्रतिबन्ध भी हट गया और उनका प्रसिद्ध गीत 'जयोस्तु ते स्वतन्त्रते आकाशवाणी के पूना केन्द्र से प्रसारित हुआ।

मुस्लिम मनोवृत्ति कभी भी भारतीय मनोवृत्ति नहीं हो सकती। इसका प्रमाण १२ मार्च १९६५ को मौलाना आजाद के बाद कांग्रेस दल में सर्वोत्तम राष्ट्रीय मुसलमान माने जाने वाले आबिद अली ने संसद में यह प्रश्न उठा कर प्रस्तुत किया कि सावरकर को सरकारी सहायता क्यों दी जा रही है। भले ही उनका आरम्भिक जीवन सेवा और त्याग का रहा हो किन्तु उनका जीवन कांग्रेस की नीतियों का विरोधी रहा है। आबिद अली के इस विरोध की न केवल विपक्ष ने निन्दा की अपितु कुछ कांग्रेस जनों ने भी उसकी खूब निन्दा की थी। उस समय के राज्य सभा अध्यक्ष जाकिर हुसैन ने भी कुछ इस प्रकार की ही टिप्पणी की थी जो कि उनके मुसलमान होने की पुष्टि करती थी। संसद में गृहमन्त्री ने बताया कि सावरकर को महाराष्ट्र सरकार की सिफारिश पर सहायता दी जा रही है। तब जाकिर हुसैन ने अध्यक्ष पद से टिप्पणी करते हुए कहा था, 'जो हो, महाराष्ट्र सरकार आबिद अली के विचारों से सन्मत नहीं लगती। जाकिर हुसैन का मुख खोलना ही था तो वह सावरकर की प्रशंसा में कुछ कह सकता था।

किन्तु किसी मुसलमान से किसी भारत भक्त की प्रशंसा की अपेक्षा रखना बालू में तेल की अपेक्षा के समान निरर्थक होगा।

दीप निर्वाण

सावरकर का स्वास्थ्य निरंतर गिरता जा रहा था। डाक्टर अनेक प्रकार के सुझाव उनको दे रहे थे। राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन ने उनके स्वास्थ्य पर चिंता व्यक्त की और अपने सहायक को सावरकर का स्वास्थ्य समाचार लेने के लिए बम्बई भेजा। नेशनल इंडियन चर्च के बिशप विलियम्स स्वयं सावरकर सदन में उनका समाचार लेने के लिए आए थे।

अगस्त १९६५ में काश्मीर के विरुद्ध पाकिस्तान का षडयंत्र का भंडाफोड़ हुआ तो समय पर उसका प्रतिशोध लेने का अवसर मिल गया। ६ सितम्बर ६५ को रक्षा मंत्री श्री यशवंत राव चह्वाण ने संसद में घोषणा की कि भारतीय सेनायें तीन ओर से लाहौर की ओर बढ़ने लगी हैं। सावरकर को जब यह समाचार सुनाया गया तो रोग ग्रस्त और मुरझाया हुआ उनका चेहरा भी खिल उठा।

किन्तु भारतीय नेताओं ने एक बार पुनः स्वयं को कांग्रेसी अथवा गांधीवादी सिद्ध कर दिया। रूस की कूटनीति के दबाव में आकर भारत ने युद्धविराम की घोषणा कर दी। समझौता वार्त्ता होने लगी। ताशकन्द समझौता होने वाला था कि उससे पूर्व ही सावरकर ने अपनी कृष्ण भैया से कहा "सहस्राधिक हिन्दू युवकों ने अपना बलिदान देकर जो विजयश्री प्राप्त की उसे ये गांधीवादी नेता यों ही गंवा देंगे। अब इनसे किंचित भी आशा करना व्यर्थ है"

उस दिन से सावरकर और अधिक अस्वस्थ रहने लगे। उनके हृदय पर इसका प्रभाव पड़ा। ताशकन्द समझौते के लिए तत्कालीन भारत के प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री रूस गए और वहां पर पाकिस्तान के पक्ष में किए गए समझौते पर ज्यों ही उन्होंने हस्ताक्षर किए, अथवा उनसे करवाए गए उसी दिन ११ जनवरी १९६६ की रात्रि में संदेहास्पद स्थिति में उनका निधन हो गया। कहने को तो यही कहा जाता रहा है, और आज भी यही कहा जाता है कि हृदयाघात से उनकी मृत्यु हुई। किन्तु उस समय की घटनायें सिद्ध करती हैं कि यह साधारण और सामान्य स्थिति की मृत्यु नहीं थी।

सावरकर अब चारों ओर से निराश से हो गए थे। उन्हें लगता था कि अब अधिक दिन तक जीवित रहना उचित नहीं होगा। अतः वे मृत्यु का वरण करने के लिए सन्नद्ध हो गए इस प्रक्रिया में उन्होंने सर्वप्रथम औषधि सेवन छोड़ दिया। परिजन इससे चिंतित हुए और उनके पुत्र विश्वास सावरकर, भतीजे विक्रम सावरकर तथा निजी सचिव बाल सावरकर ने डाक्टर से कह कर उनको चाय के माध्यम से औषधि देने का यत्न किया। किन्तु किसी प्रकार सावरकर को इसकी भी भनक लग गई तो उन्होंने कह दिया, "यदि औषधि मिश्रित चाय दोगे तो मैं चाय भी नहीं पियूंगा। मैं अब जीवित रहना नहीं चाहता। मुझे अब जीवित रह कर करना ही क्या है ? मेरा जो कर्त्तव्य था वह मैंने पूर्ण कर लिया है।" यहाँ तक कि उन्होंने भावावेश में आकर अपने निजी चिकित्सक डा० साठे से कहा कि वे उन्हें कोई ऐसी

औषधि दें जिससे कि वे सदा-सदा के लिए शान्त हो जायं।

सावरकर ने ३ फरवरी १९६६ से भोजन आदि लेना सर्वथा त्याग दिया। मृत्यु से दो दिन पूर्व द्वारकापीठ के जगद्गुरु शंकराचार्य ने सावरकर से मिलने की इच्छा व्यक्त की तो सावरकर को इस बात का खेद था कि वे शंकराचार्य के दर्शन करने स्वयं न जा सके, अतः उनको उनके पास आना पड़ रहा है। उन्होंने बाल सावरकर आदि से कह कर उनके यथोचित स्वागत सत्कार की व्यवस्था के लिए निर्देश दिए।

सावरकर की स्थिति दिन पर दिन बिगड़ती गई। २४ फरवरी को डाक्टर ने अपने बुलेटिन में बताया कि सावरकर की दशा चिन्ताजनक है। २५ फरवरी को भी यही स्थिति रही।

२६ फरवरी को वे प्रातः साढ़े आठ बजे निद्रा से जगे। परिचारिका ने उन्हें कुल्ला कराया। ज्वर तब भी बना हुआ था। जिस मृत्यु को वे अपने बाल्यकाल से ही दूर दूर भगाते आए थे, वह आज इस दुर्बलावस्था में भी उनके निकट आने से मानो डर रही हो। किन्तु अब तो स्वयं सावरकर उसके सम्मुख आत्मसमर्पण कर रहे थे। सावरकर के पुत्र विश्वास, पुत्री विदुला और प्रभावती उनके पास ही बैठे सुबक रहे थे।

१० बजे उनकी नाड़ी की गति मन्द पड़ने लगी। रक्तचाप का परीक्षण नहीं हो पा रहा था। डाक्टरों ने कृत्रिम श्वास देने का यत्न किया। डाक्टर कभी कुछ, तो कभी कुछ देते रहे। कभी श्वास चलने लगती किन्तु फिर बन्द हो जाती। अन्त में २६-२-१९६६ को ११ बज कर १० मिनट पर ८३ वर्ष की आयु में उन्होंने अपनी इहलीला पूर्ण की।

डाक्टरों का कहना था कि वे आयुर्विज्ञानियों को निरन्तर चुनौती देते रहे। उनकी जिजीविषा ने आयुर्विज्ञान को असफल सिद्ध कर दिया था। वे अपने अन्तिम क्षण तक होश में रहे। यह सब उनकी योग शक्ति का ही प्रभाव था।

उपसहार

सावरकर के निधन का समाचार आकाशवाणी, समाचार पत्र तथा टेलीफोन द्वारा देश के एक कोने से दूसरे कोने तक प्रसारित हो गया। समाचार सुनते ही बम्बई मे जो जहाँ था, वहीं से सावरकर सदन की ओर चल पडा। उस दिन किसी को सावरकर सदन का मार्ग व दिशा पूछने की आवश्यकता नहीं थी। जिस ओर भीड जाती दिखाई दे वही सावरकर सदन का मार्ग था।

अपनी मृत्यु से कई वर्ष पूर्व सावरकर ने अपनी वसीयत लिख दी थी। उसमे जो दो विशेष उल्लेखनीय बातें थी, यहाँ पर हम केवल उनका ही वर्णन कर रहे हैं। पहली तो यह कि "मेरे श्राद्ध का धन बचा कर हिन्दू धार्मिक सस्थाओ को दान मे दे दिया जाय तथा मैं अपने निजी कोष से पाँच सहस्र रुपए शुद्धि-आन्दोलन के लिए भेंट करता हूँ। हिन्दुओं को शुद्धि आन्दोलन को सुचारु रूप से चलाते रहना चाहिए।"

दूसरी उल्लेखनीय बात थी, "मेरी मृत्यु का शोक प्रकट करने के लिए न किसी प्रकार की हडताल की जाय और न बन्द। मेरे मरण के शोक के लिए कोई भी व्यक्ति अपना कार्य बन्द न करे।"

'मेरी राख भारत माता को तथा मेरी सम्पत्ति मेरी पुत्री को' जैसी इच्छा उनकी नहीं थी।

मृत्यु का समाचार सुनते ही मन्त्री, उपमन्त्री, कांग्रेस के तथा विपक्ष के नेता, केन्द्रीय मन्त्री एव नेता, स्वतन्त्रता सग्राम के प्रमुख सेनानी, शिक्षाशास्त्री, वकील, समाज सेवक, सभी क्षेत्रो के नेता सावरकर को श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिए सावरकर सदन की ओर चले।

२६ फरवरी, १९६६ को उनका शव परिजनो मित्रो तथा अन्यान्य दर्शनकर्त्ताओ की सुविधा के लिए सावरकर सदन म रखा रहा और २७ को उनकी शवयात्रा की व्यवस्था की गई। २७ फरवरी, १९६६ को उनकी शवयात्रा निकली। ५० हजार से भी अधिक लोग इस शवयात्रा मे सम्मिलित हुए। इनमे सभी राजनीतिक दलो के मुखिया

तथा नेता एवं विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधि और देश के गण्यमान्य जन भी सम्मिलित थे। सावरकर जी ने अपने इच्छा पत्र में यह भी लिख दिया था कि उनका शव किसी के कंधों पर रख कर न ले जाया जाय। अतः शव को एक वाहन में सजा कर रखा गया था। वाहन में चालक के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं था। सब शव के साथ पैदल चल रहे थे। मार्ग में 'वीर सावरकर अमर रहें' 'स्वातन्त्र्य लक्ष्मी की जय हो', 'हिन्दू राष्ट्र की जय हो' आदि गगन भेदी घोष लगाये जा रहे थे।

सड़क के दोनों ओर हजारों लोगों की भीड़ सावरकर के अंतिम दर्शनों के लिए शांत मुद्रा में शवयात्रा की प्रतीक्षा में खड़ी रही। इस भीड़ में हर आयुवर्ग तथा प्रत्येक वर्ग और व्यवसाय के लोग थे। मार्ग के दोनों ओर के भवनों की छतें और छज्जे दर्शनार्थियों से भरे हुए थे।

सावरकर का अंतिम संस्कार चन्दनवाडी स्थित विद्युत शवदाह गृह में किया गया। यही उनकी इच्छा भी थी। चन्दनवाडी पहुँचने पर अनेक नेताओं तथा प्रतिष्ठित जनों ने पुनः सावरकर को श्रद्धांजलि अर्पित की तदनन्तर उनकी अंत्येष्टि की गई।

सावरकर की मृत्यु पर देश विदेश के समाचार पत्रों ने विस्तृत समाचार प्रसारित कर अपनी श्रद्धांजलि व्यक्त की। लगभग सभी समाचार पत्रों ने उन पर सम्पादकीय अग्रलेख लिखते हुए देश और समाज के प्रति की गई उनकी सेवाओं का मूल्यांकन, सराहना और प्रशंसा की। देश का कोई भी समाचार पत्र इससे वंचित नहीं रहा।

देश के नेताओं ने भी सावरकर को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। चक्रवर्ती राजगोपालचारी ने कहा, 'सावरकर मेरे प्रथम क्रान्तिकारी आदर्श थे।' डा. राधाकृष्णन ने कहा, 'अपने देश के लिए वे वीरता से लड़ने वाले क्रान्तिकारी थे। अनेक युवकों के लिए उनका जीवन पुराणकथा के समान प्रेरणादायी रहा।' प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी ने कहा 'सावरकर की मृत्यु से समकालीन भारत का एक महान व्यक्तित्व चला गया।' कम्युनिस्ट नेता एस. ए. डांगे ने कहा, 'सावरकर की मृत्यु ने बहुत बड़ा साम्राज्य विरोधी क्रान्तिकारी इस धरती से उठा लिया।' तत्कालीन रक्षामन्त्री श्री चह्वाण ने कहा देश ने महान क्रान्तिकारी और स्वतन्त्रता सेनानी खो दिया। महाराष्ट्र के मुख्य मन्त्री वी. पी. नायक ने कहा, 'सावरकर क्रान्तिकारियों में अग्रणी थे जिन्होंने बड़ी श्रद्धा से स्वतन्त्रता का युद्ध लड़ा था।'

गोआ के मुख्य मन्त्री बान्दोडकर, संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के नेता एस. एम. जोशी, जनसंघ के प्रधान बच्छराज व्यास तथा बलराज मधोक, मध्य प्रदेश के पूर्व राज्यपाल श्री पाटसकर, सरसंघचालक श्री एम. एस. गोलवलकर, श्री अणे, श्री गुलजारीलाल नन्दा, सैकड़ों नगर पालिकायें, कुछ विधान सभायें, विधान परिषदें, जिला परिषदें, कुछ प्रदेश सरकारें, अनेकानेक साहित्यिक, शैक्षिक जगत के पण्डितों, सामाजिक संस्थाओं ने सावरकर की मृत्यु पर शोक संदेश भेजे, शोक मनाया और शोक प्रस्ताव पारित किए।

२८ फरवरी, १९६६ को ससद मे कम्युनिस्ट नेता हीरेन मुखर्जी तथा जनसघ के नेता श्री उमाशकर त्रिवेदी ने लोकसभा को सुझाव दिया कि सावरकर द्वारा इस देश के प्रति की गई अमूल्य एव अनुपम सेवाओ के लिए ससद म उन्हें श्रद्धाजलि अर्पित की जानी चाहिए। किन्तु तत्कालीन स्वतन्त्र पार्टी के सासद सरदार कपूरसिह ने कहा कि सावरकर की सेवाओ की अनदेखी नही की जा सकती, किन्तु वे इस ससद के कभी सदस्य नहीं रहे, अत असदस्य को श्रद्धाजलि अर्पित करना कहा तक उचित होगा, यह विचार कर लेना चाहिए।

लोकसभा अध्यक्ष सरदार हुकुमसिह ने कहा कि इसमे तो कोई सन्देह नही कि सावरकर ऐसे महान् नेता थे जिन्होने बडी श्रद्धा और लगन से अपने जीवन को देश के लिए समर्पित कर दिया था, किन्तु भविष्य के लिए यह बडा कठिन हो जाएगा कि जो लोग ससद के सदस्य नही रहे उनमे से किन किन को श्रद्धाजलि अर्पित की जाय और किनको न जाय। यदि इस प्रकार की परम्परा चालू कर दी गई तो भविष्य मे ससद कभी पक्षपात की दोषी भी बताई जा सकती है। इसके साथ ही उन्होने यह भी कहा कि वे उनके परिजनो को ससद की भावना से अवगत करा देंगे।

सासद स० कपूरसिह और लोकसभा अध्यक्ष स० हुकुमसिह (सरदार-द्वय) ने लोकसभा को यह नही बताया कि महात्मा गांधी और रूस का स्टालिन लोकसभा के कभी सदस्य रहे थे अथवा नही। और न ही यह बताया कि जब देशबन्धु चितरजन दास का देहान्त हुआ था तो केन्द्रीय विधान सभा म उनको श्रद्धाजलि अर्पित की गई थी।

काग्रेस कलचर का यह निकृष्टतम उदाहरण था।

४ मार्च, १९६६ को दिल्ली म सर्वदलीय शोक सभा का आयोजन किया गया था। केन्द्रीय मन्त्री श्री सत्यनारायण सिन्हा ने इस सभा की अध्यक्षता की थी। इसम केन्द्रीय मन्त्री, विपक्ष के नेता, लोकसभा अध्यक्ष तथा विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक शैक्षिक, धार्मिक आदि आदि सस्थाओ के अनेक नेताओ ने उपस्थित होकर अपनी श्रद्धा-जलि अर्पित की थी। जिसम सावरकर को अनेक प्रतिभाओ का सम्मिलित स्वरूप स्वीकार किया गया और कहा गया 'भावी पीढियाँ सावरकर के जीवन से प्रेरणा प्राप्त करती रहेंगी।'

इस सभा म ही डा० राममनोहर लोहिया ने कहा था कि भारत का रहने वाला हर नागरिक हिन्दू है, चाहे वह किसी भी मत का मानने वाला क्यो न हो। तत्कालीन शिक्षा मन्त्री मोहम्मद करीम छागला ने सावरकर को बडी भाव भीनी श्रद्धाजलि अर्पित की थी। कम्युनिस्ट नेता हीरेन मुखर्जी ने सावरकर की देशभक्ति की भूरि भूरि प्रशसा की।

इसी सभा मे प्रस्ताव पारित करके यह माग की गई कि सावरकर की देश सेवाओं के अनुरूप उनका एक स्मारक स्थापित किया जाय और उनकी स्मृति म डाक टिकट निकाला जाय।

अपनी मृत्यु को सम्बोधित करते हुए सावरकर ने लिखा था—

"मेरा वश सम्पूर्ण मानव जाति की सेवा के लिए समर्पित हो गया है। मैंने अपने सकल्प के अनुसार प्रत्येक दिवस के कार्य को किए बिना सूर्य को अस्त न होने दिया। मैंने अपने समस्त कर्त्तव्यो की पूर्ति की सदा चेष्टा की है। अपने कृत कार्यों से मेरा जीवन सम्पन्न बना है। धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक कर्त्तव्यो का मैंने पालन किया है। मृत्यु के उपरान्त होने वाली अवस्था मे सुयोग्य निवास पाने के लिए मैंने अपने कर्मो से ही अग्रिम किराया चुका दिया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं अपने कर्मों के बल पर परलोक मे एक अच्छी सी कोठी प्राप्त करूँगा।"

यह है आत्मविश्वास का उदाहरण। तथाकथित नेताओ की भाँति उन्होंने नही कहा 'अभी मुझे मीलो जाना है, अपनी सन्तति को स्थापित करना है।' बड़े आत्म-विश्वास के साथ सावरकर ने कहा 'मैंने अपना करणीय कर दिया है।' उन्होंने कहा, "मैंने ब्याज सहित सारा मातृ और पितृ ऋण चुका दिया है। इस जीवन पर अब किसी का, किसी भी रूप मे कोई ऋण शेष नही है।

'हे मृत्यु! अब यह जीवन केवल तुम्हारे लिए ही शेष है। तुम जब चाहो बड़ी प्रसन्नता से इसे ले जा सकती हो।"

सावरकर साहित्य

क्रांतिकारियो के मुकुटमणि, स्वातन्त्र्य वीर विनायक दामोदर सावरकर अपने 'कृत्य' और 'कृति', दोनो ही के कारण इस ससार मे अमर हैं। उनके कृत्यो और कृतियो ने न केवल भारतवासियो को अपितु ससार के अनेक देशो के युवको एव स्वतन्त्रता प्रेमियो को प्रेरणा प्रदान की है। सावरकर के कृत्यो पर तो हम यथाशक्ति पूर्व पृष्ठों मे अकित तरह अध्यायो मे प्रकाश डाल आए हैं। उनकी कृतियो का परिचय देना भी स्वय मे एक ग्रथ का ही विषय है। तदपि पाठको के ज्ञानवर्धन के लिए हम यहाँ पर उनकी कृतियो का सक्षिप्ततर परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं। सावरकर की कृतियाँ प्रत्येक पाठक के मन-मस्तिष्क को झकझोर देती हैं। उनकी रचनाओं मे न केवल क्रांति का अपितु शान्ति का भी तत्वदर्शन उपलब्ध है। उनकी कृतियो को पढकर पाठक उन पर विचार करने के लिए और उनमे व्यक्त किए गए विचारो को स्वीकार करने के लिए विवश हो जाता है। उनकी लौह-लेखनी से निस्सृत स्वर्णिम शब्द पाठक को उसके गौरवमय अतीत का स्मरण करा कर उसको अपना तथा अपने देश का उज्ज्वल भविष्य निर्माण करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

सावरकर स्वय ओज और तेज के पुज थे। उनकी वाणी और लेखनी दोनो में ओज था। उनका वह ओज उनके बाल्यकाल मे ही रचित उनके 'पोवाडो' के माध्यम से प्रस्फुटित होने लगा था। 'पोवाड' मराठी भाषा मे कविता एव गीत की एक विशिष्ट विधा है। मराठी के प्रसिद्ध साहित्यकार तथा मराठी साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व अध्यक्ष स्व० श्री माडखोलकर ने उनके इस ओज के विषय मे एक स्थान पर कहा है—

" सावरकर का ओज प्रतिपक्षियो के आसुरी आघाता द्वारा भी दुर्दमनीय सिद्ध हुआ है। मानो वज्र सिद्ध करने के उपरान्त महर्षि दधीचि की अवशिष्ट दिव्य अस्थियो मे से ही विधाता ने सावरकर जी की प्रतिमा का निर्माण किया हो।"

सावरकर के ओज के प्रति व्यक्त किए गए उपरिलिखित विचारो से उत्कृष्ट

अन्य विचार क्या हो सकते हैं ? उनका रोम रोम ओजस्वी और तपस्वी था। महर्षि दधीचि की ही भाँति सावरकर भी तपस्वी एव कृशकाय थे। इसम किंचित् भी सन्देह नही कि उनकी लौह लेखनी ने हिंदुत्व रूपी जिस शस्त्र का निर्माण किया है उसका यदि उचित रीति से प्रयोग किया जाय तो वह हिंदू को उसका उचित एव प्राप्य गौरव पुनरेण प्रदान कर सकता है।

प्रस्तुत है सावरकर की कृतियो का अकारादि क्रम स सक्षिप्त परिचय—

१ '१८५७ का स्वातन्त्र्य समर' यह ग्रथ मूलतया मराठी भाषा में लिखा गया था। सवप्रथम उसका अग्रेजी अनुवाद हुआ। मराठी हिन्दी गुजराती तमिल भाषाओ मे यह ग्रथ प्रकाशित हो चुका है। यह ग्रन्थ १६०८ मे लन्दन मे लिखा गया और प्रकाशन से पूव ही इसकी पाण्डुलिपि प्रतिबन्धित कर दी गई। किन्तु फिर भी यह पुस्तक किसी प्रकार हॉलेण्ड स प्रकाशित हो ही गई। तदनन्तर १६१० मे अभिनव भारत सस्था ने इसे प्रकाशित किया था। लाला हरदयाल ने इसे अमेरिका मे प्रकाशित करवाया था। सावरकर की स्थान वद्धता के काल मे क्रातिकारी सरदार भगतसिंह ने गुप्त रूप से प्रकाशित करा कर इसकी आय स क्रातिकारी आन्दोलन को आगे बढाया था।

२ 'अण्डमान की गूज' मराठी, अग्रेजी तथा हिन्दी मे प्रकाशित यह ग्रथ अण्डमान की काल कोठरी मे लिखे गए ओजस्वी व धार्मिक पत्रो का सग्रह है। सन १६२५ मे यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था।

३ 'आत्म चरित्र'। यह मराठी म प्रकाशित सावरकर की सक्षिप्त जीवनी है।

४ 'उत्तर क्रिया यह सवप्रथम मराठी मे प्रकाशित है और अब इसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हो गया है। मराठा के पानीपत में हारने के उपरान्त केवल बारह वर्षों म उन्होन सुदढ सगठन बनाकर पुन किस प्रकार पानीपत पराजय का प्रतिकार लिया था, इस ऐतिहासिक तथ्य पर आधारित यह नाटक सन् १६२६ म प्रकाशित हुआ था।

५ 'उ शाप' मूल मराठी म सन १६२७ मे प्रकाशित यह अत्यन्त मार्मिक और सवदनशील नाटक है। इसी नाम मे इसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हो गया है।

६ काने पाणी अण्डमान क जीवन पर आधारित यह उपन्यास सन १६३७ मे मराठी मे प्रकाशित हुआ था। कालान्तर म 'काला पानी नाम स इसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका ह।

७ 'गाधी गाधल' मराठो म प्रकाशित इस ग्रथ म गाधी के तत्वज्ञान पर प्रबल प्रहार किया गया है।

८ 'गोमान्तक' यह खण्ड काव्य सवप्रथम मराठी म सन् १६२४ मे प्रकाशित हुआ था। यह गोवा की पष्ठभूमि पर लिखा गया ह। कालान्तर म प० बाल शास्त्री हरिदास ने इसका सस्कृत मे तथा श्री माधवराव मुले ने हिन्दी मे

इसका अनुवाद प्रकाशित कराया।

९ 'जोसफ मेजिनी' इटली के प्रख्यात क्रांतिकारी मेजिनी की यह जीवनी वीर सावरकर की सर्वप्रथम कृति है। इसका लेखन उन्होंने सन १९०७ में लन्दन में रहते हुए किया था। प्रकाशित होते ही भारत सरकार ने इसको प्रतिबंधित कर दिया था, किन्तु फिर भी यह किसी न किसी प्रकार प्रसारित होती रही और सन् १९४६ में प्रतिबन्ध हटने पर इसका पुनर्प्रकाशन हुआ।

१० 'तेजस्वी तारे' प्रमुख क्रांतिकारियों के रेखा चित्रों का यह अनुपम संग्रह, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, मराठी में प्रकाशित है।

११ 'नेपाल' सन १९२८ में मराठी भाषा में प्रकाशित यह पुस्तक स्वतन्त्र हिन्दू राज्य नेपाल का स्वर्णिम इतिहास है।

१२ 'प्रतिशोध' यह नाटक मूल मराठी में प्रकाशित होने के उपरान्त अब इसी शीर्षक से हिन्दी में भी प्रकाशित हो गया है।

१३ 'मराठी भाषा की शुद्धि' सन् १९२८ में प्रकाशित इस पुस्तक में मराठी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में ठूंसे गए अंग्रेजी, अरबी, फारसी आदि अन्यान्य परकीय भाषाओं के शब्दों के बहिष्कार के विषय में तर्क पूर्ण विवेचन किया गया है।

१४ 'मला काय त्याचे' मालाबार के मोपलों के विद्रोह की पृष्ठभूमि पर लिखा गया यह उपन्यास मराठी भाषा में १९२६ में प्रकाशित हुआ था। कालान्तर में 'मोपला' नाम से इसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ।

१५ 'माझी जन्म ठेप' मूलतया मराठी में और कालान्तर में अंग्रेजी, गुजराती तथा हिन्दी भाषाओं में प्रकाशित इस ग्रन्थ में वीर सावरकर ने अपने अण्डमान कारावास की रोमांचक कहानी बड़ी ही रोचक भाषा में प्रस्तुत की है। सर्वप्रथम यह ग्रंथ १९२७ में मराठी में प्रकाशित हुआ था और तत्काल ही इसे प्रतिबंधित कर दिया गया था। सन् १९४६ में प्रतिबन्ध हटने पर पुनः प्रकाशित हुआ और विभिन्न भाषाओं में इसके अनुवाद भी प्रकाशित होने लगे। इससे समस्त विश्व में इसकी धूम मच गई।

१६ 'रणशिंग' ऐतिहासिक निबन्धों का यह अनुपम संग्रह मराठी में प्रकाशित है।

१७ 'रानफुले' यह मराठी खण्ड काव्य है। अण्डमान की कोठरी में कोल्हू चलाते हुए इस काव्य की रचना की गई जो सन् १९२३ में प्रकाशित हुआ।

१८ 'विज्ञान निष्ठ निबन्ध' दो भागों में मराठी में प्रकाशित इस ग्रंथ में जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, वैज्ञानिक और बौद्धिक निबंधों का संग्रह है।

१९ 'शस्त्र और शास्त्र' यह नाटक मूलतया मराठी में प्रकाशित हुआ था किन्तु अब इसका हिन्दी अनुवाद भी उपलब्ध है।

२० 'सहा सोनेरी पाने' मराठी में प्रकाशित भारतीय इतिहास के इन छः स्वर्णिम

पृष्ठों में सावरकर ने हिन्दुओं की वीरता का रोचक वर्णन बड़ी ललित भाषा में किया है। कालान्तर में '६ स्वर्णिम पृष्ठ' शीर्षक से यह ग्रन्थ तीन भागों में हिन्दी में भी प्रकाशित हो चुका है।

२१ 'सावरकरांची कविता' यह सावरकर की मराठी कविताओं का संग्रह है।

२२ 'सावरकरांच्या गोष्ठी' दो भागों में मराठी में प्रकाशित यह सावरकर की मराठी कहानियों का संग्रह है।

२३ 'सिखों का स्फूर्तिदायक इतिहास' यह ग्रन्थ मराठी भाषा में सन् १९१० में सावरकर ने अपने पेरिस प्रवासकाल में लिखा था और प्रकाशित होने से पूर्व ही सरकार ने इस पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया था।

२४ 'संयस्त खड्ग' भगवान बुद्ध के जीवन और उनके आत्मघातक राजनीतिक चिन्तन पर आधारित यह नाटक मूलतया मराठी में प्रकाशित होने के उपरान्त कालान्तर में हिन्दी में भी प्रकाशित हो गया है।

२५ 'हिन्दुत्व' यह ग्रन्थ सन् १९२३ में रत्नागिरी के कारागार में लिखा गया था, मराठी के अतिरिक्त हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला व गुजराती भाषाओं में प्रकाशित इस पुस्तक ने प्रथम बार 'हिन्दू' को व्याख्यायित किया।

२६ 'हिन्दुत्वाचे पंच प्राण' मराठी में प्रकाशित यह ग्रन्थ 'हिन्दुत्व के पंच प्राण' नाम से हिन्दी में भी प्रकाशित है। इस पुस्तक में हिन्दू संगठन के पाँच मौलिक तत्वों का विस्तार से विवेचन किया गया है।

२७ 'हिन्दू पद पादशाही' मराठी हिन्दी, अंग्रेजी तेलुगू में प्रकाशित यह ऐतिहासिक ग्रन्थ भी रत्नागिरि कारागार में ही लिखा गया था। 'हिन्दुत्व' की ही भांति यह ग्रन्थ भी बहुत प्रसारित हुआ।

२८ 'हिन्दू राष्ट्र दर्शन' मराठी तथा अंग्रेजी में प्रकाशित यह पुस्तक हिन्दू राष्ट्र पर विशेष प्रकाश डालती है।

इनके अतिरिक्त भी सावरकर जी ने जो ग्रन्थ लिखे हैं वे मराठी में प्रकाशित हैं, उनका किसी अन्य भाषा में अनुवाद नहीं हो पाया है। उन ग्रन्थों की सूची निम्नोद्धृत है—

२९ क्ष किरणें।

३० गरमागरम चिवडा।

३१ प्राचीन अर्वाचीन महिला।

३२ अंदमानाच्या अंधेरीतून।

३३ भाषणें—तीन भाग।

३४ ऐतिहासिक निवेदने।

३५ स्फुट लेख।

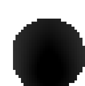
३६ लन्दन की बातमी पत्रे।

३७ सहा वीरात्मे (पोवाडे)।

३८ कमला (कविता-संग्रह)।
३९ सप्तर्षि (कविता-संग्रह)।
४० महा-सागर (गद्य-पद्य)।
४१ विरहोच्छ्वास (गद्य-पद्य)।
४२ पूर्व पीठिका,
४३ भगूर नासिक तथा
४४ शत्रूच्या शिबिरात (ये तीनों ग्रंथ सावरकर जी का आत्मवृत्त है।)
४५ लिपि शुद्धि के आन्दोलन।

ये सभी ग्रंथ और इनके विभिन्न भाग मिला कर ५० से अधिक है, इनमे लगभग आधे ग्रन्थो का हिन्दी तथा कुछ का अन्यान्य अनेक भारतीय भाषाओ मे अनुवाद भी प्रकाशित हो गया है। कुछ का अंग्रेजी अनुवाद भी उपलब्ध है। किन्तु आधी से लगभग उनकी कृतियो का किसी भी भाषा मे अनुवाद नही हो पाया है। हिन्दी एव प्रादेशिक भाषाओ म उनका अनुवाद प्रकाशित होना नितान्त आवश्यक ही नही अपितु अनिवार्य है। भारत ज्यो ज्यो २१वी शती की ओर अग्रसर होता जा रहा है, सावरकर की चेतावनियाँ सार्थक सिद्ध होती जा रही है। ऐसी स्थिति मे उनके ग्रन्थो का पठन तथा अनुशीलन हमे तथा भावी पीढी को उचित मार्ग दर्शन कर सकता है।

सावरकर साहित्य कालातीत है। साहित्य का सम्बन्ध किसी एक प्रदेश अथवा देश स भी नहीं होता है, वह इन सबसे परे होता है। यही स्थिति सावरकर साहित्य की भी है। अत सावरकर प्रेमियो को चाहिए कि वे शीघ्रातिशीघ्र उनके साहित्य का भारतीय तथा विदेशी भाषाओं मे अनुवाद प्रकाशित करने का यत्न करें। इसे 'सावरकर ग्रन्थावलि' के रूप मे भी प्रकाशित किया जा सकता है। यही हमारी उनके प्रति श्रद्धांजलि होगी।



सहायक ग्रन्थ सूची

हिंदी

स्वातंत्र्य वीर सावरकर—हिंदी अनुवाद—पद्माकर ।
भारत के क्रांतिकारी—मन्मथनाथ गुप्त ।
विनायक दामोदर सावरकर—शिवकुमार गोयल ।
भाई परमानंद और उनका युग—धर्मवीर ।
युगद्रष्टा भगतसिंह—वीरेंद्र संधु ।
लंदन में गोली—बनारसी सिंह ।
उदित मार्तण्ड : वीर सावरकर लन्दन में—हरींद्र श्रीवास्तव ।

सावरकर साहित्य : हिंदी अनुवाद

१८५७ का भारतीय स्वातंत्र्य समर ।
मेरा आजन्म कारावास—शिवकुमार गोयल ।
हिंदू पद पादशाही ।
हिंदुत्व ।
सावरकर विचार-दर्शन ।
क्रान्ति के नक्षत्र ।
हिंदुत्व के पंच प्राण ।
भारतीय इतिहास के छः स्वर्णिम पृष्ठ ।

अंग्रेजी

वीर सावरकर—धनंजय कीर ।
लाइफ ओफ बरिस्टर सावरकर—चित्रगुप्त ।
गांधी मर्डर केस—तपन घोष ।
द मैन हू किल्ड गांधी—मनोहर मुलगांवकर ।

हिस्ट्री ऑफ इंडियन रेवोल्यूशनरी मूवमेंट—मनमथनाथ गुप्त।
हिस्ट्री ऑफ दी फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया—आर० सी० मजुमदार।
श्यामजी कृष्ण वर्मा—इन्दुलाल याज्ञिक।
ग्रह एण्ड तारे—सत्याग्रही।
इंडियन अनरेस्ट—वेलेन्टाइल चिरोल।
माइ डायरीज—ब्लण्ट।
फोर्टी फोर इयस ए पब्लिक सर्वेन्ट—किंकेड।
दि गोल्डन इको—डेविड गारनेट।

जीवनियाँ

हिन्दुत्व के प्रेरक	तनसुखराम गुप्त
प दीनदयाल उपाध्याय महाप्रस्थान	तनसुखराम गुप्त
मेवाड का सूर्य महाराणा प्रताप	सत्यशकुन
छत्रपति शिवाजी	सत्यशकुन
क्रांतिकारी वासुदेव बलवंत फडके	सत्यशकुन
स्वतन्त्रता सेनानी तात्या टोपे	सत्यशकुन
क्रांतिकारी चन्द्रशेखर आजाद	सत्यशकुन
झांसी की रानी लक्ष्मीबाई	सत्यशकुन
युगपुरुष वीर सावरकर	अशोक कौशिक
भारतीय संस्कृति के आधार स्तम्भ	डा रामलाल वर्मा

राजनीतिक पुस्तकें

गांधी वध और मैं	गोपाल गोडसे
गांधी वध क्यो	गोपाल गोडसे
Gandhiji's Murder & After	*Gopal Godse*
May it please your Honour	Nathu Ram Godse
हिन्दू समाज और राष्ट्रीयता	भगवतीस्वरूप शास्त्री